महर्षिव्यासप्रणीतः

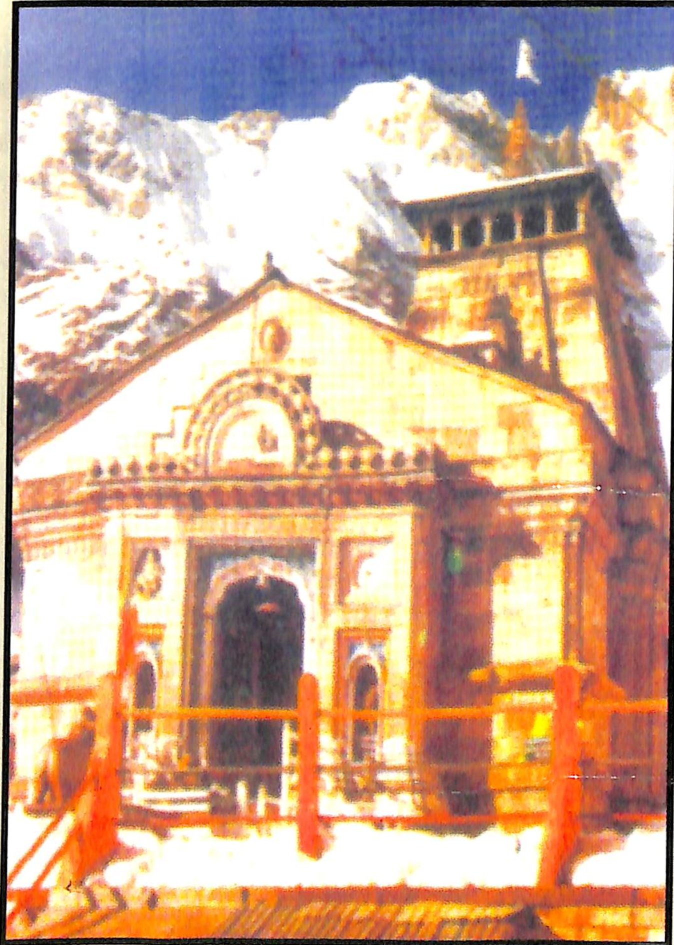
स्कन्दमहापुराणान्तर्गतः

केदारखण्डः

(भाषानुवादसहितः)

[तृतीयो भागः]

कुलपतेः प्रो. अशोककुमारकालियामहोदयस्य प्रस्तावनया विभूषितः



व्याख्याकारः सम्पादकश्च
डॉ. ददन-उपाध्यायः

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः, वाराणसी

गङ्गानाथझा-ग्रन्थमाला
[१७]

महर्षिव्यासप्रणीतः
स्कन्दमहापुराणान्तर्गतः

केदारखण्डः

(हिन्दीव्याख्योपेतः)

[तृतीयो भागः]

कुलपतेः प्रो. अशोककुमारकालियामहोदयस्य प्रस्तावनया विभूषितः

व्याख्याकारः सम्पादकश्च
डॉ. ददन-उपाध्यायः



सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
वाराणसी


सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
श्रुतम् मे गोपाय

GAṄGĀNĀTHAJHĀ-GRANTHAMĀLĀ
[Vol. 17]

KEDĀRAKHAṆḌA

OF

MAHARṢI VYĀSA

[PART THREE]

With the Hindi Commentary

FOREWORD BY

PROF. ASHOK KUMAR KALIYA
VICE-CHANCELLOR

TRANSLATED & EDITED BY

DR. DADAN UPADHYAY
Assistant Editor
Publication Institute
Sampurnanand Sanskrit University,
Varanasi



VARANASI
2006

Research Publication Supervisor—
Director, Research Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi.

ISBN : 81-7270-049-0 (Set)
ISBN : 81-7270-171-3 (Part III)



Published by—
Dr. Harish Chandra Mani Tripathi
Director, Publication Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002.



Available at—
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002.



First Edition, 500 Copies

Price : Rs. 550.00



Printed by—
Shreejee Printers
Nati Imli, Varanasi-221001

गङ्गानाथझा-ग्रन्थमाला
[१७]

महर्षिव्यासप्रणीतः
स्कन्दमहापुराणान्तर्गतः

केदारखण्डः

(हिन्दीव्याख्योपेतः)

[तृतीयो भागः]

कुलपतेः प्रो. अशोककुमारकालियामहोदयस्य प्रस्तावनया विभूषितः

व्याख्याकारः सम्पादकश्च
डॉ. ददन-उपाध्यायः
सहायकसम्पादकः, प्रकाशनसंस्थानस्य
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये
वाराणसी



वाराणस्याम्

२०६२ तमे वैक्रमाब्दे   १९२७ तमे शकाब्दे   २००६ तमे खैस्ताब्दे

अनुसन्धान-प्रकाशन-पर्यवेक्षकः —
निदेशकः, अनुसन्धान-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी।

ISBN : 81-7270-049-0 (Set)
ISBN : 81-7270-171-3 (Part III)



प्रकाशकः—
डॉ. हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी
निदेशकः, प्रकाशन-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी-२२१००२



प्राप्ति-स्थानम्—
विक्रय-विभागः,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य
वाराणसी-२२१००२



प्रथमं संस्करणम् – ५०० प्रतिरूपाणि
मूल्यम् – ५५०.०० रूप्यकाणि



मुद्रकः—
श्रीजी प्रिण्टर्स
नाटी इमली, वाराणसी-२२१००१

प्रस्तावना

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय अपने उद्देश्यों के अनुसार विभिन्न शास्त्रों के चूडान्त अध्ययन-अध्यापन, विश्लेषण, अनुसंधान एवं प्रकाशन के कार्यों में निरन्तर पूरे राष्ट्र में अपनी उपस्थिति, अपनी उपलब्धि, अपनी संस्कृतसाहित्य के संरक्षण की जागरूकता से तादात्म्य भाव रखते हुए निरन्तर अग्रसर है, यह हमारे लिये गौरवास्पद माना जाना चाहिए।

इस विश्वविद्यालय ने अपने विश्वविख्यात सरस्वतीभवन पाण्डुलिपि पुस्तकालय को केन्द्र में रखते हुए नानाशास्त्रों के ग्रन्थरत्नों का प्रकाशन किया है। हमारे लिए बहुमान का विषय है कि आज २३ ग्रन्थमालाओं में आकर ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है। यह और भी श्लाघा का विषय है कि सीमित साधनों के अन्तर्गत इस विश्वविद्यालय ने २८०० ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। हमारा सरस्वतीभवन पाण्डुलिपि पुस्तकालय हमारे प्रकाशनों का आकर स्रोत है। उसी आकर स्रोत से काशीखण्ड की भाँति केदारखण्ड का चार भागों में प्रकाशन सङ्कल्पित हुआ था, जिसके दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं और तीसरा भाग विद्वज्जनों के करकमलों में प्रस्तुत है। तृतीय-भाग की हिन्दी व्याख्या एवं सम्पादन प्रकाशन-संस्थान के सहायक सम्पादक **डॉ. ददन उपाध्याय** ने किया है। डॉ. उपाध्याय अनेक शास्त्रों के गम्भीर विद्वान् हैं और पुराणवाङ्मय तो इनका अत्यन्त प्रिय विषय है। अतः मैं डॉ. उपाध्याय को इस महनीय कार्य के लिए साधुवाद एवं शुभाशीर्वाद प्रदान करता हूँ।

मेरी व्यक्तिगत मान्यता है कि जैसे वेदों से लेकर सभी शास्त्रों का अन्योन्याश्रित विश्लेषण, तुलनात्मक अनुसंधान, पुनः पुनः उक्तियों का संगतिकरण एवं अप्रकाशित हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का वाचन, पाठभेद-निरूपण, पाठोद्धार, संयोजन तथा पाण्डुलिपि के रूप में अवगुण्ठित ज्ञानराशि का साङ्गोपाङ्ग प्रकटीकरण, संस्कृतसेवी विद्वत्समुदाय के सर्वात्मना समर्पण की अपेक्षा रखता है, अन्यथा संस्कृतवाङ्मय की अतल गहराइयों में जो ज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान की रत्नज्ञानराशि अनालोचित पड़ी हुई है, उसके बारे में संस्कृतसमाज साधिकार कुछ कह पाने में हमेशा सङ्कोच करता रहेगा।

अत: मैं स्वातन्त्र्योत्तर भारत के संस्कृतसेवियों का आह्वान करता हूँ कि वे **डॉ. ददन उपाध्याय** की भाँति अपने-अपने शास्त्र-क्षेत्रों में निरन्तर धावमान हों, तभी तो हम संस्कृतसेवी होने की वैजयन्ती लेकर विश्व के समक्ष प्रस्तुत हो सकेंगे। अभी-अभी **२८ अक्टूबर, २००५ को भारतराष्ट्र के महामनीषी महामहिम उप-राष्ट्रपति डॉ. भैरो सिंह शेखावत जी ने संस्कृतसेवियों को इसी ओर अहमहमिकया सर्वात्मना समर्पित होने का आह्वान किया था।**

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का प्रकाशन-संस्थान अपने सहयोगियों के साथ प्रकाशन निदेशक **डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी** के नेतृत्व में लुप्त हो रहे, तिरोहित हो रहे, जीर्ण-शीर्ण हो रहे तथा कालकवलित हो रहे संस्कृतवाङ्मय के ग्रन्थरत्नों के प्रकाशन के कार्य में प्राणपण से अनुस्यूत है। मैं प्रकाशन निदेशक डॉ. त्रिपाठी एवं उनके समस्त सहयोगियों का वर्धापन के द्वारा अभिनन्दन करता हूँ।

अन्त में काशीश्रीविश्वेश्वर के कथोपकथनों से आप्लुत इस **केदारखण्ड** के **तृतीय भाग** को उन्हीं के श्रीचरणों में प्रस्तुत करते हुए आशा करता हूँ कि इस केदारखण्ड का चतुर्थ भाग भी शीघ्रातिशीघ्र विद्वानों के करकमलों में प्रस्तुत हो सकेगा।

(प्रो. अशोक कुमार कालिया)
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी
वसन्त-पञ्चमी,
२०६२ विक्रमाब्द
(२-२-२००६ ख्रीष्टाब्द)

प्रकाशकीय

केदारखण्ड के तृतीय भाग को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अतीव आनन्दानुभूति हो रही है। जिस प्रकार स्कन्दपुराण बृहत्तम एवं महत्तम पुराण मान्य है, उसी प्रकार उसका केदारखण्ड भी सबसे बड़ा एवं विशिष्ट खण्ड है। स्कन्दपुराण के अन्तर्गत माहेश्वरखण्ड में 'केदारखण्ड' तथा 'कुमारिकाखण्ड' दो महत्त्वपूर्ण खण्ड हैं, इनमें केदारखण्ड का विशेष महत्त्व है। अध्ययन की दृष्टि से हिमालय को पाँच भागों में बाँटा गया है—

खण्डाः पञ्च हिमालयस्य कथिता नेपालकूर्माचलौ।
केदारोऽथ जलन्धरोऽथ रुचिरः कश्मीरसंज्ञोऽन्तिमः।।

(गढ़.इ., पृ. १)

देवतात्मा हिमालय-क्षेत्र का यह अञ्चल देवभूमि या भगवान् शिव की क्रीडाभूमि की मान्यता को प्राप्त किया है। इस क्षेत्र का धार्मिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व भी अत्यन्त गौरवास्पद है। इस खण्ड में कथाओं के माध्यम से हिमालय के केदार-क्षेत्र के भौगोलिक ज्ञान के साथ-साथ प्राचीनतम सम्पूर्ण इतिहास भी सुरक्षित है। बीच-बीच में नीति, धर्म, सदाचार, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, यज्ञ, दान, तप, पूजा, उपासना आदि के सुन्दर सदुपदेश तथा अमृतमयी सुभाषित-सूक्तियाँ भी मणियों की तरह अनुगुम्फित हैं। इसका उपदेश-भाग अत्यन्त उपादेय है। भारत में गाय की मान्यता का प्रमाणक केदारखण्ड का यह श्लोक स्मरणीय है—

मङ्गलं दर्शनं प्राप्तं पूजनं परमं पदम्।
स्पर्शनं परमं तीर्थं नास्ति धेनुसमं क्वचित्।।

(के.ख. ११०/६४)

तपःपुञ्ज परमकारुणिक महर्षि वेद-व्यास-रचित अष्टादश पुराण समग्र सार्वभौम आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक जीवन-दर्शन के जीवन्त भाष्य अथवा विश्वकोष हैं। पुराणों में भारतीय सांस्कृतिक सम्पत्ति सुरक्षित है। पराशरात्मज सत्यवतीहृदयानन्दन महामुनि व्यास के मुखकमल से निर्गत वाङ्मयामृत का पान कर संसार तृप्त हो रहा है—

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्य मुखकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति।।

(वायु. १/१/२)

पुराणवाङ्मय वेदों का भाष्य है। इसलिए पुराणों की सहायता से वेदों के गूढ़ार्थ का विस्तार एवं समर्थन होना चाहिए।

भारतीय वाङ्मय में अष्टादश महापुराण की महती प्रतिष्ठा है, जिसमें भगवान् स्कन्द द्वारा ख्यात स्कन्दपुराण विश्वकोष के समान समस्त भारतवर्ष का सर्वेक्षणात्मक ज्ञान प्रस्तुत करता है। इसका केदारखण्ड बृहत्तम है। **सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय** द्वारा काशीखण्ड के चार भागों के प्रकाशन के अनन्तर केदारखण्ड के प्रकाशन की योजना प्रारम्भ हुई। सम्प्रति इसके तृतीय-खण्ड का प्रकाशन हिन्दी-व्याख्या के साथ हो रहा है, जिसके श्रेय के भागी प्रकाशन-संस्थान के सहायक सम्पादक **डॉ. ददन उपाध्याय** हैं। इनके सारस्वत-श्रम हेतु कोटिश: धन्यवाद देता हूँ, साथ ही इनके लिए मङ्गलकामना करता हूँ कि डॉ. उपाध्याय भविष्य में अनवरत पुराणवाङ्मय के अनुशीलन में समर्पित रहेंगे।

इस सारस्वत-अनुष्ठान में नयी चेतना, नवीन स्फूर्ति, नूतन दृष्टि प्रदान करने वाले अभिनव प्रतिभा के धनी मनीषी कुलपति **प्रो. अशोक कुमार कालिया** जी की अधमर्णता स्वीकार करता हूँ, जिनकी प्रेरणा एवं सम्बल से हमें निरन्तर शक्ति तथा स्फूर्ति प्राप्त होती रहती है।

ग्रन्थ को सुमनोहर एवं आकर्षक कलेवर प्रदान करने वाले श्रीजी प्रिण्टर्स के सञ्चालक **श्री अनूप कुमार नागर** को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ एवं उनकी यश:श्री की मङ्गलकामना करता हूँ।

अन्तत: श्रीकाशीविश्वेश्वर की सपर्या को केन्द्र में रखकर सृजित इस कृति को साम्बशिव के श्रीचरणों में समर्पित करता हूँ।

वाराणसी
वसन्त-पञ्चमी,
२०६२ वैक्रमाब्द
(२.२.२००६ खैष्टाब्द)

(डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी)
निदेशक
प्रकाशन-संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

भूमिका

पुराण नाम की सार्थकता

'पुराण' शब्द का अर्थ पुरातन या प्राचीन है। मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद अनादि, अपौरुषेय हैं। श्रीव्यासविरचित पुराण अर्थतः अनादि होते हुए भी पौरुषेय हैं। प्रजापति पितामह को सर्वप्रथम पुराणों का स्मरण हुआ, पुनः वेदों का। प्रमाणस्वरूप निम्नलिखित श्लोक अनेक पुराणों में प्राप्त होता है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।। (म.पु. ५३.३)

इस प्रकार वेदों की अभिव्यक्ति की अपेक्षा पुराणों की अभिव्यक्ति पुरातन होने के कारण उसे **'पुराण'** कहा गया है।

द्विविध पुराण

पौरुषेय-अपौरुषेय भेद से पुराण दो प्रकार के हैं। पौरुषेय पुराण श्रीवेदव्यासादिविरचित हैं। अपौरुषेय पुराण अष्टविध ब्राह्मणान्तर्गत होने से वेदात्मक हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार प्रकार से मन्त्र-समुदाय हैं। इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र (वस्तुसंग्रह वाक्य), अनुव्याख्यान (मन्त्रविवरण) और व्याख्यान (अर्थवाद) ये अष्टविध ब्राह्मण हैं। इनमें **'असद्वा इदमग्र आसीत्'** (तैत्तिरीयो. २.७.१) आदि जगत्कारण के ख्यापक ब्राह्मणवचन पुराण हैं। चारों प्रकार के मन्त्रसमुदायसहित अष्टविध ब्राह्मण परमात्मा के बुद्धि-प्रयत्न-निरपेक्ष निःश्वास हैं। बृहदारण्यक (२.४.१०) में इनका वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

स यथार्द्रैन्धनाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निःश्वसितानि।

ऋषिप्रणीत रामायण-महाभारतरूप इतिहास और विष्णु, ब्रह्म आदि अष्टादश पुराण पञ्चम वेद हैं। इनका वर्णन ग्रन्थों में इस प्रकार उपलब्ध होता है—**ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं**

पञ्चमं.....' (छान्दोग्यो. ७.१.२)। **'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदः'** (न्यायदर्शन ४.१.६२, वात्स्यायनभाष्य)। **'इतिहास-पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते'** (श्रीमद्भा. १.४.२०)।

उक्त स्थलों में निर्दिष्ट इतिहास, पुराण ब्राह्मणप्रभेद नहीं माने जा सकते; क्योंकि पञ्चम वेद के रूप में और व्याकरण आदि के सन्दर्भ में उनका उल्लेख है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।

(महा. आदिपर्व. १.२६७-२६८)

इतिहास और पुराण उपाङ्ग कहे गये हैं—**'इतिहासपुराणाख्यमुपाङ्गं च प्रकीर्तितम्'** (सीतोपनिषद्)। इन वचनों के अनुसार मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद से पृथक् इतिहास, पुराण का बोध प्राप्त होता है। **'इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्'** (महा. आदि. १.६३), **'जयो नामेतिहासोऽयम्'** (महा. आदि. ६२.२०), **'पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः'** (आदि. १.८६) आदि वचनों के अनुसार महाभारत जहाँ इतिहास सिद्ध होता है, वहाँ पुराण लक्षणलक्षित होने से पुराण भी।

लोकवृत्तप्रतिपादक पुराण

न्यायदर्शन के वात्स्यायन-भाष्य में कहा गया है कि वेद, धर्मशास्त्र तथा पुराण—इनके मुख्य विषय भिन्न-भिन्न होते हैं। जिस प्रकार रूप में चक्षु, रस में रसना, गन्ध में नासिका, स्पर्श में त्वक् और शब्द में श्रोत्र का ही प्रामाण्य है, उसी प्रकार अपने-अपने विषय में श्रुति-स्मृति और पुराण तीनों ही प्रमाण हैं। केवल एक से काम नहीं चलता। वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ है। यज्ञ में देवपूजा, देवसम्बन्धी सङ्गतिकरण और देवविषयक दान आदि का सन्निवेश है। इतिहास-पुराणों का मुख्य विषय है—लोकवृत्त (चरित्र) प्रतिपादन। लोक-व्यवहार की व्यवस्था बताना यह धर्मशास्त्र का प्रधान विषय है। लिखा है—

'विषयव्यवस्थानाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम्। अन्यो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयः, अन्यश्च इतिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति, यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य, लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य, लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः, तत्रैकेन न सर्वं व्यवस्थाप्यत इति, यथाविषयं एतानि प्रमाणानि इन्द्रियादिवदिति'। (न्यायदर्शन, वात्स्यायन-भाष्य, ४.१.५२)

पुराणों का महत्त्व

जो वृत्तान्त पहले हो गया हो, उसका जिसमें वर्णन हो, वही पुराण है। संसार का ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं, जो पुराणों में न हो। पुराण तो वेदों से भी पुराने हैं। साक्षात् भगवान् ने ही जीवों के संसार से निस्तार के निमित्त व्यास रूप से अवतार ग्रहण कर पुराणों का व्यास करके संग्रह किया। भारतीय संस्कृति के मूलाधार के रूप में वेदों के अनन्तर पुराणों का ही सम्मानपूर्ण स्थान है। वेदों में वर्णित अगम्य रहस्यों तक जन-सामान्य की पहुँच नहीं हो पाती; परन्तु भक्तिरस से परिप्लुत पुराणों की मङ्गलमयी, शोकनिवारिणी, ज्ञान-प्रदायिनी दिव्य कथाओं का श्रवण, मनन, पठन-पाठन कर जन-साधारण भी भक्ति-तत्त्व का अनुपम रहस्य जान लेते हैं। वायुपुराण में कहा है—

यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।। (वा.पु. १.२०३)

महाभारत में कहा गया है—

'पुराणसंहिता पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रिताः'। (महा.आदि. १.१६)

अर्थात् पुराणों की पवित्र कथाएँ धर्म और अर्थ को प्रदान करने वाली हैं। अध्यात्म की दिशा में अग्रसर होने वाले कल्याणेच्छु साधकों को पौराणिक कथाओं के अनुशीलन से तात्त्विक बोध की उपलब्धि होती है। साथ ही हृदय में प्रभु-पाद-पद्मों की सच्ची प्रीति अथवा अनुरक्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित हो उठती है।

पञ्चम वेद के रूप में दिव्य पौराणिक ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्मा जी के द्वारा अभिव्यक्त हुआ—

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः।।

(श्रीमद्भाग. ३.१२.३९)

अर्थात् इतिहास और पुराणरूप पाँचवें वेद को उन समर्थ, सर्वज्ञ ब्रह्मा ने अपने सभी मुखों से प्रकट किया।

लोकभाषा में वर्णित होने के कारण वेदों की अपेक्षा पुराण अधिक लोकप्रिय हैं। राजनीति, धर्मनीति, इतिहास, समाजविज्ञान, ग्रह-नक्षत्र-विज्ञान, आयुर्वेद, अलङ्कार, व्याकरण, भूगोल, ज्योतिष आदि समस्त

विद्याओं का प्रतिपादन पुराणों में हुआ है। भारतीय संस्कृति का विशिष्ट ज्ञान हमें पुराणों के द्वारा प्राप्त होता है। इसके द्वारा भारतीय प्रतिभा का उत्कृष्ट फल प्रतिफलित हुआ है।

ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च।
ससंहारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके।।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते।
सर्वेष्वपि पुराणेषु यद्विरुद्धं च यत्फलम्।।

(मत्स्यपु. ५३.६५-६६)

इस प्रकार पुरुषार्थ-चतुष्टय-प्रदाता दिव्य ज्ञान-कोष पुराणों का सेवन हमारा परम अभीष्ट होना चाहिये।

आयुष्मतां कथां कीर्तयन्तो माङ्गल्यानीतिहासपुराणानि।

(आश्वलायन, गृह्यसूत्र-४.६)

अर्थात् चिरञ्जीवी मनुष्यों की कथाएँ और माङ्गलिक इतिहास-पुराणों का पाठ करते हुए समय-यापन करना चाहिये।

पुराणों की प्राचीनता

प्राचीनकाल में पुराण शब्द के विषय में दो दृष्टि उपलब्ध होती है। प्रथम दृष्टि से यह प्राचीनकाल के वृत्तों के विषय में विद्या के रूप में प्रयुक्त होता था। दूसरे अर्थ में यह एक विशिष्ट साहित्य या ग्रन्थ के लिये प्रयुक्त किया गया उपलब्ध होता है। इसकी प्राचीनता के अन्वेषण के लिये वैदिक साहित्य का आलोडन आवश्यक है—संहिता, ब्राह्मण तथा उपनिषदों का।

ऋग्वेद में 'पुराण' शब्द का प्रयोग अनेक मन्त्रों में उपलब्ध होता है (ऋ. ३.५४.९, ३.५८.६, १०.१३०.६); परन्तु इन स्थलों पर 'पुराण' शब्द केवल प्राचीनता का ही द्योतक है। ऋग्वेद के ९.९९.४ मन्त्र में 'पुराणी' शब्द गाथा शब्द के विशेषण के रूप में प्रयुक्त मिलता है। इससे अर्थ लगाया जा सकता है कि ऋग्वेद-काल में कुछ गाथाएँ ऐसी विद्यमान थीं, जिनका उदय किसी प्राचीनकाल में हुआ था। अथर्ववेद में 'पुराण' शब्द इतिहास, गाथा तथा नाराशंसी शब्दों के साथ प्रयुक्त मिलता है, जहाँ एक विशिष्ट विद्या के रूप में ही उपलब्ध होता है। अथर्ववेद में पुराण का उदय 'उच्छिष्ट'संज्ञक ब्रह्म से बतलाया गया है। यथा—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः।। (अथर्व. ११.७.४)

मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—ऋक्, साम, छन्द (अथर्व) और यजुर्वेद के साथ ही पुराण भी उस उच्छिष्ट से यज्ञ के अवशेष से अथवा जगत् पर शासन करने वाले यज्ञमय परमात्मा से उत्पन्न हुए तथा द्युलोक में निवास करने वाले देव भी उसी उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए।

ब्राह्मण-साहित्य में भी पुराण का अस्तित्व प्रमाणित होता है। शतपथ तथा गोपथ ब्राह्मणों में 'पुराण' का बहुश: उल्लेख उपलब्ध होता है, जिससे इसकी लोकप्रियता प्रमाणित होती है। गोपथ का कथन है कि कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास, अन्वाख्यात तथा पुराण के साथ सब वेद निर्मित हुए।

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्याः सरहस्याः सब्राह्मणा सोपनिषत्का सेतिहासाः सान्वाख्याता सपुराणाः। (गोपथ., पूर्वभाग-२.१०)

यहाँ इतिहास-पुराण का सम्बन्ध वेद से जोड़ा गया है। दूसरे मन्त्र में गोपथ ब्राह्मण पाँच वेदों के निर्माण की बात कहता है और ये वेदपञ्चक हैं—सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद तथा पुराणवेद। यथा—

पञ्चवेदान् निरमिमत सर्पवेदं पिशाचवेदमसुरवेदमितिहासवेदं पुराणवेदम्।
(गो.पूर्व. १.१०)

इन वेदों के निर्माण के विषय में कहा गया है कि प्राची दिशा से सर्पवेद का निर्माण हुआ, दक्षिण दिशा से पिशाचवेद का, पश्चिम दिशा से असुरवेद का, उत्तर दिशा से इतिहासवेद का तथा ध्रुवा (पैरों से ठीक नीचे होने वाली दिशा) से इतिहास का और ऊर्ध्वा (शिर के ठीक ऊपर की दिशा) से पुराण का निर्माण हुआ।

स खलु प्राच्या एव दिशः सर्पवेदं निरमिमत, दक्षिणस्याः पिशाचवेदं प्रतीच्या असुरवेदमुदीच्या इतिहासवेदं ध्रुवायाश्चोर्ध्वायाश्च पुराणवेदम्।
(गो., पूर्व. १.१०)

ये उस युग में स्वतन्त्र वेद या वेद के समान ही मान्य शास्त्र थे। ये पाँचों ही स्वतन्त्र थे, इसकी सूचना व्याहृतियों की उत्पत्ति से मिलती है। इसी सन्दर्भ में पाँच महाव्याहृतियों वृधत्, करत्, गुहत्, महत् तथा तत् की उत्पत्ति निर्दिष्ट पाँचों वेदों से क्रमश: वर्णित है। जैसा कि गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है—

स तान् पञ्चवेदानभ्यश्राम्यदभ्यतपत् समतपत्। तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यः पञ्चमहाव्याहृतीर्निरमिमत वृधत् करत् गुहत् महत् तदिति। वृधदिति

सर्पवेदात्, करदिति पिशाचवेदात्, गुहदित्यसुरवेदात्, महदितीतिहासवेदात्, तदिति पुराणवेदात्। (गोपथ, पूर्वभाग १.१०)

भिन्न दिशाओं से उत्पन्न होने के कारण तथा भिन्न व्याहृतियों के उद्‌गमस्थल होने से गोपथ ब्राह्मण इतिहास और पुराण को भिन्न-भिन्न विद्याओं के रूप में ग्रहण करता है। उस युग में दोनों का पार्थक्य निश्चित हो चुका था।

शतपथ ब्राह्मण अपने विशाल क्षेत्र में इतिहास-पुराण के उदय की बड़ी ही महत्त्वपूर्ण गाथा सुरक्षित रखे हुए है, जिनका अनुशीलन अनेक नवीन उपलब्धियों को प्राप्त करने में सर्वथा समर्थ है। इस ब्राह्मण के उद्धरण बड़े ही महत्त्व के हैं। वहाँ ब्रह्मयज्ञ के प्रसङ्ग में कहा गया है कि विभिन्न वेदों का स्वाध्याय विभिन्न फल प्रदान करता है। अनुशासन, विद्या, वाकोवाक्य, इतिहास-पुराण, गाथा तथा नाराशंसी के स्वाध्याय करने से देवों को मधु से पूर्ण आहुतियाँ प्राप्त होती हैं—

मध्वाहुतयो ह वा एता देवानाम्। यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंस्यः। य एवं विद्वान् अनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंसीरित्यहरहः स्वाध्यायमधीते। मध्वाहुतिभिरेव तद्देवांस्तर्पयति। (शतपथ. ११.५.६.८)

वहाँ यह कहा गया है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास-पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान तथा व्याख्यान सब वाङ्मय हैं। इनका अध्ययन करने वाला वाणी से सम्राट् होता है। यथा—

ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासपुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि अनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि वाचैव सम्राट् प्रजायते।

(शतपथ. १४.६.१०.६)

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि यज्ञानुष्ठाता उन्हें उपदेश करे कि पुराण ही वेद है—**'तान् उपदिशति पुराणं वेदः'** (शतपथ. १३.४.३.१३)। इसलिये परिप्लव के नवम दिन कुछ पुराणों का पाठ करना चाहिये—**'अथ नवमेऽहनि किञ्चित् पुराणमाचक्षीत'** (शतपथ. १३.४.३.१३)।

इन उद्धरणों से ब्राह्मणकाल में पुराण की महत्ता का परिचय भलीभाँति मिलता है। ध्यातव्य है कि शतपथ ब्राह्मण के प्रथम दो उद्धरणों में 'इतिहास-पुराण' समस्त पद के रूप में उल्लेख पा रहा है; परन्तु पारिप्लवाख्यान

में इतिहास तथा पुराण का पार्थक्य स्पष्टतः निर्दिष्ट किया गया है। वहाँ कहा गया है कि इतिहास का प्रवचन अष्टम रात्रि में होता है और पुराण का प्रवचन नवम रात्रि में। जैसा कि वहाँ का वचन है—

अथाष्टमेऽहन् मत्स्याश्च मत्स्यहनश्चोपसमेता भवन्ति। तानुपदिशतीतिहासो वेदः सोऽयमिति किञ्चिदितिहासमाचक्षीत। अथ नवमेऽहन् तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किञ्चित्पुराणमाचक्षीत।

(शतपथ. १३.४.३.१२-१३)

इस प्रकार ब्राह्मणयुग में दोनों प्रकार की भावनायें क्रियाशील थीं— इतिहास-पुराण की सम्मिलित भावना तथा पार्थक्य भावना। शतपथ ब्राह्मण में **'इतिहास-पुराण'** सम्मिलित रूप से एक ही समस्त पद द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि दोनों में विषय का सादृश्य था। आगे चलकर दोनों पृथक् ग्रन्थ के रूप में विभक्त हो गये। इसीलिये गोपथब्राह्मण पुराणवेद को इतिहासवेद से पृथक् निर्दिष्ट करता है। ऐसे विकास की सम्पत्ति ब्राह्मणयुग में ही पुराण के गाढ़ अनुशीलन तथा आलोडन का तथ्य प्रकाशित करती प्रतीत होती है।

आरण्यक एवं उपनिषद् ग्रन्थों में भी पुराण तथा इतिहास की स्थिति पर्याप्तरूपेण सिद्ध होती है। कुछ उद्धरण अवलोकनीय हैं—

ब्रह्मयज्ञप्रकरणे-यद् ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीर्मेदाहुतयो देवानामभवन्। ताभिः क्षुधं पाप्मानमपाघ्नन्। अपहतपाप्मानो देवाः स्वर्गं लोकमायन्। ब्रह्मणः सायुज्यमृषयोऽगच्छन्।

(तैत्तिरीय आरण्यक प्रपाठक-२, अनुवाक-९)

बृहदारण्यक का एक उद्धरण द्रष्टव्य है—

स यथार्द्रैन्धनाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा विनिश्चरन्ति, एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासपुराणम्। (बृहदा. उप. २.४.११)

छान्दोग्य उपनिषद् पुराण को पञ्चम वेद के रूप में उपस्थापित करता है—

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासं पुराणं पञ्चमम्, वेदानां वेदं, पित्र्यं राशिं.....एतद् भगवोऽध्येमि। (छान्दोग्य. ७.१.२)

आश्वलायन-गृह्यसूत्र में पुराण-पठन का उल्लेख अनेक बार मिलता है। निम्न मन्त्र में इतिहास तथा पुराण का अनुशीलन स्वाध्याय के अध्ययन के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है—

अथ स्वाध्यायमधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वाङ्गिरसो ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीति। (आश्व.गृ.सू. ३.३.१)

एक अन्य मन्त्र में इतिहास और पुराणों के स्वाध्याय करने वाले व्यक्ति के देवों और पितरों को अमृत की कुल्या (नहर) प्राप्त होने का तथ्य उद्घाटित किया गया है। यथा—

यदृचोऽधीते पयसः कुल्या अस्य पितॄन् स्वधा उपक्षरन्ति यद्यजूंषि घृतस्य कुल्या यत्सामानि मध्वः कुल्या यदथर्वाङ्गिरसः सोमस्य कुल्या यद्ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीत्यमृतस्य कुल्याः।

(आश्व. गृ.सू. ३.४.६)

आपस्तम्ब-धर्मसूत्र (२.२३.३५) में किसी पुराण के दो श्लोक उद्धृत किये गये हैं। ये महत्त्वपूर्ण श्लोक हैं—

अष्टाशीतिसहस्राणि ये प्रजामीषिरर्षयः।
दक्षिणेनार्यम्णः पन्थानं ते श्मशानानि भेजिरे।।
अष्टाशीतिसहस्राणि ये प्रजां नेषिरर्षयः।
उत्तरेणार्यम्णः पन्थानं तेऽमृतत्वं हि भेजिरे।।

(इत्यूर्ध्वरेतसां प्रशंसा/आ. धर्मसूत्र-२.९.२३.३-६)

उपर्युक्त उद्धृत श्लोकों का मूल स्थान बतलाना तो नितान्त कठिन है; परन्तु इन्हीं श्लोकों के समान भावार्थक पद्य पुराणों में अनेक स्थलों पर आज भी उपलब्ध होते हैं। ब्रह्माण्ड-पुराण के ६५ अध्याय के १०३-१०४ श्लोक तो आपस्तम्ब द्वारा उद्धृत श्लोकों से नितान्त साम्य रखते हैं। विष्णुपुराण (३.८) तथा मत्स्यपुराण (अ. १२४ श्लो. १०२-१०३) में इसी प्रकार के श्लोक मिलते हैं। पद्मपुराण के सृष्टि-खण्ड में भी ऐसा ही श्लोक प्राप्त है। यथा—

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
उदक् पन्थानमर्यम्णः स्थितान्याभूतसम्प्लवम्।।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

आपस्तम्ब-धर्मसूत्र में भविष्यपुराण का वचन उद्धृत है—

आभूत-सम्प्लवास्ते स्वर्गजितः पुनः स्वर्गे बीजार्था भवन्तीति भविष्यत्पुराणे। (आप.ध.सू. २.९.२४.६)

आपस्तम्ब के इस महत्त्वपूर्ण उल्लेख से भली-भाँति पता चलता है कि उस काल में भविष्यपुराण नामक कोई विशिष्ट पुराण अवश्य वर्तमान था।

आपस्तम्ब-धर्मसूत्र का रचनाकाल ईसापूर्व पञ्चम-षष्ठ शतक माना जाता है। उस समय पुराण का रूप आजकल उपलब्ध पुराण के समान ही धर्मशास्त्रीय विषय से सम्पन्न था। पुराण के सामान्य निर्देश के साथ 'भविष्यपुराण' का विशिष्ट निर्देश इस तथ्य का विशद प्रतिपादक है कि उस युग में कम से कम एक पुराण (भविष्यपुराण) का प्रणयन हो चुका था, जिसे आधुनिक समीक्षक सभी पुराणों में अर्वाचीन मानते हैं।

इस प्रकार भारतीय साहित्य के इतिहास में पुराण का उदय वैदिक-युग में हो चुका था।

पुराण की रचना

पुराण की उत्पत्ति के विषय में पुराणों में प्रायः एक समान ही मत पाये जाते हैं। ब्रह्मा के मुख से उसके उदय के विषय में तो किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं है। विभिन्नता का कारण है यह निर्धारण कि यह उत्पत्ति वेद की उत्पत्ति से प्राक्कालीन है या पश्चात्कालीन। मत्स्यपुराण (५३.३) के अनुसार सब शास्त्रों में पुराण का स्मरण ब्रह्मदेव ने किया, उसके बाद उनके मुख से वेद विनिर्गत हुए—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।। (म.पु. ५३.३)

श्रीमद्भागवत पुराण की उत्पत्ति वेद से पश्चात्कालीन मानता है; परन्तु एक अन्तर के साथ। ऋग्वेदादि का उदय तो ब्रह्मा के पूर्व मुख से आरम्भ कर क्रमशः हुआ; परन्तु पुराण की उत्पत्ति चारों मुखों से एक काल में ही सम्पन्न हुई। भागवत का कथन पुराण का वेद से आधिक्य सिद्ध करता है; परन्तु उत्पत्ति पश्चात्कालीन ही मानता है—

ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः।
शास्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधातु क्रमात्।।
इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः।।

(भाग. ३.१२.३६, ३९)

पुराण का यह उदय 'विद्या' के रूप में समझना चाहिये। यह अव्यवस्थित रूप से था और इसका प्रवचन किसी ग्रन्थ से नहीं किया जाता था, अपितु मौखिक रूप से ही होता था।

पुराण के विकास में एक नवीन युग तब आरम्भ होता है, जब सत्यवतीसुत व्यास जी ने 'पुराणसंहिता' का प्रणयन कर पुराण को सुव्यवस्थित रूप में प्रतिष्ठित किया। कृष्णद्वैपायन भगवान् वेदव्यास ने बड़े परिश्रम से वेदों को शाखा-प्रशाखा, ब्राह्मण, कल्पसूत्र, निरुक्त आदि की प्रक्रियाओं में विभाजित करके भी जब पूर्ण लोकोपकार में सफलता नहीं देखी, तब उन्होंने विशेष ध्यानस्थ होकर भागवतादि पुराणों, महाभारतादि इतिहासों की रचना कर वेदों के गूढ़तम सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने का सङ्कल्प किया। उन्हीं की भास्वती कृपा से समुद्भूत समग्र पुराणराशि हमारे सामने उपस्थित होकर विश्वकल्याण में निरन्तर प्रवृत्त है। अष्टादश पुराण के सुव्यवस्थित कर्ता कृष्णद्वैपायन सत्यवतीसुत वेदव्यास ही हैं, जैसा कि महाभारत का निम्न श्लोक प्रमाणित करता है—

अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
पश्चाद् भारतमाख्यानं चक्रे तदुपबृंहितम्।। (महा. आदिपर्व)

वेदव्यास का चरित लोकविश्रुत है, उसे अधिक लिखने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। वे निषादराज की पुत्री सत्यवती के गर्भ से पराशर मुनि के वीर्य से उत्पन्न हुए थे। उनका जन्म यमुना के एक द्वीप में हुआ था, इसीलिये वे 'द्वैपायन' के नाम से प्रख्यात हुए। उनका शरीर कृष्ण वर्ण का था, इसीलिये वे कृष्ण या कृष्णमुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए। दोनों को मिलाने से उनका पूरा नाम कृष्णद्वैपायन हुआ। वेदों का विभाजन करने के कारण वे 'वेदव्यास' पूरे नाम से और अधिकतर 'व्यास' जैसे छोटे नाम से पुकारे जाते हैं। उनके अगाध पाण्डित्य तथा अलौकिक प्रतिभा का वर्णन करना सरल कार्य नहीं है। उन्होंने तीन वर्षों तक सतत परिश्रम करके महाभारत जैसे महान् ग्रन्थ का प्रणयन किया—

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम्।। (महा. आदि. ६६.३२)

ऐसे महनीय ग्रन्थ की तीन साल के ही भीतर रचना करने का कार्य व्यास की अलौकिक कवि-प्रतिभा और अदम्य उत्साह का सूचक है।

वर्तमानयुगीय कृष्णद्वैपायन से पूर्व २७ व्यास हो चुके हैं, जिनका निर्देश विष्णुपुराण (३.३.७-१८) तथा देवीभागवत (१.३.२४-३५) में स्पष्टतया किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि २७ मन्वन्तर की यह व्यास-परम्परा है। प्रत्येक द्वापर युग में उत्पन्न होकर लोकमङ्गल के निमित्त

एक वेद का चार वेदों में तथा ब्रह्मा द्वारा स्मृत एवं परम्पराप्राप्त एक पुराण का १८ पुराण में व्यास करते हैं—विभाजन करते हैं।

विभाजन के कारण के विषय में विष्णुपुराण का कथन है—

वीर्यं तेजो बलं चाल्पं मनुष्याणामवेक्ष्य च।
हिताय सर्वभूतानां वेदभेदान् करोति सः।। (विष्णुपु. ३.३.६)

द्वापर के आरम्भ में मनुष्यों का तेज, वीर्य तथा बल कम हो जाता है, इस बात का विचार कर सब प्राणियों के हितार्थ व्यासदेव (जो विष्णु के ही अवतार माने जाते हैं) वेदों का व्यास करते हैं। जैसा कि विष्णुपुराण में कहा गया है—

द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने।
वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितः।। (विष्णुपु. ३.३.५)

इस बात की पुष्टि देवीभागवत के निम्न श्लोकों से भी होती है—

द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपेण सर्वदा।
वेदमेकं स बहुधा कुरुते हितकाम्यया।।
अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश्च विप्रान् ज्ञात्वा कलावथ।
पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगे युगे।।
स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां न वेदश्रवणं मतम्।
तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च।।

(देवीभाग. १.३.१९-२१)

व्यासों की परम्परा विष्णुपुराण में इस प्रकार बतलायी गयी है—१. ब्रह्मा, २. प्रजापति, ३. शुक्राचार्य, ४. बृहस्पति, ५. सूर्य, ६. यम, ७. इन्द्र, ८. वसिष्ठ, ९. सारस्वत, १०. त्रिधामा, ११. त्रिशिख, १२. भरद्वाज, १३. अन्तरिक्ष, १४. वर्णी, १५. त्रय्यारुण, १६. धनञ्जय, १७. ऋतुञ्जय, १८. जय, १९. भरद्वाज, २०. गौतम, २१. हर्यात्मा, २२. वाजश्रवा, २३. सोमशुष्मायण तृणबिन्दु, २४. भार्गव ऋक्ष (वाल्मीकि), २५. शक्ति, २६. पराशर, २७. जातुकर्ण तथा २८. कृष्णद्वैपायन।

वर्तमानयुगीन व्यास जी वसिष्ठ के प्रपौत्र, शक्ति के पौत्र, पराशर के पुत्र तथा शुकदेव के पिता थे। उनकी पारिवारिक परम्परा इस प्रख्यात पद्य में निर्दिष्ट है—

व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम्।।

वसिष्ठ जी ब्रह्मा के मानसपुत्र थे। फलतः व्यास जी की पारिवारिक परम्परा इस प्रकार परिज्ञात होती है—

ब्रह्मा
|
वसिष्ठ
|
शक्ति
|
पराशर
|
व्यास (कृष्णद्वैपायन)
|
शुकदेव

व्यास की परम्परा में वसिष्ठ आठवें व्यास हैं, जबकि शक्ति पच्चीसवें एवं पराशर छब्बीसवें व्यास की श्रेणी में स्थित हैं, इससे ऋषियों की दीर्घजीविता सूचित होती है। अतः पराशर एवं कृष्णद्वैपायन के बीच में 'जातुकर्ण' का अस्तित्व कोई समस्या नहीं, अपितु दीर्घजीविता का सूचक है।

वेदव्यास के साथ उनके तत्त्वज्ञानी पुत्र शुकदेव जी का भी नाम पुराण के प्रचार-प्रसार के इतिहास में सुवर्णाक्षरों से लिखने योग्य है। इनके जन्म की कथा भिन्न-भिन्न रूपों में पायी जाती है। मिथिला के राजा जनक के पास व्यास जी ने इन्हें भेजा, जहाँ इन्होंने राजा जनक से ज्ञान-विज्ञानविषयक प्रश्न पूछे। उचित समाधान पाकर ये पिता के समीप लौट आये। श्रीमद्भागवत राजा परीक्षित को सुनाकर उन्हें मोक्ष प्राप्त कराने से आपकी आध्यात्मिक योग्यता प्रमाणित होती है। भागवत में ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी के रूप में चित्रित किये गये हैं, जब कि देवीभागवत (१.१४) के अनुसार व्यास जी ने इन्हें गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिये महान् उपदेश दिया, तब पिता की आज्ञा का पालन कर इन्होंने गृहस्थाश्रम धारण किया। श्रीमद्भागवत के प्रवर्तक शुकमुनि ही बतलाये गये हैं—

स्वसुखनिभृतचेतास्तद् व्युदस्तान्यभावोऽ-
प्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम्।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि।।

(भाग. १२.१२.६८)

यह श्लोक शुकदेव जी के जीवन पर सुन्दर प्रकाश डालता है। श्री शुकदेव जी अपने आत्मानन्द में ही निमग्न रहते थे, इस अखण्ड अद्वैत स्थिति से उनकी भेददृष्टि सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी। फिर भी मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर की मधुमयी, मङ्गलमयी मनोहारिणी लीलाओं ने उनकी वृत्तियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया और उन्होंने जगत् के प्राणियों पर दया करके भगवत्तत्त्व को प्रकाशित करने वाले इस महापुराण भागवत का उपदेश सर्वप्रथम राजा परीक्षित को किया। उन्हीं सर्वापहारी व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेव के चरणों में मैं नतमस्तक होता हूँ।

श्री शुकदेव जी ने व्यास जी के श्रीमुख से सम्पूर्ण भागवत का अध्ययन किया—

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः।।

इस तरह पराशर, व्यास और शुकदेव तीन पीढ़ियों में होने वाले इन मुनियों ने पुराण के प्रणयन तथा प्रसार में अपनी शक्तियाँ लगा दीं। विष्णुपुराण के प्रवचन का श्रेय पराशर जी को प्राप्त होता है। विष्णुपुराण में पराशर का वचन मैत्रेय के प्रति ध्यातव्य है—

इति पूर्वं वसिष्ठेन पुलस्त्येन च धीमता।
यदुक्तं तत् स्मृतिं याति त्वत्प्रश्नादखिलं मम।।
सोऽहं वदाम्यशेषं ते मैत्रेय परिपृच्छते।
पुराणसंहितां सम्यक् तां निबोध यथातथम्।।

(विष्णु. १.१.२९-३०)

अष्टादश पुराणों के प्रणयन का गौरव व्यासदेव को है और पुराणमूर्धन्य श्रीमद्भागवत के प्रथम प्रवचन का तथा तद्द्वारा इसके सार्वत्रिक प्रसार की उदात्त महिमा श्रीशुकदेवमुनि को प्राप्त है। अतः पुराण के ये त्रिमुनि प्रत्येक पुराणपाठक के लिये वन्दनीय एवं उपास्य हैं।

अष्टादश पुराण

भारतीय वाङ्मय में पुराणों की संख्या अष्टादश मान्य है। इन पुराणों का नाम प्राय: प्रत्येक पुराणों में एक विशिष्ट क्रम में मिलता है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि ये स्वतन्त्र नहीं हैं, इनका परस्पर का कोई सम्बन्ध है और एक ही पुराण के अष्टादश भाग हैं। देवीभागवत में आद्य अक्षर का निर्देश करते हुए अष्टादश पुराणों का नाम-निर्देश एक श्लोक में इस प्रकार निबद्ध कर दिया गया है—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिङ्गकूष्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।।

मकारादि से दो पुराण—१. मत्स्य तथा २. मार्कण्डेय; भकारादि से दो पुराण—३. भागवत तथा ४. भविष्य; ब्रादि से तीन पुराण—५. ब्रह्म, ६. ब्रह्मवैवर्त तथा ७. ब्रह्माण्ड; वचतुष्टयम्—८. वामन, ९. विष्णु, १०. वायु, ११. वाराह; अनापलिङ्गकूस्क—१२. अग्नि, १३. नारद, १४. पद्म, १५. लिङ्ग, १६. गरुड, १७. कूर्म तथा १८. स्कन्द। इनके क्रम एवं संख्या के रहस्य की जिज्ञासा-पूर्ति के लिये केदारखण्ड के द्वितीय भाग की भूमिका अवलोकनीय है।

स्कन्दपुराण

समस्त महापुराणों में स्कन्दपुराण सबसे बृहत्काय है। इसके खण्डात्मक एवं संहितात्मक होने की सूचना मिलती है। इसमें ८११०० श्लोक हैं। खण्डात्मक स्कन्दपुराण सात खण्डों में विभक्त है। सात खण्डों के नाम हैं—माहेश्वरखण्ड, वैष्णवखण्ड, ब्रह्मखण्ड, काशीखण्ड, अवन्ती, नागर और प्रभासखण्ड। इनमें भी अनेक अवान्तर खण्ड मिलते हैं। इसके अतिरिक्त मानसखण्ड, केदारखण्ड आदि अनेक खण्डों की भी सूचना प्राप्त होती है।

खण्डात्मक के अतिरिक्त एक संहितात्मक स्कन्दपुराण पृथक् है। उसके सम्बन्ध में शंकरसंहिता के 'हालास्य-माहात्म्य' में प्रतिपादित है कि श्रुतिसार स्कन्दपुराण ६ संहिताओं और ५० खण्डों में विभक्त है। इसकी संहिताओं के नाम हैं—१. सनत्कुमारसंहिता, २. सूतसंहिता, ३. शंकरसंहिता, ४. वैष्णवसंहिता, ५. ब्रह्मसंहिता और ६. सौरसंहिता। इन संहिताओं की श्लोकसंख्या क्रमश: ३६०००, ६०००, ३००००, ५००००, ३००० और १००० बतलायी गयी है। इस प्रकार कुल मिलाकर इस स्कन्दपुराण की श्लोकसंख्या ८१००० हो जाती है। इन छ: संहिताओं में से पहली तीन

संहितायें उपलब्ध हैं। श्रुतिपरम्परा है कि नेपाल में छहों संहितायें हैं। सूतसंहिता पर तो आचार्यों के भाष्य भी हैं। इस संहितात्मक स्कन्दपुराण को कोई उपपुराण कहते हैं, कोई पुराण और कोई इसे महापुराण का ही अङ्ग मानते हैं। जो कुछ भी हो इसकी संहिताएँ हैं बड़ी महत्त्व की।

इस महापुराण में माहात्म्य कथाओं के प्रसङ्ग में जो इतिहास तथा जीवन-चरित्र आये हैं, वे बड़े महत्त्व के हैं। उनमें लौकिक, पारलौकिक, पारमार्थिक, कल्याणकारी अनन्त उपदेश भरे हैं। विभिन्न प्रसङ्गों में धर्म, सदाचार, योग, ज्ञान, भक्ति आदि का बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया गया है। तीर्थों के वर्णन में जो भूवृत्तान्त आया है, वह तो अत्यन्त आश्चर्यकारक है और भूगोल के विद्वान् के लिये अत्यन्त आदरणीय और विचारणीय विषय है।

यह स्कन्दपुराण पता नहीं, कितने अतीत युगों की अनन्त, अमूल्य गाथाओं को अपने वक्षःस्थल पर धारण किये, कितने निर्मल नद-नदी-सरित्-सागर-शैलादि का विशद वर्णन प्रस्तुत किये, कितने पुण्य तीर्थ, पुण्याश्रम, पुण्यायतन और कितने शत-शत कृतार्थ ऋषि-महर्षि, साधु-महात्मा, सन्त-भक्तों की पुण्यमयी चारु-चरित्रमालाओं से समलंकृत होकर आज भी भारतीयों का भक्ति-भाजन हो रहा है। आज भी भारतीय जीवन में, घर-घर में इसमें वर्णित आचारों, पद्धतियों, व्रतों तथा सिद्धान्तों का कितना प्रचार है—यह देखकर आश्चर्यचकित हृदय से इसके प्रति जीवन श्रद्धा से झुक जाता है।

केदारखण्ड

पूर्व सूचना के अनुसार स्कन्दपुराण के छः खण्ड हैं; किन्तु शंकरसंहिता की सूचना है कि स्कन्दपुराण ५० खण्डों में विभक्त है। केदारखण्ड के द्वितीय भाग की भूमिका में ८ खण्डों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। वहाँ यह भी कहा गया है कि इसके अतिरिक्त स्कन्दपुराण के अन्य खण्डों की चर्चा यत्र-तत्र उपलब्ध होती है, जिनमें नेपालखण्ड, मानसखण्ड, जालन्धरखण्ड, कश्मीरखण्ड और केदारखण्ड मुख्य हैं। इनमें तत्तत् क्षेत्रों का भौगोलिक परिवेश, सांस्कृतिक वातावरण और धार्मिक विशेषताओं के साथ उन क्षेत्रों का माहात्म्य प्रतिपादित हुआ है।

प्रकृत केदारखण्ड में २०६ अध्याय हैं। इसमें केदारखण्ड क्षेत्र में स्थित विभिन्न नद-नदियों, तीर्थ-क्षेत्रों का माहात्म्य वर्णित है। प्राचीनकाल से ही हिमालय धार्मिक क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है। विशेष रूप से मध्य हिमालय का क्षेत्र, जो कभी केदारखण्ड के नाम से जाना जाता था, जो अब गढ़वाल के नाम से प्रसिद्ध है, यह क्षेत्र अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

हिमालय क्षेत्र देवभूमि होने के साथ ही साथ भगवान् शिव की क्रीड़ाभूमि भी है। इस क्षेत्र की धार्मिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक प्रवृत्तियाँ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं महनीय हैं। हिमालय को पाँच भागों में बाँटा गया है। ये खण्ड हैं—१. नेपालखण्ड, २. मानसखण्ड, ३. केदारखण्ड, ४. जालन्धरखण्ड और ५. कश्मीरखण्ड। इन खण्डों की सूचना केदारखण्ड में भी प्राप्त होती है। यथा—

तीर्थानि प्रवराण्येव श्वेताख्ये पर्वतोत्तमे।
अग्रे मानसप्रस्तावे तथा नेपालके मुने।।
कश्मीरे चैव प्रस्तावे जालान्ध्रे वै तथा पुनः।
तदा केदारप्रस्तावे कथितानि मयाद्य ते।।

(के.ख. २०४.५६-५७)

भौगोलिक दृष्टि से देखा जाय, तो केदारखण्ड इन सभी खण्डों के मध्यभाग में स्थित है। इसीलिये महर्षि वेदव्यास केदारखण्ड के इस अंचल को भगवान् केदारेश्वर की प्रिय क्रीड़ा-भूमि मानते हैं। (के.ख. २०५.१०-११)

यह केदारखण्ड स्कन्दपुराण का विशिष्ट खण्ड है। इसकी विप्रतिपत्ति एवं समापत्ति के लिये केदारखण्ड के द्वितीय भाग की भूमिका (पृ. ४५-४६) अवलोकनीय है। केदारखण्ड में महर्षि वेदव्यास की विशिष्ट शैली स्पष्ट रूप से दृष्टीगोचर होती है, जिसमें अनुष्टुप् छन्दबहुल कथ्यपरक वर्णन होता है।

केदारखण्ड का प्रस्तुत भाग

केदारखण्ड का यह तृतीय भाग १०५ अध्याय से १५५ अध्याय को अपने क्रोड में स्थापित किया है। इसमें अनेक तीर्थों की महिमा का व्याख्यान किया गया है। जैसे—कनखल, मायापुरी, गङ्गाद्वार, हृषीकेश, कुब्जाम्रक तीर्थ, लक्ष्मणतीर्थ आदि प्रमुख हैं। प्रायः प्रत्येक तीर्थ में वर्णित नदी, पर्वत आदि पर उसके अधिपति किसी ईश्वर और ईश्वरी का उल्लेख है। अनेक तीर्थों के वर्णनों में एक या एकाधिक रात्रि तक निवास करने तथा वहाँ भूमि, स्वर्ण आदि का दान करने की महिमा बतलायी गयी है। अनेक तीर्थों में यज्ञ, तप, उपवास करने और कुछ में शरीर त्याग करने की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। अनेक सरिताओं, जलाशयों और जलकुण्डों का वर्णन है, जिनके दर्शन, चिन्तन और स्नान से त्रिविध ताप दूर हो जाते हैं और इहलोक एवं परलोक में मानव महनीय पदवी को प्राप्त करता है।

केदारखण्ड के तृतीय भाग का संक्षिप्त परिचय

केदारखण्ड का तृतीय भाग १०५ अध्याय से प्रारम्भ होता है, इसमें देवताओं ने दक्षध्वंस के बाद भगवान् शिव की स्तुति करते हुए कहा कि हे देव! क्षमा करें, आप जैसे श्रेष्ठजन क्षमा करने में ही अपना गौरव समझते हैं। यदि अन्यान्य व्यक्तियों की भाँति आपको भी क्रोध का आवेश हो जाय, तो आप जैसे महात्माओं की उत्कृष्टता कैसे निष्पादित होगी। उस समय भगवान् ब्रह्मा ने भी भगवान् शिव की प्रार्थना की। ब्रह्मा द्वारा की गयी स्तुति अत्यन्त मनोरञ्जक एवं साहित्यिक है। एक श्लोक का अवलोकन करें—

शिवस्य शक्तेश्च परे तु यद्वै यद्वै भवानादिजनिर्महेश।
भिन्नश्च शक्त्या भगवान् भवान् वै त्वत्सङ्गता सा जगदात्मशक्तिः।।
(के.ख. १०५.२२)

इसके अनन्तर इन्द्र आदि सभी देवता, ऋषि-मुनियों ने भगवान् की स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने कहा कि हे देवताओं! सुनो। मैं तुम लोगों के अपराध पर कुछ भी विचार नहीं करता, ये लोग माया के वशीभूत हो रहे थे, इसके लिये मैंने दण्ड का विधान किया है। भगवान् शिव द्वारा गङ्गाद्वार से उत्तर की भूमि को स्वर्गभूमि की संज्ञा दी गयी। अश्मचित्त के आख्यान (अ. १०६) की कथा बताते हुए बिल्वपर्वत, शिवधारा (अ. १०७) के महत्त्व को समझाया गया है, जिसमें विश्वदत्त राजा की कथा प्रमुख रूप से वर्णित है। मायाक्षेत्र के महत्त्व से सम्बन्धित कथाओं, महत्त्वपूर्ण स्थानों और हृषीकेश के महत्त्व को व्यक्त करने वाली अनेक कथाओं का वर्णन किया गया है (अ. १०८-११८)। कौमुद-तीर्थ, चन्द्रेश्वर महादेव (अ. ११९), अग्निदेव को शिव के शाप (अ. १२०) से अग्नितीर्थ का माहात्म्य प्रतिपादित है। साथ ही वायव्य तीर्थ, वासव तीर्थ, चन्द्रिका नदी और तपोवन आदि का वर्णन करने के अनन्तर (अ. १२१), ब्राह्मणों का महत्त्व (१२२), ऋषिकेश के तीर्थों की महिमा का वर्णन (अ. १२३) करते हुए रामाश्रम (अ. १२४) का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इसमें राम और लक्ष्मण आदि के तीर्थों का भी विस्तार से वर्णन हुआ है।

द्रोणाचार्य को धनुर्वेद सम्बन्धी ज्ञान भगवान् शिव से प्राप्त हुआ था। इसके लिये द्रोणाचार्य ने शिव की कठोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर ने धनुष-विद्या का सम्पूर्ण ज्ञान द्रोणाचार्य को दिया।

इत्युक्त्वा प्रददौ सर्वं धनुर्वेदं द्विजातये।
यथावत्सर्वमन्त्रैश्च सहितं सार्ववर्णिकम्।। (के.ख. १२५.३९)

१२६वें अध्याय में सम्पूर्ण धनुर्वेद का वर्णन करते हुए ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मदण्ड, ब्रह्मशिरा अस्त्र, पाशुपतास्त्र, वायव्यास्त्र, आग्नेयास्त्र, नारसिंहास्त्र आदि दिव्यास्त्रों की सिद्धि का विधान बतलाया गया है। इसके बाद द्रोणाचार्य से सम्बन्धित सभी क्षेत्रों का वर्णन किया गया है (अ. १२६-१२८)। दक्ष, यक्ष तथा गरुड जी की उत्पत्ति (अ. १२९) की कथा बतलाने के बाद चण्डिका देवी, शाकम्भरी देवी, कालेश्वरी देवी, महाकालेश्वर आदि तीर्थों का वर्णन यवनेश पीठ, शरभङ्गतीर्थ और वसिष्ठ तीर्थ आदि का उल्लेख किया गया है (अ.१२९-१३२)। देवीपूजा के सम्बन्ध में सुरकूट पर्वत और सुरेश्वरी देवी का वर्णन (अ. १३३), महाराज रजि के आख्यान का उल्लेख करते हुए इन्द्रकृत विष्णुस्तोत्र का उल्लेख किया गया है—

स ते राज्याप्तये नूनं हितं तव वदिष्यति।
इत्युक्तः सहसा जिष्णुर्विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमे।।
नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रपादे नमो नमः।
सहस्राक्षाय देवाय भूमिं स्पृष्ट्वावतिष्ठते।। (के.ख. १३५.१०-११)

इसके बाद भगवती दुर्गा से इन्द्र के राज्य-प्राप्ति के वरदान का उल्लेख (अ. १३६) करने के पश्चात् सुन्दरी देवी, ब्रह्मपुत्र नदी, सुन्दरीश का विस्तार से वर्णन और इसी क्रम में मायावादी शिव की महिमा का कथन किया गया है। शिवतीर्थ, भूतेश्वर महादेव की महिमा का वर्णन करते हुए महत्कुमारिका पीठ, शैलेश्वर और बालवती का महत्त्व वर्णित है (अ. १३६-१४०)। चन्द्रकूट पर्वत, भुवनेश्वरी देवी, देवस्तोत्र, नागेश्वर शिवलिङ्ग तथा भोगवती नदी, वागीश्वर, चामरेश्वर लिङ्ग के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए गर्दभासुर पर्वत की महिमा का वर्णन बड़े मार्मिक ढ़ंग से हुआ है। ब्रह्माश्रम, कोटीश्वर लिङ्ग, भद्रसेनेश्वर लिङ्ग, सत्येश्वर शिवलिङ्ग, गणेश तीर्थ, धनुष तीर्थ, माल्यवती आश्रम, भास्करक्षेत्र, नवला नदी, गोमुख क्षेत्र, घण्टाकर्ण, ब्राह्मी शिवा आदि महत्त्वपूर्ण स्थलों का वर्णन किया गया है। ये सभी तीर्थ हृषीकेश से देवप्रयाग के मध्य वाले भू-भाग में स्थित हैं (अ. १४१-१५०)।

इसके बाद ब्रह्मकुण्ड के माहात्म्य का वर्णन करने के पश्चात् जातिमात्र ब्राह्मण महापातकी दण्डहस्त का वृत्तान्त वर्णन करते हुए (अ. १५१), देवप्रयाग में वसिष्ठ तीर्थ का कथन करते हुए वाराणसी में रहने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण घनानन्द के उद्धार का आख्यान एवं उसके पूर्वजन्म के वृत्तान्त का वर्णन हुआ है (अ. १५२)। दशरथाचल से निकलने वाली शान्ता नदी का

गङ्गा के साथ सङ्गम और वहाँ शिवतीर्थ का वर्णन करते हुए शान्ता के नदी-रूप-प्राप्ति के कारण का उल्लेख हुआ है। दशरथपुत्री शान्ता के ब्राह्मणत्व-प्राप्ति के लिये लोमपाद ऋषि का शिवतीर्थ में जाकर तपस्या करने के वृत्तान्त के वर्णन प्रसङ्ग में बतलाया गया है कि शिवतीर्थ में विधिपूर्वक अनुष्ठान करने से शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है। इसी तीर्थ में तपस्या कर विश्वामित्र ने भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया था—

देवप्रयागकं क्षेत्रं यत्ख्यातं भुवनत्रये।
तत्र वै शिवतीर्थं तु गङ्गाया उत्तरे तटे।।
प्रातःस्नायी जिताहारो जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
तस्मिंस्तीर्थेऽपि शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वमवाप्नुयात्।।
विश्वामित्रोऽपि तत्रैव ब्राह्मणत्वमुपेयिवान्।
इन्द्राद्या लोकपालास्तु तत्तत्सिद्धिं ययुः पुरा।।

(के.ख. १५३.४५-४७)

इसके पश्चात् ऋष्यशृङ्ग ऋषि के साथ शान्ता का विवाह, सुखोपभोग के अनन्तर नदीत्व-प्राप्ति का कथन किया गया है (अ. १५३)। वेश्या के उपदेश से दुराचाररत उद्दालक नामक ब्राह्मण का देवप्रयाग में वेतालों के साथ समागम का वर्णन करते हुए उसका सम्पूर्ण आख्यान वर्णित है (अ. १५४)। सूर्य देवता के प्रभाव से मेधातिथि को सूर्यलोक की प्राप्ति के वृत्तान्त का वर्णन करते हुए शूद्र कुल में उत्पन्न देवदास के इतिहास के साथ सूर्यकुण्ड के माहात्म्य का कथन किया गया है (अ. १५५)। इस प्रकार देवप्रयाग क्षेत्र के माहात्म्य-वर्णन के साथ केदारखण्ड का यह तृतीय भाग पूर्ण होता है।

प्रस्तुत संस्करण

स्कन्दपुराणान्तर्गत काशीखण्ड के प्रकाशन के अनन्तर केदारखण्ड के प्रकाशन की योजना प्रकाशन-संस्थान द्वारा प्रारम्भ हुई, जिसके अन्तर्गत २००१ ई. में प्रथम भाग एवं किञ्चित् गत्यवरोध के साथ मार्च २००५ में इसका द्वितीय भाग भी प्रकाश में आ गया। इस तृतीय भाग को हिन्दी भाषानुवाद के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए महती हर्षानुभूति हो रही है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का प्रकाशन-संस्थान विविध प्रकृति वाली २४ ग्रन्थमालाओं में ग्रन्थों का प्रकाशन करता है, जिसमें प्रधान रूप से विश्वविख्यात सरस्वतीभवन पुस्तकालय में विद्यमान

१,१२,००० हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के प्रकाशन में प्रयासरत है। इसी क्रम में केदारखण्ड की (क) पाण्डुलिपि, (ख) १९६३ में हरिद्वार से प्रकाशित एवं (ग) १९९४ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित प्रतियों को आधार बनाकर पाठभेद तैयार किया गया है। इसके पूर्व भी सन् १९०६ में खेमराज श्रीकृष्णदास ने वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई से केदारखण्ड का प्रकाशन किया था, जिसका मूल और अनुवाद अलग-अलग द्वितीय आवृत्ति के रूप में पुनः १९११ ई. में मुद्रित हुए। उक्त प्रकाशनों को आदर्श रूप में स्वीकार कर भाषानुवाद सहित यह भाग प्रस्तुत हो रहा है, अत: उन सभी संस्करणों से विलक्षण प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित करते हुए सम्बन्धित महानुभावों के प्रति आभार व्यक्त कर प्रणामाञ्जलि निवेदित करना परम कर्तव्य मानता हूँ।

ग्रन्थ के प्रकाशन में किसी प्रकार का गत्यवरोध न हो, इसके लिये सतत उद्बोधन, चेतना, स्फूर्ति एवं नयी दृष्टि प्रदान करने वाले सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति प्राच्यप्रतीच्योभयविधविद्यानिष्णात **प्रो. अशोक कुमार कालिया** जी के पादारविन्द में सादर साभार नतिपरम्परा समर्पित करता हूँ।

सजग प्रहरी की भाँति कर्तव्य के प्रति उद्बोधन एवं अङ्गुलिग्राहपूर्वक दिशा-निर्देश प्रदान करने वाले संस्कृत-वाङ्मय के उन्नयन में सतत प्रयासरत प्रकाशन संस्थान के यशस्वी निदेशक **डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी** जी का हृदय से आभार व्यक्त करते हुए श्रद्धापूर्वक प्रणामाञ्जलि निवेदित करता हूँ; क्योंकि उनके सजग निर्देशन से ही यह कार्य शीघ्र पूर्ण हो सका है।

इस ग्रन्थ के भाषानुवाद एवं सम्पादन में मैंने अनेक माननीय विद्वानों का सम्बल प्राप्त किया है, जिनमें इस विश्वविद्यालय के पूर्व प्रति-कुलपति **प्रो. शिवजी उपाध्याय**, **प्रो. पारसनाथ द्विवेदी**, **प्रो. गङ्गाधर पण्डा**, **प्रो. श्रीराम पाण्डेय**, **प्रो. कैलासपति त्रिपाठी** एवं **पं. वायुनन्दन पाण्डेय** जी के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हुए चरणस्पर्शपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में प्रकाशन-संस्थान के सहयोगियों का सहयोग अविस्मरणीय है, इसलिये **डॉ. हरिवंश कुमार पाण्डेय**, **श्री कन्हई सिंह कुशवाहा**, **श्री अशोक कुमार शुक्ल**, **श्री अतुल कुमार भाटिया**, **श्री ओमप्रकाश वर्मा** एवं **श्री जितेन्द्र कुमार भाटिया** आदि के प्रति मङ्गलकामना करते हुए वर्द्धापन समर्पित करता हूँ।

इस ग्रन्थ को भव्य एवं स्वच्छ कलेवर से परिपूत शुद्ध मुद्रण करने वाले **श्रीजी प्रिण्टर्स** के सञ्चालक **श्री अनूप कुमार नागर** को भूरि-भूरि धन्यवाद देता हूँ एवं मङ्गलकामना करता हूँ कि मुद्रण के क्षेत्र में नित्य यशोभागी बनें।

अन्त में स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड का प्रस्तुत तृतीय भाग ग्रन्थपुष्पोपहार के रूप में माता अन्नपूर्णा एवं श्रीकाशीविश्वनाथ के करकमलों में समर्पित करते हुए आशा एवं विश्वास करता हूँ कि केदारखण्ड का यह भाग पाठकों को भी आनन्दित करेगा।

वाराणसी
मार्गशीर्ष-शुक्लाष्टमी
२०६२ वैक्रमाब्द
(८.१२.२००५ खीष्टाब्द)

विद्वद्विधेय
ददन उपाध्याय
सहायक सम्पादक, प्रकाशन संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

विषयानुक्रमणिका

भूमिका-भाग

ग्रन्थ-भाग



भाषानुवादसहितः स्कन्दमहापुराणान्तर्गतः

केदारखण्डः

[तृतीयो भागः]

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

कैलासं गत्वा इन्द्रादिदेवैश्शिवस्य स्तवनम्

स्कन्द उवाच

अथ सर्वे देवगणाः प्रमथैश्च पराजिताः।
शरैर्निकृतसर्वाङ्गा ऋत्विग्भिः सहितास्तथा॥१॥

सदस्याश्च निरुत्साहाः श्रीमत्प्रमथनिर्जिताः।
भयाकुलास्ततः सर्वे प्रणम्योचुर्महेश्वरम्॥२॥

देवगणा ऊचुः

क्षम्यतां क्षम्यतां देव क्षमासारा भवादृशाः।
यदि मन्येयुरधियां भवन्तो वापराधकम्॥३॥

इन्द्र आदि देवताओं द्वारा कैलास पर्वत पर जाकर भगवान् शिव की स्तुति

स्कन्द ने कहा

इसके बाद देवताओं के समुदाय को प्रमथगणों ने पराजित कर दिया। ऋत्विजों सहित सबके सभी अङ्ग बाणों से छिन्न-भिन्न हो गये।।१।।

महादेव के श्रीयुक्त प्रमथगणों से पराजित हो जाने के कारण यज्ञ से सभी सदस्य उत्साहरहित हो गये, उनका उत्साह भङ्ग हो गया। तत्पश्चात् वे लोग भय से व्याकुल होकर महेश्वर को प्रणाम करते हुए इस प्रकार बोले।।२।।

देवताओं ने कहा

हे देव! क्षमा करें। क्षमा करें। आप जैसे महात्मा क्षमा करने में ही अपना पराक्रम समझते हैं। यदि अन्यान्य व्यक्तियों की भाँति आपको भी क्रोध का

उत्कृष्टतां कथं देव भवतां प्रवरात्मनाम्।
वयं मानप्रमत्ताः स्मः स्वतो भागो भवादृशाम्।।४।।
न[१] च त्वामनमन् देव तस्येदं कर्मणः फलम्।
ज्ञातोऽसि त्वं महादेव देवानामपि देवता।।५।।

पुरुष उवाच

यथा यूयं तथाहं वै किङ्करो जगदीशितुः।
गच्छध्वं त्रिदशाः सर्वे कृतागसि महेश्वरे।।६।।
प्रसादयध्वं भक्त्या वै विरोधं त्यज्य सत्वरम्।
निजक्षेमनिमित्तं हि भक्तिगम्यं महेश्वरम्।।७।।

स्कन्द उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सर्वे देवगणास्ततः।
वेपमाना भयग्रस्तास्त्राहि त्राहीति चासकृत्।।८।।

आवेश हो जाय, तो आप जैसे महात्माओं की उत्कृष्टता कैसे निष्पादित होगी। हम लोग अभिमान से उन्मत्त हो गये थे। आप स्वयं ही सौभाग्यशाली हैं, आप जैसों का भाग तो स्वतः होता है।।३-४।।

हे देव! हम लोगों ने आपको प्रणाम नहीं किया, उसी कर्म का यह फल है, यह सब तो हमारे ही कर्मों का फल है। हे महादेव! हम लोगों ने जान लिया कि आप देवताओं के भी देवता हैं।।५।।

पुरुष बोला

जैसे तुम हो, वैसे ही मैं भी जगत् के स्वामी भगवान् शिव का एक सेवक हूँ। हे देवताओं! तुम सब उन्हीं महादेव के समीप जाओ, जिनका कि तुमने अपराध किया है।।६।।

अपने कल्याण के निमित्त विरोध का परित्याग कर भक्ति से गम्य महादेव जी को भक्ति-भाव से आप लोग प्रसन्न कर लें।।७।।

स्कन्द बोले

उस पुरुष के ऐसे वचन को सुनकर भयभीत होने के कारण काँपते हुए देवता लोग 'हमारी रक्षा करो, रक्षा करो' इस प्रकार बार-बार कहने लगे।।८।।

---

१. नो च त्वामिति ख, न च त्वामिति ग.।

वदन्तो मुनयः सिद्धाः सदस्याः सार्त्विजस्तथा।
[1]ब्रह्माणं वै पुरस्कृत्य सबद्धाञ्जलयश्च ते॥९॥
महादेव महादेव महादेवेति वै[2] पुनः।
गृणन्तो विबुधाः सर्वे हाहाकाररवाँस्तथा॥१०॥
कैलासं रुरुहुश्चैव सेन्द्राः सर्वदिवौकसः।
वनस्थलीश्च पश्यन्तो हिमपुञ्जविमण्डिताः॥११॥
स्वर्णान् वृक्षाँस्तथा विप्र पुंस्कोकिलसुकूजितान्।
पापिसन्दुर्गमाँस्तत्र वापीः स्वच्छजलाश्च ते॥१२॥
कुमुदोत्पलशोभाढ्या अलिपुञ्जमनोहराः।
नानापक्षिमृगाकीर्णान्नानाभिल्लशताकुलान्॥१३॥
पर्वतान् सर्वतो विप्र पश्यन्तो वासवादयः।
जग्मुः कैलासशिखरे नानामुनिगणान्विते॥१४॥

मुनि, सिद्ध, सभासद और ऋत्विज ब्रह्मा जी को आगे कर हाथ जोड़ कर पुकारने लगे।।९।।

बारम्बार महादेव, महादेव नाम का उच्चारण करते हुए सभी लोग हाहाकार शब्द का उच्चारण करने लगे।।१०।।

तदनन्तर इन्द्र आदि सभी देवता कैलास पर्वत पर गये। वहाँ की वनस्थली हिमपुञ्ज से समलङ्कृत हो रही थी। वहाँ की शोभा को देखते हुए वे जा रहे थे।।११।।

हे विप्र! सुवर्णसदृश वृक्षों के ऊपर पुंस्कोकिल शब्द कर रहे थे। वह वनस्थली पापियों के लिये दुर्गम थी। वहाँ की वापियों का जल स्वच्छ था।।१२।।

वहाँ कुमुद और कमलों की शोभा बिखर रही थी, उनके ऊपर भ्रमर गुँजार कर रहे थे। वह स्थान अनेक प्रकार के पक्षियों और मृगों से आकीर्ण था। अनेक प्रकार के सैकड़ों भील वहाँ विद्यमान थे।।१३।।

इन्द्र आदि देवताओं ने इस प्रकार के पर्वतों का सब ओर से अवलोकन किया। इसी क्रम से देखते-देखते वे लोग कैलास पर्वत के शिखर पर पहुँच गये, जहाँ पर्वतशिखर पर अनेक मुनिगण विराजमान थे।।१४।।

---

१. ब्रह्मण इति क.; २. वमिति ग.।

तत्र गत्वा महेशानं ददृशुर्भूतिभूषितम्।
सर्पालङ्कारसंयुक्तं गजचर्मोपशोभितम्[१]॥१५॥
प्रियया रहितं देवं सर्वज्ञं परमेश्वरम्।
त्रिनेत्रं परितो विप्र सिद्धचारणसेवितम्॥१६॥
सनकाद्यैर्महाभक्तैस्स्तूयमानं विभुं सुराः।
चिन्तयन्तं सतीं देवीं लोकानां मोहहेतवे॥१७॥
दृष्ट्वा शिवं राजमानं कैलासाद्रिमिवापरम्।
भक्त्या गद्गदया वाचा ब्रह्मा स्तोतुं प्रचक्रमे॥१८॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्ते शतशो नमस्ते विभो त्रिनेत्रारिनिषूदन प्रभा।
त्वमेव पाता सुरमानवानां त्वमेव हर्त्ता नयनाग्निना च॥१९॥

वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने विभूति से विभूषित महादेव जी का दर्शन किया। उन्होंने सर्पों के अलङ्कार धारण कर रखे थे। गजचर्म से उनकी शोभा और भी बढ़ रही थी।।१५।।

हे विप्र! ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर प्रियाविहीन वहाँ विराजमान थे। त्रिनेत्रधारी महादेव जी के चारों ओर सिद्ध और चारण सेवा कर रहे थे।।१६।।

सनक आदि भक्तगण ऐसे सर्वव्यापक प्रभु की स्तुति कर रहे थे। लोकों को मोह में डालने के लिये भगवान् महादेव सती की चिन्ता कर रहे थे।।१७।।

देवताओं ने देखा कि भगवान् शिव दूसरे कैलास पर्वत के समान सुशोभित हो रहे हैं। तदनन्तर ब्रह्मा भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने के लिए उद्यत हुए।।१८।।

ब्रह्मा ने कहा

हे विभो, त्रिलोचन, शत्रुनिषूदन, प्रभो! आपको नमस्कार है, सैकड़ों बार नमस्कार है। आप ही देवताओं और मनुष्यों की रक्षा करते हैं और आप ही अपने नेत्र की अग्नि से उनके अज्ञान का नाश करते हैं।।१९।।

---

१. चर्म्मोपशोभितमिति ग.।

न चादिरन्तर्न च रूपमस्ति ते त्वमेव हे नाथ सुराधिकारणम्।
वयं हि देवेशवर प्रभो भोः सम्मोहितास्ते जगदात्मशक्त्या॥२०॥
न विद्महेऽन्तर्भवतो भवेश रूपं न भेदं किल सर्वमध्ये।
अहं न जाने नितरामिदानीं सर्वस्य विश्वस्य परं निदानम्॥२१॥
शिवस्य शक्तेश्च परं तु यद्वै तद्वै भवानादिजनिर्महेश।
भिन्नश्च शक्त्या भगवान् भवान् वै त्वत्सङ्गता सा जगदात्मशक्तिः॥२२॥
सर्वं सृजन्तेति वदन्ति सर्वे येषां मनस्त्वच्चरणारविन्दे।
पुनस्त्वमेवाखिललोकपालको मायागुणप्रेरणया महेश्वरः॥२३॥
त्वमेव चान्ते निधनप्रकारको भवस्य भिन्नो भगवान् भवो[१] भवान्।
त्वमेव धर्मार्थसुखप्रवर्त्तको यज्ञो भवान् सर्वगतस्त्वमेकः॥२४॥
त्वयैव देवेश भवेश सेतवो धर्मस्य तत्त्वस्य कृताः पुरातनाः।
यद्वै परं ब्रह्म महेश योगिनो ध्यायन्ति तत्त्वार्थविदोऽक्षरं[२] परम्॥२५॥

हे नाथ! आपका न तो आदि है और न ही अन्त है। आपका कोई रूप भी नहीं है। आप ही देवताओं पर अधिकार रखते हैं। हे देवेश्वर! हे प्रभो! हम आपकी विश्वव्यापिनी आत्मशक्ति से सम्मोहित हो गये हैं।।२०।।

हे प्रभो! संसारात्मिका शक्ति से विमोहित हम लोग आपके न तो भीतर, न बाहर और न सबके मध्य में भेद को जानते हैं। हे भवेश! सम्पूर्ण विश्व के परम निदानरूप आपको हम लोग बिलकुल नहीं जान पाते हैं।।२१।।

हे महेश! शिव और शक्ति का जो परम सम्बन्ध है, उसके आप ही आदि कारण हैं। आप ऐश्वर्यशाली हैं तथा शक्ति से भिन्न हैं। वह शक्ति आप से सङ्गत होकर जगत् की आत्मशक्ति होती है।।२२।।

जिनका मन आपके चरणकमल में लगा रहता है, वे लोग कहते हैं कि आप सबकी सृष्टि करते हैं। पुनः आप ही महेश्वर होकर माया के गुण की प्रेरणा से सब लोगों का पालन करते हैं, आप महान् ईश्वर हैं।।२३।।

आप ही अन्त में मृत्यु के प्रकार अर्थात् सर्वसंहारकारी हैं। ऐश्वर्यशाली आप भव (संसार) से भिन्न होते हुए भी भवरूप (या भवनामधारी) हैं। आप ही धर्म, अर्थ, सुख के प्रवर्तक हैं। आप यज्ञरूप सर्वव्यापी और एक हैं।।२४।।

हे देवेश! हे भवेश! आपने ही धर्मतत्त्व के पुरातन सेतु को बनाया है। हे महेश! तत्त्वार्थवेत्ता योगीजन आप ही अक्षर परब्रह्म का ध्यान करते हैं; क्योंकि आप ही परब्रह्म हैं।।२५।।

१. भवा इति ग.; २. वदोऽक्षरमिति ग.।

निर्लेपकं ज्योतिरमेयमीश्वरं तद्वै भवान् भावितसर्वजीवकः।
सत्कर्मणां कर्म भवान् भवाकरः सुमङ्गलं यद् भवमङ्गलानाम्।।२६।।
तेजः परं यद्रविपूर्वकानां त्वमेव यद्वै यदकिञ्चिदस्ति।
यद्बुद्धिदाता भगवान् महेश्वरः कुबुद्धिदस्त्वं भवबन्धकारणम्।।२७।।
यद्वै जगत्यां क्रियते हि जन्तुभिः सर्वस्य बीजं जगदाकर प्रभो।
दक्षेण[1] यद्वै कृतमाननाशनं समास्यते सर्वसुहृद्द्विषत्सु च।।२८।।
न जायते वै महतां भवादृशां मानस्य भङ्गः कुकृतो महेश्वर।
क्षमस्व दक्षस्य कृतापराधं रक्षस्व लोकान् स्वकृतानकाले।।
लयं विभो देववर प्रभेशनेत्रं प्रगच्छन्तितरां हि सर्वे।।२९।।

स्कन्द उवाच

इति स्तुतो वै भगवान् पुरारिर्धात्रा सबद्धाञ्जलिना मुनीश।
मुनीश्वरा वै प्रणतार्त्तिनाशं महेश्वरं तुष्टुवुरामहेन्द्राः।।३०।।

आप निर्लेपक ज्योति परिमाणरहित ईश्वर तथा सभी जीवों को प्रभावित करने वाले हैं। संसार का मङ्गल करने वाले उत्तम कर्मों में आप ही सुमङ्गल कर्म को निहित करने वाले हैं।।२६।।

सूर्य आदि तेजों में जो कुछ तेज और अन्य जो कुछ भी है, वह आप ही हैं। आप ही बुद्धि को देने वाले हैं और आप भगवान् महेश्वर हैं। आप ही भव-बन्धन की धारणाभूत कुबुद्धि को देने वाले हैं।।२७।।

जगत् के रचना करने वाले हे प्रभो! संसार में प्राणियों द्वारा जो कुछ किया जाता है, उन सबके बीज आप हैं। दक्ष ने जो स्वामी के मान का नाश किया है, वह सब मित्रों और शत्रुओं में आप द्वारा ही संयोजित होता है।।२८।।

हे महेश्वर! कुत्सित जीवों द्वारा किये जाने पर भी आप जैसे महापुरुषों का मानभङ्ग नहीं होता। हे देवेश्वर! दक्ष के अपराध को आप क्षमा करें और स्वरचित लोकों की असमय में विनाश से रक्षा करें। हे विभो! सब लोक आपके ही प्रभायुक्त नेत्र से विलय को प्राप्त हो रहे हैं।।२९।।

स्कन्द ने कहा

हे मुनीश्वर! ब्रह्मा ने हाथ जोड़कर इस प्रकार भगवान् त्रिपुरारि की स्तुति की। इसके बाद मुनीश्वरों से लेकर महेन्द्र पर्यन्त देवगणों ने भी भक्तों की पीड़ा को नष्ट करने वाले महेश्वर की स्तुति की।।३०।।

१. क्षणेनेति ग.।

मुनिगणा ऊचुः

क्षमस्व हे नाथ दुरात्मभिः कृतं महेश नानाविधमप्यशेषकम्।
यद्वापराधं तव भागनाशनं रक्षस्व सर्वाणि जगन्ति नायक॥३१॥

नमस्तस्मै महेशाय नमस्तस्मै हि भूभृते।
नमस्तस्मै निरीशाय नमस्तस्मै सुबाहवे॥३२॥

नमस्तस्मै सुनेत्राय नमस्तस्मै विबाहवे।
नमस्तस्मै विगुरवे नमस्तस्मै प्रधावते॥३३॥

नमस्तस्मै महेन्द्राय नमस्तस्मै हि धावते।
नमस्तस्मै विषवते नमस्तस्मै स्थिरात्मने॥३४॥

नमस्तस्मै सुविभवे नमस्तस्मै शिवात्मने॥३५॥

इन्द्र उवाच

भक्त्या भजेऽहं भवतो महेश पादारविन्दं द्रुहिणादिगम्यम्।
यत्सेवनाद्याति नरो महेशं निवृत्तमायागुणसम्प्रवाहः॥३६॥

मुनिगण बोले

हे नाथ! महेश! दुरात्माओं द्वारा किये गये नाना प्रकार के अशेष अपराध अथवा आपके भागनाशन रूप अपराध को आप क्षमा करें। हे नायक! सभी लोकों की रक्षा करें।।३१।।

उस महेश को नमस्कार है। उस भूमिधारक को नमस्कार है। जिसका कोई स्वामी नहीं है, ऐसे महेश को नमस्कार है। उस सुन्दर बाहु वाले को नमस्कार है।।३२।।

उस सुन्दर नेत्र वाले को नमस्कार है। उस विशेष भुजाओं वाले को नमस्कार है। उस विशेष गुरु के लिये नमस्कार है। उस उत्कृष्ट धावक को नमस्कार है।।३३।।

उस महेन्द्र को नमस्कार है। उस दौड़ने वाले को नमस्कार है। विष का भक्षण करने वाले को नमस्कार है। उस स्थिरात्मा के लिए नमस्कार है।।३४।।

उस सुन्दर विभव वाले को नमस्कार है और कल्याणस्वरूप उनको नमस्कार है।।३५।।

इन्द्र ने कहा

हे महेश! ब्रह्मा आदि के द्वारा प्राप्य आपके चरणकमल का मैं भक्तिपूर्वक भजन करता हूँ, जिसके सेवन से मनुष्य माया के शुभप्रवाह से निवृत्त होकर महेश को प्राप्त कर लेता है।।३६।।

वन्दे प्रभुं भयहरं शरणागतानां सद्विद्यया निजगुरुं भवमेकमाद्यम्।
संसेविताङ्घ्रिकमलं प्रमथैः सुरैस्तु नानानृमुण्डकृतहस्तजलैर्महद्भिः॥३७॥

देवगणा ऊचुः

शिव प्रसन्नतां यातु पातु नो निजबालकान्।
य एव त्रिषु लोकेषु नाना भाति जगन्मयः॥३८॥
नमस्कुर्मो वयं देवाः प्रपन्नाश्शरणाय ते।
अनेकसिद्धिसंसेव्यरजसे प्रभवे तथा॥३९॥
रक्ष नो रक्ष नो देव दह्यमानान् समन्ततः।
क्षम्यतां क्षम्यतामीश क्षमावन्तो भवादृशाः॥४०॥
अस्माभिर्भगवान् देव न ज्ञातोऽसि विमोहितैः।
मायया ते महादेव शिक्षेयं परमा कृता॥४१॥

मैं शरणागतों के भय को हरने वाले तथा उत्तम विद्या से संसार के एकमात्र आदि-गुरु अपने प्रभु की वन्दना करता हूँ। जो नरमुण्डों की माला को हाथ और गले में धारण करने वाले और प्रमथों तथा देवों द्वारा सेवित हैं, ऐसे चरणकमल वाले प्रभु को नमस्कार है।।३७।।

देवताओं ने कहा

हे शिव! आप प्रसन्नता को प्राप्त करें। अपने बालकों की रक्षा करें। आप ही तीनों लोकों में जगन्मय होकर अनेक रूपों में भासित होते हैं।।३८।।

हम देवगण आपको नमस्कार करते हैं। हम आपके चरणों में शरणागत हुए हैं। आपके चरणों की धूलि की सेवा अनेक सिद्धियों से सम्पन्न करने वाली है। ये चरण सर्वसमर्थ हैं।।३९।।

हे देव! सब ओर से जलते हुए हमारी रक्षा करें। हे ईश! क्षमा करें, क्षमा करें। आप जैसे पुरुष क्षमाशील होते हैं।।४०।।

हे देव! आपकी माया से मोहित होकर ही हम लोगों ने आपके ऐश्वर्यशाली रूप को नहीं समझा। हे महादेव! आपकी माया से हमने यह परम शिक्षा प्राप्त की।।४१।।

स्कन्द उवाच

इति स्तुतो महादेवो भक्तिमद्भिः सुरासुरैः।
प्रसन्नस्त्वब्रवीद्वाक्यं सर्वानेव दिवौकसः॥४२॥

प्रीताच्च शिवात् तस्मिन् यज्ञे विरूपितानां देवानां पूर्ववत्करणम्

श्रीशिव उवाच

प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूत सर्वे देवाः सवासवाः।
मयि प्रसन्ने जगति दुर्ल्लभं न हि विद्यते॥४३॥

अतः परं महाभागा ईदृशं कर्म्म गर्हितम्।
यूयं मा कुरुत क्षिप्रं शान्तिर्भवतु वः सुराः॥४४॥

स्कन्द उवाच

इति श्रुत्वा महादेववाचो हृष्टतनूरुहाः।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे गृणन्तो देवतागणाः॥४५॥

स्कन्द ने कहा

जब भक्तिभाव से सम्पन्न सुर एवं असुरों द्वारा इस प्रकार महादेव जी की स्तुति की गयी, तब वे प्रसन्न होकर सभी देवताओं से इस प्रकार बोले।।४२।।

प्रसन्न हुए भगवान् शिव द्वारा विरूपित देवताओं को पूर्व के समान बनाना

श्री महादेव जी ने कहा

हे इन्द्रादि देवताओं! मैं तुम लोगों से प्रसन्न हूँ, तुम सब वर की याचना करो, जब मैं प्रसन्न हो जाता हूँ, तब संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता।।४३।।

हे महाभाग देवताओं! अब इसके आगे ऐसा निन्दित कर्म कदापि नहीं करना, ईश्वर करें, तुम्हें शीघ्र ही शान्ति की प्राप्ति हो।।४४।।

स्कन्द बोले

महादेव का ऐसा वाक्य सुनकर उन देवताओं का मन प्रसन्नता से विकसित हो गया और सब देवता नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे।।४५।।

देवगणा ऊचुः

पुनर्जीवतु दक्षोऽसौ परमात्मन् महाशयः।
भगस्य नेत्रे भवतां पूष्णो दन्तास्तथैव च॥४६॥
अश्विनो बाहवश्चैव सर्वाङ्गा देवतागणाः।
यज्ञः सम्पूर्णतां यातु शान्तिरस्तु सदा हि नः॥४७॥
यदा दास्यन्ति वै दुष्टा दुःखं स्वजनवल्लभ।
रक्षणीयास्त्वया देव वयं मोहविमोहिताः॥४८॥

श्रीसदाशिव उवाच

श्रूयतां हे देवगणा अपराधं न चिन्तये।
अस्मिन् मायाभिभूतानां दण्डोऽयं सन्धृतो मया॥४९॥
दक्षः प्रजापतिर्देवा दग्धशीर्षो भवत्यसौ।
शिरसाऽजमुखेनाशु मत्प्रसादे पुनः सुराः॥५०॥

देवताओं ने कहा

हे परमात्मा! ये महान् आशय वाले दक्ष फिर जीवित हो जाँय और भग के नेत्र तथा पूषा के दाँत पूर्ण हो जाने चाहिये।।४६।।

अश्विनीकुमारों की भुजाएँ पूर्ण हो जाँय और अन्य सभी देवता सम्पूर्ण अङ्ग वाले हो जाँय। यज्ञ पूर्ण हो जाय और हमें सदैव शान्ति प्राप्त होती रहे।।४७।।

हे स्वजनवल्लभ! जब कभी दुष्ट लोग हमें दुःख दें, तब अज्ञान से विमोहित हमारी आप रक्षा करें।।४८।।

श्री सदाशिव ने कहा

हे देवताओं! सुनो। मैं इस विषय में तुम्हारे अपराध पर कुछ भी विचार नहीं करता, जो ये लोग माया के वशीभूत हो रहे थे, इनके लिए मैंने दण्ड का विधान किया है।।४९।।

हे देवताओं! क्योंकि दक्षप्रजापति का सिर भस्म हो गया है, इसलिए हमारी कृपा से हे देवताओं! बकरे का मुख लगाने पर यह पुनः जीवित हो जायेगा।।५०।।

मित्रस्य[1] चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः।
पूषा जक्षतु दद्भिश्च यजमानस्य पिष्टकम्॥५१॥
देवाः सर्वेऽपि सर्वाङ्गा भवन्तु विगतज्वराः।
पूष्णो दन्ता बाहवश्च दस्रयोः कृतहस्तकाः॥५२॥
भवन्त्वध्वर्यवः सर्वे भृगुर्वै श्मश्रुमान् भवेत्।
अन्येऽपि ये ये विकृताः स्वस्थाः सर्वे भवन्तु ते॥५३॥

दक्षशरीरेऽजशिरोयोजनेन तस्य पुनरुज्जीवनम्

स्कन्द उवाच

इत्युक्तवति देवेशे सर्वे देवाः सवासवाः।
साधु साध्वब्रुवंस्ते वै गृणन्तो गिरिजापतिम्॥५४॥
ततो देवं समामन्त्र्य सर्वे देवाः सवासवाः।
आजग्मुः सशिवा यज्ञमस्मिन् क्षेत्रे महाशयाः॥५५॥

भग को मित्र के नेत्रों से अपने यज्ञभाग का अवलोकन करने की शक्ति पुनः प्राप्त हो और इन्द्र अपने भाग को ग्रहण करें एवं पूषा यजमान द्वारा प्रदत्त पोषक हवि को अपने दाँतों से खायें।।५१।।

समस्त देवताओं के अङ्ग पूर्ण होकर उनकी पीड़ा दूर हो जाय, पूषा के दाँत और अश्विनीकुमारों के बाहु परिपूर्ण हो जाँय।।५२।।

सब अध्वर्युओं के हाथ पूर्ववत् हो जाँय और भृगु मुनि की दाढ़ी-मूँछ निकल आवे, अन्य भी जो ऐसे हैं, जिनके अङ्ग-भङ्ग होने से विकार हो गया है, वे सभी स्वस्थ अर्थात् निर्विकार हो जाँय।।५३।।

दक्ष के शरीर पर बकरे का सिर लगाकर उन्हें पुनर्जीवित करना

स्कन्द ने कहा

जब देवेश महादेव ने इस प्रकार कहा, तब इन्द्र आदि सभी देवता साधु-साधु कहकर उन्हें धन्यवाद देने लगे और गिरिजापति का चरणस्पर्श करने लगे।।५४।।

महादेव जी की इस प्रकार प्रार्थना कर उन्हें साथ ले महाशय इन्द्र आदि सब देवता उसी स्थान पर आये, जहाँ यज्ञ हो रहा था।।५५।।

---

१. मित्रस्त्विति ग.।

संविधाय च तत्सर्वं यदाह भगवान् हरः।
सवनीयपशोस्तस्य शिरो दक्षस्य सन्दधुः॥५६॥
सन्धीयमाने तच्छीर्ष्णि दक्षो नाम प्रजापतिः।
शिवाभिर्वीक्षितः शीघ्रमुत्तस्थौ सहसा भवम्॥५७॥
सन्ददर्श महारुद्रं तद्द्वेषकलुषीकृतम्।
[1]दर्शनादभवच्चैव यथाच्छः शारदो ह्रदः॥५८॥
शिवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोद् वाष्पगद्गदः।
सुतां परेतां हि सतीं संस्मरन् दुःखपीडितः॥५९॥
प्रेमविह्वलतां प्राप्तो मुहूर्त्तप्राप्तसंज्ञकः।
निर्व्यलीकेन मनसा तुष्टाव परमेश्वरम्॥६०॥

उस समय भगवान् हर जो कुछ कहते गये, देवसमाज ने वैसा ही किया और उन लोगों ने सवनीय पशु अर्थात् बकरे के सिर को लेकर दक्ष प्रजापति के धड़ के ऊपर जोड़ दिया।।५६।।

जिस समय उसका सिर जोड़ा गया, उसी समय दक्ष प्रजापति योगिनियों के देखते-देखते तत्काल उठकर बैठ गये।।५७।।

उस समय उन्होंने उठते ही महारुद्रमूर्ति महादेव को अपने समक्ष उपस्थित देखा, यद्यपि प्रजापति महादेव जी के द्वेष के कारण मलीन हो रहे थे, तथापि उनका दर्शन कर ऐसे स्वच्छ हो गये, जैसे शरद् ऋतु में सरोवर निर्मल हो जाता है।।५८।।

यद्यपि दक्ष प्रजापति ने भगवान् शङ्कर की स्तुति करने का विचार किया, परन्तु उनकी वाणी आँसुओं के कारण गद्गद हो रही थी, इसलिए वे सशक्त न हो सके। अपनी मृत पुत्री सती का स्मरण कर शोक से अतिदुःखित हो गये।।५९।।

वे दक्ष एक क्षण तो मारे प्रेम के अत्यन्त विह्वल रहे, किन्तु पुनः सचेत होकर निष्कपट मन से परमेश्वर शिव की स्तुति करने लगे।।६०।।

---

१. तद्दर्शनावभयच्चेति क.।

दक्ष उवाच

अनुग्रहस्तु भवता कृतो वै मम साम्प्रतम्।
युक्तो दण्डस्त्वयाऽसत्सु कर्त्तव्यो भूतिमिच्छता[१]॥६१॥
अवज्ञा या कृता देव मया ते पापबुद्धिना।
मोहितो नितरां देव मायया भवतः प्रभो॥६२॥
नमस्तुभ्यं भगवते निर्गुणाय महात्मने।
निरञ्जनाय शान्ताय योगिनां पतये नमः॥६३॥
मीढुष्टमाय भवते शर्वाय[२] सुकृते नमः।
हिरण्यरेतसे तुभ्यं हिरण्यपतये नमः॥६४॥
हिरण्यकृतबन्धाय हिरण्यपशुमर्द्दिने।
हिरण्यमृगहन्त्रे च हिरण्याक्षविमोहिने॥६५॥

दक्ष ने कहा

हे भगवन्! आपने निश्चय ही मेरे ऊपर अनुग्रह किया है। आपने जो दण्ड दिया है, वह युक्त ही है, क्योंकि असज्जनों पर आपका दण्ड-विधान उनके कल्याण की इच्छा से ही होता है।।६१।।

हे देव! मुझ पापबुद्धि ने जो आपकी अवज्ञा की थी, हे देव प्रभो! मैं आपकी ही माया से बहुत मोहित हो गया था।।६२।।

आप निर्गुण हैं, आपकी आत्मा महान् है, आप ऐश्वर्यशाली हैं, आपको नमस्कार है। आप निरञ्जन, शान्त और योगियों के स्वामी हैं, आपको नमस्कार है।।६३।।

आप अतिशय पराक्रमशाली, दुष्टों की हिंसा करने वाले और उत्तम कार्य करने वाले हैं, आपको नमस्कार है। आप स्वर्ण के समान दीप्तिमान् और स्वर्ण आदि सम्पत्तियों के स्वामी हैं, आपको नमस्कार है।।६४।।

आप हिरण्य के लिए बाँधने वाले, हिरण्यकशिपुरूपी पशु का मर्दन करने वाले, स्वर्ण-मृग का वध करने वाले और हिरण्याक्ष को विमोहित करने वाले हैं, आपको नमस्कार है।।६५।।

---

१. भृतिमिच्छतेति ख.।

२. सर्वायेति ख.।

अग्निवर्णाय ते देव वह्निनेत्राय ते नमः।
वह्नौ कृतनिवासाय नमोऽग्निमुखतेजसे॥६६॥
अग्निष्टोमनिवासाय राजसूयनिवासिने।
राजराजसुसेव्याय राजराजालयस्थित॥६७॥
प्रभूणां पतये तुभ्यं नमस्ते परमेष्ठिने।
कपर्दिने नमस्तुभ्यं व्युप्तकेशाय ते नमः॥६८॥
सहस्त्रधन्वने तुभ्यं नमस्तेऽङ्गारवर्चसे।
भूतिभूषितदेहाय सर्वैश्वर्यप्रदायिने॥६९॥
नमस्त्रिशूलहस्ताय नागयज्ञोपवीतिने।
नरमुण्डसुमाल्याय चन्द्रार्द्धकृतशेखर॥७०॥
नमस्तुभ्यं सुरेशाय नमस्तुभ्यं परात्मने।
जगत्संहारकर्त्रे ते जगत्पालयते नमः॥७१॥

आपका वर्ण अग्नि के समान है और आप अग्नि के समान चमकीले नेत्रों वाले हैं। हे देव! आपको नमस्कार है। आपने अग्नि में ही अपना निवास बनाया है और अग्नि के मुख के समान तेजस्वी हैं, आपको नमस्कार है।।६६।।

आप अग्निष्टोम यज्ञ में निवास करने वाले तथा राजसूय यज्ञ में रहने वाले हैं। आप कुबेर से अच्छी प्रकार सेवित हैं और कुबेर का घर ही आपका निवास है, आपको नमस्कार है।।६७।।

आप प्रभुओं के भी प्रभु हैं, आप परमेष्ठी हैं, आपको नमस्कार है। आप कपाल की माला धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। संन्यासी (व्युप्तकेश) रूप आपको नमस्कार है।।६८।।

हजारों धनुष धारण करने वाले, अङ्गारों के समान तेजस्वी, भस्म से अलङ्कृत शरीर वाले और सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाले आपको नमस्कार है।।६९।।

आप त्रिशूल को हाथों में लेने वाले, सर्प का यज्ञोपवीत धारण करने वाले, नरमुण्डों की माला पहनने वाले तथा अर्धचन्द्र को शिर का आभूषण बनाने वाले हैं, आपको नमस्कार है।।७०।।

आप देवताओं के स्वामी हैं, आपको नमस्कार है, आप परम आत्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप जगत् का संहार करने वाले तथा जगत् का पालन करने वाले भी हैं, आपको नमस्कार है।।७१।।

स्कन्द उवाच

इदं स्तोत्रं पठेत्प्रातः समुत्थाय कृताञ्जलिः।
सम्पदस्तस्य जायन्ते दुःस्वप्नादि विनश्यति॥७२॥
इति स्तुतो वै दक्षेण महादेवः प्रभुः शिवः।
उवाच मधुरं वाक्यं सन्तुष्टश्च तदाऽभवत्॥७३॥

श्रीशिव उवाच

वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि सन्तुष्टस्तव साम्प्रतम्।
स्तुत्या च कृतया दक्ष त्वया नम्रधिया विभो॥७४॥

दक्षस्य प्रार्थनया सत्याः शीघ्रं पुनर्देहप्राप्तिवरदानम्

दक्ष उवाच

महादेव प्रभो देव प्रसन्नोऽसि यदीश्वर।
त्वत्पादकमले भक्तिर्मम जन्मनि जन्मनि॥७५॥
भूयात्तदेदं तीर्थं तु महापातकनाशनम्।
यस्य सन्दर्शनादेव ब्रह्महत्यादिकानि च॥७६॥

स्कन्द ने कहा

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर अञ्जलि जोड़कर इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसको सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं तथा उसके दुःस्वप्न आदि नष्ट हो जाते हैं।।७२।।

जब दक्ष प्रजापति ने इस प्रकार कल्याणमूर्ति, देवाधिदेव, सर्वशक्तिमान् महादेव जी की स्तुति की, तब वे सन्तुष्ट हो गये और मधुर वाक्य कहने लगे।।७३।।

श्रीशिव ने कहा

हे प्रजापति! वर माँगो, वर माँगो। सम्प्रति मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। हे दक्ष विभो! तुमने नम्रतापूर्वक जिस प्रकार हमारी स्तुति की है, उससे हम प्रसन्न हैं।।७४।।

दक्ष की प्रार्थना से सती को शीघ्र पुनर्देह की प्राप्ति का वरदान

दक्ष ने कहा

हे महादेव, प्रभो, ईश्वर! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो हे देव! यह वर दें कि जन्म-जन्मान्तर में भी आपके चरणों में मेरी भक्ति बनी रहे।।७५।।

यह तीर्थ महापातकों का भी नाश करने वाला हो जाय एवं इसके दर्शन करने से ही ब्रह्महत्या आदि सब पातक नष्ट हो जाँय।।७६।।

पापानि प्रशमं यान्तु यदि ते मय्यनुग्रहः।
स्थितिश्च भवतो नित्यं क्षेमं भवतु सर्वदा॥७७॥
श्रीदेव्याश्च पुनर्देहः क्षिप्रं भवतु मा चिरम्।
त्वया सह विवाहश्च तथा भवतु मानद॥७८॥

श्रीमहादेव उवाच

सम्यक्सम्पादिता दक्ष मद्भक्तिर्विश्वनाशिनी।
भविष्यत्येव हि तथा यथा [1]याञ्चा कृता त्वया॥७९॥
इदं क्षेत्रं महापुण्यं यावद्वै यज्ञभूमिका।
यत्र मायानिमित्तं हि जातं सर्वं प्रजायते॥८०॥
तस्मादिदं महाक्षेत्रं मायासंज्ञं भविष्यति।
सकृद्दर्शनमात्रेण तस्य तीर्थस्य मानद॥८१॥
कोटिजन्मकृतेभ्यस्तु पापेभ्यः परिमुच्यते।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तेषां श्रेष्ठतमं स्मृतम्॥८२॥

यदि आपका मेरे ऊपर अनुग्रह हो, तो मेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाँय, साथ ही कुशल विधान करने के लिए आपकी भी स्थिति इस तीर्थ में नित्य ही बनी रहे।।७७।।

शीघ्र ही देवी जी के शरीर का भी प्रादुर्भाव होना चाहिए, किन्तु विलम्ब न हो, मान प्रदान करने वाले हे देव! आप ही के साथ उनका विवाह होना चाहिए।।७८।।

श्रीमहादेव जी बोले

हे दक्ष! विश्व का विनाश होते समय तुमने भला हमारी भक्ति का सम्पादन किया। तुमने जो-जो याचना हमसे की है, वह सब उसी प्रकार पूर्ण हो जायेंगी।।७९।।

जहाँ तक यह यज्ञभूमि है, वहाँ तक यह क्षेत्र भी परम पवित्र होगा। हे प्रजापते! क्योंकि यह सब कुछ माया के निमित्त ही हुआ है।।८०।।

इसलिए इसका नाम माया क्षेत्र होगा। हे मानप्रद! इस क्षेत्र के दर्शन करने से ही करोड़ों जन्म में किये हुए भी पापों से मुक्ति का लाभ हो जायेगा। पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं, उनमें यह तीर्थ श्रेष्ठतम माना गया है।।८१-८२।।

---

१. याञ्चेति ग.।

यस्य संस्मरणादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते[1]।
धन्यास्ते पुरुषा लोके मायाक्षेत्रनिवासिनः॥८३॥
नाम्ना दक्षेश्वरेणैव निवसिष्यामि क्षेत्रके।
यस्य दर्शनमात्रेण सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि॥८४॥
अदृष्ट्वा मां मानवा ये करिष्यन्त्यल्पबुद्धयः।
तीर्थाटनं प्रजाधीश तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥८५॥
श्रीदेव्याः प्रभवश्चापि भविष्यति हिमालये।
तदा मया विवाहश्च भविष्यति न संशयः॥८६॥

हरिद्वारस्यान्वर्थकं मायाक्षेत्रनामकरणम्

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् देवो गृहीत्वा तत्सतीवपुः।
स्कन्धे कृत्वा ययौ विप्र कैलासे गुह्यकालये॥८७॥
ततोऽवधि महाभाग मायाक्षेत्रं बभूव ह।
त्रिषु लोकेषु पुण्यं च यत्र माया सतीवपुः॥८८॥

जिसके स्मरणमात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है, जो मायाक्षेत्र में निवास करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं।।८३।।

मैं भी इस क्षेत्र में दक्षेश्वर के नाम से ही निवास करूँगा, जिसके दर्शन करने से आठों सिद्धियों की प्राप्ति होगी।।८४।।

हे प्रजापति! जो अल्पज्ञ मनुष्य हमारे दर्शन विना किये ही तीर्थाटन करेंगे, उनकी यात्रा निष्फल होगी।।८५।।

श्री देवी जी भी हिमालय में प्रकट होंगी और तब निःसन्देह हमारे साथ उनका विवाह होगा।।८६।।

अर्थ के अनुकूल हरिद्वार का मायाक्षेत्र नामकरण

स्कन्द बोले

हे विप्र! यह कहकर सती के शरीर को लेकर उसे कन्धे के ऊपर रखकर महादेव जी गुह्यकों के निवास स्थान कैलास पर्वत के ऊपर चले गये।।८७।।

हे महाभाग! उसी दिन से यह मायाक्षेत्र के नाम से विख्यात हुआ। जहाँ सती माया का देह है, वह स्थान त्रिलोकी में अतीव पवित्र है।।८८।।

---

१. 'पृथिव्यां...... प्रमुच्यते' इति नास्ति क.।

द्वादशयोजनायामं यज्ञस्यायतनं द्विज।
तत्प्रमाणं महाभाग बभूव क्षेत्रमुत्तमम्॥८९॥
अस्मिन् क्षेत्रेऽर्द्धमासेन शिवसंन्यस्तमानसः।
प्राप्नोति शिवसायुज्यं किमन्यैर्बहुभाषितैः॥९०॥
दक्षेश्वरं महादेवं सकृद्वै प्रणमन्ति ये।
नन्दीभृङ्ग्यादिभिस्तुल्याः प्रभवन्ति नरोत्तमाः॥९१॥
पञ्चाक्षरं महामन्त्रं षडक्षरमथापि वा।
प्रजपन्ति ह्यहोरात्रैस्त्रिभिः [१]सिद्धिमवाप्नुयुः॥९२॥
इति ते कथितो विप्र मायाक्षेत्रभवो मया।
यच्छ्रुत्वापि नरो भक्त्या शिवसालोक्यभाग्भवेत्॥९३॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये यज्ञसन्धानतीर्थोत्पत्तिर्नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।।१०५।।

हे द्विज! वह यज्ञ का स्थान बारह योजन में विस्तृत है। हे महाभाग! उतने ही प्रमाण का यह मायाक्षेत्र भी उत्तम है।।८९।।

अधिक विशेष कहने से क्या लाभ? यदि कोई मनुष्य अर्ध मासपर्यन्त भगवान् शिव में मन लगाकर यहाँ निवास करे, तो उसे शिव के सायुज्य का लाभ होता है।।९०।।

जो मनुष्य दक्षेश्वर महादेव को एक बार भी प्रणाम करते हैं। वे नरोत्तम स्वयं नन्दी तथा भृङ्गी आदि गणों के समान हो जाते हैं।।९१।।

जो मनुष्य पञ्चाक्षर महामन्त्र अथवा षडक्षर मन्त्र का जप करते हैं, उन्हें तीन ही अहोरात्र में सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।।९२।।

हे द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार हमने माया क्षेत्र की उत्पत्ति का वर्णन आपके समक्ष किया है। यदि कोई मनुष्य भक्ति-भावपूर्वक इसका श्रवण करे, तो उसे शिव-सायुज्य की प्राप्ति होती है।।९३।।

।। इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड के मायाक्षेत्र-माहात्म्य प्रकरण में यज्ञसन्धानतीर्थोत्पत्ति नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।।१०५।।

[श्लोकसंख्या-९३]



अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गाद्वारोत्तरभागस्य स्वर्गभूमिसंज्ञा

स्कन्द उवाच

इदं तीर्थं महापुण्यमभूद् गङ्गागमे पुनः।
गङ्गाद्वारमिति ख्यातं स्मरणात्पापनाशनम्।।१।।
यदा भगीरथो राजा सूर्यवंशधरः प्रभुः।
आनयामास स्वर्गाद्वै गङ्गां परमपावनीम्।।२।।
स्वर्गान्निपातिता गङ्गा पृथिव्यामागता यदा।
तदैवास्य द्विजश्रेष्ठ गङ्गाद्वारमिति श्रुतम्।।३।।
गङ्गाद्वारोत्तरं विप्र स्वर्गभूमिः स्मृता बुधैः।
अन्यत्र पृथिवी प्रोक्ता गङ्गाद्वारोत्तरं विना।।४।।

गङ्गाद्वार के उत्तर-भाग का नाम स्वर्गभूमि

स्कन्द ने कहा

यह तीर्थ इस प्रकार पवित्र हुआ है। जब से यहाँ गङ्गा का आगमन हुआ है, तब से इसकी ख्याति गङ्गाद्वार के नाम से हुई है, इसका स्मरण करने से पापों का नाश होता है।।१।।

सूर्यवंशधर महाराज भगीरथ जब स्वर्ग से परम पवित्र गङ्गा को लाये थे।।२।।

स्वर्ग से निपतित होकर गङ्गा जब भूमि के ऊपर आयी थीं। हे द्विजश्रेष्ठ! तभी से इस क्षेत्र का नाम गङ्गाद्वार प्रसिद्ध हुआ।।३।।

गङ्गाद्वार से उत्तर की ओर की भूमि को विद्वानों ने स्वर्गभूमि कहने का निर्देश किया है, गङ्गाद्वार के उत्तर-भाग को छोड़ अन्य भाग भूमि कहलाता है।।४।।

इदमेव महाभाग स्वर्गद्वारं स्मृतं बुधैः।
यस्य दर्शनमात्रेण विमुक्तो भवबन्धनैः॥५॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या देवा नित्यं प्रतिष्ठिताः।
मुनयः सिद्धगन्धर्वा गुह्यकाप्सरसां गणाः॥६॥
तिष्ठन्त्यत्रैव भगवञ्छेत्तुं संसारबन्धनम्।
संसारतापतप्तानां भेषजं तीर्थमुत्तमम्॥७॥
पापानि शतसंख्यानि ब्रह्महत्यासमानि च।
कृत्वाऽन्यत्र प्रयान्त्यस्मिन् मृता मोक्षमवाप्नुयुः॥८॥

अश्मचित्ताख्यानम्

श्रृणु नारद वक्ष्यामि कथां तां पापनाशिनीम्।
यथा चाण्डालतुल्योऽपि कश्चिद् ब्राह्मणवंशजः॥९॥
प्राप वै परमं स्थानं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
अस्य क्षेत्रस्य विभवस्तच्छृणुष्व महामते॥१०॥

हे महाभाग! इसी स्थान को बुद्धिमान् महात्माओं ने स्वर्गद्वार भी कहा है, इसका दर्शन करते ही संसार-बन्धन से मुक्ति हो जाती है।।५।।

ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आदि सब देवता यहाँ नित्य प्रतिष्ठित रहते हैं। मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, गुह्यक और अप्सराओं का समाज, ये सभी संसार-बन्धन से मुक्तिलाभ की कामना से इस स्थान में नित्य निवास करते हैं। जो व्यक्ति सांसारिक तापों से सन्तप्त हो रहे हैं, यह तीर्थ उनके लिए औषधि के समान है।।६-७।।

ब्रह्महत्या के समान सैकड़ों पाप, जो अन्य स्थानों में किये गये हैं, वे सब यहाँ नष्ट हो जाते हैं। इस स्थान में मृत्यु प्राप्त करने वालों को मुक्ति की प्राप्ति होती है।।८।।

अश्मचित्त ब्राह्मण का आख्यान

हे नारद! सुनो। मैं उस पापविनाशिनी कथा का वर्णन कर रहा हूँ— ब्राह्मणवंश में उत्पन्न कोई एक चाण्डालतुल्य व्यक्ति था।।९।।

इसी क्षेत्र के माहात्म्य से उसे ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर के उत्तम स्थान की प्राप्ति हुई थी। हे महामतिमान्! इस क्षेत्र के माहात्म्य का श्रवण करो।।१०।।

बभूव ब्राह्मणः कश्चिदवन्त्यां मुनिसत्तम।
अश्मचित्त इति ख्यातः सार्थनामा द्विजाधमः॥११॥
पूर्वं तु जातमात्रस्य पिता यमवशं गतः।
यदा जातो भाग्यहीनः पञ्चवर्षात्मको द्विजः॥१२॥
माता पञ्चत्वमापन्ना सजातीनां वशं गतः।
उपनीतोऽपि तैर्विप्रैः[1] क्रिया नैव चकार ह॥१३॥
लोलुपः स बभूवाथ चौरकर्मणि स द्विजः।
गतो देशान्तरं सोऽपि चौरैश्च सह सङ्गतः॥१४॥
तैरेव वर्द्धितो विप्रस्तदा चौरो द्विजाधमः।
तेषां वै तस्कराणां च सदा मध्यगतो हि सः॥१५॥
चकार दुष्टकर्माणि स्त्रीब्राह्मणवधादिकम्।
पथिकानां कालरूपो दुर्बलानां तथैव च॥१६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अवन्ती पुरी में एक ब्राह्मण था, उस नीच ब्राह्मण का यथार्थ नाम अश्मचित्त प्रसिद्ध था।।११।।

प्रथम जब उसका जन्म हुआ, तभी उसके पिता की मृत्यु हो गयी और जब वह मन्दभाग ब्राह्मण पाँच वर्ष का हुआ, तभी उसकी माता का भी मरण हो गया। इसलिए वह अपने सजातियों के अधीन हो गया। यद्यपि सजातीय ब्राह्मणों ने उसका उपनयन तो कर दिया था, परन्तु वह ब्राह्मणोचित कोई क्रिया नहीं करता था।।१२-१३।।

वह ब्राह्मण चौरकर्म में प्रवृत्त हो अत्यन्त लोलुप हो गया। वह चोरों के साथ मिलकर परदेश चला गया।।१४।।

इस तरह उस नीच चोर ब्राह्मण को उन चोरों ने ही पाला-पोसा, वह ब्राह्मण उन तस्करों के ही मध्य में नित्य रहने लगा।।१५।।

उनके साथ रहता हुआ वह स्त्री तथा ब्राह्मणों के वध आदि दुष्ट कर्मों का आचरण करने लगा। वह पथिकों तथा दुर्बलों के लिए तो कालरूप ही था।।१६।।

---

१. विप्रेति ग.।

येन केन प्रकारेण धनार्जनपरोऽभवत्।
सर्वब्राह्मणलिङ्गं तु प्रनष्टं तस्य दुर्मतेः॥१७॥
विरूपोऽपि बभूवासौ नष्टे ब्राह्मणकर्मणि।
कुब्जोऽतिरुक्षसर्वाङ्गो विनष्टस्नानसन्ध्यकः॥१८॥
श्यामो बृहच्छिरा दुष्टः स्वल्पदेहो नृशंसकः।
सदा परशुहस्तश्च चर्महस्तस्तथैव च॥१९॥
वने वासो न तस्यापि मित्रसम्बन्धिबान्धवाः।
आसन्नारद कुत्रापि भ्रष्टस्य हि दुरात्मनः॥२०॥
एकदा स महादुष्टो मृगास्योऽतिभयानकः।
चौरैश्च बहुभिः सार्द्धं मायाक्षेत्रे नराधमः॥२१॥
निशीथसमये तत्र कर्त्तुं चौर्य्यं द्विजाधमः।
समाययौ स दुष्टात्मा चौरैः सह समावृतः॥२२॥
स्थितास्तत्र महात्मानः समाजे महति स्थिते।
माहात्म्यश्रवणे सर्वे मायाक्षेत्रस्य नारद॥२३॥

जिस किसी प्रकार से वह धन उपार्जन करने में दत्त-चित्त हो गया। उस मूढ़मति के ब्राह्मण के सभी चिह्न नष्ट हो गये।।१७।।

ब्राह्मणोचित कर्म के नष्ट हो जाने पर उसका रूप भी कुरूप हो गया। वह स्वयं कुब्ज हो गया, उसके सभी अङ्ग रुक्ष हो गये, स्नान और सन्ध्या आदि कर्म भी उसके विनष्ट हो गये।।१८।।

उस दुष्ट निर्दयी का श्याम वर्ण, सिर बड़ा और देह छोटा था। उसके हाथ में सदैव परशु और ढाल रहता था।।१९।।

वह वन में ही निवास करता था। हे नारद! उस भ्रष्ट दुरात्मा के मित्र, सम्बन्धी और बन्धु-बान्धव कोई भी नहीं थे।।२०।।

एक समय मृग के समान मुख वाला वह अतिदुष्ट भयानक, नीच व्यक्ति चोरों के साथ ही मायाक्षेत्र में आया।।२१।।

वह दुराचारी अर्ध-रात्रि के समय चोरों के साथ ही चोरी करने की कामना से वहाँ आया था।।२२।।

हे नारद! किन्तु वहाँ बहुत से महात्मा लोग एक समाज में उपस्थित होकर मायाक्षेत्र के माहात्म्य का श्रवण कर रहे थे।।२३।।

संन्यस्तमनसस्तत्र श्रीशिवे भक्तिसंयुताः।
श्रुत्वा तीर्थप्रशंसां वै मुदा परमया युताः॥२४॥
प्रशंसन्तो मुहुश्चैव अहो पुण्यतमा वयम्।
परस्परं मोदमाना ऋषयो ब्राह्मणादयः॥२५॥
अहो धन्यतमा लोके आगच्छन्तो महास्थले।
तैरेव सुकृतं पूर्वं कृतमेव न संशयः॥२६॥
इत्येवं संवदन्तस्त ऊचुर्माहात्म्यमुत्तमम्॥२७॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषां सर्वेषां मुनिसत्तम।
चौरान् स चाब्रवीद्वाक्यमश्मचित्तो द्विजाधमः॥२८॥

अश्मचित्त उवाच

भो भो चौराः शृणुध्वं हि शृणुध्वं मद्वचः खलु।
प्रशंसन्ति कथं स्थानमिदमेते द्विजातयः॥२९॥

उन महात्माओं ने भक्तिभाव में तत्पर होकर भगवान् शिव के चिन्तन में अपने चित्त को लगा रखा था और वे लोग तीर्थ की प्रशंसा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे।।२४।।

वे लोग बार-बार प्रशंसा करते हुए कह रहे थे कि हम लोग बहुत ही पुण्यशाली हैं। इस प्रकार वे सब ऋषि और ब्राह्मण परस्पर आनन्द में मग्न हो रहे थे।।२५।।

जो व्यक्ति इस महान् स्थल में आते हैं, वे भी बड़े भाग्यशाली हैं, धन्य हैं। उन्होंने अवश्य ही पूर्व-जन्म में पुण्य का आचरण किया है।।२६।।

इस प्रकार कह-कह कर वे लोग उत्तम माहात्म्य का बखान कर रहे थे।।२७।।

हे मुनिश्रेष्ठ! जब द्विजाधम अश्मचित्त ने इस प्रकार उन माहात्माओं के वाक्यों का श्रवण किया, तब वह उन चोरों से यह वचन कहने लगा।।२८।।

अश्मचित्त ने कहा

अरे चोरों! तुम सब हमारे वाक्यों को अवश्य ही सुनो। ये द्विजाति इस स्थान की कैसी प्रशंसा कर रहे हैं।।२९।।

धनं नूनं महाभागा स्थापितं वै भविष्यति।
येनैवं ब्राह्मणाः सर्वे प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः॥३०॥
श्रूयतामेकचित्तैश्च भवद्भिर्वच उत्तमम्।
कुत्र वै स्थापितं चौरा धनमेभिर्द्विजातिभिः॥३१॥
स्वयं वै संवदिष्यन्ति निश्चयं चौरसत्तमाः।
तद् गृहीत्वा वयं सर्वे मारयित्वाऽखिलाँश्च तान्॥३२॥
गमिष्यामोऽन्यदेशं हि मुहूर्त्तं सम्प्रतीक्ष्यताम्।
वर्त्तते बहुलं वित्तं यस्मात्ते मुखकान्तयः॥३३॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा विररामासावश्मचित्तः सुदुर्मतिः।
प्रशसंसुर्मुदा तं वै सर्वे चौराः सखड्गकाः॥३४॥
श्रुत्वा रागयुताश्चौराः सरागं वचसां कुलम्।
मोहिताः सम्बभूवुश्च श्रवणे कृतमानसाः॥३५॥

हे महाभागों! इसमें अवश्य ही धन स्थापित होगा, इसीलिए तो ये ब्राह्मण बार-बार इसकी प्रशंसा कर रहे हैं।।३०।।

हे चोरों! तुम लोग अपने चित्त को एकाग्र करके हमारे श्रेष्ठ वचन को सुनो। इन द्विजातियों ने अपने 'धन को कहाँ स्थापित किया है।।३१।।

हे श्रेष्ठ चोरों! ये लोग स्वयं ही यह बात कहेंगे, तब इन्हें मारकर सम्पूर्ण धन लेकर हम लोग अन्य स्थान को चल चलेंगे।।३२।।

इसलिए क्षणभर प्रतीक्षा करनी चाहिए, क्योंकि इनके पास प्रभूत धन विद्यमान है। इसी कारण इनके मुख की कान्ति प्रदीप्त हो रही है।।३३।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार कहकर वह मन्दमति अश्मचित्त तो मौन हो गया। हाथ में खड्ग धारण किये हुए सभी चोर उसकी प्रशंसा करने लगे।।३४।।

उन अज्ञानी चोरों ने जब इस प्रकार के प्रेमपूर्ण वचन का श्रवण किया, तब वे सब मोहित हो तीर्थ का माहात्म्य श्रवण करने में दत्तचित्त हो गये।।३५।।

उत्तमश्लोकश्रवणाद्धूतपापो द्विजस्तदा।
उवाच वचनं चौरानिदं वै द्विजसत्तम॥३६॥

अश्मचित्त उवाच

प्रष्टुं गच्छाम्यहं तत्र मुनिवर्गान् हि तस्कराः।
तत्सर्वं निश्चयं गत्वाऽऽगच्छामि सत्वरं पुनः॥३७॥

चौरा ऊचुः

कथं यास्यसि भो विप्र समाजे तस्करः खलु।
ज्ञात्वा वै मारयिष्यन्ति त्वां तथा मुनयस्त्वरा॥३८॥
परोक्षस्थायिनश्चौरा भवन्ति तस्करोत्तम।
प्रत्यक्षतामधिगता यदि ते नाशिनस्तदा॥३९॥

अश्मचित्त उवाच

छद्मना तत्र गच्छेयं यत्र ब्राह्मणसत्तमाः।
जानीयुर्मां यथाऽचौरं करोमि व्याजमीदृशम्॥४०॥

उत्तमश्लोक (श्रेष्ठ चरित्र) के श्रवण करने से उस ब्राह्मण के सब पाप नष्ट हो गये। हे द्विजश्रेष्ठ! उसने इस प्रकार का वचन कहा।।३६।।

अश्मचित्त बोला

हे तस्करों! मैं मुनिसमाज से पूछने के लिए जा रहा हूँ। जाकर उन सब का निश्चय करके पुनः शीघ्र आ रहा हूँ।।३७।।

चोरों ने कहा

हे ब्राह्मण! तुम मुनियों के समाज में कैसे जाओगे, क्योंकि तुम निश्चित ही चोर हो। जब मुनि लोग तुमको पहचान लेंगे, तब वे लोग निश्चित ही तुम्हारा वध कर डालेंगे।।३८।।

हे निपुण चोर! चोर तो परोक्ष में रहने वाले होते हैं। इसलिए प्रत्यक्ष में जाने से तुम्हारा विनाश हो जायेगा (तुम्हें वेष बदलकर जाना चाहिए)।।३९।।

अश्मचित्त ने कहा

जहाँ वे ब्राह्मणसत्तम उपस्थित हैं, वहाँ मैं छल करके जाऊँगा, अर्थात् ऐसा छल करूँगा, जिससे वे लोग मुझे चोर न समझें।।४०।।

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा सहसा सोऽपि त्यक्तशस्त्रास्त्रकस्तदा।
चीराम्बरोऽश्मचित्तश्च बभूव द्विजवेषधृक्।।४१।।
स गत्वा तत्र देशे तु यत्र ते ब्राह्मणाः स्थिताः।
नमश्चकार तेभ्यश्च विनयावनतोऽभवत्।।४२।।
अन्तर्दुष्टो बहिः शान्तो रुद्रमालाविभूषितः।
तिर्यक्पुण्ड्रधरो विप्रो यथा ब्राह्मणसत्तमः।।४३।।
श्रुत्वा श्रुत्वाऽस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं द्विजसत्तमः।
विस्मृतश्चौरकर्माणि सत्सङ्गनिरतो[१] द्विजः।।४४।।
तत्सङ्गमादश्मचित्तो भक्तिमान् स बभूव ह।
भक्तौ सञ्जातमात्रायां प्रणनाम द्विजोत्तमान्।।४५।।

अश्मचित्त उवाच

महापापोऽस्मि मुनयो गच्छामि निरयार्णवे।
गच्छन्तं मां महाभागा रक्षध्वं द्विजसत्तमाः।।४६।।

स्कन्द ने कहा

यह कहकर उसने सभी अस्त्र-शस्त्रों का परित्याग कर दिया और चीर वस्त्र धारण कर उस अश्मचित्त ने ब्राह्मण का वेष धारण कर लिया।।४१।।

जहाँ वे ब्राह्मण लोग बैठे थे, उसने वहाँ जाकर विनय से नम्र होकर उन ब्राह्मणों को नमस्कार किया।।४२।।

यद्यपि उसका अन्तःकरण दुष्टता से पूर्ण था, परन्तु बाहर से वह शान्त प्रतीत होता था, रुद्राक्ष की माला से विभूषित ऊर्ध्वपुण्ड्र (रामानन्दी) तिलक धारण कर वह ऐसा बन गया, जैसे लग रहा था कि वह कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण हो।।४३।।

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! वह अश्मचित्त इस क्षेत्र के माहात्म्य को सुन-सुनकर चोरी कर्म को भूल गया और सत्सङ्गति में निरत हो गया।।४४।।

इसके बाद वह अश्मचित्त सत्सङ्ग के प्रभाव से भक्त बन गया। भक्ति के उदय होते ही उसने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को प्रणाम किया।।४५।।

अश्मचित्त ने कहा

हे मुनियों! मैं महान् पापी हूँ, इसलिए नरक के समुद्र में डूबा जा रहा हूँ। हे महाभाग, श्रेष्ठ ब्राह्मणों! आप लोग मुझ डूबते हुए की रक्षा करें।।४६।।

१. सत्सङ्गे निरत इति ग.।

स्कन्द उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनयो विस्मयान्विताः।
ऊचुः परस्परं कोऽयं महापापोऽस्मि योऽवदत्॥४७॥
तमप्यूचुर्महाभाग पतितं पादसन्निधौ।
अश्मचित्तं महाभागाः कृपया परया युताः॥४८॥

ब्राह्मणा ऊचुः

भो भो पुरुष कस्त्वं वै कुतो वा त्वमुपागतः।
कस्माद् गच्छसि नरकं पापकर्मफलं तथा॥४९॥

अश्मचित्त उवाच

न जानामि कुलं शीलं स्वस्य वै पापकर्मणः।
अश्रौषं ब्राह्मणाज्जन्म ततश्चौरोऽभवं तथा॥५०॥
कथं स्यान्निष्कृतिर्मेऽद्य तद् ब्रूत मम साम्प्रतम्।
अन्यथा सर्वथा विप्रा गच्छामि नरकं ध्रुवम्॥५१॥

स्कन्द ने कहा

अश्मचित्त के इस प्रकार के वचन को सुनकर सभी मुनीश्वर विस्मित हो गये। वे लोग परस्पर में सम्भाषण करने लगे कि यह कौन है? जो अपने आपको महापापिष्ठ बतला रहा है।।४७।।

हे महाभाग! वे सज्जन महर्षिगण परम कृपा से आविष्ट होकर उस अश्मचित्त से (जो अश्मचित्त मुनियों के चरणों में प्रणाम कर रहा था) इस प्रकार बोले।।४८।।

ब्राह्मणों ने कहा

हे पुरुष! तुम कौन हो और कहाँ से आये हो और क्यों किस पाप के फल से नरक में जा रहे हो?।।४९।।

अश्मचित्त ने कहा

मैं पापी अपने पापकर्म के कारण अपने कुल और शील को कुछ नहीं जानता, किन्तु मैंने यह सुना है कि मेरा जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ है। फिर भी मैं चोर हो गया हूँ।।५०।।

अब मेरा उद्धार कैसे होगा, यह मुझे आप लोग बतलायें, अन्यथा मैं निश्चित ही नरक में चला जाऊँगा।।५१।।

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वाऽश्रुपरीताक्षः पपात चरणेषु सः।
तं दृष्ट्वा तेऽपि मुनयः प्रोचुस्तं विप्रवंशजम्॥५२॥

मुनय ऊचुः

अहो धन्यतमोऽसि त्वं यो वै क्षेत्रमुपागतः।
शमं यातानि पापानि तवेदानीं द्विजर्षभ॥५३॥
अस्माद्वै पूर्वभागे यो गङ्गातीरे महागिरिः।
तत्र गत्वा महाभाग महादेवपरो भव॥५४॥
सन्तुष्टे तु महादेवे सर्वं सम्पादयिष्यसि।
अतोऽस्मद्वचनात्तूर्णं गच्छ तत्र महाशय॥५५॥

अश्मचित्त उवाच

न जानामि मुनिश्रेष्ठाः सत्कर्म द्विजवन्दिताः।
येनाहं स्यां महाभागस्तद् ब्रूत कृपया विभो॥५६॥

स्कन्द ने कहा

यह कहकर वह चोर ब्राह्मण नेत्रों में आँसू भर कर मुनियों के चरणों में गिर पड़ा। उसकी ऐसी दशा देखकर महर्षियों ने भी ब्राह्मणवंश में उत्पन्न उस अश्मचित्त से कहा।।५२।।

मुनियों ने कहा

तुम्हारा आगमन इस उत्तम क्षेत्र में हो गया, इसलिए तुम धन्यतम हो। हे द्विजश्रेष्ठ! सम्प्रति तुम्हारे सभी पाप इस क्षेत्र में आते ही जल कर भस्म हो गये।।५३।।

यहाँ से पूर्व की ओर गङ्गा जी के तट पर जो बड़ा पर्वत विद्यमान है। हे महाभाग! वहाँ जाकर मनोयोगपूर्वक भगवान् महादेव शङ्कर की आराधना करो।।५४।।

जब भगवान् शिव सन्तुष्ट हो जायेंगे, तब सभी कुछ सम्पादन कर सकोगे। हे महाशय! इसलिए हमारे कहने से तुम शीघ्र वहाँ चले जाओ।।५५।।

अश्मचित्त ने कहा

हे वन्दनीय ब्राह्मणों, मुनिश्रेष्ठों! मैं सत्कर्मों से निपट ही अनजान हूँ, इसलिए आप ऐसी कृपा करें, जिससे मैं महाभाग्यशाली (ज्ञानवान्) हो जाऊँ।।५६।।

मुनय ऊचुः

महादेव महादेव महादेवेति चासकृत्।
स्मरन् वै मनसा देवं वद सर्वमनिन्दितः॥५७॥
कृतकृत्यो महाभाग भविष्यस्येव भो द्विज।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भज शर्वं हि शर्म्मदम्॥५८॥

स्कन्द उवाच

इति श्रुत्वा निगदितं तेषां वै भावितात्मनाम्।
जगामाहोमुखे तत्र पर्वते मुनिदर्शिते॥५९॥
तत्र गत्वा महेशानं सस्मार मनसा विभुम्।
महादेव महादेव महादेवेति चासकृत्॥६०॥
वदन् वै सप्तरात्रेण ददर्श शिवमुत्तमम्।
व्याघ्रचर्मपरीधानं वृषस्थं नीललोहितम्॥६१॥
अनेकसर्पसर्वाङ्गं नानाप्रमथसेवितम्।
उवाच मधुरं वाक्यमश्मचित्तं सदाशिवः॥६२॥

मुनियों ने कहा

बारम्बार मनोयोगपूर्वक महादेव, महादेव, यह कहते हुए अनिन्दित होकर स्मरण करते हुए उन्हीं देव शिव से सब कुछ कहो।।५७।।

हे भाग्यशाली ब्राह्मण! उनके भजन करने से अवश्य ही तुम कृतार्थ हो जाओगे। इसलिए सम्पूर्ण प्रयत्नपूर्वक कल्याणकारी भगवान् महादेव का भजन करो।।५८।।

उन महात्माओं के ऐसे वचन सुनकर प्रात:काल होते ही वह ब्राह्मण मुनियों के बतलाये हुए पर्वत के ऊपर चला गया।।५९।।

वहाँ जाकर उसने बारम्बार महादेव, महादेव, कह-कह कर सर्वव्यापक भगवान् शिव का स्मरण किया।।६०।।

इस प्रकार सात रात्रिपर्यन्त जप करते-करते उसे भगवान् शिव का दर्शन हुआ। वे बाघ के चर्म को वस्त्र के रूप में धारण किये हुए थे तथा बैल पर सवार थे और वे नील एवं लोहित वर्ण के थे।।६१।।

उनके सम्पूर्ण अङ्ग में अनेक सर्प लिपटे हुए थे, अनेक प्रमथगणों से सेवित थे। सदा कल्याण करने वाले भगवान् महादेव ने अश्मचित्त से यह वचन कहा।।६२।।

श्रीशिव उवाच

उत्तिष्ठ वत्स भद्रं ते धन्योऽसि मम नामतः।
वरं वृणीष्व सततं वरदोऽस्मि तव द्विज॥६३॥

अश्मचित्त उवाच

स्तोतुमुत्सहते मेऽद्य मनो देव विभो शिव।
परं मूर्खोऽस्मि हे नाथ कथं स्तौमि भवापहम्॥६४॥

श्रीशिव उवाच

पुराणन्यायमीमांसा साङ्गा धर्मव्यवस्थितिः।
चत्वारश्च तथा वेदास्तथायुर्वेद उत्तमः॥६५॥
गान्धर्वं चार्थशास्त्रं च धनुर्वेदस्तथा स्मृतः।
एतास्सर्वा महाविद्या भवन्तु तव साम्प्रतम्॥६६॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्तमात्रे भगवति सर्वज्ञे सर्वदे भवे।
आविर्बभूवुस्तस्याऽपि विद्या अष्टादशैव तु॥६७॥

श्रीशिव ने कहा

हे वत्स! उठो। तुम्हारा कल्याण हो, हमारे नाम के स्मरण करने से तुम धन्य हो गये हो। हे द्विज! तुम वर की याचना करो; क्योंकि तुम्हें वर देने के लिए मैं सर्वदा उपस्थित हूँ।।६३।।

अश्मचित्त ने कहा

हे देव, सर्वव्यापक शिव! आपकी स्तुति करने के लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है; परन्तु मैं मूर्ख हूँ, फिर संसार के बन्धन को दूर करने वाले आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ।।६४।।

श्रीशिव ने कहा

पुराण, न्याय, मीमांसा और समस्त अङ्गों सहित धर्म की व्यवस्था करने वाला धर्मशास्त्र एवं चारों वेद तथा उत्तम आयुर्वेद (वैद्यक) शास्त्र, गान्धर्व और अर्थशास्त्र तथा धनुर्वेद आदि स्मृत हैं, वे सभी महाविद्यायें अभी तुम्हें प्राप्त हो जायें।।६५-६६।।

स्कन्द ने कहा

जिन्हें सब कुछ प्रदान करने की शक्ति है, ऐसे भगवान् सर्वज्ञ भव के इस प्रकार कहने पर अट्ठारह विद्याएँ उस ब्राह्मण अश्मचित्त के समक्ष प्रादुर्भूत हो गयीं।।६७।।

ज्ञात्वा स्वरूपमत्यर्थं भवस्य परमात्मनः।
अस्तौषीज्जगदानन्दं जगत्संहारकारकम्॥६८॥

अश्मचित्तद्वारा शिवस्य स्तुतिः

अश्मचित्त उवाच

वन्देऽहं भवभयहरं महेशमीशं
भावाभावैरहितमजं विभुं वरेण्यम्।
यद्वै धाम वृषवरगं प्रपन्नचित्ते
तद्वै वन्दे निजगुरुं शङ्करेशं शिवेशम्॥६९॥
अगणितगुणमहिमानं पारगं सर्वनाथं
विविधभुजगशोभं पर्वतेशे विभान्तम्।
सुरदनुजमनुजयोनिभारनाशं हि पृथ्व्याः
निगमकथितरूपं पार्वतीशं नमामि॥७०॥

वह ब्राह्मण परमात्मा महादेव के रूप की उत्कृष्टता जानकर जगत् को आनन्द प्रदान करने वाले और संहारकर्ता भगवान् शिव की स्तुति करने लगा।।६८।।

अश्मचित्त द्वारा शिव की स्तुति

अश्मचित्त ने कहा

मैं संसार के भय को हरने वाले, महेश, ईश, भाव एवं अभाव से रहित, अजन्मा, विभु, वरेण्य शिव की स्तुति करता हूँ। जो श्रेष्ठ वृषभ पर गमन करने वाले हैं, ऐसे शिव के धाम में मेरा मन लग गया है, ऐसे अपने गुरु शङ्करेश, शिवेश की वन्दना करता हूँ।।६९।।

अगणित गुणों से महिमा को प्राप्त होने वाले, सबके पार पहुँचे हुए, सम्पूर्ण जीवों के स्वामी, अनेक प्रकार के सर्पों से सुशोभित, पर्वतराज हिमालय पर शोभायमान, पृथिवी पर देव-दानव-मनुष्य योनि के भार का नाश करने वाले, वेदों में बताये गये रूप वाले पार्वती के स्वामी शिव की मैं वन्दना करता हूँ।।७०।।

यदुदरवरकुहरमध्ये प्रेरिता वाननाथै-
स्तनुजपुलककुलकमार्गे ब्राह्मणेन्द्रा वसन्ति।
रविकरनिकरशुभजालैर्जालभव्यं यथा वै
लघुतरमणुकुलानि प्रेरितानीशमीडे॥७१॥
विभो ते रूपं भसितसितमहो मे हृदि सदा
वसेद्वै ब्रह्म त्रिभुवनगशुभं बालशशिनः।
हस्तौ मे ते भक्तशुभगवत्पूजां वितनुतां
शिरो मे देव भवभयहरं च प्रणमतु॥७२॥
पूर्वं तवेश भगवन् भव देवदेव ब्रह्मारमेशौ तव द्रष्टुमन्तम्।
गतौ प्रभो ऊर्ध्वमधश्च लोके गतं न वाहं हि कियान् मनुष्यः॥७३॥

स्कन्द उवाच

संस्तुवन्ति महात्मानं देवदेवं महेश्वरम्।
ते वै परमभक्तास्तु गच्छन्ति परमं पदम्॥७४॥

जिस प्रकार रवि की किरणों के समूहरूपी शुभ जालों से प्रेरित किये गये अतिसूक्ष्म अणुसमूह शीघ्रता से उसके भव्य जाल में प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार प्रलयकालीन पवन (वाननाथ) द्वारा प्रेरित ब्रह्माण्ड शरीर के लोमों के मार्ग में जिनके उदररूपी गुफा के मध्य में प्रवेश करते हैं, अर्थात् जो प्रलयकाल में सब प्राणियों को निगल जाते हैं, उन महान् देव की स्तुति करता हूँ।।७१।।

हे विभो! भस्म से शुभ्र तुम्हारा रूप मेरे हृदय में सदा बना रहे। हे ब्रह्म! बाल शशि को धारण करने वाला एवं तीनों लोकों का कल्याण करने वाला रूप मेरे हृदय में सदा निवास करे। मेरे दोनों हाथ भक्तों का शुभ करने वाले भगवान् शिव की पूजा किया करें। हे देव! मेरा सिर भव के भय का हरण करने वाले आपको प्रणाम करे।।७२।।

हे ईश, भगवान्, भव, देवदेव प्रभो! पूर्वकाल में ब्रह्मा और लक्ष्मी के स्वामी विष्णु दोनों आपकी आदि और अन्त की सीमा को देखने के लिए ऊपर और नीचे के लोकों में गये थे; परन्तु उन्होंने उसका थाह नहीं पाया, ऐसी स्थिति में मेरे जैसे मनुष्य का क्या कहना?।।७३।।

स्कन्द ने कहा

जो उस महान् आत्मा देवाधिदेव महेश्वर की स्तुति करते हैं, वे लोग परमभक्त होकर उनके परम पद को प्राप्त करते हैं।।७४।।

इमं स्तवं महेशस्य प्रातः प्रातस्तु यः पठेत्।
मूर्खो वै लभते विद्यां यथासावश्मचित्तकः॥७५॥
ततः प्रसन्नो भगवान् महादेवोऽब्रवीद् द्विजम्।
प्रहसँस्स्तोत्रराजेन सन्तुष्टो जगदीश्वरः॥७६॥

नीलगिरिनामकरणे हेतुर्माहात्म्यञ्च

श्रीशिव उवाच

गच्छ गच्छ हि कैलासं प्रमथेश्वरतां व्रज।
तुष्टोऽस्मि स्तवराजेन कृतभक्त्या च विप्रक॥७७॥
[1]ममार्द्धनामको भूयाद् गणश्च द्विजसत्तम।
नाम्ना नील इति ख्यातिं भुवि यास्यसि चोत्तमाम्॥७८॥
अस्य वै गिरिराजस्य नाम वै सम्भविष्यति।
नीलपर्वत इति वै स्मरणाच्छिवदायकः॥७९॥

जो मनुष्य महेश्वर के इस स्तोत्र का पाठ प्रातःकाल करता है, वह मूर्ख होते हुए भी विद्या को प्राप्त कर लेता है, जैसे कि उस अश्मचित्त ने प्राप्त किया था।।७५।।

इसके बाद भगवान् महादेव सर्वोत्तम इस स्तोत्र के पाठ से सन्तुष्ट हो गये, अतएव हँसते हुए जगत् के स्वामी भगवान् शिव ने उस ब्राह्मण से कहा।।७६।।

नीलगिरि नामकरण का हेतु एवं माहात्म्य

श्रीशिव ने कहा

हे विप्रवर! इस स्तोत्र के पाठ से और तुम्हारी की हुई भक्ति से हम सन्तुष्ट हो गये हैं, इसलिए तुम कैलास पर्वत के ऊपर जाओ और हमारे सब पार्षदों के अधीश्वर बनो।।७७।।

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! तुम मेरे आधे नाम वाले गण बनोगे। तुम इस संसार में नील नाम से उत्तम प्रसिद्धि प्राप्त करोगे।।७८।।

इस पर्वतराज का नाम नील पर्वत होगा। इस नील पर्वत के स्मरण करने से ही शिवत्व की प्राप्ति हो जायेगी।।७९।।

१. 'ममार्द्ध...... प्रीतिवर्द्धनः' इत्यधिकः पाठः क.।

अत्र वै निवसिष्यामि त्वया सह गणेश्वर।
नीलेश्वर इति ख्यातो भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः॥८०॥
जलमात्रं च यो मर्त्यो मम लिङ्गे प्रदास्यति।
यावन्त्यः कणिकास्तत्र लिङ्गोपरि जलस्य च॥८१॥
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते।
यो बिल्वपत्रमादाय पूजयेत्तेन मां शिवम्॥८२॥
कल्पमेकं वसेच्छैवे मम लोके सुपुण्यदे।
अक्षता मम लिङ्गे वै धृता यावन्त एव हि॥८३॥
तावद्वर्षसहस्राणि मम लोके प्रतिष्ठते।
पुष्पाणि चैव यावन्ति न्यस्तानि च ममोपरि॥८४॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गभाग्जायते नरः।
धूपं दीपं च यो दद्यान्न वै पश्यति नारकान्॥८५॥
नैवेद्यं विविधं यो वै ह्यर्पयेन्मम भक्तितः।
कुत्सितान्नं न वै भुङ्क्ते तथा जन्मसहस्रकम्॥८६॥

हे गणेश्वर! मैं यहाँ नीलेश्वर नाम से प्रसिद्ध होकर तुम्हारे साथ निवास करूँगा और भक्तों के प्रेम को बढ़ाता रहूँगा।।८०।।

जो मनुष्य मेरे इस नीलेश्वर लिङ्ग पर जलमात्र भी प्रदान करेगा, उस जल की जितनी बूँदें शिवलिङ्ग के ऊपर गिरेंगी, उतने हजार वर्ष तक वह मनुष्य शिवलोक में पूजित होगा।।८१।।

जो मनुष्य बिल्वपत्र लेकर उनके द्वारा मुझ महादेव की पूजा करता है, वह एक कल्पपर्यन्त हमारे पुण्यदायक शिवलोक में निवास करता है।।८२।।

जितने अक्षत हमारे लिङ्ग के ऊपर चढ़ाये जाते हैं, उतने ही सहस्रवर्ष पर्यन्त अक्षत चढ़ाने वाला व्यक्ति मेरे लोक में अवस्थित रहता है।।८३।।

और भी, जो व्यक्ति हमारे लिङ्ग के ऊपर जितने पुष्प चढ़ाता है, वह मनुष्य उतने हजार वर्ष के लिए स्वर्ग का भागी होता है। धूप, दीप प्रदान करने वाले मनुष्य को नारकी जीवों का दर्शन नहीं होता।।८४-८५।।

जो पुरुष भक्ति-भावपूर्वक हमको विविध नैवेद्य (मिष्ठान्न) अर्पण करता है, ऐसे व्यक्ति को सहस्रों जन्मपर्यन्त निषिद्ध अन्न प्राप्त नहीं होता।।८६।।

दक्षिणां मम यो दद्यात्सम्पूज्य भक्तितत्परः।
न दारिद्र्यमवाप्नोति नरो जन्मसहस्त्रकम्॥८७॥
गङ्गातीरे महत्कुण्डं वर्त्तते मम सर्वदा।
तत्रापि स्नानकर्त्तारो मम रूपा न संशयः॥८८॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् देवो महादेवो ययौ गिरिम्।
तेन सार्द्धं गणैश्चैव स्तूयमानः सुरासुरैः॥८९॥
तस्मादयं द्विजश्रेष्ठ पर्वतः श्रेष्ठतां गतः।
अद्यापि तत्प्रदेशे हि शङ्खध्वनिरहर्निशम्।
श्रूयते पुण्यकैर्विप्र तथा वै शिवलिङ्गकम्॥९०॥
दृश्यते मुनिशार्दूल प्रत्ययो दृश्यते मया।
तं पर्वतं सकृद्दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥९१॥

भक्तिभावपूर्वक पूजन करने के अनन्तर जो मनुष्य हमारे निमित्त दक्षिणा प्रदान करता है, उस मनुष्य को सहस्त्र जन्मपर्यन्त दरिद्रता की प्राप्ति नहीं होती है।।८७।।

गङ्गा के तट पर हमारा एक विस्तृत कुण्ड सदा से विद्यमान है, उसमें स्नान करने वालों को भी मेरे स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।।८८।।

स्कन्द ने कहा

देवता और असुरों के द्वारा स्तुति किये जाते हुए देवाधिदेव महादेव उस ब्राह्मण अश्मचित्त और अपने अन्यान्य गणों को साथ लेकर कैलास पर्वत के ऊपर चले गये।।८९।।

हे द्विजश्रेष्ठ! इसी कारण से यह पर्वत सबसे उत्कृष्ट समझा गया है। हे ब्राह्मणसत्तम! आज भी वहाँ पुण्यशील महात्माओं को शङ्ख की ध्वनि सुनाई पड़ती है और शिव के लिङ्ग का भी दर्शन होता है।।९०।।

हे मुनिश्रेष्ठ! हमने तुम्हारे प्रति वहाँ का यही प्रत्यय (विश्वास) कराने वाला चिह्न निर्दिष्ट किया है। इस पर्वत का एक बार भी दर्शन करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।।९१।।

एतदुद्देशतः प्रोक्तं माहात्म्यं तव सुव्रत।
को वा साकल्यभावेन वक्तुं शतमुखैरपि॥९२॥
अश्मचित्तस्य चरितं कथयिष्यन्ति ये नराः।
इह चैव परामृद्धिं मृताः स्वर्गमवाप्नुयुः॥९३॥

॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे नीलपर्वतमाहात्म्यं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

हे शुभाचरणशील! इसी उद्देश्य से हमने तुम्हारे प्रति इसका माहात्म्य वर्णन किया है। सम्पूर्णतया वर्णन करने का सामर्थ्य तो सैकड़ों मुख से भी किसी को नहीं है॥९२॥

जो मनुष्य अश्मचित्त के इस चरित्र का वर्णन करेंगे, वे मनुष्य इस लोक में प्रभूत ऐश्वर्य का उपभोग कर शरीर का अन्त होने पर स्वर्ग को प्राप्त कर लेंगे॥९३॥

॥ इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में नीलपर्वत-माहात्म्य नामक एक सौ छः अध्याय पूर्ण हुआ ॥१०६॥

[श्लोकसंख्या पूर्व-९३+९३=१८६]



अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

बिल्वपर्वतस्य शिवधारायाश्च माहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

बिल्वपर्वतमाहात्म्यं शृणु नारद भक्तितः।
तच्छ्रुत्वाऽपि द्विजश्रेष्ठ पुण्यं प्राप्नोति दुर्ल्लभम्॥१॥
शिवधारा समाख्याता शिवदा तत्र पर्वते।
तस्यां नरः सकृत्स्नात्वा शिवेन सदृशो भवेत्॥२॥
तत्रैको बिल्ववृक्षस्तु तस्याधः शिवलिङ्गकम्।
यस्य दर्शनमात्रेण शिवतां याति मानवः॥३॥
लिङ्गस्य दक्षिणे भागे नित्यं तिष्ठति नारद।
अश्वतरो महानागो मणिभूषितमस्तकः॥४॥

बिल्वपर्वत एवं शिवधारा के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा

अब तुम बिल्व पर्वत के माहात्म्य को भक्तिभावपूर्वक श्रवण करो। हे द्विजश्रेष्ठ! उसका श्रवण करने से भी मनुष्य दुर्लभ पुण्य की प्राप्ति करता है।।१।।

उस पर्वत के ऊपर कल्याण करने वाला शिवधारा नाम का एक स्रोत है, उसमें एक बार भी स्नान करने से मनुष्य शिव के समान हो जाता है।।२।।

उसी स्थान पर एक बिल्व का वृक्ष है, उसके नीचे एक शिव का लिङ्ग विराजमान है। उसके दर्शन करने मात्र से भी मनुष्य साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है।।३।।

हे नारद! उक्त शिवलिङ्ग के दक्षिणभाग में अश्वतर नाम का एक महानाग रहता है, जिसका मस्तक मणि के द्वारा समलङ्कृत है, वह नाग वहाँ सर्वदा उपस्थित रहता है।।४।।

रन्ध्रात्पातालगाद्विप्र स करोति गतागतम्।
कदाचिन्मुनिरूपेण कदाचिन्मृगरूपकः॥५॥
स्नानं करोति सर्वत्र तीर्थेषु मुनिसत्तम।
वामभागेन तस्यापि गुहा पाषाणमुद्रिता॥६॥
तस्यां वसति धर्मात्मा योगिनां प्रवरो मुनिः।
नाम्ना ऋचीक इति वै ख्यातो ब्रह्मविदां वरः॥७॥
योगयुक्तो महात्माऽसौ शिवसंन्यस्तमानसः।
आस्ते स्थावरवद्योगी ब्रह्मभूतो विकल्मषः॥८॥
तल्लक्षणं शृणु प्राज्ञ यस्मात्ते प्रत्ययो भवेत्।
निशीथसमये तत्र चतुर्दश्यां हि कृष्णके॥९॥
पक्षे वै श्रावणे मासि ज्योतिर्वै दृश्यते महत्।
श्रूयते कल्कलाशब्दः पुण्यैस्तत्प्राप्य दर्शनम्॥१०॥

वह नाग पातालगामी रन्ध्र से बराबर आता-जाता रहता है। हे ऋषीश्वर! वह कभी मृग का रूप धारण करके और कभी मुनि का वेष बनाकर सब तीर्थों में जाकर स्नान करता है। उसी के वामभाग में पाषाण से ढकी हुई एक गुफा विद्यमान है। उस गुफा में एक धर्मात्मा, योगियों में श्रेष्ठ मुनि निवास करते हैं। उन श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी मुनि का नाम ऋचीक है।।५-७।।

ये योगाभ्यासी महात्मा अपने मन को भगवान् शिव में लगाकर निष्पाप होने के कारण ब्रह्मस्वरूप हो स्थावर के समान वहाँ स्थित रहते हैं।।८।।

हे प्राज्ञ! अब उनके लक्षणों का श्रवण करो, उसी से तुम्हें विश्वास होगा, श्रावण के महीने में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को अर्द्धरात्रि के समय वहाँ एक बहुत बड़ी ज्योति का दर्शन होता है।।९।।

यदि पुण्य के कारण उस ज्योति का दर्शन हो जाय, तो वहाँ कल-कल का शब्द भी श्रवणगोचर होता है।।१०।।

राज्ञो विश्वदत्तस्य मुनेः ऋचीकाद् योगस्य प्राप्तिः

नारद उवाच

विभो षण्मुख देवेश जातो मे विस्मयः परः।
किं तज्ज्योतिश्च शब्दश्च सर्वं तत्कथ्यतां मम॥११॥

स्कन्द उवाच

पुरा राजा बभूवाथ कलिङ्गे विश्वदत्तकः।
एकदा स मुनिश्रेष्ठ मृगयायै गतो वनम्॥१२॥
हतास्तेन मृगाश्चैव बहवः सिंहशूकराः।
दैवाज्जातो महाभाग एकाकी स नराधिपः॥१३॥
परिश्रान्तो नृपस्तत्र वने नरविवर्जिते।
ददर्श स सरोयुग्मं शतपत्रैश्च शोभितम्॥१४॥
नानामृगगणाकीर्णं हंसकारण्डवैर्युतम्।
सतां मनः स्वच्छजलं जलकुक्कुटशोभितम्॥१५॥

राजा विश्वदत्त को मुनि ऋचीक से योग की प्राप्ति

नारद ने कहा

हे देवाधिदेव, सर्वव्यापक, षडानन! यह सुनकर मुझे परम आश्चर्य हो रहा है कि वह ज्योति और शब्द कहाँ से होता है? ये सभी हमसे वर्णन करें।।११।।

स्कन्द ने कहा

हे मुनिश्रेष्ठ! प्राचीन काल में कलिङ्गदेश में विश्वदत्त नाम का एक राजा था। वह एक दिन आखेट के लिए वन में गया।।१२।।

उसने बहुत से मृग, सिंह और शूकरों का वध किया। हे महाभाग! भाग्यवश वह अपने अन्य सैनिकों से अलग होकर अकेला रह गया।।१३।।

वह भूपाल उस निर्जन वन में पूर्ण रूप से थक चुका था। उसी समय उसको दो ऐसे सरोवरों का दर्शन हुआ, जिसमें कमल सुशोभित हो रहे थे।।१४।।

अनेकों मृग, हंस और कारण्डव उस स्थान में उपस्थित थे, जैसे सज्जनों का मन स्वच्छ होता है, ऐसे ही निर्मल जल से वे सरोवर परिपूर्ण थे और जलकुक्कुट उनकी शोभा को और बढ़ा रहे थे।।१५।।

कोयष्टिकैश्चक्रवाकैः क्रौञ्चैरन्यैश्च पक्षिभिः।
नादितं कलशब्दैश्च तथा कोकिलकूजितैः॥१६॥
स्थित्वा राजा सरस्तीरे परिश्रान्तो महामुने।
जलं पीत्वा हि तत्रत्यं यावद् गच्छति भूमिपः॥१७॥
तावत्प्राप्तो द्विजश्रेष्ठः सोत्तरीयोऽजिनाम्बरः।
दृष्ट्वा तं सहसा राजा समुत्तस्थौ तदासनात्॥१८॥
सम्पूज्य वाक्यसंलापैर्विप्रवर्य्यं नराधिपः।
उवाच वचनं राजा विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥१९॥

राजोवाच

विप्रवर्य्य महाभाग कुत्र गन्तासि तद्वद।
सतां साप्तपदी मैत्री वर्त्तते मुनिनन्दन॥२०॥

कोयष्टिक (जलचर पक्षीविशेष अथवा टिटिहिरी), चक्रवाक, क्रौञ्च तथा अन्यान्य पक्षियों द्वारा कल-कल शब्द से प्रतिध्वनित और कोकिलों के शब्द से सरोवर व्याप्त हो रहे थे।।१६।।

हे महामुनि! थके हुए उस राजा ने सरोवर के तीर पर खड़े होकर जलपान किया और जाने की इच्छा करने लगा।।१७।।

उसी समय कृष्णमृगचर्म के उत्तरीय को धारण किये हुए एक श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ आया, उसके दर्शन करते ही राजा आसन से उठ खड़ा हुआ।।१८।।

राजा ने वार्तालाप से उस द्विजश्रेष्ठ का आदर-सत्कार किया, इसके बाद विस्मय से विकसित नेत्रों वाले राजा ने यह वचन कहा।।१९।।

राजा ने कहा

हे महाभाग! द्विजराज! आप कहाँ जा रहे हैं, यह मुझे बतलाइये, हे मुनिनन्दन! सज्जनों की मैत्री साप्तपदीन होती हैं (अर्थात् सज्जन सात पग भी जिसके साथ चलते हैं, उससे मित्रता का आचरण करने लगते हैं)।।२०।।

ब्राह्मण उवाच

श्रृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यदुक्तं वचनं त्वया।
एको व्यापी जगत्सर्वं मित्रामित्रविवर्जितः॥२१॥

कुत्र तद् गमनं विद्यां क्व स्थितिं परमात्मनः।
को वा मित्रममित्रं वा ह्येकस्य निखिलात्मनः॥२२॥

किं ब्रुवेऽहं महाराज त्वदुक्तस्योत्तरं विभो।
विशेषं नाधिगच्छामि शिवस्य परमात्मनः॥२३॥

राजोवाच

किं वा त्वया द्विजश्रेष्ठ कृता सेवा महात्मना।
योगिनां यस्य ते बुद्धिरद्वैतामृतवर्षिणी॥२४॥

कथं प्राप्तं त्वया ज्ञानं शिवस्य परमात्मनः।
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यस्यैतज्ज्ञानमीदृशम्॥२५॥

ब्राह्मण ने कहा

हे राजन्! सुनो। तुमने जो वाक्य कहे, उनका उत्तर मैं तुम्हें सुनाता हूँ। जिसे मित्र और शत्रु का विचार नहीं है, ऐसा एक ही ईश्वर जगत् में सर्वत्र व्याप्त है॥२१॥

यदि वह सर्वत्र व्याप्त है, तो उसका गमन अथवा निवास कहाँ हो सकता है? जब अखिल विश्व की आत्मा परमात्मा एक ही है, तब उसका मित्र या शत्रु कौन हो सकता है॥२२॥

हे विभो महाराज! इसलिए आपके प्रश्न का उत्तर मैं क्या दूँ? वे परमात्मा विश्व का कल्याण करने वाले हैं, मैं उनकी विशेषता को कुछ नहीं जानता हूँ॥२३॥

राजा ने कहा

हे महाभाग! आपकी आत्मा महान् है, आपने योगियों की किस प्रकार की सेवा की है, जिससे आपकी बुद्धि ऐसी अद्वैतरूप अमृत की वर्षा कर रही है॥२४॥

आपको ऐसा अद्भुत ज्ञान है, इसलिए आप कृतकृत्य हैं, आप धन्य हैं, परमात्मा शिवविषयक ऐसे उत्कृष्ट ज्ञान की प्राप्ति आपको किस प्रकार हुई है॥२५॥

समता सर्वभूतेषु शत्रुमित्राप्तबन्धुषु।
कथं सञ्जायते तन्मे प्रपन्नाय वदस्व भोः॥२६॥

ब्राह्मण उवाच

साधुसङ्गतिरेवात्र कारणं वसुधाधिप।
तन्मूर्तिषु सदा ध्यानं तत्तन्नामानुकीर्त्तनम्॥२७॥

राजोवाच

अहमप्यागमिष्यामि त्वया सह द्विजोत्तम।
त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये साधूनां साधुरुत्तमः॥२८॥

ब्राह्मण उवाच

त्वं तु राजा महाभाग भिक्षूणां कल्पवृक्षकः।
कथं स्थास्यसि विपिने कन्दपर्णफलाशनः॥२९॥
राज्यं पालय धर्म्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
मनो यस्य महादेवे सर्वज्ञे जगदीश्वरे॥३०॥

हे विप्र! शत्रु, मित्र, आप्त, बन्धु-बान्धव आदि सभी प्राणियों में समान दृष्टि कैसे हो सकती है? यह बात मुझ शरणागत से वर्णन करें।।२६।।

ब्राह्मण ने कहा

हे वसुधाधिप! सज्जनों की सङ्गति ही इस विषय में प्रधान कारण है। ईश्वर की मूर्ति का सदा ध्यान करना कर्तव्य है और उन्हीं के नाम का कीर्तन करना चाहिए।।२७।।

राजा ने कहा

द्विजश्रेष्ठ! मैं भी आपके साथ चलूँगा; क्योंकि साधुओं में उत्तम साधु आपके समान तीनों लोकों में अन्य कोई नहीं है।।२८।।

ब्राह्मण ने कहा

हे महाभाग! आप राजा हैं, अत एव आप भिक्षुकों के लिए कल्पवृक्ष के समान हैं। फिर भी जहाँ कन्द, पत्ता और फलों का भोजन मिलता है, ऐसे वन में आप कैसे रह सकेंगे?।।२९।।

इसलिए आप धर्मपूर्वक राज्य का पालन करें तथा औरस पुत्र के समान प्रजा का पालन-पोषण करें, इसके बाद सर्वज्ञ जगदीश्वर, महादेव शिव में अपनी चित्तवृत्ति को लगायें।।३०।।

सर्वकर्मफलत्यागी ब्राह्मणानां च पूजकः।
भव राजन् स्वयं देवं सुतरां यास्यसि प्रभुम्॥३१॥

राजोवाच

भगवन् द्विजशार्दूल बुद्धिरस्मादृशां मुने।
मूकाल्पज्ञानबोधेन शुद्धा नैवोपजायते॥३२॥
तद्वदस्व महाभाग सम्यग्जानासि तद्यथा।
दीनस्य सन्तः सुधियो भवन्त्येवोपकारिणः॥३३॥

ब्राह्मण उवाच

क्रियाकालो मम प्राप्तो राजन् भो विश्वदत्तक।
इदानीं तीर्थके पुण्ये मायाक्षेत्रे व्रजाम्यहम्॥३४॥
गच्छ त्वमपि तत्रैव बोधार्थं परमात्मनः।
ऋचीको मुनिवर्य्यस्तु वर्त्तते बिल्वपर्वते॥३५॥

हे राजन्! आप सम्पूर्ण कर्मों की फल-प्राप्ति की वासना का त्याग कर दें, ब्राह्मणों के पूजक बनें, तदनन्तर ऐसा करने से स्वयं ही आप प्रभु, महादेव को अनायास ही प्राप्त कर लेंगे।।३१।।

राजा ने कहा

ऐश्वर्यशाली, द्विजश्रेष्ठ हे मुनीश्वर! हमारे जैसे अज्ञानियों की बुद्धि अथवा मूकता स्वल्पज्ञान के बोध से शुद्ध नहीं हो सकती है।।३२।।

हे महाभाग! इसलिए आप कोई उत्तम उपाय बतलाइये; क्योंकि आप सब कुछ भली-भाँति जानते हैं, सुधी सन्त महात्माजन दीनों का उपकार ही करते हैं।।३३।।

ब्राह्मण ने कहा

हे विश्वदत्त महाराज! धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन करने का मेरा समय हो गया है। इसलिए सम्प्रति मैं पुण्य तीर्थ मायाक्षेत्र में जा रहा हूँ।।३४।।

हे राजन्! यदि तुम परमात्मा के ज्ञान की प्राप्ति करना चाहते हो, तो तुम भी वहाँ ही चलो। वहाँ बिल्वपर्वत के ऊपर मुनियों में श्रेष्ठ ऋचीक नामक ऋषि निवास करते हैं।।३५।।

शिवस्य वामभागे तु गुहा गुप्ततमा नृप।
तस्यां योगिवरो नित्यं वसति द्विजसत्तमः॥३६॥
स वै ब्रह्मविबोधार्थं वदिष्यति न संशयः।
तत्र गत्वा प्रयत्नेन तस्य सेवापरो भव॥३७॥

स्कन्द उवाच

इति श्रुत्वा महावाक्यं ब्राह्मणस्य महात्मनः।
ययौ तेनैव विप्रेण पादचारेण नारद॥३८॥
तत्र गत्वा बहुतरं स्नात्वा पापविवर्ज्जितः।
जातो नराधिपः शुद्धो ब्राह्मणेन च सङ्गतः॥३९॥
ययौ तेनैव मार्गेण मुनिना दर्शितेन च।
तत्र दृष्ट्वा समाधिस्थमृचीकं मुनिसत्तमम्॥४०॥
ननाम चरणौ तस्य पुनः पुनरुदारधीः।
प्राप्तवान् योगशास्त्रं च ऋचीकान्मुनिसत्तमात्॥४१॥

हे नृप! भगवान् शिव के वामभाग में एक अतिशय गुप्त गुफा विद्यमान है, उसी में वे द्विजसत्तम, श्रेष्ठ योगी नित्य निवास करते हैं।।३६।।

वे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए निःसन्देह आपको उपदेश करेंगे। इसलिए आप वहाँ जायें और उनकी सेवा में तत्पर हो जायें।।३७।।

स्कन्द ने कहा

हे नारद! महात्मा ब्राह्मण के इस प्रकार के वाक्य का श्रवण कर वह राजा उस श्रेष्ठ ब्राह्मण के साथ पैदल ही वहाँ के लिए प्रस्थान कर दिया।।३८।।

वहाँ जाकर अनेक प्रकार से स्नान करने के कारण निष्पाप हो गया, तदनन्तर शुद्ध होकर उसने ब्राह्मण से भी समागम किया।।३९।।

राजा ने मुनि के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से जाकर समाधि में अधिष्ठित ऋचीक मुनि का दर्शन किया।।४०।।

उदार बुद्धि वाले राजा ने बार-बार महर्षि ऋचीक के चरणों में प्रणाम किया और मुनिश्रेष्ठ ऋचीक से योगशास्त्र को प्राप्त किया।।४१।।

योगी बभूव नृपतिस्तीर्थाटनपरोऽभवत्।
सर्वतीर्थेषु च स्नात्वा नित्यं स मनुजाधिपः॥४२॥
वर्षे वर्षे स राजर्षिर्मुनिदर्शनलालसः।
स्तूयमानो मुनिगणैरायाति नियतेन्द्रियः॥४३॥
ज्योतिर्मयस्तदा देहो दृश्यते पुण्यकारकैः।
शब्दो मुनीनां स्तुवतां साधु साध्विति वादिनाम्॥४४॥
श्रूयते च महाभाग महापुण्यसुकर्तृभिः॥४५॥
तत्रैव गङ्गानिकटे पादुके ब्रह्मणः शुभे।
ते दृष्ट्वापि सकृन्मर्त्यो मृतो ब्रह्मपुरे वसेत्॥४६॥
गङ्गायां स्नानमात्रेण बिल्वतीर्थे नरोत्तमः।
कोटिजन्मकृतैः पापैस्तत्क्षणात्परिमुच्यते॥४७॥
बिल्वेश्वरं महादेवं बिल्वपत्रैस्तु योऽर्चयेत्।
यथासंख्यैर्बिल्वपत्रैः स वसेत्कल्पकोटिभिः॥४८॥

इसके बाद वह राजा भी योगी होकर तीर्थों के पर्यटन में तत्पर हो गया। इस प्रकार वह मनुष्येश्वर नित्य ही तीर्थों में जाकर स्नान करता था।।४२।।

उसी समय से वह राजा प्रतिवर्ष महर्षि के दर्शनों की अभिलाषा से वहाँ आने लगा। इस प्रकार उस जितेन्द्रिय राजा की स्तुति महर्षिगण करते हैं।।४३।।

तब पुण्यात्मा महात्मा जनों को उसका ज्योतिःस्वरूप देह दिखाई पड़ता है और धन्य-धन्य कहकर स्तुति करते हुए मुनीश्वरों का शब्द कर्णगोचर होता है।।४४।।

हे महाभाग! जिन्होंने उत्तमोत्तम पुण्य कर्म का आचरण किया है, उन्हीं को वह शब्द सुनाई पड़ता है।।४५।।

वहीं पर गङ्गा के निकट ब्रह्मा जी की शुभ पादुका विद्यमान है। उस पादुका के एक बार भी दर्शन करने से मनुष्य मृत्यु के अनन्तर ब्रह्मलोक में निवास करता है।।४६।।

बिल्वतीर्थ में जो नरश्रेष्ठ गङ्गा में स्नान करता है, वह करोड़ों जन्म के पातकों से तत्काल ही मुक्ति का लाभ प्राप्त कर लेता है।।४७।।

जो मनुष्य बिल्वपत्रों के द्वारा बिल्वेश्वर महादेव की अर्चना करता है, वह करोड़ों कल्पपर्यन्त शिवलोक में निवास करता है।।४८।।

त एव धन्या मनुजाः शिवरात्रे प्रयान्ति ये।
बिल्वेश्वरं महादेवं बिल्वपत्रैरनेककैः॥४९॥
तस्माच्छरद्वये विप्र पूर्वभागे हि पर्वते।
जलं पुण्यतमं ख्यातं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥५०॥
विंशतौ च धनुर्माने ह्यधस्तान्मुनिवन्दित।
आकरो हि सुवर्णस्य प्राप्यं वै पुण्यकर्मणाम्॥५१॥
जलेऽस्मिन् मण्डलं यावत्स्नानं कुर्य्याज्जितेन्द्रियः।
फलमूलजलाहारस्तदा पश्यति शङ्खिनीम्॥५२॥

भ्रमरीदेव्या माहात्म्य-वर्णनम्

ततः क्रोशार्द्धके प्राच्यां भ्रमरी नाम विश्रुता।
समायाति सरिच्छ्रेष्ठा प्राणिनां स्वर्गदायिनी॥५३॥
भ्रमरीसङ्गमो यत्र तत्तीर्थं भ्रामरं मतम्।
तत्रैव भ्रमरी देवी जले तिष्ठति सर्वदा॥५४॥

जो मनुष्य अनेक प्रकार के बिल्वपत्र लेकर शिवरात्रि में बिल्वेश्वर महादेव की यात्रा करते हैं, वे धन्य हैं।।४९।।

हे विप्र! उस स्थान से दो बाण की दूरी पर उस पर्वत पर ही पूर्व की ओर भोग और मोक्ष को देने वाला पवित्रतम जल विद्यमान है।।५०।।

सुवर्णप्राप्ति का वर्णन

हे मुनिपूजित! उससे नीचे बीस धनुष की दूरी पर सुवर्ण का आकर है, केवल पुण्य कर्म करने वाले मनुष्यों को ही उसकी प्राप्ति होती है।।५१।।

जहाँ तक यह मण्डल है, इसमें जब मनुष्य जितेन्द्रिय रहकर स्नान करता है और फल, मूल तथा जल का आहार करते हुए निवास करता है, तब उस व्यक्ति को उस निधि का दर्शन होता है।।५२।।

भ्रमरी देवी का माहात्म्य-वर्णन

वहाँ से पूर्व की ओर आधे कोश की दूरी पर भ्रमरी नाम की एक श्रेष्ठ नदी है, यह नदी प्राणियों को स्वर्ग प्रदान करने वाली है।।५३।।

जिस स्थान पर भ्रमरी का सङ्गम शङ्खिनी से होता है, उस पवित्र स्थल को भ्रामर तीर्थ कहते हैं, वहाँ के जल में सर्वदा भ्रमरी नाम की देवी विराजमान रहती हैं।।५४।।

इति वै बिल्वतीर्थस्य माहात्म्यं गदितं शुभम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापैश्च मुच्यते पठनात्तथा॥५५॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये बिल्वतीर्थमाहात्म्यं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।।१०७।।

इस प्रकार हमने बिल्वतीर्थ का शुभ माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया है। इसका श्रवण तथा पाठ करने से मनुष्य सब पापों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है।।५५।।

।। इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्र-माहात्म्य-वर्णन के प्रसङ्ग में बिल्वतीर्थ-माहात्म्य नामक एक सौ सात अध्याय पूर्ण हुआ।।१०७।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-१८६+५५=२४१]



अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

त्रिमूर्तीश्वरमाहात्म्यम्

स्कन्द उवाच

श्रृणु नारद भक्त्या वै त्रिमूर्तिं तीर्थनायकम्।
बिल्वतीर्थात् त्रिगव्यूतौ वर्त्तते मोक्षदं परम्।।१।।
जलं रक्ततमं ह्यत्र समायाति मुनीश्वर।
त्रिमूर्तीश्वरो महादेवः सर्वेषां मुक्तिदायकः।।२।।
यस्मिंस्तीर्थे सकृत्स्नातो व्रजेच्छिवमनुत्तमम्।
तत उत्तरदेशे हि नदी परमपावनी।।३।।

सुनन्दायाः माहात्म्यम्

सुनन्देति समाख्याता सर्वदारिद्र्यनाशिनी।
तन्मूले भगवान् देवः सुनन्देश्वरसंज्ञकः।।४।।

त्रिमूर्तीश्वर का माहात्म्य

स्कन्द ने कहा

हे नारद! सम्प्रति भक्तिभावपूर्वक तीर्थों के नायक त्रिमूर्ति के माहात्म्य को सुनो। बिल्वतीर्थ से छः कोस की दूरी पर परमपद मोक्ष को देने वाला वह तीर्थ विद्यमान है।।१।।

हे मुनीश्वर! यहाँ अत्यन्त ही लाल रङ्ग का जल आता है, यहाँ सबको मुक्ति देने वाले त्रिमूर्तीश्वर नामक महादेव विराजमान हैं।।२।।

इस तीर्थ में एक बार भी स्नान करने से मनुष्य सर्वोत्तम शिवलोक में जाकर निवास करता है। इस तीर्थ के उत्तरी भाग में परम पवित्र एक नदी है।।३।।

सुनन्दा का माहात्म्य

यह सुनन्दा नाम की परम पवित्र नदी है, जो समस्त दारिद्र्य का विनाश करने वाली है, उसके मूल में सुनन्देश्वर नाम के भगवान् महादेव विद्यमान हैं।।४।।

गङ्गायां तत्र देशे हि यत्र नन्दीशिला भवेत्।
पीतवर्णा तत्र देशे शिवतीर्थं सुपुण्यदम्॥५॥
शिवतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
नन्दीश्वरो महादेवस्तत्र सर्वगणावृतः॥६॥
तं दृष्ट्वा साधकश्रेष्ठो जप्त्वा मन्त्रं शिवात्मकम्।
शिवलोकमवाप्नोति सहस्रं युगसंख्यया॥७॥
ततोऽपि क्रोशमात्रे हि वीरभद्रतपःस्थलम्।
लक्षवर्षसहस्राणि तताप परमं तपः॥८॥
गणेश्वरं महादेवो वीरभद्राय सन्ददौ।
शिवकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥९॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि नारद।
स्नातानि तेन भगवान् पूजितश्च तथा भवेत्॥१०॥

उसी स्थान में गङ्गा में नन्दीशिला भी है। उसका वर्ण पीला है, उसी प्रदेश में पुण्यदायक शिवतीर्थ है।।५।।

जो मनुष्य शिवतीर्थ में स्नान करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। अपने सब गणों से आवृत्त होकर नन्दीश्वर नाम के महादेव वहाँ विराजमान रहते हैं। जो साधक उनका दर्शन कर शिवात्मक मन्त्र का जप करता है, उसे सहस्रों युगपर्यन्त शिवलोक में निवास करने का समय उपलब्ध होता है।।६-७।।

उसके एक कोस की दूरी पर वीरभद्र के तप का स्थान है। उस स्थान में वीरभद्र ने एक लाख वर्ष तक उग्र तपस्या की थी।।८।।

तब भगवान् महादेव ने वीरभद्र को अपने सब गणों का अधीश्वर बनाया था। वहाँ शिवकुण्ड में स्नान कर मनुष्य सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।।९।।

हे नारद! सुनो। पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं, उन सभी में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाात है एवं भगवान् शङ्कर की पूजा का भी फल प्राप्त कर लेता है।।१०।।

वीरभद्रेश्वरो देवो लिङ्गरूपी सदाशिवः।
तत्र बिल्ववने विप्र दृष्टो मुक्तिप्रदो भवेत्॥११॥
यस्त्रिरात्रं[१] महालिङ्गं पूजयेन्निर्भयो मुने।
स सर्वसिद्धिमाप्नोति सत्यं तच्छिवभाषितम्॥१२॥
एकतः सर्वदानानि सर्वतीर्थाटनं पुनः।
एकतो दर्शनं तत्र वीरभद्रेश्वरस्य हि॥१३॥
वीरभद्रेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा च शिवतीर्थके।
हयमेधफलं विप्र प्राप्नोति परमं पदम्॥१४॥
निराहारः सप्तरात्रं यो नरोऽत्र शिवाश्रितः।
सर्वान् कामानवाप्नोति सत्यमेतन्न संशयः॥१५॥

उस स्थान में भगवान् सदाशिव लिङ्ग रूप में वीरभद्रेश्वर नाम से विराजमान रहते हैं। हे विप्र! बिल्ववन में उनके दर्शन करने से मुक्ति का लाभ होता है।।११।।

हे मुने! जो मनुष्य निर्भय होकर वहाँ तीन रात्रिपर्यन्त महालिङ्ग का पूजन करता है, उसे सभी सिद्धियों की प्राप्ति होती है, यह भगवान् शिव का सत्य वचन है।।१२।।

सम्पूर्ण दान और अखिल तीर्थों की यात्रा तो एक ओर है और वीरभद्रेश्वर महादेव के दर्शन एक ओर हैं, अर्थात् सम्पूर्ण दान करने और सब तीर्थों की यात्रा करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, वीरभद्रेश्वर महादेव के दर्शन करने से भी वही फल प्राप्त होता है।।१३।।

वीरभद्रेश्वर महादेव के दर्शन करने और शिवतीर्थ में स्नान करने से अश्वमेध-यज्ञ का फल और परमपद मोक्ष की प्राप्ति होती है।।१४।।

जो मनुष्य निराहार रहकर सात रात्रि तक भगवान् महादेव की आराधना में तत्पर रहता है, यह पूर्ण सत्य है कि उसे समस्त कामनाओं की प्राप्ति हो जाती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१५।।

---

१. यत्रिरात्रमिति ख.।

शिवस्य दक्षिणे भागे धारा क्रोशार्द्धखण्डके।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या सूर्यलोकमवाप्नुयात्॥१६॥
ततो वै पश्चिमे भागे जलं पीततमं शुभम्।
सकृदाचम्य विधिवत्सौरमन्त्राभिमन्त्रितम्॥१७॥
पिबेच्छुद्धमना विप्र सूर्यलोकमवाप्नुयात्।
ततो वामप्रदेशे च शिवलिङ्गमनुत्तमम्॥१८॥
दृष्ट्वा संस्नाप्य गाङ्गेन तोयेन शिवमाप्नुयात्।
तत्रैका सलिलानाम्नी सुरकन्या सुरार्चका॥१९॥
मध्याह्ने नित्यमायाति पूर्णचन्द्रनिभानना।
भवित्री सा परे कल्पे शची देवपतिप्रिया॥२०॥
पितृभ्यो यवपिष्टस्य पिण्डान् दद्याद्विचक्षणः।
तारितास्तेन पितरो दश पूर्वा दशापराः॥२१॥

उस वीरभद्रेश्वर महादेव के दक्षिण भाग में आधे कोस की दूरी पर एक धारा है, उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य को सूर्यलोक की प्राप्ति होती है।।१६।।

उसके पश्चिम भाग में पीतवर्ण का शुभ जल विद्यमान है, जो मनुष्य सूर्य के मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उस जल से एक बार भी आचमन करता है, तो उसका मन जलपान करने के कारण शुद्ध हो जाता है, अत एव उसे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। उसके वाम भाग में सर्वोत्तम शिवलिङ्ग है।।१७-१८।।

उसके दर्शन करके जो मनुष्य गङ्गाजल से उस शिवलिङ्ग को स्नान कराता है, उसे कल्याण की प्राप्ति होती है। उसी स्थान में सलिला नाम की एक देवकन्या है, जो देवताओं की पूजा करती रहती है।।१९।।

चन्द्रमा के समान समुज्ज्वल मुख वाली वह कन्या नित्य मध्याह्न समय वहाँ देवपूजन करने के लिए आती है। अगले कल्प में वह सुरराज इन्द्र की प्रियपत्नी शची होने वाली है।।२०।।

जो बुद्धिमान् मनुष्य यव के चूर्ण का पिण्ड पितरों के निमित्त प्रदान करता है, उसने दश पूर्व के और दश बाद के अपने पितरों का उद्धार कर दिया, ऐसा समझना चाहिये।।२१।।

मुण्डमालेश्वरीदेव्या वर्णनम्

ततोऽतिनिकटे वामे निवर्तनमिते स्थले।
मुण्डमालेश्वरी देवी प्रमथोत्करशोभिनी॥२२॥
यस्या दर्शनमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
नानावाद्यमयाः शब्दाः श्रूयन्ते देवताहताः॥२३॥

पीठेश्वरीदेव्या वर्णनम्

तत्र पीठेश्वरी देवी सर्वभूतमनोहरा।
तस्मिन् स्थाने तु यो मर्त्यो धीरात्मा दृढनिश्चयः॥२४॥
न कार्या भीस्ततो विप्र य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः।
ददाति दर्शनं तस्य मुण्डमालेश्वरी शिवा॥२५॥
नानारूपधरास्तत्र दृश्यन्ते प्रमथस्त्रियः।
पुरश्चर्यां च विधिवत् सप्तरात्रं जितेन्द्रियः॥२६॥

मुण्डमालेश्वरीदेवी का वर्णन

उसी के निकट बीस बाँस प्रमाण की दूरी पर प्रमथगणों से सुशोभित मुण्डमालेश्वरी नाम की देवी विराजमान हैं।।२२।।

उस देवी के केवल दर्शन करने से ही मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियों का अधीश्वर हो जाता है। उस स्थान में देवताओं द्वारा बजाये गये विविध वाद्यों के शब्द सुनायी पड़ते हैं।।२३।।

पीठेश्वरी देवी का वर्णन

वहीं पर पीठेश्वरी नाम की देवी हैं, वे सभी प्राणियों के मन को मोहित करती हैं। हे विप्र! उस स्थान में धीरात्मा तथा दृढ़ विश्वास वाला मनुष्य भय नहीं करता है।।२४।।

अपना कल्याण चाहने वाले धैर्यशाली और दृढ़ निश्चय वाले मनुष्य को इस स्थान पर भय नहीं करना चाहिए। वहाँ मुण्डमालेश्वरी देवी निर्भय मनुष्य को दर्शन देती हैं।।२५।।

वहाँ अनेक प्रकार के रूप धारण करने वाली प्रमथगण की स्त्रियों का भी दर्शन होता है। जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को वश में करके सात रात्रिपर्यन्त

असाध्यमपि सप्ताहात् साधयेत्साधकोत्तमः।
तस्य दक्षिणतो विप्र शिला पीततमा किल॥२७॥
आश्चर्यं दृश्यते तत्र शयनात् पूर्वजन्म यत्।
यस्मिन् कुले च योनौ च जातं पूर्वं तपोनिधे॥२८॥
जानाति शयनात्तत्र यदि जीवति मानवः।
इति गुह्यतमान्येव कथितानि तवाधुना॥२९॥
पित्रोः श्रुतानि मे यानि वदतोर्वै परस्परम्।
गोपनीयानि यत्नेन कलौ बुद्धिविवर्जितान्॥३०॥

॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायातीर्थमाहात्म्यं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

वहाँ पुरश्चरण करता है, वह उत्तम साधक असाध्य कार्यों को भी सिद्ध कर लेता है।

पतितमालिका शिला का माहात्म्य

हे विप्र! उसके दक्षिण भाग में पतितमालिका नाम की शिला है।।२६-२७।।

वहाँ शयन करने से मनुष्य को अपने पूर्वजन्म का आश्चर्यजनक अवलोकन होता है। हे तपोनिधे! जिस कुल या योनि में पूर्वजन्म में प्रादुर्भाव हुआ था, उन सबका वृत्तान्त मनुष्य जान सकता है, यदि वहाँ शयन करते जीवित रहे। हमने अपने माता-पिता के परस्पर सम्भाषण के समय जो कुछ श्रवण किया था, वह सभी गुप्त रहस्य मैंने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है। कलियुग में बुद्धिविहीन मनुष्यों के प्रति इसको प्रकट करने से अवश्य ही गुप्त रखना चाहिए।।२८-३०।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायातीर्थ-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ आठ अध्याय पूर्ण हुआ।।१०८।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत- २४१+३०=२७१]



अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

हरिद्वारे स्नानमाहात्म्यम्

नारद उवाच

हरिद्वारे महाभाग कानि तीर्थानि तानि मे।
कथयस्व प्रसादेन मुक्तिदानि विना व्रतैः॥१॥

स्कन्द उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि लोकानां मुक्तिकारणम्।
सकृत्स्नातं तु यैर्मर्त्यैर्गङ्गाद्वारे शुभावहे॥२॥
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।
गङ्गाद्वारसमं तीर्थं न कैलाससमो गिरिः॥३॥
वासुदेवसमो देवो न गङ्गासदृशं परम्।
न गोदानसमं दानं त्रिषु लोकेषु विद्यते॥४॥

हरिद्वार में स्नान का माहात्म्य

नारद ने कहा

हे महाभाग! हरिद्वार में ऐसे तीर्थ कौन हैं, जो व्रतों का आचरण न करने पर भी मोक्ष प्रदान करते हैं, उनका वर्णन कृपा करके करें।।१।।

स्कन्द ने कहा

हे नारद! सुनो, अब मैं संसार को मुक्ति देने वाले तीर्थों का वर्णन करता हूँ। हरिद्वार कल्याणकारी तीर्थ है। यहाँ एक बार भी जिन मनुष्यों ने स्नान किया है, सैकड़ों-करोड़ों कल्प के बाद भी पुनः उनका संसार में पुनरावर्त्तन नहीं होता है, अर्थात् हरिद्वार में एक बार भी स्नान करने से मोक्ष हो जाता है। हरिद्वार के समान कोई अन्य तीर्थ नहीं हैं तथा कैलास के समान कोई पर्वत नहीं है।।२-३।।

वासुदेव के सदृश देवता, गङ्गा के तुल्य नदी और गोदान के समान तीनों लोकों में अन्य कोई दान भी नहीं है।।४।।

शम्बूकशूद्राख्यानम्

श्रृणु दिव्यां कथां पुण्यां गङ्गाद्वाराश्रितां शुभाम्।
पुरा त्रेतायुगे शूद्रो बभूव विजये पुरे॥५॥
नाम्ना शम्बूक इति वै ख्यातो विप्राश्रमे मुने।
सेवार्थं सार्थलग्नो वै एकाकी शुभतत्परः॥६॥
गङ्गाद्वारे महाक्षेत्रे देवर्षिगणभूषिते।
शकटानद्धवृषभनियोगे कुशलो मुने॥७॥
आययौ वेतनी तत्र शम्बूको नाम शूद्रकः।
दृष्टास्तेनात्र मुनयो धनिनश्च नृपास्तथा॥८॥
कौतुकार्थं पर्य्यटितं सर्वत्र मुनिवन्दित।
पुण्यक्षेत्रे क्षणात्तस्य पापं सर्वं क्षयं गतम्॥९॥
निष्कल्मषोऽभवच्छूद्रो ज्ञानवान् समजायत।
अधिकारविहीनस्य शूद्रस्यापि महामते॥१०॥
रामभद्रस्य भगवदवतारस्य सन्निधौ।
बभूव मरणं तस्य मुक्तिं चापानिवर्त्तिनीम्॥११॥

शम्बूक नामक शूद्र का आख्यान

अब हरिद्वार सम्बन्धिनी परम पवित्र शुभ दिव्य कथा का श्रवण करो, प्राचीनकाल में त्रेतायुग में विजयपुर में एक शूद्रजातीय व्यक्ति था।।५।।

उसका नाम शम्बूक था। वह एकाकी सेवा करने के लिए ब्राह्मण के आश्रम में लगा रहता था। शुभकार्य में तत्पर वह सेवा करने के लिये तीर्थयात्रियों में लगा रहता था।।६।।

वह उन्हीं के साथ-साथ देवर्षिगण से विभूषित हरिद्वार महाक्षेत्र में आया, वह गाड़ी में बैल जोतने (अर्थात् गाड़ीवानी के कार्य) में अत्यन्त निपुण था।।७।।

अत एव जीविका की अभिलाषा से वह शूद्र शम्बूक वहाँ आया था। उसने वहाँ अनेक मुनियों, धनाढ्यों और राजाओं को देखा।।८।।

हे मुनिराज! वह कौतुक से युक्त होकर सभी जगह विचरण करने लगा। उस पुण्य-क्षेत्र में विचरण करने से क्षणमात्र में ही उसके सब पाप विनष्ट हो गये। वह शूद्र निष्पाप हो जाने के कारण ज्ञानसम्पन्न हो गया। हे महामते नारद! यद्यपि वह शूद्र अधिकारहीन था, तथापि भगवान् रामभद्र के अवतार के समक्ष उसकी मृत्यु हुई और संसार में पुनः परावर्तित न होने वाली मुक्ति की प्राप्ति हुई।।९-११।।

दर्शनाद्यस्य पुण्यस्य क्षेत्रस्य परमां गतिम्।
शूद्रोऽपि प्रययौ तत्र किमन्ये ब्राह्मणादयः॥१२॥
दृष्ट्वा मायापुरीं पुण्यां स्नात्वा च ब्रह्ममन्दिरे।
वाराणसीं लभेदन्ते सत्यं सत्यं हि नारद॥१३॥
त्रिषु स्थानेषु ये मर्त्या निवसन्ति महामुने।
गङ्गाद्वारे तथा काश्यां गङ्गासागरसङ्गमे॥१४॥
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।
धन्यानां पुरुषाणां हि गङ्गाद्वारस्य दर्शनम्॥१५॥
विशेषतस्तु मेषार्कसङ्क्रमेऽतीव पुण्यदे।
तत्रापि कुम्भराशिस्थे वाक्पतौ सुरवन्दिते॥१६॥
अयने विषुवे चैव सङ्क्रान्तौ चन्द्रसूर्य्ययोः।
ग्रहणे वा व्यतीपाते पूर्णिमायां महामुने॥१७॥
सोमवारान्वितायां वा यस्यां कस्यामथापि वा।
अमायां च तथा माघे वैशाखे कार्त्तिकेऽपि वा॥१८॥

जिस पुण्यक्षेत्र के दर्शन करने से शूद्र को भी परमगति का लाभ हुआ था, तो फिर अन्य ब्राह्मण आदि के लिए तो कहना ही क्या है?॥१२॥

हे नारद! पवित्र मायापुरी का दर्शन और ब्रह्ममन्दिर में स्नान करके अन्त समय में काशीधाम की प्राप्ति करनी चाहिये, यह बात निश्चित ही सत्य है, सत्य है॥१३॥

हे महामुनि नारद! हरिद्वार, काशी और श्रेष्ठ गङ्गासागर के सङ्गम इन तीन स्थानों में जो व्यक्ति निवास करते हैं, सैकड़ों-करोड़ कल्प में भी पुनः उनका संसार में पुनरावर्तन नहीं होता है। भाग्यशाली पुरुषों को ही हरिद्वार तीर्थ का दर्शन होता है॥१४-१५॥

अतिशय पुण्यदायक मेष की सङ्क्रान्ति में तो महान् भाग्यशाली को ही उसके दर्शन मिलते हैं। हे मुनीश्वर! मेष की सङ्क्रान्ति में यदि देवताओं से पूजित बृहस्पति कुम्भ राशि पर हों, मकर और कर्क की सङ्क्रान्ति में, चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण में, व्यतिपात और पूर्णिमा में, सोमवती अमावास्या में अथवा अन्य अमावास्या में, माघ, वैशाख और कार्तिक में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हरिद्वार

तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां मुनिसत्तम।
भजन्ते सन्निधिं तत्र स्नातः सर्वत्र जायते॥१९॥
क्षेत्राणां पञ्चकं पृथ्व्यां स्थास्यति प्रवरे कलौ।
गङ्गाद्वारे च केदारं काशी गङ्गागमस्तथा॥२०॥
गङ्गा च सङ्गता यत्र सागरेण महामते।
गङ्गापि स्थास्यतेऽत्रैव सत्यमेतच्छिवेरितम्॥२१॥
अत्र स्नातोऽधिकारी[1] स्याद् गन्तुं केदारसन्निधिम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नायादत्र ममेप्सया॥२२॥

कनखलक्षेत्रस्य माहात्म्यम्

खलः को नाम मुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात्।
अतः कनखलं तीर्थं नाम चक्रुर्मुनीश्वराः[2]॥२३॥

में निवास करते हैं, अत एव उक्त कालों में हरिद्वार में स्नान करने से सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है।।१६-१९।।

घोर कलियुग में पाँच ही उत्तम क्षेत्र पृथिवी के ऊपर उपस्थित रहेंगे, गङ्गाद्वार (हरिद्वार), केदारक्षेत्र, काशी, गङ्गोत्पत्ति स्थान और पाँचवाँ समुद्र के साथ गङ्गा का सङ्गम स्थल है। भगवान् शिव का यह कथन सत्य है कि गङ्गा भी यहीं उपस्थित रहेंगी।।२०-२१।।

यहाँ स्नान करने से ही मनुष्य केदारक्षेत्र में जाने का अधिकारी हो सकता है। इसलिए मुझको प्राप्त करने की इच्छा वाले मनुष्य को प्रयत्नपूर्वक यहाँ स्नान करना चाहिए।।२२।।

कनखल क्षेत्र का माहात्म्य

यहाँ स्नान करने से एक खल को मुक्ति की प्राप्ति हुई थी, इसलिए मुनीश्वरों ने इस क्षेत्र का नामकरण कनखल कर दिया।।२३।।

---

१. स्नानाधिकारीति ग.।
२. चक्रर्मुनीश्वरा इति ग.।

नारद उवाच

कथमेतत्समुत्पन्नं कः खलो मुक्तिमाप सः।
एतत्सर्वं समासेन महासेन वदस्व मे॥२४॥

स्कन्द उवाच

शृणु विप्र पुरा वृत्तां कथां पापप्रणाशिनीम्।
पुरार्गलपुरे विप्रो धर्मकेतुर्बभूव ह॥२५॥
धर्मात्मा सत्यसङ्कल्पो विद्वान् दीनजनाश्रयः।
नित्यं दीनाँस्तथा मूकान् वृद्धानाश्रयवर्ज्जितान्॥२६॥
भोजयित्वा स्वयं भुङ्क्ते दारैः पुत्रैस्तथा वृतः।
एकदा जडमूर्तिर्वै ब्राह्मणो वाग्विवर्जितः॥२७॥
पशुबुद्धिर्ज्ञानशून्यो दृषदात्मा यथापरः।
क्षुत्पिपासापरिज्ञानमात्रं वेत्ति निजापरम्॥२८॥
आययौ क्षुधयाविष्टो धर्मकेतोर्गृहे मुने।
जगाद संज्ञया हस्ते याचनां भोजनाय वै॥२९॥

नारद ने कहा

हे महासेन स्कन्द जी! यह तीर्थ कैसे उत्पन्न हुआ और यह खल कौन था, किस विधि से इसे मोक्ष मिला? इसे संक्षेप में वर्णन करें।।२४।।

स्कन्द ने कहा

हे विप्र! पापों को नष्ट करने वाली प्राचीनकाल में घटित कथा को श्रवण करो। प्राचीनकाल में अर्गलपुर में धर्मकेतु नाम का एक ब्राह्मण था।।२५।।

वह ब्राह्मण धर्मात्मा, सत्य सङ्कल्प करने वाला, विद्वान् और दीन जनों का पालन करने वाला था। वह नित्य अनेक गरीब, मूक (गूँगे) और निराश्रय वृद्धजनों को भोजन कराने के बाद ही स्त्री-पुत्रों सहित स्वयं भोजन करता था। एक समय जिसकी बुद्धि ज्ञानशून्य होने के कारण पशुओं के समान हो रही थी, ऐसा वह जडमूर्ति गूँगा ब्राह्मण था। वह केवल अपनी क्षुधा और पिपासा के विकार को ही जानता था, उसे और कुछ ज्ञान नहीं था।।२६-२८।।

हे मुने! वह क्षुधा से पीड़ित होकर किसी समय धर्मकेतु के घर आया। उसने केवल हाथ से सङ्केत कर भोजन की याचना की।।२९।।

दत्तं च तेन विप्रेण भोजनं भोजनोत्तमम्।
अनन्यगतये तस्मै ददावेवं महामते॥३०॥
भोजनाच्छादने चैव धर्मकेतुर्महायशाः।
कदाचिद्दैवयोगेन मायापुर्यां समाययौ॥३१॥
सोऽपि मूकोऽशनापेक्षो ज्ञानशून्यो महामुने।
नैतस्य स्वपरं ज्ञानं भक्ष्याऽभक्ष्ये न निर्णयः॥३२॥
अगम्यागमने नैव नैव पाने तथैव च।
मार्गे सार्थात् परिभ्रष्टो यवनैः सङ्गतो ह्यभूत्॥३३॥
तत्रापि तैस्तदा भुक्तं भक्षं च भ्रष्टबुद्धिना।
एवं क्रमेण मूकेन यौवनोन्मादशालिना॥३४॥
सङ्गमश्च कृतस्तेन नीचया द्रुहिणात्मज।
नीचसङ्गतिको विप्रो मत्या ग्रावाग्रजन्मनः॥३५॥
ययौ कनखले तीर्थे मुनिवृन्दसमाश्रिते।
विषुवे सङ्क्रमे पुण्ये घर्म्मार्त्तो मज्जनाय वै॥३६॥

तत्पश्चात् उस ब्राह्मण ने भी उसे परमोत्तम भोजन प्रदान किया। हे महामते! उस मूर्ख ब्राह्मण की अन्य कोई गति नहीं थी, इसलिए महायशस्वी धर्मकेतु ने उसे भोजन और वस्त्र दोनों ही प्रदान किये। हे महामुने! किसी समय वह गूँगा ब्राह्मण दैवयोग से हरिद्वार में भोजन-प्राप्ति की इच्छा से चला आया।।३०-३१।।

उस ज्ञानशून्य ब्राह्मण को न तो अपने-पराये का ही कुछ ज्ञान था और न उसे भक्ष्य-अभक्ष्य का ही कुछ निर्णय था, उसे अगम्यागमन तथा पान करने के योग्य या अयोग्य वस्तु का भी कुछ विचार नहीं था। मार्ग में अपने साथियों से बिछुड़ कर वह मूर्ख ब्राह्मण यवनों से मिल गया और उस भ्रष्टबुद्धि ने उन्हीं के साथ भोजन किया। हे ब्रह्मपुत्र नारद! इस प्रकार युवावस्था से उन्मत्त उस गूँगे ब्राह्मण ने क्रमशः किसी नीच स्त्री से सङ्गम किया। इस प्रकार वह मन्दमति ब्राह्मण जो कि बुद्धि से मानों पत्थर का बड़ा भाई था।।३२-३५।।

वह किसी समय ऐसे कनखल तीर्थ में आया, जहाँ मुनियों का समाज उपस्थित हो रहा था। गर्मियों के दिनों में कर्क की सङ्क्रान्ति में वह ब्राह्मण

गतः कनखले तीर्थे स्नातश्च घर्मपीडितः।
सार्थलग्नः पुनर्विप्रोऽर्गलपुर्यां समाययौ॥३७॥
काले स कालमापन्नो ययौ हि परमं पदम्।
यां गतिं योगमापन्ना यां गतिं धर्मशीलिनः॥३८॥
यां काशीमरणाद्यान्ति प्राप तां गतिमुत्तमाम्।
तीर्थस्नानप्रभावेण भक्त्या विरहितोऽपि सः॥३९॥
ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां स्नानमात्रतः।
प्राप्यते परमं स्थानं दुर्लभं योगिनामपि॥४०॥
विप्राय दत्ता गौर्येन दत्ता तेन वसुन्धरा।
श्राद्धं कृतं च यैस्तत्र गयायाः फलभाग्भवेत्॥४१॥
अन्नदानं कृतं येन न दरिद्रो भवेत् क्वचित्।
धन्याः काश्यां मृता मर्त्या धन्याः कनखले तथा॥४२॥

स्नान करने की कामना से कनखल में गया और घाम से पीड़ित होने के कारण उसने उस कनखल में स्नान भी किया। पुनः वह ब्राह्मण साथियों के साथ अर्गलपुरी में चला आया।।३६-३७।।

इस प्रकार समय आने पर उसकी मृत्यु हो गयी और उसे मोक्ष की प्राप्ति हुई। जो गति योगियों को प्राप्त होती है, धार्मिक जन जिस गति को प्राप्त करते हैं।३८।।

काशी में मरने वाले जिस गति को प्राप्त करते हैं, भक्ति से रहित भी इस गूँगे ब्राह्मण ने कनखल तीर्थ में स्नान के प्रभाव से उस उत्तम गति को प्राप्त किया।।३९।।

यद्यपि वह भक्तिभाव से शून्य था, तथापि ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को उस तीर्थ में केवल स्नानमात्र करने से उसे ऐसी उत्तम गति की प्राप्ति हुई, जिसकी प्राप्ति योगियों को भी दुर्लभ है।।४०।।

जिसने कनखल में ब्राह्मण के लिए गाय का दान कर दिया, उसने मानों पृथ्वी का दान कर दिया, अर्थात् उसे भूमिदान का फल मिलता है और जिसने वहाँ श्राद्ध कर दिया है, वह गया की यात्रा का फल प्राप्त कर लेता है।।४१।।

कनखल में अन्नदान करने वाला पुरुष कभी दरिद्री नहीं होता है। हे मुनीश्वर! काशी में मरने वाले और कनखल में स्नान करने वाले पुरुष धन्य

स्नाताश्च मुनिशार्दूल पुनरावृत्तिदुर्लभाः।
धन्यानां मरणं चात्र मायापुर्यां महामुने॥४३॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायापुरीमाहात्म्यं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ।।१०९।।

हैं; क्योंकि पुनः उनका पुनरावर्त्तन नहीं होता। हे महामुने! सौभाग्यशाली पुरुषों का ही मायापुरी हरिद्वार में मरण होता है।।४२-४३।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायापुरी-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ नव अध्याय पूर्ण हुआ।।१०९।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत- २७१+४३=३१४]



दशाधिकशततमोऽध्यायः

तीर्थयात्राविधिः

नारद उवाच

कर्त्तव्यं च कथं श्राद्धं गोदानं चान्नदानकम्।
को विधिः कश्च कालो वै किं पात्रं किं च दैवतम्॥१॥
एतत्सर्वं समासेन कथयस्व शिवात्मज।
येन केन प्रकारेण कर्त्तव्यानि मुमुक्षुभिः॥२॥

स्कन्द उवाच

शृणु नारद तत्सर्वं यत्पृष्टोऽहं त्वयाद्य वै।
पित्रोः कथयतोर्विप्र श्रुतं सान्निध्यगेन हि॥३॥
आदौ तीर्थागमे देवं गणेशं भैरवं तथा।
वेदव्यासं पुराणर्षिं मां चैव प्रतिपूज्य हि॥४॥

तीर्थयात्रा की विधि

नारद ने कहा

हे स्कन्द जी! श्राद्ध और गोदान कैसे करना चाहिए? अन्नदान किस प्रकार किया जाता है? इनके करने का काल, विधि, पात्र और देवता कौन है?।।१।।

हे शिव के पुत्र स्कन्द जी! मोक्ष की इच्छा करने वाले मनुष्यों को किस विधि से इन सबका आचरण करना चाहिए, यह सब संक्षेप रीति से हमारे प्रति वर्णन करें।।२।।

स्कन्द ने कहा

हे नारद! सुनो, जो कुछ तुमने हमसे प्रश्न किया है, उसका उत्तर और परस्पर वार्तालाप करते हुए अपने माता-पिता से जो कुछ मैंने सुना है, वह सब कह रहा हूँ।।३।।

तीर्थयात्रा के प्रारम्भ में ही गणेशदेव, भैरव, वेदव्यास, पुराण के ऋषि सूत जी का तथा हमारा पूजन करना चाहिए।।४।।

गच्छेज्जितेन्द्रियः शान्तो ब्रह्मनिष्ठो दयापरः।
तीर्थप्राप्तिदिने कुर्यान्निराहारं च मज्जनम्॥५॥
ततः प्रातः समुत्थाय कृतनित्यक्रियो मुने।
भैरवाज्ञां गृहीत्वा तु तीर्थस्नानमथाचरेत्॥६॥
स्नानं विप्राज्ञया कुर्याद् दक्षादीन् स्नानकर्म्मणि।
नमस्कृत्य ततो विप्रानावाह्य चात्र देवताः॥७॥
श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नेन श्राद्धदृष्टविधानतः।
आसनं परिकल्प्यादौ पिण्डदानं ततः परम्॥८॥
ततोऽवनेजनं कुर्यात्पुनः पूर्वविकल्पिते।
दक्षिणां च ततो दद्याद् ब्राह्मणेभ्यो यथाधनम्॥९॥
यस्य सन्तोषमायान्ति तीर्थस्थाः भूमिदेवताः।
तस्य सर्वं कृतं साग्रं सफलं स्यान्महामुने॥१०॥

दयालु, शान्तस्वभाव और अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हुए तथा ब्रह्म में अपनी निष्ठा को लगाकर तीर्थयात्रा करनी चाहिए। जिस दिन तीर्थ में पहुँचे, उस दिन स्नान कर निराहार रहे।।५।।

हे नारद मुनि! दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर नित्यक्रिया से निवृत्त होकर भैरव की आज्ञा ग्रहण करके तीर्थ-स्नान करना चाहिए।।६।।

ब्राह्मण की आज्ञा लेकर ही स्नान करना चाहिए, पुनः स्नान-कर्म में दक्ष आदि को नमस्कार कर स्नान करना चाहिए। इसके अनन्तर श्राद्ध-स्थल में ब्राह्मण और देवताओं का आह्वान करना चाहिए।।७।।

तदनन्तर श्राद्ध के लिए निर्दिष्ट विधान के अनुसार श्राद्ध करना चाहिए, श्राद्ध के निमित्त सबसे पहले पितरों को आसन देकर इसके बाद पिण्डदान करना चाहिए।।८।।

तदनन्तर पूर्व से कल्पित अवनेजन जल (कुशा पर जल) देना चाहिए। इसके पश्चात् अपने धन के अनुसार ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करना चाहिए।।९।।

हे महामुनि! जिसके श्राद्ध में भूमि के देवता तीर्थ में रहने वाले ब्राह्मण सन्तुष्ट हो जाते हैं, उसका किया हुआ सभी कार्य सफल हो जाता है।।१०।।

असन्तुष्टा यस्य विप्रास्तीर्थस्थाः श्राद्धकर्म्मणि।
असन्तुष्टास्तत्पितरो ज्ञेया धर्मपरायणैः॥११॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्तोषं जनयेत्सुधीः।
अन्नदानं च तत्कुर्यात्साङ्गतासिद्धिहेतवे॥१२॥

श्राद्धमाहात्म्यम्

एतत्तीर्थे प्रकर्त्तव्यं श्राद्धं श्रद्धासमन्वितैः।
श्राद्धात्सन्ततिमाप्नोति श्राद्धाद्वै परमं यशः॥१३॥
श्राद्धाद्वर्षति पर्ज्जन्यः श्राद्धात्सुखमवाप्नुयात्।
श्राद्धात्स्वर्गमवाप्नोति श्राद्धान्मोक्षं च विन्दति॥१४॥
यो नरः श्राद्धहीनः स्यात्तस्य नो वर्द्धते प्रजा।
मृते नरकमाप्नोति तस्माच्छ्राद्धं न सन्त्यजेत्॥१५॥

जिसके श्राद्धकर्म में तीर्थ में रहने वाले ब्राह्मण असन्तुष्ट रहते हैं, उसके पितर भी असन्तुष्ट ही रह जाते हैं, यह बात धार्मिक व्यक्तियों को जाननी चाहिए।।११।।

इसलिए उत्तम बुद्धिमान् को चाहिए कि वे तीर्थयात्रा में ब्राह्मणों को प्रयत्नपूर्वक सन्तुष्ट करें। साङ्गता की सिद्धि के लिए अन्न का दान भी करना चाहिए।।१२।।

श्राद्ध का माहात्म्य

अत एव श्रद्धा से समन्वित होकर तीर्थ में श्राद्ध करना चाहिए; क्योंकि श्राद्ध करने से सन्तान की प्राप्ति होती है। श्राद्ध से यश की प्राप्ति होती है।।१३।।

श्राद्ध करने से ही मेघ जल की वर्षा करते हैं। इस तरह श्राद्ध से सुख की प्राप्ति होती है। श्राद्ध से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा श्राद्ध से मोक्ष की प्राप्ति भी होती है।।१४।।

जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्राद्ध नहीं करता है, उसके सन्तान की वृद्धि नहीं होती है। वह मनुष्य मरने पर नरक में जाता है, इसलिए मनुष्य को कभी भी श्राद्ध का त्याग नहीं करना चाहिए।।१५।।

तीर्थमागत्य यो मर्त्यः श्राद्धकर्मविवर्जितः।
सर्वतीर्थफलं व्यर्थं तीर्थश्राद्धं विना मुने॥१६॥
तस्माच्छ्राद्धपरो भूयात्तीर्थे वापि गृहे तथा।
धन्यानां मानुषे जन्म तत्रापि हिमवत्स्थले॥१७॥

मायापुर्यां हरिद्वारे गोदानस्य माहात्म्यम्

मायापुर्यां हि तत्रापि तत्र भक्तिमतां कुले।
वेदाध्ययनकर्माणि तथा यज्ञादिकाः क्रियाः॥१८॥
पृथ्वीपर्य्यटनं वापि स्नानं सागरसङ्गमे।
मायापुरीति या सम्यक् कलां नार्हति षोडशीम्॥१९॥
तेन तप्तं हुतं तेन तेन दत्ता वसुन्धरा।
तेन सर्वं कृतं कर्म्म मुक्तिद्वारप्रदं मुने॥२०॥

हे मुने! जो मनुष्य तीर्थ में आकर श्राद्ध नहीं करता, तीर्थश्राद्ध के बिना उस मनुष्य की तीर्थयात्रा का सम्पूर्ण फल व्यर्थ हो जाता है।।१६।।

इसलिए मनुष्य को तीर्थ में तथा घर में श्राद्ध करने में तत्पर रहना चाहिए, अर्थात् प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करना चाहिए। मनुष्य योनि में जन्म होना ही धन्य है, उसमें भी उन पुरुषों के अहोभाग हैं, जिनका जन्म हिमालय की तराई में हुआ है।।१७।।

मायापुरी हरिद्वार में गोदान का माहात्म्य

मायापुरी हरिद्वार में जन्म लेने वाले उनसे भी अधिक सौभाग्यशाली हैं और उनमें भी वे श्रेष्ठ भाग्यशाली हैं, जिनका जन्म भक्तिसम्पन्न व्यक्तियों के कुल में हुआ है; क्योंकि वेदपाठ आदि कर्म और यज्ञानुष्ठान आदि क्रियायें मायापुरी की बराबरी नहीं कर सकते।।१८।।

हरिद्वारपुरी के फल की सोलहवीं कला की बराबरी तो भूमि की परिक्रमा एवं गङ्गासागरसङ्गम में स्नान भी नहीं कर सकते हैं।।१९।।

उसी ने सब प्रकार के तप किये हैं, उसी ने हवन किया है, उसी ने भूमि का दान किया है, हे मुनीश्वर! उसी ने मानों मुक्तिप्रदान करने वाले सब कार्यों का आचरण किया है।।२०।।

येनात्र विदुषे दत्ता गौः स्वर्गीयफलप्रदा।
यावन्ति तच्छरीरस्य रोमाणि मुनिपुङ्गव॥२१॥
तावत्कल्पसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।
धन्याः[1] कलियुगे घोरे ये गां दास्यन्ति तत्र वै॥२२॥
एकत्र सर्वदानानि गोदानं चापरं मुने।
तुलया सन्धृते चैव गोदानं चाऽभवद्गुरु॥२३॥
अनुमन्तापि यो मर्त्यो गोदाने दीनवत्सलः।
सोऽपि स्वर्गमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥२४॥
समुद्राश्च चतुःपात्सु रोमकूपेषु देवताः।
सर्वतीर्थानि च तथा ह्यङ्गेषु सरितस्तथा॥२५॥
तस्मात्पृथ्वीसमा ज्ञेया धेनुर्धन्यतमा भुवि।
पुरा कल्पादिके विप्र जगत्यम्बुमये सति॥२६॥

जिसने स्वर्गरूप फल प्रदान करने वाली गौ का दान करके विद्वान् ब्राह्मण को दी है। हे मुनिश्रेष्ठ! उस गौ के शरीर में जितने रोम होते हैं।।२१।।

मायापुरी में गौ का दान करने वाला व्यक्ति उतने ही कल्पपर्यन्त स्वर्गलोक में निवास करता है। वे व्यक्ति ही घोर कलियुग में भी धन्य हैं।।२२।।

हे मुने! तराजू के एक पल्ले में सम्पूर्ण प्रकार के दान और दूसरे में केवल गोदान को रखा जाय, तो गोदान वाला पल्ला ही गुरु (भारी) होगा।।२३।।

दीनों पर वत्सलता दिखाने वाला जो मनुष्य गोदान करने की अनुमति देता है अथवा उसका समर्थन करता है, वह मनुष्य भी चौदह इन्द्र के राज्यपर्यन्त स्वर्गलोक में निवास करता है।।२४।।

गाय के चारों चरणों में चारों समुद्र, उसके रोमकूपों में सम्पूर्ण देवता तथा उसके अन्यान्य अङ्गों में सम्पूर्ण तीर्थ एवं नदियाँ निवास करती हैं।।२५।।

इसलिए गौ को पृथ्वी के समान श्रेष्ठ समझना चाहिए, यह पृथ्वी पर धन्यतम है। हे विप्र! जब प्रथम कल्प में अखिल भूमण्डल जलमय हो गया था।।२६।।

---

१. 'धान्यः' इति ग.।

वेदहीनं जगत्सर्वं नष्टयज्ञं च भूसुर।
सृष्ट्वा सर्वांस्तथा लोकान् ब्रह्मा लोकपितामहः॥२७॥
चिन्तोद्विग्नमना जातो न ववर्ध यतः प्रजाः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नसम्भवः॥२८॥
अन्नाद् भवन्ति भूतानि स्थावराणि चराणि च।
यज्ञो[१] न जायते विप्र सर्पिषा रहितो यतः॥२९॥
सर्प्पिर्योनिः स्मृता धेनुस्तदभावेऽखिलं गतम्।
तस्माद्गावः प्रसृष्टव्या मया संसारहेतवे॥३०॥
इति चिन्तयतस्तस्य पद्मयोनेर्महात्मनः।
मतिरासीन्महामायां स्तोतुं नारद भक्तितः॥३१॥

हे पृथ्वी के देवता! वेदहीन होने के कारण सम्पूर्ण यज्ञ भी नष्ट हो गये थे, तब लोकपितामह ब्रह्मा जी ने सम्पूर्ण लोकों की रचना की।।२७।।

लोकरचना के अनन्तर ब्रह्मा इस चिन्ता से उद्विग्न हुए कि अब प्रजा की वृद्धि नहीं हो रही है। यज्ञ से मेघों का प्रादुर्भाव होता है, मेघों के द्वारा अन्न की उत्पत्ति होती है।।२८।।

तत्पश्चात् अन्न से प्राणियों की उत्पत्ति होती है, चाहे वे स्थावर हों या जङ्गम हों; परन्तु घृत के विना यज्ञ नहीं हो सकता है।।२९।।

घृत की उत्पत्ति गौ से होती है, इसलिए गौ के न होने से सभी का विनाश है। अत एव संसार की स्थिति के लिए मुझे गाय की रचना करनी चाहिए।।३०।।

हे नारद! जिस समय कमलोद्भव ब्रह्मा ऐसी चिन्ता कर ही रहे थे, उसी समय उनके मन में भक्तिभावपूर्वक महामाया की स्तुति करने का विचार उदित हुआ।।३१।।

---

१. 'यज्ञे' इति ख.।

ब्रह्मणा महामायायाः स्तुतिः

ब्रह्मोवाच

महामायां नमस्यामि धर्मकामार्थमोक्षदाम्।
नन्दनाद्रिकृतावासां धारिणीं जगतां प्रभुम्॥३२॥
नारायणीं भद्रकालीं भद्रदां वीरवन्दिताम्।
यज्ञाशिनीं यज्ञदेहां यज्ञपालनतत्पराम्॥३३॥
त्रिशक्तिं त्रिगुणारामां गुणातीतां गुणाकराम्।
नैमिषारण्यनिलयां मलयाचलसंश्रयाम्[1]॥३४॥
वीरभद्रवरां वीरां वीरासनसमास्थिताम्।
स्वाधिष्ठानाम्बुजरजःपुञ्जपिञ्जरितां खगाम्॥३५॥
शिवां सरस्वतीं लक्ष्मीं सिद्धिं बुद्धिं महोत्सवाम्।
केदारावासशुभगां बदरीवाससुप्रियाम्॥३६॥

ब्रह्मा द्वारा महामाया की स्तुति

ब्रह्मा ने कहा

मैं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली महामाया को नमस्कार करता हूँ। वे महामाया नन्दन पर्वत पर निवास करती हैं, वे ही लोकों को धारण करती हैं तथा जगत् की प्रभु हैं।।३२।।

वे जल में निवास करने वाली, भद्रकाली, कल्याण प्रदान करने वाली, वीरों से वन्दित, यज्ञ के अंश का भोग करने वाली, यज्ञरूप शरीर वाली, साथ ही यज्ञ की रक्षा करने में तत्पर रहने वाली हैं।।३३।।

वे तीन शक्तियों वाली, सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों में रमण करने वाली फिर भी गुणों से परे, गुणों की खान, नैमिषारण्य में रहने वाली तथा मलयाचल में आश्रय लेने वाली हैं।।३४।।

ये वीरभद्र को वर देने वाली, वीर, वीरासन पर स्थित रहने वाली, अपने अधिष्ठानभूत कमल के परागपुञ्ज से पिङ्गल शरीर वाली तथा आकाश में विचरण करने वाली हैं।।३५।।

ये शिव, सरस्वती, लक्ष्मी, सिद्धि, बुद्धि तथा महान् उत्सव वाली हैं, ये शुभ केदारक्षेत्र में निवास करती हैं, इनको बदरीक्षेत्र में निवास करना बहुत प्रिय है (इनको नमस्कार करता हूँ)।।३६।।

---

१. संश्रियामिति ग.।

राजराजेश्वरीं देवीं सृष्टिसंहारकारिणीम्।
मायां मायास्थितां वामां वामशक्तिमनोहराम्।।३७।।
मेनकां मनुपूज्यां च ज्वालां ज्वालामुखीं पराम्।
एकलिङ्गकृतोत्सङ्गां नारायणपरायणाम्।।३८।।
भागीरथीं भाग्यगम्यां भोगिनीं भोगिवल्लभाम्।
भूरादिकतपोऽन्तस्थां वीणापुस्तकधारिणीम्।।३९।।
दारुमूर्तिसमासीनां श्रियं पीनपयोधराम्।
केयूराङ्गदभूषाढ्यां चतुर्बाहुमनोहराम्।।४०।।
सिंहासनकृतावासां रक्तवस्त्रां रणप्रियाम्।
आर्यां कार्य्यकरीं वन्दे संसारोद्भवहेतवे।।४१।।

स्कन्द उवाच

इति संस्तुवतस्तस्य ब्रह्मणो विष्णुजन्मनः।
कोटिसूर्य्यप्रतीकाशा देवी प्रादुरभून्मुने।।४२।।

ये राजराजेश्वरी, देवी सृष्टि और संहार करने वाली माया हैं, ये सदा माया में स्थित रहती हैं, ये वामा हैं और वाम (तान्त्रिक) शक्ति से मनोहर हैं (इनको नमस्कार है)।।३७।।

ये मेनका, मनु की पूजनीया, ज्वाला, श्रेष्ठ ज्वालामुखी, एकलिङ्ग महादेव को आनन्द प्रदान करने वाली तथा नारायण की सेवा करने वाली हैं।।३८।।

ये भागीरथी, बड़े भाग्य से प्राप्त होने वाली, भोग को भोगने वाली, भोगियों की भी प्रिय, भू आदि व्याहृतियों के तप के अन्दर रहने वाली तथा वीणा एवं पुस्तक को धारण करने वाली हैं (उन्हें नमस्कार है)।।३९।।

ये काष्ठ की मूर्ति में स्थित रहने वाली, लक्ष्मीरूप, पीन पयोधर वाली, केयूर तथा अङ्गद आदि आभूषणों से युक्त, चार भुजाओं से मनोहर हैं (इनको नमस्कार करता हूँ)।।४०।।

जिसने सिंहासन को आवास बनाया है, लाल वस्त्र धारण करने वाली, युद्ध से प्रेम करने वाली, ये कार्य को पूर्ण करने वाली हैं, ऐसी आर्या महादेवी को संसार को उत्पन्न करने के लिए मैं वन्दना करता हूँ।।४१।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार करोड़ों सूर्य के समान समुज्ज्वल देवी स्तुति करने वाले विष्णु से प्रादुर्भूत होने वाले, उस ब्रह्मा के समक्ष प्रादुर्भूत हुईं।।४२।।

उवाच वचनं दिव्यं ब्रह्माणं कमलोद्भवम्।

श्रीदेव्युवाच

किमर्थं संस्तुता ब्रह्मन् किं कार्यं करवाणि ते।।४३।।
न बन्ध्यं दर्शनं मेऽस्ति कृतं यत् स्तवनं त्वया।
प्रसन्नाऽस्मि न सन्देहो भक्तिमानसि सुव्रत।।४४।।

ब्रह्मोवाच

सृष्टिमार्गप्रदा त्वं हि प्रकृतिः परमा मता।
त्वदिच्छया जगत्सर्वं जायते सचराचरम्।।४५।।
प्रजाः सृष्टा मया सर्वास्त्रिगुणा गुणवर्ज्जिते।
न वर्द्धन्ते विना यज्ञैर्यज्ञभागाशनाः सुराः।।४६।।
न वै वर्षति पर्ज्जन्यस्ततोऽन्नं नावतिष्ठति।
उपायं कुरु देवेशि यथा स्यादन्नसम्भवः।।४७।।

हे मुने! कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा से उन्होंने दिव्य वचन कहा।

श्रीदेवी ने कहा

हे ब्रह्मन् आपने किसलिए मेरी स्तुति की है? मैं आपके किस कार्य को करूँ।।४३।।

मेरा दर्शन निष्फल नहीं होगा; क्योंकि आपने मेरी स्तुति की है। मैं आपसे प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह नहीं है। हे सुव्रत! तुम भक्ति-भाव से सम्पन्न हो।।४४।।

ब्रह्मा ने कहा

हे देवी! आप सृष्टि की रचना के मार्ग को प्रदान करने वाली हैं, आप परम प्रकृति हैं, आपकी इच्छा से यह सम्पूर्ण चर-अचर जगत् उत्पन्न होता है।।४५।।

गुणों से रहित हे देवी! मैंने तीन गुणों की स्वभाव वाली प्रजा की सृष्टि की है। ये प्रजा यज्ञ के बिना बढ़ नहीं रही है; क्योंकि देवता लोग यज्ञ के भाग का उपभोग करने वाले हैं।।४६।।

मेघ वर्षा नहीं करता है, इसलिए अन्न उत्पन्न नहीं होता है। हे देवताओं की स्वामिनी! आप ऐसा उपाय करें, जिससे अन्न उत्पन्न हो।।४७।।

कामधेनोरुत्पत्तिकथा

श्रीदेव्युवाच

श्रृणु वत्स यथा यद्वै प्रोच्यते तव यन्मया।
स्वस्वभागान् सुराः सर्वे ददतु[१] कार्य्यसिद्धये॥४८॥
अहं च तेन रूपेण भविष्यामि महीतले।
मत्तः सर्वं सुरश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः॥४९॥

स्कन्द उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः सर्वे देवाः सवासवाः।
स्वं स्वं भागं भागसिद्ध्यै ददुस्तेजोमयं शुभम्॥५०॥
सापि माया भगवती गृहीत्वा भागमुत्तमम्।
निममज्ज क्षीरनिधौ पश्यतां त्रिदिवौकसाम्॥५१॥
आश्चर्यं परमं लेभुर्दृष्ट्वा तत्कौतुकं महत्।
किं किमेतत् किं किमेतदिति प्रोचुः सुरालयाः॥५२॥

कामधेनु की उत्पत्ति की कथा

श्रीदेवी ने कहा

हे पुत्र! सुनो। जैसा कि मैं तुमसे कह रही हूँ। अब कार्य की सिद्धि के लिए सब देवता अपना-अपना भाग (अंश) प्रदान करें।।४८।।

तब मैं भी ऐसे रूप से पृथिवीतल के ऊपर प्रादुर्भूत होऊँगी। हे सुरश्रेष्ठ! मुझसे निःसन्देह ही सब कार्यों की सिद्धि हो जायेगी।।४९।।

स्कन्द ने कहा

जब इन्द्र आदि देवताओं ने भगवती के इस प्रकार के वचन सुने, तब उन लोगों ने कार्यसिद्धि के लिए अपने-अपने तेजस्वरूप भाग (अंश) प्रदान किये।।५०।।

इसके बाद वे महामाया भगवती उन देवताओं के उत्तम अंशों को लेकर उनके देखते ही देखते क्षीरसागर में निमग्न हो गयीं।।५१।।

इस परम कौतुक को देखकर देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद सभी देवता इस प्रकार कहने लगे कि यह क्या हुआ? यह क्या हुआ?।।५२।।

---

१. ददन्त्विति ग.।

एतस्मिन्नन्तरे खे वाक् बभूव मुनिसत्तम।

वागुवाच

भो भो सुराः किमर्थं हि क्लेशं प्राप्ता मदाश्रितम्॥५३॥
मथध्वमेनं सुभगाः पयोधिं कार्य्यसिद्धये।
अन्यान्यपि महाभागाः प्राप्स्यथ प्रवराणि मे॥५४॥

स्कन्द उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तत्तु हृष्टास्ते त्रिदिवौकसः।
ममन्थुर्मिलितास्तत्र पयोधिं कार्य्यगौरवात्॥५५॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम्।
कूर्मरूपो हरिस्तत्र सर्वशक्तिधरः प्रभुः॥५६॥
मथिते दुग्धनिलये जातान्यन्यान्यपि क्रतोः।
कामधेनुस्तदोत्पन्ना सर्वदेवांशसम्भवा॥५७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इतने में ही आकाश से एक वाणी निकली।

वाणी ने कहा

हे देवताओं! मेरे आश्रय में रहकर भी तुम लोग दुःख क्यों भोग रहे हो।।५३।।

हे सुभगों! कार्य की सिद्धि के लिए आप लोग इस समुद्र का मन्थन करें। हे महाभागों! हमारी कृपा से आप लोग अन्यान्य श्रेष्ठ वस्तुएँ भी प्राप्त करेंगे।।५४।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार की आकाशवाणी को सुनकर सभी देवता मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। कार्य की महानता के कारण सबने मिलकर सागर का मन्थन किया।।५५।।

देवताओं ने मन्दराचल की मथानी बनायी और वासुकी नाग को डोरी बनाया। वहाँ सम्पूर्ण शक्तियों को धारण करने वाले प्रभु हरि ने कच्छप का रूप धारण किया।।५६।।

जब देवताओं ने क्षीरसागर का मन्थन किया, तब समुद्र से अन्य बहुत-सी वस्तुएँ निकलीं, इसके बाद सम्पूर्ण देवताओं के अंश से प्रादुर्भूत हुई कामधेनु भी उससे निकली।।५७।।

दृष्ट्वा तां निर्ज्जराः सर्वे जयेत्यूचुर्मुदान्विताः।
गृहीत्वा तां ततो धेनुं ब्रह्मलोकं ययुर्मुने॥५८॥

पूजयामासुरत्यन्तं प्रदक्षिणक्रमादिभिः।
सा पूजिता भगवती कामधेनुर्ददौ वरान्॥५९॥

पयश्चामृतकल्पं हि यत्पीत्वाऽमृतमश्नुते।
घृतं च सा ददौ धेनुर्यज्ञाय च्छन्दिता यतः॥६०॥

यज्ञैस्तृप्ताः सुराः सर्वे सुभिक्षं चाभवत्ततः।
प्रजाश्च वृद्धिमापन्नाः कामधेनोः प्रसादतः॥६१॥

पवित्रा परमा सा वै सर्वदेवमयी शुभा।
अवतीर्णा स्वयं देवी गौर्भूत्वा भवभाविनी॥६२॥

उसे देखते ही सभी देवता प्रसन्नता से युक्त होकर जय-जय के शब्द उच्चारण करने लगे। हे मुने! इसके बाद उस कामधेनु को लेकर वे लोग ब्रह्मलोक चले गये।।५८।।

उन लोगों ने परिक्रमा आदि करके विविध प्रकार से उसकी पूजा की। जब भगवती कामधेनु इस प्रकार पूजित हुईं, तब उन्होंने देवताओं को वर प्रदान किया।।५९।।

उस गौ ने ऐसा दुग्ध भी प्रदान किया, जो अमृत के तुल्य था, जिसे पीने से अमरत्व का लाभ होता है। उस गाय ने घी भी प्रदान किया; क्योंकि यज्ञ के लिए उसकी कामना की गयी थी।।६०।।

जब यज्ञों से देवता तृप्त हो गये, तब तो सभी जगह सुभिक्ष हो गया, विशेष क्या कहा जाय, कामधेनु के प्रभाव से प्रजा की भी वृद्धि होने लगी।।६१।।

समस्त देवताओं के अंश से प्रादुर्भूत हुई सर्वदेवमयी शुभरूपिणी वे देवी भगवती कामधेनु का रूप धारण कर संसार का कल्याण करने के लिए स्वयं अवतीर्ण हुईं।।६२।।

गोः माहात्म्यम्

पूजिता येन गौर्विप्र पूजिताः सर्वदेवताः।
प्रदक्षिणीकृता येन परिक्रान्ता वसुन्धरा॥६३॥
मङ्गलं दर्शनं प्रातः पूजनं परमं पदम्।
स्पर्शनं परमं तीर्थं नास्ति धेनुसमं क्वचित्॥६४॥
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि येन दृष्टा मुनीश गौः।
तस्य पापं क्षयं याति यथाग्नेस्तूलराशयः॥६५॥
हस्ते कृत्वा तु गोपुच्छं पितृतर्पणमाचरेत्।
निरयस्थाश्च पितरो ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः॥६६॥
गोछायायां महाभाग श्राद्धं कुर्वन्ति ये नराः।
गयाश्राद्धफलं तेषां कथितं स्यान्महामते॥६७॥

गाय का माहात्म्य

हे विप्र! इसलिए जिसने गाय की पूजा की है, जिसने गाय की परिक्रमा की है, उसने सम्पूर्ण भूमण्डल की परिक्रमा का फल प्राप्त कर लिया है।।६३।।

जिसे प्रातःकाल गाय का दर्शन प्राप्त हो जाय, उसके सभी कार्य मङ्गलकारी होते हैं। गाय का पूजन परमपद मोक्ष को प्रदान करने वाला है। उसका दर्शन परमतीर्थ के तुल्य है। इसलिए गाय के समान अन्य कहीं भी कुछ नहीं है।।६४।।

हे मुनीश्वर! जिसने ज्ञान अथवा अज्ञान से ही गाय का दर्शन किया है, उसके पाप इस प्रकार विनष्ट हो जाते हैं, जैसे अग्नि रूई के ढेर को भस्म कर देती है।।६५।।

गाय के पूँछ को हाथ में लेकर तर्पण करने से नरक में प्राप्त हुए भी पितरों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो जाती है।।६६।।

हे महाभाग! महामतिमान्! जो व्यक्ति गाय की छाया में उपस्थित होकर श्राद्ध का आचरण करते हैं, उन्हें गया में श्राद्ध करने का फल प्राप्त हो जाता है, ऐसा कहा गया है।।६७।।

गोमयेन सुलिप्तायां भूमौ वा कुरुते क्रियाः।
अनन्तफलदा विप्र भवेयुर्नैव संशयः॥६८॥
सकृत्प्राश्नाति गोमूत्रं यो नरश्च महामुने।
दुर्भोज्यभोजनाच्चैव दुरुक्त्या दुर्नयोच्चरात्॥६९॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो गच्छेद् ब्रह्म परं मृतः।
अपवित्रकरं स्थानं शुद्धं गोमूत्रबिन्दुना॥७०॥
कण्डूयनं गवां यो वै करोति यदि मानवः।
गोहत्याब्रह्महत्याभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥७१॥
गोग्रासं भोजने यस्तु दद्याद् गोभ्यो महामुने।
ब्राह्मणा भोजितास्तेन सहस्त्रं वेदपाठिनः॥७२॥
तीर्थे देवालये वापि ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
व्यतीपाते च मन्वादौ युगादौ सङ्क्रमे तथा॥७३॥

हे विप्र! गोबर से लीपी हुई भूमि के ऊपर जो कुछ शुभ कार्य किया जाता है, उससे अनन्त फल की प्राप्ति होती है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।।६८।।

हे महामुने! जो मनुष्य एक बार भी गोमूत्र का प्राशन करता है, उसको अभक्ष्यभक्षण करने, दुर्वचन कहने एवं दुराचरण करने वाले पाप से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है और वह पुरुष मरकर परम ब्रह्म के धाम को जाता है। जो स्थान अपवित्र है, उसकी शुद्धि गोमूत्र के एक बिन्दुमात्र से हो जाती है।।६९-७०।।

जो मनुष्य गाय के शरीर को खुजलाता है, वह निश्चित रूप से गोहत्या एवं ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा पा जाता है।।७१।।

हे महामुने! जो मनुष्य भोजन के समय गोग्रास निकालकर गाय को देता है, वह वेद का अध्ययन करने वाले हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल प्राप्त कर लेता है।।७२।।

तीर्थ, देवमन्दिर अथवा सूर्य या चन्द्रमा के ग्रहण के समय, मन्वादि, व्यतीपात और युगादि तिथि एवं सङ्क्रान्ति ये पुण्य तिथियाँ हैं।।७३।।

दाता तस्या ग्रहीताऽपि तावुभौ स्वर्गगामिनौ।
ससुवर्णा सवस्त्रा च सर्वाभरणभूषिता॥७४॥
पयस्विनी सवत्सा च येन दत्ता मुनीश गौः।
तेन तप्तं हुतं तेन जप्तं तेन कृतं तथा॥७५॥
नानाद्रव्यान्विता तेन दत्ता विप्र वसुन्धरा।
श्रृणु नारद यद् वृत्तमितिहासं सुपुण्यदम्॥७६॥

वर्द्धमानवैश्याख्यानम्

उज्जयिन्यां पुरा ह्यासीद्वर्द्धमानो महावणिक्।
बभूव धनधान्यैश्च पुत्रपौत्रैश्च संवृतः॥७७॥
येन केन प्रकारेण कृतं द्रव्यार्जनं तथा।
धनाम्भोधिस्ततो जातो रत्नानां निचयैस्तथा॥७८॥

इनमें गाय का दान देने वाला एवं गाय का दान लेने वाला दोनों ही स्वर्गगामी होते हैं। गाय को सुवर्ण, वस्त्र और आभूषणों से समलङ्कृत करना चाहिए।।७४।।

इस प्रकार की दूध देती हुई गाय को जो व्यक्ति दान करता है, उसने मानों सब तप कर लिये, जप और अन्य सम्पूर्ण शुभ कर्म उसने कर लिया है।।७५।।

विशेष क्या कहें, मानों उस पुरुष ने अनेक द्रव्यसम्पन्न भूमि का दान कर दिया है। हे नारद! पुण्यप्रदान करने वाला एक प्राचीन इतिहास है, उसे सुनो।।७६।।

वर्द्धमान वणिक् का आख्यान

प्राचीनकाल में उज्जयिनी नगरी में वर्धमान नामक एक महान् वणिक् निवास करता था। वह प्रभूत धन-धान्य और पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न था।।७७।।

उसने जिस किसी प्रकार से विपुल धन का उपार्जन किया, रत्नों का विपुल सञ्चय हो जाने के कारण उसके पास मानों धन का सागर उमड़ आया हो।।७८।।

पुत्राश्चापि महाभागाश्चत्वारो ह्यभवँस्तदा।
कृत्वा द्रव्यविभागं स कालधर्ममुपागतः॥७९॥
त्रयः पुत्रास्तु तस्यापि वणिग्धर्मरता मुने।
अभवत्पश्चिमो यस्तु नाम्ना वरधरो वरः॥८०॥
द्यूतवेश्यादिव्यसनैः क्षयं नीतं महद्धनम्।
जीवनं कृतवान् वेश्यापरिचारेण वै ततः॥८१॥
अन्वेषते विटाँश्चैव किञ्चिदाप्तधनस्ततः।
जीविते जातिरहितोऽगम्यागमनसंयुतः॥८२॥
चौरधर्मरतश्चैव तथासीन्मुनिपुङ्गव।
गोधनं चौर्यतो हृत्वा विक्रीणाति स वै वणिक्॥८३॥
म्लेच्छवेश्यासमासक्तो वनान्ते वसतिस्तथा।
वेश्याद्यूतेषु चौर्येषु समासक्तोऽजितेन्द्रियः॥८४॥

उसके चार पुत्र थे, वे भी महाभाग्यशाली हुए, इसके बाद चारों पुत्रों को पृथक्-पृथक् धन का बँटवारा कर वह बनिया पञ्चत्व को प्राप्त हो गया।।७९।।

हे मुने! उसके तीन पुत्र तो वैश्यधर्म व्यापार आदि में ही प्रवृत्त हुए। लेकिन चतुर्थ पुत्र वरधर नाम से विख्यात हुआ।।८०।।

उसने द्यूत और वेश्याओं के प्रसङ्ग में पड़कर व्यसनों में सभी धन नष्ट कर दिया। तदनन्तर वेश्याओं की परिचर्या करके वह अपना जीवन निर्वाह करने लगा।।८१।।

निर्धन हो जाने के कारण वह वेश्यागामी धूर्तों का अन्वेषण करता रहता था। जीवित रहते भी उसे जाति का ज्ञान नष्ट हो गया और वह अगम्यों से भी गमन करने लगा।।८२।।

हे मुनिराज! वह चौरकर्म में प्रवृत्त हो गया, अब वह बनिया गायों को भी चुरा-चुरा कर बेचने लगा।।८३।।

म्लेच्छ और वेश्याओं में आसक्त होकर उस वैश्य ने वन के मध्य में अपना निवास बनाया। उसकी कोई भी इन्द्रिय वश में नहीं थी, वह दुष्ट वेश्यागमन, द्यूत और चोर कर्म में प्रवृत्त हो गया।।८४।।

एकदा मदिरां पीत्वा जगाम नगरे वरे।
ददर्श कञ्चिद्दातारं गां शुभां दातुमुद्यतम्॥८५॥
तं दृष्ट्वा वणिजश्चित्तमाश्चर्यकलितं मुने।
विप्रान् वेदान् पठन्तश्च धौतोत्तरपरिच्छदान्॥८६॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रधराञ्शान्तान् प्रतिग्रहसमुद्यतान्।
आश्चर्यपरमो भूत्वा हसद्गोपुच्छधारिणः॥८७॥
गृहमागत्य तरसा गां गृहीत्वा मदालसः।
एकं दिनं समानीय ब्राह्मणं ब्रह्मसत्तमम्॥८८॥
तत्कर्म हसितुं चक्रे गोदानं मदिराश्रितः।
अन्येऽपि म्लेच्छजातीया अहसंस्तं मदालसाः॥८९॥
ब्राह्मणस्तां गृहीत्वा तु ययौ स्वभवनं त्वरम्।
प्रबुद्धो मदिरात्यक्तो वैश्योऽपि स्वस्थमानसः॥९०॥

एक बार वह मदिरा पीकर श्रेष्ठ नगर में गया। वहाँ उसने देखा कि कोई दाता सुन्दर गाय का दान करने के लिए उद्यत है।।८५।।

हे मुने! उसे देखकर वैश्य के चित्त में बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय ब्राह्मण वेद-पाठ कर रहे थे और स्वच्छ वस्त्र धारण किये थे।।८६।।

वे ब्राह्मण ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण किये हुए थे, शान्त स्वभाव वाले ब्राह्मण गाय का दान लेने के लिए समुद्यत थे। दाता को गाय का पूँछ पकड़ा हुआ देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह जोर से हँसने लगा।।८७।।

इसके बाद वह मदोन्मत्त अपने घर चला आया। एक दिन मदिरा पान करके उसने एक श्रेष्ठ ब्राह्मण को बुलाया।।८८।।

उस गोदान कर्म की हँसी उड़ाने के लिए उस मदोन्मत्त वैश्य ने गाय का दान किया। मदिरापान करने के कारण अन्य म्लेच्छ लोग उसका उपहास करने लगे।।८९।।

उधर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण उक्त गाय को लेकर अपने घर चला आया। जब उसकी मदिरा की नशा उतरी, चित्त सावधान हुआ और वह होश में आया।।९०।।

किं कृतं किं कृतं चैतद् यद् गौर्दत्ता द्विजातये।
अन्वेषयति स्म स तं न प्राप गृहमागतः॥९१॥
गृहे च वेश्यया वैश्यो धिक्कृतो विपिनं ययौ।
तत्र सर्पहतो विप्र वने पञ्चत्वमागतः॥९२॥
आगता यमदूताश्च नेतुं तं वणिजं खलम्।
देवदूताश्च तत्रापि तस्मिन्नेवागता वने॥९३॥
विवादश्च तथा तेषां दूतानां यमदेवयोः।
मत्वा विकल्मषं वैश्यं निन्युर्लोकं प्रजापतेः॥९४॥
अभक्त्यापि कृतं विप्र गोदानं यत्पुरा शुभम्।
तस्मात्सर्वैश्च पापैश्च निर्मुक्तो भवदत्तकः॥९५॥
न गोदानसमं विप्र पुण्यं कर्म महामते।
तस्मात्सर्वेण यत्नेन गोदानं शुभमाचरेत्॥९६॥

तब कहने लगा, हाय! मैंने यह क्या किया, जो ब्राह्मण को गाय दे डाली। इसके बाद उस ब्राह्मण का वह बहुत अन्वेषण किया; परन्तु वह न मिला, तब वह अपने घर लौट आया।।९१।।

परन्तु घर में भी जब उस वैश्य को उसकी पत्नी ने धिक्कार दिया, तब वह बेचारा वन में चला गया। हे विप्र! वहाँ उसे सर्प ने डँस लिया, अत एव उसकी मृत्यु हो गयी।।९२।।

तब तो उस दुष्ट वैश्य को ले जाने के लिए यमराज के दूत आये। उसी समय उस वन में देवदूत भी आ गये।।९३।।

उसे ले जाने के लिए यमदूत और देवदूत में परस्पर विवाद होने लगा। तब उस वैश्य को निष्पाप मानकर देवदूत प्रजापति के लोक में ले गये।।९४।।

हे द्विजश्रेष्ठ! उसने भक्तिभाव से रहित होकर भी जो प्रथम शुभ गाय का दान किया था, उसके प्रभाव से वह भवदत्त पापरहित हो गया।।९५।।

महामतिमान् हे विप्र! इसलिए गोदान के समान और कोई पुण्य कर्म नहीं है। अतः पूर्णप्रयत्नपूर्वक शुभ गोदान कर्म का आचरण करना चाहिए।।९६।।

भूतवेतालकूष्माण्डग्रहग्रस्तः समाचरेत्।
यद्यदिच्छति तत्सर्वं प्राप्नोति नैव संशयः॥९७॥
यथा गोदानतः पुण्यं तथा चान्नप्रदानतः।
दीनानाथशरीरेभ्यो तद्दानं सात्त्विकं मतम्॥९८॥
अन्नदानान्महाभाग सर्वं दानं कनिष्ठकम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ह्यन्नं दद्यात्क्षुधावृते॥९९॥
सर्वकाले सर्वदेशे सर्वपात्रे महामते।
दद्याद्दानं परं भक्त्या सर्वप्राणिपरायणः॥१००॥

॥इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायापुरीमाहात्म्ये गोमहिमवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११०॥

जो व्यक्ति भूत, वेताल, कूष्माण्ड एवं ग्रह से पीड़ित हो, उसे गोदान कर्म करना कर्त्तव्य है। गोदान करने वाला व्यक्ति जिस-जिस वस्तु की इच्छा करता है, उसे उसकी प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है॥९७॥

गोदान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, उस पुण्य की प्राप्ति अन्नदान करने से भी हो जाती है। यदि यह दान गरीब, अनाथ को दिया जाय, तो उसे सात्त्विक दान कहते हैं॥९८॥

हे महाभाग! अन्नदान की अपेक्षा अन्य सभी दान कनिष्ठ माने गये हैं। इसलिए पूर्ण प्रयत्न करके भूख से पीड़ित व्यक्ति को अन्न का दान करना चाहिए॥९९॥

सभी प्राणियों के ऊपर दयालु होकर मनुष्य को चाहिए कि सर्वदा सभी स्थानों पर सभी पात्रों में भक्तिभावपूर्वक दान करे॥१००॥

॥ इस प्रकार स्कन्दपुराणान्तर्गत केदारखण्ड में मायापुरी-माहात्म्य-प्रकरण में गोमहिमा वर्णन नामक एक सौ दस अध्याय पूर्ण हुआ॥११०॥

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-३१४+१००=४१४]



अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

अन्नदानमहिमवर्णनप्रसङ्गे श्वेतराजाख्यानकम्

स्कन्द उवाच

अन्नेन चैव दत्तेन किन्न दत्तं महीतले।
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते॥१॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
आसीदिलावृते वर्षे श्वेतो राजा महायशाः॥२॥

गङ्गाद्वारे महातेजास्तपः कर्त्तुं समाययौ।
वर्षाणां नियुतं तेपे तपः परमदारुणम्॥३॥

तस्य वै तप्यमानस्य त्रस्ता देवाः सवासवाः।
वरेण च्छन्दयामास ब्रह्मा तं च तपोनिधिम्॥४॥

ब्रह्मोवाच

वरं ब्रूहि महाभाग यत्ते मनसि वर्त्तते।
नाप्राप्यं ते महाभाग त्रिषु लोकेषु विद्यते॥५॥

अन्नदान की महिमा वर्णन के प्रसङ्ग में राजा श्वेत का आख्यान

स्कन्द ने कहा

अन्नदान सम्पूर्ण दानों में श्रेष्ठ माना गया है, अत एव जिसने अन्न का दान किया है, उसने भूमि पर सभी प्रकार का दान दे दिया है।।१।।

इस विषय में एक प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया जाता है। इलावृत्तवर्ष में श्वेत नाम का एक महान् यशस्वी राजा था।।२।।

वह परम तेजस्वी गङ्गाद्वार में तप करने के लिए आया। उसने दस हजार वर्षों तक कठोर तप का आचरण किया।।३।।

उसके उग्र तप से इन्द्र सहित सभी देवता भयभीत हो गये। तब उस तपोनिधि को वर प्रदान कर ब्रह्मा जी ने उसे मनाया।।४।।

ब्रह्मा ने कहा

हे महाभाग! जो तुम्हारे मन में हो, उसे वर के रूप में माँग लो। हे भाग्यशालिन्! तीनों लोकों में कोई ऐसा पदार्थ नहीं है, जो तुम्हारे लिए अदेय हो।।५।।

श्वेत उवाच

इयं सर्वा धरा ब्रह्मन् मदधीना सुराग्रज।
यत्किञ्चिद्वस्तुजातं मे सर्वं स्याद् ब्राह्मणार्थकम्।।६।।
इदं क्षेत्रं च ते नाम्ना विख्यातं स्यान्महीतले।
तवावासश्च विष्णोश्च शिवस्यापि भवत्वरम्।।७।।
सर्वेषां चैव देवानां स्थितिश्चापि प्रजायताम्।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तान्यत्र स्युः स्थिराणि भोः।।८।।

ब्रह्मोवाच

इदं तीर्थं महापुण्यं त्रैलोक्ये चातिदुर्ल्लभम्।
अतः परं च मन्नाम्ना विख्यातं हि भविष्यति।।९।।
ये वै स्नास्यन्त्यत्र कुण्डे गच्छेयुस्ते परं पदम्।
यत्कर्म क्रियते चात्र तत्सर्वं स्यादनन्तकम्।।१०।।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि सन्निहितानि वै।
भविष्यन्ति महाराज सर्वभावैरतः परम्।।११।।

श्वेत ने कहा

देवताओं में अग्रगण्य हे ब्रह्मन्! यह सम्पूर्ण पृथिवी मेरे अधीन है, साथ ही जितनी वस्तुएँ हैं, वे सभी मेरे लिए उपस्थित हैं।।६।।

यह क्षेत्र इस भूमण्डल पर आपके नाम से विख्यात हो। साथ ही आपके साथ भगवान् विष्णु और शिव का भी यहाँ निवास हो।।७।।

यहीं नहीं, अपि तु सभी देवताओं की स्थिति भी इस स्थान में होनी चाहिए। पृथिवीमण्डल पर जितने तीर्थ हैं, वे सब यहाँ स्थित होकर निवास करें।।८।।

ब्रह्मा जी ने कहा

यह परम पवित्र तीर्थ तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ है, आज से यह तीर्थ मेरे नाम से ही विख्यात होगा।।९।।

जो लोग इस कुण्ड में स्नान करेंगे, उन्हें परमपद मोक्ष की प्राप्ति होगी और इस स्थान में जो दान आदि कर्म किया जायेगा, वह अनन्त फल देने वाला होगा।।१०।।

हे महाराज! पृथिवी पर जितने तीर्थ हैं, वे सभी अब से यहाँ सन्निहित रहेंगे, अर्थात् यहाँ निवास करेंगे।।११।।

इयं च पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना।
सर्वद्वीपसमुद्रान्ता त्वदधीना भविष्यति॥१२॥
धर्मबुद्धिर्महाराज दानबुद्धिश्च शाश्वती।
ब्राह्मणार्थं समुत्पन्नो नारायणपरो भव॥१३॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा सहसा विप्र ब्रह्मा लोकं स्वकं ययौ।
सोऽपि राजा महाराज ययौ स्वे प्रवरे स्थले॥१४॥
जित्वा च पृथिवीं सर्वां सप्तद्वीपां ससागराम्।
स्थापयामास स्ववशे सर्वान् वै पृथिवीभुजः॥१५॥
चकार विविधान् यज्ञान् हयमेधादिकान् मुने।
स्वर्णरत्नमहार्हाणि वासांसि विविधानि च॥१६॥
ददौ च विप्रवर्य्येभ्यो वेदविद्भ्यो विशेषतः।
वसिष्ठं सर्वशास्त्रज्ञं प्रोवाच तपसां निधिम्॥१७॥

समस्त वन, पर्वत एवं द्वीपों सहित समुद्रपर्यन्त यह सम्पूर्ण पृथिवी तुम्हारे अधीन रहेगी।।१२।।

हे महाराज! आपकी बुद्धि ब्रह्मप्राप्ति के लिए धर्माचरण एवं दान करने में निरन्तर संलग्न रहेगी, अब तुम नारायण की भक्ति करने में निरत बनो।।१३।।

स्कन्द ने कहा

हे विप्र! यह कहकर ब्रह्मा जी उसी समय अपने लोक को चले गये। इसके बाद वह राजा भी अपने उत्तम स्थान को चला गया।।१४।।

उस राजा ने सागरपर्यन्त सात द्वीपों वाली वसुमती (पृथिवी) को जीत लिया और सम्पूर्ण राजाओं को अपने अधीन कर उन्हें यथास्थान पुनः स्थापित किया।।१५।।

हे मुने! उसने अश्वमेध आदि विविध प्रकार के अनेक यज्ञ किये। उसने उन यज्ञों में सुवर्ण, बहुमूल्य वस्त्र तथा विविध प्रकार की अन्यान्य वस्तुएँ ब्राह्मणों को और विशेषकर वेदपाठियों को प्रदान कीं। तब उसने तप के निधिस्वरूप तथा सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता वसिष्ठ जी से कहा।।१६-१७।।

अन्नदानस्य माहात्म्यम्

श्वेत उवाच

भगवन् दातुमिच्छामि ब्राह्मणेभ्यो वसुन्धराम्।
देह्यनुज्ञां तपोराशे शिष्याय शुभकारणम्।।१८।।

वसिष्ठ उवाच

अन्नदानं महाराज सर्वकामसुखावहम्।
अन्नेन चैव दत्तेन किन्न दत्तं महीतले।।१९।।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि अन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अन्नदानं ददस्व भोः।।२०।।

स्कन्द उवाच

किं वस्त्वन्नं विदित्वा स नो ददावन्नमम्बु च।
रत्नवस्त्राद्यलङ्कारान् श्रीमन्ति नगराणि च।।२१।।

अन्नदान का माहात्म्य

राजा श्वेत ने कहा

हे भगवन्! मैं इस वसुन्धरा को ब्राह्मणों के लिए दान करके देना चाहता हूँ। अत एव हे तपोधन! अपने शिष्यों के लिए मुझे यह शुभाचरण करने की अनुमति प्रदान कीजिए।।१८।।

वसिष्ठ जी ने कहा

हे महाराज! अन्न का दान सभी सुखों को देने वाला है। जिसने अन्न का दान किया है, उसने भूतल में मानों सब कुछ दान कर दिया है।।१९।।

क्योंकि अन्न से ही प्राणियों की उत्पत्ति होती है, अन्न में ही सबके प्राण स्थित रहते हैं, इसलिए हे राजन्! पूर्ण प्रयत्न के साथ अन्न का दान करना चाहिये।।२०।।

स्कन्द जी ने कहा

उस राजा ने अन्न को तुच्छ वस्तु समझकर उसका दान नहीं किया; किन्तु रत्न, वस्त्र, आभूषण तथा सुन्दर नगरों का दान किया।।२१।।

दत्तवान् ब्राह्मणेभ्योऽथ कुञ्जरान् वाजिनस्तथा।
सुवर्णरौप्यरत्नानि यानानि विविधानि च॥२२॥
अश्वमेधसहस्त्रञ्च इयाज बहुदक्षिणैः।
स्वल्पं वस्तु परं ज्ञात्वा सोऽन्नं तु नाददात्प्रभुः॥२३॥
एवं तस्य महाभाग दिव्यं वर्षशतं ययौ।
ततः कदाचिन्नृपतिः कालधर्मवशं गतः॥२४॥
परलोके वर्त्तमानः स्ववेंश्याभिरभिष्टुतः।
क्षुधया पीडितो ह्यासीत्तृषया च नराधिपः॥२५॥
क्षुत्तृष्णाभ्यां पीड्यमानः स्वर्गभोगान्वितोऽपि सन्।
आनिनायाप्सरोभोगं गत्वा श्वेतं महागिरिम्॥२६॥
ददर्श तत्र नृपतिर्दग्धदेहं पुरात्मनः।
अस्थीनि चर्वयामास शीर्णानि मुनिपुङ्गव॥२७॥

उसने ब्राह्मणों को हाथी, घोड़े, सुवर्ण, चाँदी और विविध प्रकार की सवारियाँ दान के रूप में प्रदान कीं।।२२।।

उस राजा ने यद्यपि सहस्रों अश्वमेध कर उसमें बहुत दक्षिणा भी दी, तथापि अन्न को तुच्छ समझकर वह उसका दान नहीं करता था।।२३।।

हे महाभाग! इस प्रकार विविध दानादिक अनुष्ठान करते उसके दिव्य सौ वर्ष व्यतीत हो गये, इसके बाद वह राजा किसी समय काल-धर्म के वशीभूत हो गया।।२४।।

जब वह राजा दान के पुण्य से स्वर्गलोक में गया, तब स्वर्गलोक की अप्सराएँ उसकी स्तुति, सेवा-शुश्रूषा करने लगीं; परन्तु वहाँ वह राजा भूख और प्यास से सर्वदा पीड़ित रहता था।।२५।।

वहाँ स्वर्ग के सम्पूर्ण भोगों से सम्पन्न होता हुआ भी भूख और प्यास से सर्वदा पीड़ित रहता हुआ वह राजा श्वेतद्वीप में जाकर महान् पर्वत पर जाकर अप्सराओं के साथ आनन्द का उपभोग करता था।।२६।।

उस राजा ने जले हुए शरीर को अपने सामने देखा। हे मुनीश्वर! वह बिखरी हुई हड्डियों को चबाने लगा।।२७।।

चर्वयित्वा पुरा राजा विमानवरमास्थितः।
अप्सरोगणगन्धर्वसेवितो दिवमाव्रजत्॥२८॥
एवं स प्रत्यहं राजा सङ्गृह्यास्थीनि संलिहन्।
तत्रास्ते श्वेतसङ्काशं पुनः स्वर्गं जगाम ह॥२९॥
अथ कालेन महता वसिष्ठेन महात्मना।
अस्थीनि चर्वयन् दृष्टो राजा श्वेतो महातपाः॥३०॥
उवाच प्रहसन् वाक्यं किमहो स्वास्थिचर्वणम्[१]।
एवमुक्तस्तदा राजा ब्रह्मपुत्रेण धीमता॥३१॥
जगाद लज्जितो राजा मुनिं चेदं तपोनिधिम्।
क्षुधा मां बाधते ब्रह्मन् यदन्नं न पुराददम्॥३२॥
पानं चापि महाभाग ततो मां बाधते तृषा।
एवमुक्तस्तदा राज्ञा ब्रह्मपुत्रो महामुनिः॥३३॥

हड्डियों को चबाकर अपनी भूख को शान्त कर वह राजा विमान पर आरूढ़ होकर अप्सराओं के समूह और गन्धर्वों से सेवित होता हुआ स्वर्ग में लौटता था।।२८।।

इसी प्रकार वह राजा नित्यप्रति अस्थियों का संग्रह कर चबाता था और श्वेतमूर्ति स्वर्ग को लौट जाता था।।२९।।

इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जाने पर किसी समय महामना वसिष्ठ ने महान् तपस्वी राजा श्वेत को अस्थियों को चबाते हुए देखा।।३०।।

राजा से वसिष्ठ जी हँसते हुए बोले—अरे! तुम अस्थियों को क्यों चबा रहे हो? ब्रह्मा जी के पुत्र वसिष्ठ ने राजा से इस प्रकार कहा।।३१।।

तदनन्तर लज्जित होकर राजा ने तपोनिधि वसिष्ठ से कहा—हे ब्रह्मन्! मुझे क्षुधा अत्यन्त पीड़ित कर रही है; क्योंकि मैंने पहले कभी भी अन्न का दान नहीं किया है।।३२।।

मैंने कभी जल का दान नहीं किया है, इसलिए प्यास भी मुझे बहुत अधिक पीड़ित कर रही है। हे महाभाग! इस प्रकार राजा ने महामुनि ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ जी से कहा।।३३।।

---

१. स्वस्थिचर्वणमिति ग.।

पुनर्जगाद तं श्वेतं महाराजं महार्थवित्।
फलमेतन्महीशानावधीरितवचो यतः॥३४॥
अदत्तं नोपतिष्ठेत कस्यचित्किञ्चिदप्यहो।
त्वया दत्तानि राजेन्द्र स्वर्णरत्नाम्बराणि च॥३५॥
तानि सर्वाणि भोगार्थं तव सन्ति यतः क्वचित्।
अन्नं पानं च नो दत्तं क्षुत्तृष्णे तव संस्थिते॥३६॥
स्तोकं मत्वा त्वया राजन्न दत्ते चान्नपानके।
अदत्तं नोपतिष्ठेत साक्षादपि प्रजापतेः॥३७॥

श्वेत उवाच

किं कर्तव्यं महाभाग कथं नो बाधते क्षुधा।
कृताञ्जलिरहं याचे ह्यदत्तं मां कथं भजेत्॥३८॥

वसिष्ठ उवाच

अस्त्येकं कारणं येन जायते नात्र संशयः।
तच्छृणुष्व नरव्याघ्र कथ्यमानं मयानघ॥३९॥

तदनन्तर पुनः महान् अर्थवेत्ता वसिष्ठ ने महाराज श्वेत से कहा— हे पृथिवीपति! मेरे वचन की अवहेलना करने का यह फल है।।३४।।

बिना दान किए हुए कोई भी वस्तु किसी को प्राप्त नहीं होती है। हे राजेन्द्र! आपने तो केवल सुवर्ण, रत्न और वस्त्र का ही दान किया है।।३५।।

इसलिए आपकी दान की गयी वस्तुएँ ही आपके भोग के लिए कहीं भी मिल रही हैं। आपने अन्न और जल कभी भी नहीं दिया है, इसलिए आपके सामने भूख और प्यास स्थित रहते हैं।।३६।।

हे राजन्! अन्न और जल को तुच्छ समझकर आपने उनका दान नहीं किया, बिना दान की हुई वस्तु साक्षात् ब्रह्मा को भी प्राप्त नहीं हो सकती है।।३७।।

राजा श्वेत ने कहा

हे महाभाग! अब मुझे क्या करना चाहिए, जिससे कि मुझे क्षुधा पीड़ित न करे। मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे न दिये हुए अन्नदान का फल किस प्रकार उपलब्ध हो सकता है।।३८।।

वसिष्ठ जी ने कहा

हे नरश्रेष्ठ! एक ऐसा उपाय है, निःसन्देह उससे फल की प्राप्ति हो सकती है। हे निष्पाप! मैं उसका वर्णन करता हूँ, तुम श्रवण करो।।३९।।

यथा पुरा विनीताश्वो महीपालो महायशाः।
कृतवान् सर्वमेधाँश्च सहस्राणि महामुनिः।।४०।।
दत्तास्तेन तथा गावो रत्नस्वर्णाम्बराणि च।
स्तोकं मत्वा न तेनापि पानं चान्नं महीपते।।४१।।
सोऽपि गङ्गोत्तरे देहं तत्याज मुनिपालक।
गतवान् ब्रह्मलोकादीन्नानाभोगसमन्वितः।।४२।।
त्वमिव क्षुधयाविष्टो बभूव तृषया तथा।
पुनर्मर्त्यं समायातो विमानेनार्कवर्चसा।।४३।।
गङ्गाद्वारे महाक्षेत्रे नीलाभिधमहीधरे।
दग्धं कलेवरं सोऽपि दृष्ट्वा भोक्तुं मनो दधौ।।४४।।
तावद्ददर्श होतारं विनीताश्वः[१] पुरोहितम्।
उक्तञ्च कारणं विप्र क्षुधायाश्च तपोनिधे।।४५।।

एक समय पूर्वकाल में महान् यशस्वी महामुनि विनीताश्व ने सभी प्रकार के सहस्रों यज्ञ किये थे।।४०।।

हे राजेन्द्र! उसने भी गायें, रत्नों, सुवर्ण एवं वस्त्रों का प्रभूत दान किया था; परन्तु तुच्छ समझकर अन्न और जल का दान नहीं किया।।४१।।

हे मुनिपालक! जब उस राजा ने गङ्गोत्तरी में अपने शरीर का परित्याग किया, तब अनेक भोगों से समन्वित होकर उसने ब्रह्मा आदि के उत्तम लोकों को प्राप्त किया।।४२।।

वह भी तुम्हारे ही समान भूख और प्यास से व्याकुल रहता था। तब सूर्य के समान प्रकाशमान विमान में आरूढ़ होकर वह मृत्युलोक में आया।।४३।।

गङ्गाद्वार (हरिद्वार) महाक्षेत्र में नील पर्वत के ऊपर भस्म हुए शरीर को देखकर उसके मन में भक्षण करने की अभिलाषा हुई।।४४।।

उसी समय विनीताश्व ने यज्ञ करने वाले पुरोहित को देखा। हे तपोनिधे! तब उसने क्षुधा का कारण पूछा।।४५।।

---

१. विनीताश्वेति ख., विनीताश्वा इति ग.।

द्वादशधा धेनवः

कथयामास तं होता प्रतीकारं क्षुधस्तृषः।
प्रथमा तिलधेनुश्च जलधेनुस्ततः परम्॥४६॥
रसधेनुस्तृतीयाऽपि गुडधेनुस्तथा स्मृता।
शर्करामधुधेनुश्च क्षीरधेनुश्च सप्तमी॥४७॥
अष्टमी दधिधेनुश्च नवनीतमयी ततः।
तथा लवणधेनुश्च सत्कार्पासमयी तथा॥४८॥
धान्यधेनुस्तथा प्रोक्ता द्वादशैताः प्रकीर्तिताः।
घटं संस्थाप्य राजानं कारयामास तास्तथा॥४९॥
ययौ परमिकां सिद्धिं सर्वतृप्तिमयीं प्रभो।
तथा त्वमपि राजेन्द्र कुरुष्वैता महार्थदाः॥५०॥
तृप्तिं प्राप्स्यसि भूयिष्ठां क्षुधा नो पीडयिष्यति।
अन्नदानात्परं नास्ति त्रैलोक्ये प्रीतिवर्द्धनम्॥५१॥

बारह प्रकार की गायें

होता ने क्षुधा और तृषा को दूर होने का उपाय बतलाया। उसने कहा कि प्रथम तिलधेनु, दूसरी जलधेनु है॥४६॥

तीसरी रसधेनु, चौथी गुड़धेनु, पाँचवीं शर्करा की धेनु, छठीं मधु की धेनु और सातवीं क्षीर (दूध) की धेनु कही गयी है॥४७॥

आठवीं दधिधेनु, नवमी नवनीत (मक्खन) की धेनु, तदनन्तर लवणधेनु, कार्पास की बनी धेनु एवं धान्यधेनु—ये बारह धेनुएँ बतायी गयी हैं। इसलिए पुरोहित ने घटस्थापन कर राजा से इन्हीं सभी प्रकार की धेनुओं का दान करवाया॥४८-४९॥

ऐसा करने से उस राजा को सम्पूर्ण तृप्ति रूप परम सिद्धि का लाभ हुआ। ये सब महान् प्रयोजन को प्रदान करने वाले हैं। इसलिए हे राजेन्द्र! तुम भी इन धेनुओं का दान करो॥५०॥

ऐसा करने से तुम्हें भूयसी तृप्ति की प्राप्ति होगी और फिर क्षुधा भी बाधित नहीं करेगी; क्योंकि अन्नदान के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा उत्कृष्ट दान नहीं है, जो सबकी प्रीति की वृद्धि करता हो॥५१॥

स्कन्द उवाच

वसिष्ठोऽपि महाराज कारयामास राजतः।
क्षुन्निवृत्तिकरं चैव धेनूनां वितरं तथा॥५२॥
अन्नदानात्परां तृप्तिं प्राप श्वेतो नराधिपः।
विमानवरमारुह्याप्सरोगणसमन्वितः॥५३॥
सिद्धैः संस्तूयमानो वै जगाम परमं पदम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अन्नदानपरो भवेत्॥५४॥
मुष्टिमात्रमपि क्षेत्रे गङ्गाद्वारे विशेषतः।
अन्नं ददाति विप्राय तृप्तः स्यात्कल्पपञ्चकम्॥५५॥
अन्नदो राज्यमाप्नोति ह्यन्नदो गतिमुत्तमाम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शक्त्या चान्नप्रदो भवेत्॥५६॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्येऽन्नदानमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशशततमोऽध्यायः ।।१११।।

स्कन्द ने कहा

हे महाराज! मुनि वसिष्ठ ने भी राजा श्वेत से उन बारह प्रकार की धेनुओं का दान करवाया; क्योंकि क्षुधा की निवृत्ति करने वाला यही एक उपाय है।।५२।।

तदनन्तर अन्नदान करने के कारण राजा श्वेत ने परम तृप्ति को प्राप्त किया, इसके बाद अप्सराओं सहित श्रेष्ठ विमान में आरूढ़ हुआ।।५३।।

उस समय सिद्धगण उसकी स्तुति कर रहे थे। इस प्रकार वह परम पद मोक्ष को प्राप्त किया। इसलिए पूर्ण प्रयत्न के साथ अन्न के दान करने में तत्पर होना चाहिए।।५४।।

किसी क्षेत्र में अथवा विशेष कर हरिद्वार में जो कोई एक मुट्ठी भी ब्राह्मण को अन्न का दान देता है, वह पाँच कल्पपर्यन्त तृप्त रहता है।।५५।।

अन्न का दान करने वाले को राज्य की प्राप्ति होती है। अन्न के दाता को ही उत्तम गति की प्राप्ति होती है। इसलिए पूर्ण प्रयत्न के साथ अन्न का दान करने में तत्पर होना चाहिए।।५६।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ ग्यारह अध्याय पूर्ण हुआ।।१११।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-४१४+५६=४७०]



अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गया स्वावर्तेन तपस्यतो दत्तात्रेयस्य कुशानामपहरणमतस्तत्स्थलस्य मायापुरीप्रदेशे कुशावर्तनाम्ना प्रसिद्धिः

कार्त्तिकेय उवाच

कुशावर्त्तं महातीर्थं दक्षिणे ब्रह्मतीर्थतः।
तत्र स्नात्वा महाभाग न च भूयोऽभिजायते॥१॥
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
यदत्र क्रियते कर्म तत्तत्स्यात्कोटिसंख्यकम्॥२॥
पुरा गङ्गागमे मौनी दत्तात्रेयो महातपाः।
तस्थावेकेन पादेन वर्षाणामयुतं मुनिः॥३॥

गङ्गा के आवर्त द्वारा तपस्वी दत्तात्रेय के कुशा का अपहरण के कारण उस स्थान की कुशावर्त नाम से प्रसिद्धि

कार्तिकेय ने कहा

ब्रह्मतीर्थ से दक्षिण की ओर कुशावर्त्त नाम वाला महान् तीर्थ है। हे महाभाग! उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता है।।१।।

यहाँ जो स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और पितरों का तर्पणरूप कर्म किया जाता है, वह करोड़ गुना अधिक फल देने वाला होता है।।२।।

पूर्वकाल में जब गङ्गा का आगमन हुआ था, उस समय महान् तपस्वी, मौन-व्रत धारण करने वाले दत्तात्रेय नाम वाले मुनि ने दस सहस्र वर्षों तक एक पैर पर स्थित होकर तप का आचरण किया था।।३।।

कुशचीराणि दण्डं च कुण्डीं चोवाह जाह्नवी।
आवर्त्तेऽपि पुनरसौ कुशान् धृतवती मुने:॥४॥
आप्लुतॉंस्तान् कदाचित्तु ददर्श कुशचीरकान्।
वहमानान् महाभाग गङ्गामावर्त्ततां गताम्॥५॥
क्रुद्धो महामुनिस्तां तु यावद्भस्मीकरोति च।
तावत्सर्वे समायाता ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकस:॥६॥
तुष्टुवु: परमं भक्त्या कार्त्तवीर्यगुरुं मुनिम्।
संस्तुतश्च प्रसन्नोऽभूद् ब्रह्मादींस्तानुवाच ह॥७॥
अत्रैव भवतां स्थानं नित्यं स्यात्तीर्थके वरे।
आवर्त्तनाद्यतो गङ्गा कुशान् धृतवती मम॥८॥
कुशावर्त्तमिति ख्यातं तीर्थमेतद् भविष्यति।
धन्या लोका: करिष्यन्ति स्नानं पितृसमर्चनम्॥९॥

उसी समय जह्नुतनया गङ्गा ने उनके कुशा, वस्त्र, दण्ड और कुण्डी को अपनी धारा में हरण कर लिया। इस प्रकार पुन: पुन: मुनि के कुशाओं को वे अपनी धारा में हरण करती रहीं।।४।।

हे महाभाग! किसी समय दत्तात्रेय जी ने अपने कुश और वस्त्रों को गङ्गा के आवर्तों के मध्य में बहते हुए अत एव भींगे हुए देखा।।५।।

तब क्रोधित होकर महामुनि जैसे ही उन्हें भस्म करने के लिए उद्यत हुए, उसी समय ब्रह्मा आदि समस्त देवता वहाँ आ गये।।६।।

सभी लोग सहस्रार्जुन के गुरु महामुनि दत्तात्रेय जी की स्तुति करने लगे। उनके द्वारा स्तुति करने से प्रसन्न होकर मुनीश्वर ने ब्रह्मा आदि देवताओं से कहा।।७।।

इस श्रेष्ठ तीर्थ में आप सभी देवता स्थित रहें और आवर्त्तन करके गङ्गा ने हमारे कुशाओं को यहाँ रखा है, अत एव यह तीर्थ कुशावर्त नाम से विख्यात होगा। जो लोग इस तीर्थ में स्नान और पितरों का अर्चन करेंगे, वे धन्य होंगे।।८-९।।

तत्पितॄणां च तस्यापि न स्याज्जन्म पुनः क्वचित्।
कुशावर्त्ते महातीर्थे दत्तं स्यात्कोटिसंख्यकम्॥१०॥
इति ते कथिता व्युष्टिः कुशावर्त्तस्य पुण्यदा।
श्रुत्वाप्येतां महोत्पत्तिं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥११॥

।।इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायापुरीमाहात्म्ये द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः।।११२।।

यहाँ स्नान और पितरों की अर्चा करने वाले मनुष्य के पितरों का और उनका पुनर्जन्म कहीं नहीं होगा। इस कुशावर्त तीर्थ में दिया गया दान करोड़ गुना अधिक फल देने वाला हो जायेगा।।१०।।

इस प्रकार हमने कुशावर्त तीर्थ की उत्पत्ति और माहात्म्य का वर्णन किया है, यह आख्यान अत्यन्त पुण्यदायक है। इस तीर्थ की उत्पत्ति का आख्यान सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।११।।

।।इस प्रकार स्कन्दपुराण के केदारखण्ड में एक सौ बारह अध्याय पूर्ण हुआ।।११२।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-४७०+११=४८१]



अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

विष्णुतीर्थे धर्मध्वजस्य राज्ञो दुर्वाससश्शापेनोरगत्वप्राप्तेराख्यानम्

स्कन्द उवाच

ततो दक्षिणदिग्भागे विष्णुतीर्थं धनुःशते।
अत्र स्नात्वा परं ब्रह्मलीनो भवति निश्चितम्।।१।।
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम्।
कृष्णसर्प्पो महानेको दृश्यते फणमण्डितः।।२।।
भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां जलमध्ये प्रयाति च।
तत्र स्नाति पुनः श्वभ्रे निविष्टो भवति क्षणात्।।३।।
केनचित्कारणेनाऽसौ राजा परमधार्मिकः।
शप्तो दुर्वाससा विप्र पुरा कृतयुगे वरे।।४।।

विष्णुतीर्थ में राजा धर्मध्वज का दुर्वासा के शाप से सर्पयोनि की प्राप्ति का आख्यान

स्कन्द जी ने कहा

कुशावर्त तीर्थ से दक्षिण की ओर सौ धनुष की दूरी पर विष्णुतीर्थ है। उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य निश्चित ही ब्रह्म में लीन हो जाता है।।१।।

अब उसके चिह्न का वर्णन करता हूँ, जिससे कि उस शुभ तीर्थ का ठीक-ठीक ज्ञान हो सके। वहाँ विशाल फण से सुशोभित एक महान् कृष्णसर्प दिखाई पड़ता है।।२।।

वह सर्प भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष चतुर्दशी के दिन जल में प्रवेश करता है, उसमें स्नान करते ही वह आकाश में लय हो जाता है।।३।।

हे विप्र! यह परम धार्मिक राजा था। परन्तु श्रेष्ठ कृतयुग में किसी कारण से मुनि दुर्वासा ने इसे शाप दे दिया था।।४।।

राज्ञो धर्मध्वजस्य दुर्वाससः शापस्य वृत्तान्तम्

नारद उवाच

केन वै कारणेनायं शप्तो राजा महायशाः।
किन्नामायं कार्त्तिकेय कुत्रत्यश्च नराधिपः॥५॥
शापस्यान्तः कदैतस्य भविष्यति महामते।
अनेन किं कृतं राज्ञा तस्य दुर्वाससो मुनेः॥६॥

स्कन्द उवाच

शृणु नारद वृत्तान्तं राज्ञश्चापि तपोनिधेः।
पुरा कृतयुगे राजा सूर्य्यवंशविवर्द्धनः॥७॥
नाम्ना धर्मध्वज इति ख्यातो रिपुविनाशनः।
कृत्वा बहुविधान् यज्ञान् समाप्तवरदक्षिणान्॥८॥
वनितासहितस्तप्तुं गङ्गाद्वारे समाययौ।
अत्रागत्य महातेजा न्यवसद्विष्णुतत्परः॥९॥

राजा धर्मध्वज को दुर्वासा के शाप का वृत्तान्त

नारद ने कहा

दुर्वासा ने इस महायशस्वी राजा को किस कारण शाप दिया था? हे कार्तिकेय जी! उसका क्या नाम था? और वह कहाँ का राजा था?॥५॥

हे कार्तिकेय! इनके शाप का अन्त कब होगा? इन्होंने दुर्वासा मुनि का क्या अपकार किया था॥६॥

स्कन्द ने कहा

हे नारद! राजा और तपस्वी के वृत्तान्त का श्रवण करो। पहले सत्ययुग में सूर्यवंश की वृद्धि करने वाला एक राजा था॥७॥

वह धर्मध्वज नाम से विख्यात हुआ। वह शत्रुओं का विनाश करने वाला था। वह बड़े-बड़े यज्ञों को आरम्भ कर प्रभूत दक्षिणा देकर पूर्ण करता था॥८॥

बहुत दिनों के बाद अपनी पत्नी को साथ लेकर तप करने के लिए वह हरिद्वार में आया। यहाँ आकर वह भगवान् विष्णु की भक्ति में तत्पर होकर निवास करने लगा॥९॥

एकदा धर्मकेतुस्तु स्नात्वागत्य[१] गृहे स्वके।
ददर्श मुनिमासीनं पीठे दुर्वाससं वरम्॥१०॥
दृष्ट्वा तं सहसा राजा पादयोः प्रपपात ह।
पाद्यमाचमनीयं च स्वासनं चार्घसंयुतम्॥११॥
ददौ तस्मै महाभाग विधिदृष्टेन कर्मणा।
उवाच वचनं चेदं स्वागतं ते महामुने॥१२॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य ते गृहमागमः।
किमागमनकृत्यं ते कार्यं किं करवाणि तत्॥१३॥

दुर्वासा उवाच

सम्प्राप्तो भोक्तुकामोऽहं पारणस्य दिनं त्विदम्।
शीघ्रं भोजय मां राजन् क्षुधितोऽस्मि परं विभो॥१४॥

एक समय वह धर्मध्वज राजा स्नान कर जब अपने घर में आया, तब उसने सिंहासन पर बैठे हुए मुनि दुर्वासा को देखा।।१०।।

उन्हें देखते ही राजा ने तत्काल उनके चरणों में गिरकर प्रणाम किया। इसके बाद शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पाद्य, आचमनीय, सुन्दर आसन और अर्घ प्रदान किया।।११।।

उस राजा ने विधि के अनुसार कर्म से उन्हें सत्कार प्रदान किया। इसके बाद उसने यह वचन कहा—हे महामुने! आपका स्वागत है।।१२।।

आज मैं धन्य हो गया हूँ, मैं अनुगृहीत हुआ हूँ; क्योंकि आप जैसे महात्मा का आगमन मेरे घर हुआ है। आपके आगमन का क्या प्रयोजन है, मैं आपका कौन कार्य सम्पादन करूँ।।१३।।

दुर्वासा जी ने कहा

हे राजन्! आज मेरे व्रत के अन्त में भोजन का दिन है। इसलिए भोजन करने की कामना से मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। हे विभु! मैं भूख से अत्यन्त व्याकुल हूँ। अतः मुझे शीघ्र ही भोजन कराओ।।१४।।

---

१. गत्येति ख.।

स्कन्द उवाच

इति श्रुत्वा निगदितं मुनेर्दुर्वाससो नृपः।
तयेत्युक्त्वा ययावन्तर्गृहं कर्तुं महामुने॥१५॥
सम्पादयति भोज्यं च यावद्राजा महामतिः।
सूकरास्यः समायातो भ्रातुर्वैरमनुस्मरन्॥१६॥
विघ्नं वै कर्त्तुमारब्धो दृष्ट्वा दुर्वाससं मुनिम्।
सर्पो भूत्वा स्वयं रक्ष एकान्ते भोज्यपात्रके॥१७॥
उत्ससर्ज महाक्ष्वेडं तदन्ने भक्तितोऽर्जिते।
न ज्ञातं तन्महीभर्त्रा कृतं यद्रक्षसा मुने॥१८॥
प्रवेशयामास मुनिं भोक्तुं भोज्यं ततः परम्।
यावदग्रे समायाति ज्ञातं तावद्विषोल्वणम्॥१९॥
विषसंवलितं दृष्ट्वा भोजनं स्वर्णपात्रके।
क्रुद्धो मुनिः शशापैनं धर्मकेतुं नराधिपम्॥२०॥

स्कन्द ने कहा

जब राजा ने मुनि दुर्वासा के ऐसे वाक्य को श्रवण किया, तब उसने कहा— हे महामुनि! बहुत अच्छा है, यह कहकर वे घर के भीतर चले गये।।१५।।

जब राजा भोजन की तैयारी करने लगा, उसी समय एक राक्षस, जिसका मुख सूकर के समान था, अपने भाई के वैर का स्मरण करता हुआ वहाँ आया।।१६।।

वह दुर्वासा मुनि को देखकर भोजन में विघ्न डालने के लिए सन्नद्ध हुआ। वह राक्षस एकान्त में स्वयं एक सर्प बन गया।।१७।।

उसने भोजन के लिए रखे गये अन्न वाले पात्र में, जिसको राजा ने भक्तिपूर्वक एकत्रित किया था, उस अन्न में महान् विष का परित्याग कर दिया। हे मुनि नारद! परन्तु पृथ्वी के पालन करने वाले राजा को यह ज्ञात नहीं हुआ, जो उस राक्षस के द्वारा किया गया था।।१८।।

तदनन्तर राजा ने भोजन करने के लिए मुनि को भोजनभवन में प्रवेश कराया, जैसे ही मुनि आगे चलते हैं, तब उन्होंने जान लिया कि इस अन्न में महान् विष मिला हुआ है।।१९।।

सुवर्ण के पात्र में विषमिश्रित भोजन सामग्री को देखकर क्रोधित मुनि ने उस मनुष्यों के स्वामी धर्मकेतु को शाप दे दिया।।२०।।

यस्मात्त्वया विषोत्सृष्टं भोज्यं मे दीयतेऽधम।
तस्मात्त्वं भविता दुष्टः कालसर्पः शतं समाः॥२१॥
उत्सृष्टं तु तदा दृष्ट्वा शापाग्निं मुनिनेरितम्।
वेपमानो महीभर्त्ता भयार्त्तो निजगाद तम्॥२२॥
ब्रह्मन्नहं कथं शप्तो विचार्याघं मम प्रभो।
इति प्रोक्तो मुनिस्तेन दध्यौ रक्षोविचेष्टितम्॥२३॥
ज्ञात्वा लज्जासमायुक्तो दुर्वासा मुनिपुङ्गवः।
उवाच तु महाराजं वेपमानं कृताञ्जलिम्॥२४॥
कृतमेतन्महाराज शत्रुणा तव रक्षसा।
वसात्रैव च नृपते विष्णुतीर्थे सुपुण्यदे॥२५॥
अहमत्रागमिष्यामि युगान्ते नरपुङ्गव।
मां दृष्ट्वा सहसा गन्ता तद्विष्णोः परमं पदम्॥२६॥

अरे नीच! क्योंकि तुमने मुझे विषसंयुक्त भोजन दिया है, अत एव तुम सौ वर्षपर्यन्त कृष्णसर्प बनकर निवास करो।।२१।।

जब राजा ने मुनि के द्वारा प्रयोग की गयी शापाग्नि को उठते हुए देखा, तब वह भूपति काँपने लगा और भयातुर होकर मुनि से बोला।।२२।।

हे ब्रह्ममूर्ति, प्रभो! आपने मुझे शाप क्यों दे दिया। आप यह विचार करें कि इसमें अपराध ही क्या है? इस प्रकार राजा के द्वारा कहे जाने पर ध्यानमग्न होकर मुनि ने राक्षस का सम्पूर्ण वृत्तान्त समझ लिया।।२३।।

यह सब वृत्तान्त जानकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा अत्यन्त लज्जित हुए। तदनन्तर हाथ जोड़े हुए कम्पायमान राजा से उन्होंने कहा।।२४।।

हे महाराज! यह सब कुछ दुष्टाचरण तुम्हारे शत्रु राक्षस ने किया है। अत एव निरपराध होने के कारण आप इस पुण्य प्रदान करने वाले विष्णुतीर्थ में निवास करते रहें।।२५।।

हे नरशार्दूल! युग के अन्त में मैं यहाँ पुनः आऊँगा। उस समय आप हमारा दर्शन कर तत्काल ही भगवान् विष्णु के परम धाम को चले जायेंगे।।२६।।

दुःखं नात्र प्रकर्त्तव्यं शापान्तो भविता तव।
प्रियया सहितो विष्णोः सायुज्यं प्राप्स्यसेऽचिरात्॥२७॥
इयं चापि महाभाग सर्पिणी भविता खलु।
गोपनार्थं स्वजातेश्च मा शोचस्व महीपते॥२८॥
गङ्गाद्वारं परं क्षेत्रं यत्र ब्रह्मादयः सुराः।
निवसन्ति विमुक्त्यर्थं येन केनापि योनिना॥२९॥
खेदस्त्वया न कर्त्तव्यो भुजङ्गमशरीरतः।
ज्ञानं च भविता तत्र मोक्षमार्गप्रदर्शकम्॥३०॥
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो बदरीविपिने ततः।
सोऽपि राजा महाबाहुः सर्पदेहोऽभवन्मुने॥३१॥
सपत्नीको महाभाग हरिद्वारे सुरालये॥३२॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे गङ्गाद्वारमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११३।।

इस विषय में आपको दुःख का अनुभव नहीं करना चाहिये। आपके शाप का अन्त होना है। आप शीघ्र ही अपनी प्रिय पत्नी के साथ भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करेंगे।।२७।।

हे महाभाग! आप शोक मत करें। आपकी पत्नी भी अपनी जाति को गुप्त रखने के लिए सर्पिणी बन जायेगी।।२८।।

यह गङ्गाद्वार (हरिद्वार) परम पवित्र क्षेत्र है, जहाँ ब्रह्मा आदि देवता भी मुक्ति प्राप्त करने के लिए जिस किसी योनि में निवास करते हैं।।२९।।

इसलिए आप इस सर्प के शरीर प्राप्त करने के कारण शोक न करें। उस सर्प योनि में भी आपको मोक्षमार्ग को दिखाने वाला ज्ञान प्राप्त रहेगा।।३०।।

यह कहकर दुर्वासा मुनि तो बदरीवन चले गये। हे महाभाग! वह महाबाहु राजा भी अपनी पत्नी के साथ सर्प बनकर देवस्थान हरिद्वार में निवास करने लगा।।३१-३२।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के केदारखण्ड में एक सौ तेरह अध्याय पूर्ण हुआ।।११३।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-४८१+३२=५१३]



अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

तपस्यते तटासुरायाशरीरिण्या वाण्या वरप्रदानम्

नारद उवाच

सूकरास्यो महाभाग को वाऽसौ राक्षसाधमः।
अस्य भ्राताऽपि को वाऽऽसीत् किमर्थं नृपरक्षसोः॥१॥
अभूद्वैरं कदा वैरं सर्वं मे विस्तराद्वद।
कुत्रैतयोस्तु संस्थानं किं कृतं रक्षसा पुरा॥२॥

स्कन्द उवाच

आसीद्दनुकुले विप्र तटो नामाऽसुराधिपः।
सैकदा हिमवत्पार्श्वे दक्षिणे मुनिसेविते॥३॥
पिण्डारकनदीतीरे रम्ये परमदारुणम्।
तपस्तेपे निराहारो वर्षाणामयुतं किल॥४॥

तटासुर को आकाशवाणी द्वारा वरप्रदान

नारद ने कहा

हे महाभाग! सूकर के मुख वाला वह नीच राक्षस कौन था? इस दैत्य का भ्राता कौन था? राजा और राक्षस इन दोनों में वैर कब हुआ और किस कारण हुआ था॥१॥

इन दोनों का स्थान कहाँ था? साथ ही प्राचीनकाल में उस राक्षस ने क्या किया था? यह सब विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥२॥

स्कन्द ने कहा

हे विप्र! दनु के कुल में तट नाम वाला एक असुरों का स्वामी हुआ था। एक समय हिमालय के दक्षिण पार्श्व में, जो मुनियों से सेवित था॥३॥

उसने दश हजार वर्षपर्यन्त निराहार रहकर पिण्डारक नामक नदी के तट पर परम उग्र तप किया॥४॥

तस्य वै तपसा त्रस्तास्त्रयो लोकाः सवासवाः।
अथाऽशरीरिणीं वाणीमाकाशे ह्यशृणोत्ततः॥५॥
साधु साधु तट साधु दुर्द्धर्षं तप उत्तमम्।
किं कृत्यं ते हि तपसा त्रैलोक्ये नास्ति दुर्लभम्॥६॥
इति श्रुत्वा तटो वाणीं जगाद वचनं त्विदम्।
यदि मे वै तपस्तप्तं ततः स्यां विष्णुभक्तियुक्॥७॥
विष्णुभक्तिविहीनानां मुक्तिः स्वप्नेऽपि दुर्लभा।
न काङ्क्षेऽपि त्रिलोकानां राज्यं निहतकण्टकम्॥८॥
श्रुत्वा तद्वचनं तत्र पुनः प्रोचेऽशरीरिणी।
धन्योऽसि दानवश्रेष्ठ यस्य ते मतिरीदृशी॥९॥
तपसा तव सन्तुष्टो[१] विष्णोस्त्वं स्थानमेष्यसि।
पुत्रौ द्वौ भवितारौ ते तयोरेकस्तु वंशधृक्॥१०॥

उसके उस प्रकार के तप से इन्द्र आदि सब देवता और तीनों लोक भयभीत हो गया। इसके बाद उस राक्षसेश्वर ने एक बार बिना शरीर वाली आकाश में एक वाणी सुनी।।५।।

हे तट! तुम धन्य हो, धन्य हो। तुमने अति उग्र और उत्तम तप किया है। तुम्हारे इस तप के प्रभाव से इन तीनों लोकों में कोई भी कार्य दुर्लभ नहीं है।।६।।

इस प्रकार की आकाशवाणी को सुनकर तट बोला—यदि मेरा तप सफल हुआ है, तो मुझे विष्णु भगवान् की भक्ति का लाभ मिलना चाहिये।।७।।

इसका कारण यह है कि जो विष्णु की भक्ति से विमुख हैं, उनके लिए तो स्वप्न में भी मोक्ष की प्राप्ति दुर्लभ है। मैं तो शत्रुरूपी कण्टक से रहित त्रिलोकी के राज्य की भी अभिलाषा नहीं करता हूँ।।८।।

तट के इस प्रकार के वचन को सुनकर अशरीरिणी वाणी ने पुनः कहा—हे दानवश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, क्योंकि तुम्हारी इस प्रकार की श्रेष्ठ बुद्धि है।।९।।

जब तुम तपस्या के आचरण से सन्तुष्ट हो जाओगे, तब तुम्हें विष्णु-लोक की प्राप्ति होगी। तुम्हें दो पुत्रों की भी प्राप्ति होगी, उसमें तुम्हारा एक पुत्र वंश को धारण करने वाला होगा।।१०।।

---

१. सन्तुष्टे इति ख.।

तपसा हतपापस्त्वं विष्णोश्चैव प्रसादतः।
अन्ते च परमं स्थानं यास्यसि योगिदुर्लभम्॥११॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा तटो नाम तपोनिधिः।
तत्रैव निवसन् सोऽपि विष्णुपूजनतत्परः॥१२॥

तटासुरेण कालखञ्जदुहितुः पाणिग्रहणं तस्यां शूकरास्यगजास्ययोरुत्पत्तिः

कालखञ्जसुतां प्राप विवाहविधिना ततः।
द्वौ पुत्रौ समये प्राप शूकरास्यगजाननौ॥१३॥
राक्षसीं बुद्धिमापन्नौ पीडयामासतुर्मुनीन्।
खादयामासतुः कांश्चित्कांश्चिज्जग्राह लोमसु॥१४॥
पाटयामासतुः कांश्चिच्चक्रतू रुधिराशनम्।
एवं पीडयतोर्विप्र मुनीन् राक्षसयोस्तयोः॥१५॥

तपस्या के अनुष्ठान से तुम्हारे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये हैं। इसलिए भगवान् विष्णु की कृपा से तुम्हें उस परम पद की प्राप्ति होगी, जो योगियों के लिए भी दुर्लभ है।।११।।

तपोनिधि तटासुर इस प्रकार की आकाशवाणी को सुनकर भगवान् विष्णु की आराधना में तत्पर हो गया और उसी स्थान में निवास करने लगा।।१२।।

तटासुर का कालखञ्ज की पुत्री से विवाह, उससे सूकरास्य एवं गजास्य की उत्पत्ति

तदनन्तर उसने विवाह की विधि से कालखञ्ज की पुत्री का पाणिग्रहण किया। कुछ समय के पश्चात् उसे शूकरास्य और गजास्य नामक दो पुत्रों की प्राप्ति हुई।।१३।।

तट के दोनों पुत्रों की राक्षसी बुद्धि थी, इसलिए वे दोनों मुनियों को कष्ट देते थे। वे दोनों किसी को खा जाते थे, तो किसी का रोम पकड़ कर खींचते थे।।१४।।

वे दोनों किसी को पीटने लगते थे, तो किसी को पकड़कर उसके रुधिर का पान कर जाते थे। हे विप्र नारद! इस प्रकार वे दोनों मुनियों को पीड़ा देने लगे।।१५।।

मुनितपोऽन्तरायभूतस्य गजास्यस्य धूमकेतुनृपेण वधः

मुनयस्त्रासमापन्ना राजानं शरणं ययुः।
धर्मध्वजं महाराजं त्राहि त्राहीति वादिनः॥१६॥
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे शूकरस्य भयार्दिताः।
त्राहि नो रक्षसोर्वीर ते वयं शरणं गताः॥१७॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा धर्मात्मा सत्सङ्गरः।
मा भैष्ट इति प्रोवाच सम्पूज्य च यथार्हतः॥१८॥
गृहीत्वा सशरं चापं नगराद्बहिराययौ।
लोकैः परिवृतो युक्तो हेलया जेतुमाव्रजत्॥१९॥
यत्रासाते महाभाग राक्षसौ कामरूपिणौ।
आह्वयामास तौ वीरौ धर्मकेतुरमू रिपू॥२०॥
श्रुत्वा कोलाहलं तस्य राक्षसौ ययतुः क्षणात्।
रक्तेक्षणौ रक्तकेशौ रक्तमाल्यानुलेपनौ॥२१॥

मुनियों के तप में विघ्नभूत गजास्य का राजा धूमकेतु द्वारा वध

उन दोनों राक्षसों से भयभीत होकर ऋषिगण राजा की शरण में गये। ऋषिगण धर्मध्वज राजा के समीप जाकर कहने लगे—हे राजन्! हमारी रक्षा करें, रक्षा करें।।१६।।

तदनन्तर सूकरास्य के भय से व्याकुल हुए मुनिजन हाथ जोड़कर राजा से बोले—हे वीर! हम लोग आपकी शरण में आये हैं, राक्षसों के भय से हमारी रक्षा कीजिये।।१७।।

उन महर्षियों के इस प्रकार के वचन को सुनकर सत्यप्रतिज्ञ धर्मात्मा राजा ने कहा—आप लोग किसी प्रकार का भय न करें। इसके बाद राजा ने उन लोगों का यथोचित पूजन एवं सत्कार किया।।१८।।

तत्पश्चात् राजा धर्मध्वज बाण सहित धनुष लेकर नगर के बाहर आया। लोक-समाज से परिवृत्त होकर खेल ही खेल में दैत्यों पर विजय प्राप्त करने के लिए चल दिया।।१९।।

हे महाभाग! इच्छा के अनुसार रूप बनाने वाले वे दोनों राक्षस जहाँ निवास करते थे, वहाँ पहुँचकर धर्मकेतु राजा ने उन दोनों शत्रु राक्षसों को ललकारा।।२०।।

उनके आह्वान के कोलाहल को सुनकर वे दोनों तत्काल ही निकल पड़े। उस समय उन दोनों की दृष्टि लाल-लाल हो रही थी, उनके केश, माला और अनुलेपन भी रक्त वर्ण के थे।।२१।।

बृहद्दन्तौ बृहत्कायौ घोरौ भीरुभयानकौ।
दृष्ट्वा तौ युयुधे राजा धर्मात्मा सत्यसङ्गरः॥२२॥
नाराचैरसिभिश्चैव गदाभिर्मुशलैस्तथा।
वृक्षैर्महीधरश्रृङ्गैः क्षेपणीयाश्मसङ्ग्रहैः॥२३॥
युध्यतां तुमुलः शब्दः शुश्रुवे गिरिकन्दरे।
अश्मनां चर्मणां चैव शूलानामसिनां तथा॥२४॥
एतस्मिन्नन्तरे राजा गजास्यं बाणजालकैः।
छादयामास सहसा व्याकुलोऽभूच्च राक्षसः॥२५॥
ततोऽर्द्धचन्द्रबाणेन शिरश्चिच्छेद रक्षसः।
पपात सहसा भूमौ वज्राहत इवाऽचलः॥२६॥
अलकनन्दोत्तरे तीरे क्षेत्रे श्रीसंज्ञके शुभे।
तन्मांसास्थिमयो विप्र पर्वतो दृश्यते महान्॥२७॥

उन दोनों राक्षसों के दाँत बड़े-बड़े और शरीर भी विशाल थे, वे अत्यन्त भयानक दिखाई पड़ रहे थे, यद्यपि वे डरपोकों के लिये डरावने थे। उन दोनों को देखकर सत्यप्रतिज्ञ धर्मात्मा राजा धर्मध्वज युद्ध करने लगा।।२२।।

इस युद्ध का समारम्भ बाणों, तलवारों, गदा और मुसलों, पर्वत के शिखरों और वृक्षों तथा प्रहार करने योग्य पाषाणखण्डों से हुआ।।२३।।

युद्ध करो, युद्ध करो—यही घोर शब्द गिरिकन्दराओं में श्रवणगोचर होता था। वहाँ पाषाण, चर्म (ढाल), त्रिशूल तथा खड्गों का ही शब्द गूँज रहा था।।२४।।

इसी बीच राजा धर्मध्वज ने गजास्य को बाणों के जाल से आच्छादित कर दिया, तब वह राक्षस अत्यधिक व्याकुल हो गया।।२५।।

तदनन्तर राजा ने अर्द्धचन्द्राकार बाण से उस राक्षस के शिर को काट गिराया। उस समय वह राक्षस वज्र से आहत पर्वत के समान तत्काल ही भूमि पर गिर पड़ा।।२६।।

हे विप्र! अलकनन्दा के उत्तर भाग में श्रीसंज्ञक शुभ क्षेत्र में उस राक्षस गजास्य के मांस और अस्थियों का ढेर महान् पर्वत के समान दृष्टिगोचर हो रहा है।।२७।।

गजाचल इति ख्यातस्तत्रास्ते ब्रह्मपुत्रकः[१]।
शूकरास्योऽपि तद् दृष्ट्वा कर्म राज्ञो महोल्बणम्।।२८।।
ययौ कैलासनिलये महादर्पो भयान्वितः।
गजास्यो दिवमापन्नो देववैमानिकैर्युतः।।२९।।
ययौ परमिकां सिद्धिं मरणाद्धि हिमालये।
अज्ञानादपि यद्रक्षोऽनेकब्रह्मवधादिकम्।।३०।।
सम्प्राप परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम्।
इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं त्वया द्विज।।३१।।
श्रुत्वा धर्मध्वजस्येदमुपाख्यानं सुपुण्यदम्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः सत्यमेतन्न संशयः।।३२।।

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये धर्मध्वजोपाख्यानवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः।।११४।।

वही अस्थियों का ढ़ेर गजाचल के नाम से प्रसिद्ध हो गया, वहाँ ब्रह्मा के पुत्र निवास करते हैं। शूकरास्य ने राजा के इस प्रकार के अतिभयङ्कर कर्म को देखा।।२८।।

यद्यपि वह महान् अभिमानी था, तथापि अतिभयातुर हो कैलास क्षेत्र में चला गया। इधर गजास्य विमानों में आरूढ़ होकर देवता से पूर्ण स्वर्ग में चला गया।।२९।।

हिमालय क्षेत्र में मृत्यु होने के कारण ही उसे इस प्रकार की परम सिद्धि की प्राप्ति हुई। यद्यपि अनेक ब्राह्मण आदि के वध करने वाले उस राक्षस का शरीर क्षेत्र का प्रभाव न जानते हुए ही वहाँ छूटा था।।३०।।

तथापि उसे देवदुर्लभ परम पद की प्राप्ति हुई। हे द्विज नारद! आपने जो कुछ पूछा था, हमने उन सबका वर्णन तुम्हारे प्रति किया है।।३१।।

राजा धर्मध्वज के पुण्य को प्रदान करने वाले इस आख्यान को श्रवण कर मनुष्य सचमुच सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३२।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ चौदह अध्याय पूर्ण हुआ।।११४।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-५१३+३२=५४५]



---

१. ब्रह्मपुत्रकेति ख.।

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

सप्तसामुद्रिकतीर्थे समुद्रेश्वरस्य वर्णनम्

स्कन्द उवाच

अन्यानि तीर्थवर्याणि सर्वपापहराणि वै।
कथयामि श्रृणु प्राज्ञ गङ्गायां नारदाधुना॥१॥

गङ्गायाः पश्चिमे कूले कुशावर्तादधः शरे।
सप्तसामुद्रिकं नाम तीर्थं परमपावनम्॥२॥

यत्र स्नात्वा महाभाग शिवलोके महीयते।
पुरा तत्र समुद्रैश्चाराधितो भगवाञ्छिवः॥३॥

समुद्रेश्वरो महादेवः सर्वकामफलप्रदः॥४॥

स्वर्णबद्धीश्वरमहादेवस्य वर्णनम्

ततो वै दक्षिणे भागे स्वर्णबद्धीश्वरः शिवः।
सकृद्दृष्ट्वा तु तं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥५॥

सप्तसामुद्रिक तीर्थ में समुद्रेश्वर का वर्णन

स्कन्द ने कहा

हे बुद्धिमान् नारद! समस्त पापों के हरण करने वाले अन्य भी बहुत तीर्थ हैं, अब मैं उनका वर्णन करता हूँ, आप श्रवण करें।।१।।

गङ्गा के पश्चिमी तट पर कुशावर्त से नीचे एक बाण के प्रमाण की दूरी पर सप्तसामुद्रिक नामक एक परम पवित्र तीर्थ है।।२।।

हे महाभाग! उस तीर्थ में स्नान करने से शिवलोक में ऐश्वर्यों का भोग प्राप्त होता है। प्राचीनकाल में उस स्थान पर समुद्रों ने भगवान् शिव की आराधना की थी।।३।।

वहाँ समुद्रेश्वर नाम के महादेव विद्यमान हैं, वे समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं।।४।।

स्वर्णबद्धीश्वर महादेव का वर्णन

वहाँ से दक्षिण के भाग में स्वर्णबद्धीश्वर नामक सर्वकल्याणकारक भगवान् महादेव हैं, उनका एक बार भी दर्शन करने से मनुष्य सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है।।५।।

शिवतीर्थे बिल्वेश्वरमहादेवस्य स्थितिः

ततोऽर्द्धकोशखण्डे वै शिवतीर्थमिति ध्रुवम्।
तत्र स्नात्वा महाभाग कैलासनिलये वसेत्॥६॥
तत्र बिल्वेश्वरो नाम महादेवो विमुक्तिदः।
यस्तत्र नियताहारः सप्तरात्रं जितेन्द्रियः॥७॥
जपते शिवमन्त्रं च रुद्रं चागमतत्परः।
परां सिद्धिमवाप्नोति या सुरैरपि दुर्ल्लभा॥८॥

गणेश्वरमहादेवस्य माहात्म्यम्

बिल्वपत्रैः समभ्यर्च्य न भूयः स्तनपो भवेत्।
ततः शरद्वये तीरे गङ्गायाः शुभदायकम्॥९॥
तीर्थं गणेश्वरं नाम सर्वपापप्रणाशनम्।
तत्र स्नात्वा महाभाग सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१०॥
यस्तत्र कुरुते पिण्डदानं पितृनिमित्तकम्।
दशवारं कृतं तेन गयाश्राद्धं न संशयः॥११॥

शिवतीर्थ में बिल्वेश्वर महादेव की स्थिति

वहाँ से आधे कोश के खण्ड में शिवतीर्थ है, यह निश्चित है। हे महाभाग! वहाँ स्नान करके मनुष्य कैलास धाम में निवास करता है।।६।।

वहाँ बिल्वेश्वर नाम वाले महादेव हैं, जो मुक्ति प्रदान करते हैं। जो मनुष्य नियत आहार करता हुआ सात रात्रिपर्यन्त जितेन्द्रिय होकर वहाँ निवास करता है।।७।।

वहाँ जो रुद्रशास्त्र में तत्पर होकर शिव के मन्त्र का जप करता है, वह उस परम सिद्धि को प्राप्त करता है, जो देवता को भी दुर्लभ है।।८।।

जो मनुष्य बिल्वपत्रों द्वारा बिल्वेश्वर महादेव का पूजन करता है, उसे पुन: कभी माता का स्तनपान करना नहीं होता, अर्थात् वह व्यक्ति जन्म-मरण से रहित होकर मुक्त हो जाता है।।९।।

गणेश्वर महादेव का माहात्म्य

वहाँ से दो बाण की दूरी पर गङ्गा जी के तट पर शुभ फल को प्रदान करने वाला एवं सभी पापों का नाश करने वाला गणेश्वर नामक तीर्थ है।।१०।।

उस तीर्थ में स्नान कर मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। हे महाभाग! जो व्यक्ति वहाँ पितरों के निमित्त एक बार भी पिण्डदान करता है, उसे नि:सन्देह दस बार गया में श्राद्ध करने का फल प्राप्त हो जाता है।।११।।

नारायणीशिलामाहात्म्यम्

ततः पश्चिमदिग्भागे शिला परमपावनी।
नाम्ना नारायणी ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी॥१२॥
यस्तत्र कुरुते श्राद्धं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
पितृवंश्याः शतं मातृवंश्याश्चापि तथा स्वयम्॥१३॥
तारिताः पितरस्तेन सत्यं सत्यं न संशयः।

पार्वतीश्वरस्य माहात्म्यम्

गङ्गायाः पूर्वदिग्भागे पार्वतीश्वरसंज्ञितः॥१४॥
पार्वत्या यत्र नितरां पूजितो भगवाञ्छिवः।
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वं पापं प्रणश्यति॥१५॥
गङ्गातो दण्डदशके शिवः परमपावनः।
यद्दर्शनात्पूजनाच्च सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥१६॥

नारायणी शिला का माहात्म्य

गणेश्वर तीर्थ से पश्चिम भाग में एक परम पवित्र शिला है, वह सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाली है। वह नारायणी नाम से विख्यात है।।१२।।

जो मनुष्य भक्ति और श्रद्धापूर्वक उस शिला के ऊपर श्राद्ध करता है, उसने अपने पितृवंश के सौ पितरों का एवं मातृवंश के सौ पितरों तथा स्वयं का उद्धार कर देता है।।१३।।

यह सत्य है, सत्य है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

पार्वतीश्वर महादेव का माहात्म्य

गङ्गा से पूर्व दिशा की ओर पार्वतीश्वर नामक महादेव हैं।।१४।।

उसी स्थान में भगवती पार्वती ने भगवान् महादेव की अतिशय पूजा की थी, जिनके दर्शन कर लेने मात्र से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।।१५।।

गङ्गा से दस दण्ड की दूरी पर परम पावन एक महादेव शिव हैं, जिनका दर्शन और पूजन करने से मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।।१६।।

नीलपर्वतस्य प्राग्भागे सारवती धारा पार्वतीतीर्थञ्च

नीलपर्वतप्राग्भागे धारा सारवती स्थिता।
तस्यां स्नात्वा तथाऽऽचम्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥१७॥
यत्रैषा सङ्गता विप्र गङ्गायां पापनाशिनी।
पार्वतीतीर्थमाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्॥१८॥
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम्।
मृत्तत्र कुङ्कुमारक्ता तथा रक्तशिलाऽर्थदा॥१९॥
यस्तां भाले नरः कुर्याद्गौरीलोके महीयते।
तया मृत्तिकया यस्तु पूजयेद्विश्वनायकम्॥
सर्वसिद्धिमवाप्नोति याति ब्रह्म सनातनम्॥२०॥
यस्तया पूजयेल्लिङ्गं सहस्रं वेदमन्त्रकैः।
प्राप्नोति सकलां सिद्धिं महादेवप्रसादतः॥२१॥

नीलपर्वत के पूर्व भाग में सारवती धारा एवं पार्वती तीर्थ

नील पर्वत के पूर्वी भाग में एक सारवती नाम की धारा विद्यमान है। उस धारा में मात्र आचमन एवं स्नान करने से ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।।१७।।

जहाँ पर यह सारवती धारा गङ्गा में मिलती है। हे विप्र! वह सङ्गम स्थल पाप को नष्ट करने वाला है। वह पार्वती तीर्थ नाम से विख्यात है तथा सभी पापों का नाश करने वाला है।।१८।।

जिस चिह्न से वह शुभ तीर्थ पहचान में आता है, उस चिह्न को मैं कह रहा हूँ। वहाँ की मृत्तिका कुङ्कुम के समान लाल होती है, वहाँ की अर्थदायिनी शिला भी लाल है।।१९।।

जो मनुष्य उस मृत्तिका को अपने मस्तक पर धारण करता है, वह गौरी-लोक में पूजित होता है। जो व्यक्ति उस मृत्तिका से विश्वनाथ की पूजा करता है, वह सम्पूर्ण सिद्धि को प्राप्त करता है। अन्त में सनातन ब्रह्मलोक को चला जाता है।।२०।।

जो व्यक्ति उस मृत्तिका से वेदमन्त्रों के द्वारा एक हजार बार उस लिङ्ग का पूजन करता है, वह महादेव की कृपा से सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है।।२१।।

भैरवाश्रितस्यापदुद्धरणतीर्थस्य माहात्म्यम्

तस्मात्क्रोशार्द्धके तीर्थं गङ्गाया भैरवाश्रितम्।
पुरा यत्र महादेवो भैरवेन समर्चितः॥२२॥
आपदुद्धारणो नाम सर्वापत्तिविनाशनः।
तं पूज्य विधिवद् भक्त्या पूजितो नीललोहितः॥२३॥
तत्राऽऽयाति नदीश्रेष्ठा नाम्ना भानुभवाशिनी।
तत्सङ्गमे नरः स्नात्वा सूर्यलोके महीयते॥२४॥

पुरुकुत्सेश्वरमहादेवस्य माहात्म्यम्

गङ्गाया दक्षिणे तीरे माने क्रोशात्मके मुने।
पुरुकुत्सेश्वरो नाम महादेवो वरप्रदः॥२५॥
यस्य दर्शनमात्रेण महापातककोटयः।
ब्रह्महत्यासहस्राणि नाशमीयुर्महामुने॥२६॥

भैरवाश्रित आपदुद्धरण तीर्थ का माहात्म्य

वहाँ ही गङ्गा से आधे कोस की दूरी पर भैरव से आश्रित एक तीर्थ है, प्राचीनकाल में भैरव ने वहाँ महादेव की अर्चना की थी।।२२।।

उसका आपदुद्धरण नाम है, वह तीर्थ अखिल आपत्तियों का विनाश करने वाला है। उस लिङ्ग की भक्तिपूर्वक पूजा कर मनुष्य साक्षात् नीललोहित भगवान् की पूजा कर लेता है।।२३।।

वहाँ भानुभवाशिनी नाम की एक श्रेष्ठ नदी आती है, उसके गङ्गा-सङ्गम में स्नान करने से मनुष्य सूर्यलोक में ऐश्वर्य का उपभोग करने वाला हो जाता है।।२४।।

पुरुकुत्सेश्वर महादेव का माहात्म्य

हे मुनि! गङ्गा जी के दक्षिण तट पर एक कोस की दूरी पर वर प्रदान करने वाले पुरुकुत्सेश्वर नाम वाले महादेव का स्थान है।।२५।।

हे महामुनि! उनके दर्शन करने मात्र से करोड़ों महापातक और हजारों ब्रह्महत्याओं का नाश हो जाता है।।२६।।

तत्रैका जलमध्ये तु पीतवर्णा शिलाऽस्ति हि।
नाम्ना नादेश्वरी प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी॥२७॥

कौमुद्वतीनद्या माहात्म्यम्

गङ्गाद्वारोत्तरे भागे गङ्गायाः प्राग्विभागके।
नदी कौमुद्वती ख्याता सर्वदारिद्र्यनाशिनी॥२८॥
धनार्थं ये महाभागाः स्नानं कुर्वन्ति भक्तितः।
लभन्ते सप्तरात्रेण धनं दारिद्र्यनाशनम्॥२९॥

रेणुकाधाराया माहात्म्यम्

ततो वै पश्चिमे तीरे धारा परमपावनी।
गङ्गायां सङ्गमे यत्र रेणुका नाम नामतः॥३०॥
तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च फलानन्त्यं लभेन्नरः।

वज्रशिलानद्या माहात्म्यम्

ततः क्रोशार्द्धखण्डे वै नदी वज्रशिला किल॥३१॥

वहीं पर जल के मध्य में एक पीले रंग की शिला है, जो नादेश्वरी नाम से जानी जाती है, वह सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करने वाली है॥२७॥

कौमुद्वती नदी का माहात्म्य

गङ्गाद्वार (हरिद्वार) से उत्तर की ओर और गङ्गा के पूर्व भाग में समस्त दारिद्र्य का विनाश करने वाली कुमुद्वती नाम की नदी विद्यमान है॥२८॥

जो मनुष्य धन की कामना से भक्तिभावपूर्वक उसमें स्नान करता है, वह सात रात्रि में ही दरिद्रता का विनाश करने वाले धन का लाभ कर लेता है॥२९॥

रेणुका नाम की धारा का माहात्म्य

उससे पश्चिम की ओर परम पावनी एक धारा है, जहाँ वह धारा गङ्गा में मिली है, वहाँ उसका नाम रेणुका है॥३०॥

वहाँ स्नान कर भगवान् शिव के मन्त्र का जप करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है।

वज्रशिला नदी का माहात्म्य

वहाँ से आधे कोस की दूरी पर वज्रशिला नाम की एक नदी है। जो मनुष्य भक्तिभावपूर्वक उसमें स्नान करता है, वह रविमण्डल (सूर्यलोक) को प्राप्त

तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या प्राप्नोति रविमण्डलम्।
यस्तत्र कुरुते श्राद्धं भक्त्या युक्तो महामुने॥३२॥
पितरस्तस्य गच्छन्ति स्थानं सप्तोत्तरं शुभम्।

शङ्करवल्लभानद्याः शङ्करतीर्थस्य च माहात्म्यम्

ततः सौम्याऽर्द्धगव्यूतौ नदी शङ्करवल्लभा॥३३॥
यदम्बुस्पर्शमात्रेण ब्रह्महत्यादिकोटयः।
नश्यन्ति किं पुनर्विप्र स्नानात् पानाच्छिवार्चनात्॥३४॥
यत्र ब्रह्मादयो देवाः पुरा शिवमतोषयन्।
नाम्ना चक्रुर्नदीं रम्यां पुण्यां शङ्करवल्लभाम्॥३५॥
गङ्गायां सङ्गमे यत्र तीर्थं परमपावनम्।
शाङ्करं[1] मुक्तिदं नृणां ब्रह्महत्यानिवारकम्॥३६॥

कर लेता है। हे मुनिराज! जो मनुष्य भक्तिपूर्वक उस स्थान पर श्राद्ध का अनुष्ठान करता है, उसके पितर मुक्त होकर ऊपर के सातों लोकों में चले जाते हैं।

शङ्करवल्लभा नदी और शङ्कर तीर्थ का माहात्म्य

वहाँ से दक्षिण एक कोस की दूरी पर शङ्करवल्लभा नाम की नदी है।।३१-३३।।

उसके जल के स्पर्श करने मात्र से करोड़ों ब्रह्महत्या आदि महापातक[2] नष्ट हो जाते हैं। उसमें स्नान, उसके जल का पान और उसके जल से शिव की अर्चना करने के फल के विषय में तो क्या कहना है।।३४।।

प्राचीनकाल में इसी नदी के तट पर ब्रह्मा आदि देवताओं ने महादेव जी को प्रसन्न किया था, इसलिए उन लोगों ने पवित्र और मनोहारिणी इस नदी का नाम शङ्करवल्लभा रख दिया था।।३५।।

उस नदी का जहाँ पर गङ्गा में सङ्गम हुआ है, वहाँ एक परम पवित्र तीर्थ है, उसका नाम शङ्कर तीर्थ है। वह तीर्थ मनुष्य के ब्रह्महत्या आदि पापों को दूर करता है और उसे मुक्ति प्रदान करता है।।३६।।

---

१. शङ्करमिति ग.।
२. पाँच महापातक कहे गये हैं—
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेनं गुर्वङ्गनागमः। महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गश्च पञ्चमः।।

शङ्करेशो महादेवोऽखिलसिद्धिमनोहरः।
यस्य दर्शनमात्रेण शतजन्मार्जितैः परैः॥३७॥
मुच्यते सर्वपापैस्तु कल्पं शिवपुरे वसेत्।
महापुण्यतमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम्॥३८॥
यदत्र कुरुते कर्म कोटिकोटिगुणं भवेत्।

शालिहोत्रेश्वरमहादेवस्य माहात्म्यम्

वीरभद्रेश्वराद् देवात् पश्चिमे योजनार्द्धके॥३९॥
शालिहोत्रेश्वरो देवो महादेवो वरप्रदः।
शालिहोत्रो मुनिर्यत्र शिवसंन्यस्तमानसः॥४०॥
बभूव नियताहारस्तथा वर्षसहस्त्रकम्।
लेभे विद्या महादेवादष्टादश महामुने॥४१॥

यहाँ सम्पूर्ण सिद्धियाँ को प्रदान करने वाले शङ्करेश नामक महादेव हैं, जिनके दर्शन कर लेने मात्र से सौ से अधिक जन्मों के अर्जित पापों से छुटकारा मिल जाता है।।३७।।

वह मनुष्य कल्पपर्यन्त शिव के पुर में निवास करता है। अत्यन्त पवित्र वह पीठ शीघ्र ही प्रत्यय (विश्वास) कराने वाला है।।३८।।

यहाँ जो भी कर्म किया जाता है, वह करोड़ गुना अधिक हो जाता है।

शालिहोत्रेश्वर महादेव का माहात्म्य

वीरभद्रेश्वर महादेव से पश्चिम की ओर आधे योजन की दूरी पर वर प्रदान करने वाले शालिहोत्रेश्वर महादेव विद्यमान हैं। जहाँ शिव के विषय में दत्तचित्त होकर शालिहोत्र नामक मुनि नियत आहार ग्रहण करते हुए एक हजार वर्ष तक तप करते रहे। हे महामुने! ऐसा करने से उस मुनि ने महादेव जी से अट्ठारह विद्याओं[1] को प्राप्त किया था।।३९-४१।।

---

१. ऋग्, यजुः, साम, अथर्व (चार वेद), शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष (छः वेदाङ्ग), मीमांसा (क) विचारो वेदवाक्यानां मीमांसा प्रोच्यते बुधैः। कर्मप्रतिपादनपरा जैमिनिप्रणीता द्वादशाध्यायी पूर्वमीमांसा, ब्रह्मप्रतिपादनपरा व्यासप्रणीता चतुरध्यायी उत्तरमीमांसा। (ख) पदार्थनिर्णयपर तर्कशास्त्र न्याय कहा गया है। न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र और पुराण, आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र), धनुर्वेद, गान्धर्ववेद (गानविद्या) और अर्थशास्त्र ये ही अट्ठारह विद्याएँ हैं।

शालिहोत्रेश्वरं देवं पूजयित्वा विधानतः।
मूढोऽपि मण्डलाद्याति सर्वविद्यां महामुने॥४२॥

रम्भानद्या आख्यानम्

तस्मात् पूर्वे क्रोशपादे नदी रम्भाभिधा मता।
यत्र रम्भा निवसितुं मायापुर्यां सरिद्वपुः॥४३॥
एकदा स्वर्गभवने नृत्यन्ती वासवालये।
ददर्श विष्णुदूतैस्तु नीयमानान् मृतान् शुभे॥४४॥
मायाक्षेत्रे कृतावासान् वैकुण्ठं प्रति गच्छतः।
उपासमानान् देवाद्यैरिन्द्राद्यैर्गणकिन्नरैः॥४५॥
चतुर्भुजाञ्छङ्खचक्रगदापाणीन् हरीनिव।
पीताम्बरान् सलक्ष्मीकांस्तथा श्रीवत्सलाञ्छनान्॥४६॥
विभूतिभिः शोभमानान् गरुडस्थान् सुवर्चसः।
इति तान् मुक्तिमापन्नान् दृष्ट्वाश्चर्यमवाप सा॥४७॥

हे महामुनि! महान् मूर्ख व्यक्ति भी विधिपूर्वक शालिहोत्रेश्वर महादेव का पूजन कर सम्पूर्ण विद्याओं में विशारद बन जाता है।।४२।।

रम्भा नदी का आख्यान

वहाँ से पूर्व की ओर चौथाई कोस की दूरी पर रम्भा नाम की नदी है। वहाँ रम्भा नामक अप्सरा ने हरिद्वार में निवास करने के लिए नदी का रूप धारण किया था।।४३।।

एक समय रम्भा नाम की अप्सरा स्वर्गलोक में इन्द्र के भवन में नृत्य कर रही थी, उस समय उसने कुछ ऐसे मृतकों का अवलोकन किया, जिन्हें विष्णु के दूत लिये जा रहे थे।।४४।।

वे मृतक पहले मायाक्षेत्र (हरिद्वार) में निवास करते थे, अब मृत्यु को प्राप्त होकर इन्द्र आदि देवताओं एवं किन्नरों से पूजित होते हुए वैकुण्ठ लोक को जा रहे थे।।४५।।

उन सभी के चार हाथ थे, उनमें वे लोग शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को धारण कर रहे थे, वे पीताम्बर को धारण किये हुए लक्ष्मी से सुशोभित थे। अत एव वत्स से चिह्नित वे लोग भगवान् विष्णु के समान प्रतीत हो रहे थे।।४६।।

विभूतियों से उनकी शोभा हो रही थी, उनका तेज दिव्य था और वे लोग गरुड के ऊपर आरूढ़ थे, इस प्रकार मुक्ति मार्ग में जाते हुए उन लोगों को देखकर रम्भा को बड़े आश्चर्य की प्राप्ति हुई।।४७।।

प्रोवाच शक्रं देवेशं तदातिथ्यार्थमुत्थितम्।
त्रैलोक्यनाथ भगवन् क एते सूर्यवर्चसः।।४८।।
हरयो वाऽनन्तरूपधरा बुधगणेश्वर।
कुतः समागता ह्येते द्यां प्रयान्ति च सेविताः।।४९।।

इन्द्र उवाच

प्रिये ह्येते महात्मानो मायाक्षेत्रान्तवासिनः।
मृता गच्छन्ति परमास्तद्विष्णोः परमं पदम्।।५०।।
मायाक्षेत्रसमं पुण्यं पृथिव्यां नैव विद्यते।
तिस्त्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।।५१।।
तानि तीर्थानि तन्वङ्गि मायाक्षेत्रे न संशयः।
वयं सर्वेऽपि तत्रैव वसामो भक्तिलालसाः।।५२।।

रम्भोवाच

अहमत्र वसेयं वै यथाऽऽज्ञापय वासव।
भविष्यामि यथा ह्यन्ते कृपां कुरु मयि प्रभो।।५३।।

उन लोगों के अतिथि सत्कार करने के लिए उठे हुए देवाधिपति इन्द्र से रम्भा ने पूछा—हे त्रिलोकीनाथ, भगवन्! सूर्य के समान तेजस्वी ये लोग कौन हैं?।।४८।।

हे बुधगणेश्वर! क्या भगवान् हरि ने अनन्त रूप धारण किये हैं? ये कहाँ से आ रहे हैं, जो देवताओं से सेवित होते हुए स्वर्गलोक को जा रहे हैं।।४९।।

इन्द्र ने कहा

हे प्रिये! ये हरिद्वार में निवास करने वाले महात्मा लोग हैं। अब ये लोग मृत्यु को प्राप्त होकर भगवान् विष्णु के परम पद की यात्रा कर रहे हैं।।५०।।

मायाक्षेत्र (हरिद्वार) के समान पृथिवी पर अन्य कोई पवित्र क्षेत्र नहीं है। वायु ने बताया है कि यहाँ पर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं।।५१।।

हे तन्वङ्गि! वे सभी तीर्थ मायाक्षेत्र में निवास करते हैं। इसलिए हम लोग भी भक्ति की अभिलाषा से उसी क्षेत्र में निवास करते हैं।।५२।।

रम्भा ने कहा

हे इन्द्र! आप ऐसी आज्ञा दीजिए, जिससे मैं भी वहीं पर निवास कर सकूँ। हे प्रभो! मैं अन्त समय में ऐसा कर सकूँ, मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए।।५३।।

इन्द्र उवाच

सरिद्भूता वरारोहे नित्यं तिष्ठ वरानने।
पुण्ये तव जले येऽपि स्नातारः पारगामिनः॥५४॥

स्कन्द उवाच

इति श्रुत्वा वचो भर्तुः प्रणिपत्य त्वरान्विता।
आययौ परमे पुण्ये मायाक्षेत्रे सरिद्वरा॥५५॥
जाता पुण्यतमा विप्र सर्वपापप्रणाशिनी।
रम्भाकुण्डं च गङ्गायां सङ्गमे पुण्यदायके॥५६॥
उपस्पृश्यापि पानीयं रम्भया सह मोदते।
रम्भेश्वरो महादेवस्तत्रैव शिवदायकः॥५७॥

कुब्जाम्रकतीर्थस्य माहात्म्यम्

ततः परं महाभाग कुब्जाम्रकमिति श्रुतम्।
यत्राम्रे कुब्जरूपेण दृष्टो मुनिभिरच्युतः॥५८॥

इन्द्र ने कहा

हे वरानने! सुन्दरि! तुम नदी बनकर वहाँ नित्य निवास करो। तुम्हारे पवित्र जल में जो लोग स्नान करेंगे, वे लोग भी मोक्ष को प्राप्त करेंगे।।५४।।

स्कन्द ने कहा

स्वामी के इस प्रकार के वचन को सुनकर उस क्षेत्र में आने के लिए उतावली रम्भा परम पवित्र मायाक्षेत्र में श्रेष्ठ नदी बनकर आ गयी।।५५।।

हे विप्र! वह समस्त पापों का नाश करने वाली अत्यन्त पवित्र हो गयी। जिस स्थान पर गङ्गा में पुण्यदायक सङ्गम हुआ है, वहाँ रम्भाकुण्ड है।।५६।।

जो व्यक्ति उसके जल का स्पर्शमात्र भी करता है, वह रम्भा अप्सरा के साथ आनन्द को प्राप्त करता है। उसी स्थान में रम्भेश्वर महादेव हैं, जो कल्याण प्रदान करने वाले हैं।।५७।।

कुब्जाम्रक तीर्थ का माहात्म्य

हे महाभाग! उसी के आगे कुब्जाम्रक नामक तीर्थ प्रसिद्ध है। जहाँ आम्र वृक्ष के नीचे मुनियों ने कुब्ज (कुबड़े) के रूप में भगवान् विष्णु को देखा था।।५८।।

ततः कुब्जाम्रकं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्।
सकृद् दृष्ट्वा तु यत्क्षेत्रं परब्रह्मणि लीयते॥५९॥
इति ते कथितं विप्र गङ्गाद्वारस्य वैभवम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥६०॥
श्राद्धे शृणोति यो मर्त्यो गङ्गाद्वारस्य वैभवम्।
पितरस्तस्य गच्छन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्॥६१॥
यः पठेन्मानवो भक्त्या शृणुयाद्वापि भक्तितः।
स याति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः॥६२॥

॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये गङ्गाद्वारमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११५॥

उसी समय से वह तीर्थ कुब्जाम्रक नाम से विख्यात हुआ है, जो सभी पापों को विनष्ट करने वाला है। इस क्षेत्र का एक बार भी दर्शन कर लेने से मनुष्य परब्रह्म में लीन हो जाता है॥५९॥

हे विप्र! इस प्रकार हमने गङ्गाद्वार (हरिद्वार) क्षेत्र का माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया है, जिसका श्रवण करने से भी मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥६०॥

जो मनुष्य श्राद्ध के अवसर पर हरिद्वार क्षेत्र के माहात्म्य को सुनता है, उसके पितर विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लेते हैं॥६१॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है, अथवा जो भक्तिपूर्वक सुनता है, उसको उसी परम पद की प्राप्ति होती है, जहाँ साक्षात् महेश्वर विराजमान रहते हैं॥६२॥

॥ इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के केदारखण्ड में गङ्गाद्वार का माहात्म्यवर्णन नामक एक सौ पन्द्रह अध्याय पूर्ण हुआ॥११५॥

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-५४५+६२=६०७]



अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जाम्ररूपेण तपस्यतो रैभ्यस्यानुग्रहार्थं विष्णोरागमनम्

नारद उवाच

कुब्जाम्रकं महातीर्थं वद विस्तरतो मम।
यथेदं च समुत्पन्नं यथा पुण्यं हि चाऽभवत्॥१॥
केन केन तपस्तप्तं केऽवापुः परमां गतिम्।
कानि तीर्थानि चैवात्र कियन्मानं सुपुण्यदम्॥२॥
एतत् सर्वं समासेन विस्तराद् वद मे प्रभो।
त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये भक्तवत्सलतां गतः॥३॥

स्कन्द उवाच

श्रृणु नारद यत्नेन गुह्यं क्षेत्रं परं हरेः।
यस्य स्मरणमात्रेण शतजन्मसमुद्भवैः॥४॥

कुब्जाम्र के रूप में तपस्या करते हुए रैभ्य मुनि पर कृपा करने के लिए विष्णु का अवतरण

नारद ने कहा

आप कुब्जाम्रक तीर्थ के विषय में मुझसे विस्तारपूर्वक बतलाइये। जिस प्रकार इसकी उत्पत्ति हुई और जिस प्रकार यह परम पवित्र हुआ।।१।।

यहाँ किन-किन लोगों ने तप किया, किन लोगों को परम गति की प्राप्ति हुई तथा इस स्थान में कितने तीर्थ निवास करते हैं एवं इस पुण्यदायक क्षेत्र का मान कितना है।।२।।

हे प्रभो! इन सभी विषयों को सम्यक् रूप से विस्तारपूर्वक मेरे प्रति वर्णन कीजिये; क्योंकि आपके सदृश भक्तवत्सल त्रिलोकी में अन्य कोई नहीं है।।३।।

स्कन्द ने कहा

हे नारद! यत्नपूर्वक श्रवण करो, भगवान् का यह क्षेत्र अत्यन्त गोपनीय है। जिसके स्मरण करने मात्र से मनुष्य सौ जन्मों के अर्जित सभी पापों से

मुच्यते सर्वपापैश्च विष्णुलोकं च गच्छति।
सान्निध्यं यत्र विष्णोर्हि नित्यं तिष्ठति नारद॥५॥
पुरा सप्तदशे प्राप्ते युगे योगीन्द्र माधवः।
मायां स्वीयां प्रविष्टोऽपि दृष्ट्वा चैकार्णवीं महीम्॥६॥
मधुकैटभौ दुरात्मानौ निजकर्णसमुद्भवौ।
साधयन्तौ च ब्रह्माणं त्रैलोक्यं क्षेप्तुमुद्यतौ॥७॥
हत्वा तौ हि दुराधर्षौ रचयित्वा च मेदिनीम्।
मेदसा दुष्टयोश्चैव ब्रह्मा वचनचोदितः[1]॥८॥
जगाम शतशो विप्र क्षेत्राणि धरणीतले।
द्रष्टुं भक्तान् स्वकीयाँश्च गङ्गाद्वारमुपागमत्॥९॥
यत्र रैभ्यो महातेजा उग्रे तपसि संस्थितः।
दशवर्षसहस्राणि तस्थावूर्ध्वकरो मुनिः॥१०॥

छुटकारा प्राप्त कर विष्णुलोक को जाता है। हे नारद! यहाँ भगवान् विष्णु की नित्य सन्निधि रहती है।।४-५।।

प्राचीनकाल में सत्रहवें युग के प्राप्त होने पर एक योगियों में श्रेष्ठ माधव हुए हैं। उन्होंने अपनी माया में प्रविष्ट होकर भूमि को एकमात्र समुद्रमय देखा था।।६।।

उन्हीं के कानों से समुत्पन्न दुष्ट स्वभाव वाले मधु और कैटभ उत्पन्न हुए थे। वे दोनों ब्रह्मा की आराधना कर त्रिलोकी को जल में डालने के लिए उद्यत हुए थे।।७।।

उन दोनों दुर्जेय राक्षसों को मार कर मेदिनी (पृथिवी) का निर्माण किया था। उन दोनों दुष्टों की मेदा से निर्माण करने के कारण पृथिवी का नाम मेदिनी हुआ।।८।।

इसके बाद ब्रह्मा के वचनों से प्रेरित होकर माधव पृथिवीतल पर स्थित अनेक क्षेत्रों में गये। तदनन्तर वे अपने भक्तों को देखने के लिए गङ्गाद्वार में आये।।९।।

वहाँ पर महान् तेजस्वी रैभ्य उग्र तपस्या में लीन थे। वे मुनि दस हजार वर्ष पर्यन्त बाहुओं को ऊपर उठाकर तपस्या में लीन थे।।१०।।

---

१. नोदित इति ग.।

ततो वर्षसहस्त्रं वै वायुभक्षो महातपाः।
शैवालचर्वणं पञ्चशतं वर्षाणि नारद॥११॥
इति वै तप्यमानस्य रैभ्यस्य मुनिपुङ्गव।
आम्ररूपं समासाद्य कुब्जरूपस्य माधवः॥१२॥
दर्शयामास भगवान् दर्शनं मुक्तिकारणम्।
सोऽपि रैभ्यो महाभागस्तं दृष्ट्वा जगतां पतिम्॥१३॥
जानुभ्यामवनिं गत्वा पुनः पुनरुदारधीः।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं प्रासादार्थी महायशाः॥१४॥

रैभ्य उवाच

नमः कमलनाभाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
सुनन्दाय सुभद्राय दुराधर्षाय ते नमः॥१५॥
हिरण्यबाहवे तुभ्यं हिरण्याक्षविमर्दिने।
नमो हिरण्यनाभाय हिरण्यचरुरूपिणे॥१६॥

तदनन्तर वे महातपस्वी एक सहस्र वर्षपर्यन्त वायु का भक्षण करते हुए तपस्या में स्थित रहे। हे नारद! वे मुनि सौ वर्षों तक शैवाल का चर्वण करते रहे।।११।।

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार रैभ्य मुनि की तपस्या चलती रही। कुबड़े के रूप में माधव भगवान् आम्रवृक्ष के समीप जाकर मुक्ति के कारणभूत अपना दर्शन उस मुनि को करवाया। भाग्यशाली रैभ्य मुनि ने जगत् के प्रति उन माधव को देखा।।१२-१३।।

तदनन्तर उन उदारमति महर्षि ने भूमि के ऊपर घुटने टेककर उनकी प्रसन्नता के लिए मधुर वचन कहा।।१४।।

रैभ्य ने कहा

जिनके नाभि में कमल है, ऐसे प्रभविष्णु विष्णु को नमस्कार है। सुनन्द, सुभद्र और दुराधर्ष को नमस्कार है।।१५।।

हिरण्याक्ष का वध करने वाले तथा स्वर्णिम भुजाओं वाले को नमस्कार है। स्वर्णिम नाभि वाले हिरण्य चरु रूप को धारण करने वाले को नमस्कार है।।१६।।

हरिदश्वाय हरये हरिताङ्गाय हारिणे।
हयग्रीवाय हेयाय पराय हयबाहवे॥१७॥
अहङ्कारविमुक्ताय हेमसंस्थाय हारिणे।
नमो हरिणनेत्राय नमस्ते हरिबाहवे॥१८॥
नमो हिरण्यगर्भाय हृषीकेशाय ते नमः।
हविषे हविराशाय बर्हिपत्राय बर्हिषे॥१९॥
हेमाङ्गदाय बुद्धाय हिमाद्रिप्रकृतौकसे।
हिमाद्रितनयाधीशहृदयस्थाय हुङ्कृते॥२०॥
हेयाहेयविहीनाय सर्वाहिपतये नमः।
हृषीकेशाश्रमस्थाय हीरकाक्षाय ते नमः॥२१॥
हस्तिमस्तकसंस्थाय बहुहस्ताय ते नमः।
सहस्रहस्तरूपाय सहस्रकरमर्दिने॥२२॥

हरे रंग के अश्व वाले, पापों का हरण करने वाले, हरे अङ्गों वाले, मन का हरण करने वाले, हयग्रीव का अवतार धारण करने वाले, सबसे हेय और परे हयबाहु विष्णु को नमस्कार है।।१७।।

अहङ्कार से विमुक्त, स्वर्णिम पदार्थों में स्थित रहने वाले, सबका हरण करने वाले, हरिण के समान नेत्र वाले विष्णु को नमस्कार है। हरिबाहु तुमको नमस्कार है।।१८।।

हिरण्यगर्भरूप वाले तुमको नमस्कार है, हृषीकेषरूप तुमको नमस्कार है, हविरूप और हवि का भक्षण करने वाले, बर्हि (मयूर के) पत्र को धारण करने वाले, मयूर स्वरूप तुमको नमस्कार है।।१९।।

स्वर्णिम अङ्गद धारण करने वाले, बुद्धस्वरूप, हिमालय पर निवास करने वाले, हिमालयपुत्री गौरी के स्वामी शिव के हृदय में स्थित रहने वाले एवं हुङ्कार करने वाले विष्णु को नमस्कार है।।२०।।

हेय (त्याज्य) अहेय (ग्राह्य) रहित, सम्पूर्ण नागों के स्वामी, तुमको नमस्कार है। हृषीकेश के आश्रम में निवास करने वाले, हीरक के समान उज्ज्वल नेत्र वाले तुमको नमस्कार है।।२१।।

हाथी के मस्तक पर बैठने वाले, बहुत हाथों वाले तुमको नमस्कार है। हजारों हाथ वाले रूप को धारण करने वाले, हजार हाथ वाले कार्तवीर्यार्जुन का वध करने वाले तुमको नमस्कार है।।२२।।

सहस्त्ररश्मिरूपाय फणासाहस्त्ररूपिणे।
सहसा कृतकार्याय सहसा भक्तिभाविने॥२३॥

स्कन्द उवाच

इति स्तुतो महाविष्णुस्तेन रैभ्येण धीमता।
उवाच मधुरं वाक्यं विनयावनतं स्थितम्॥२४॥

श्रीभगवानुवाच

वरं वरय भद्रं ते तव यद्धृदि वर्तते।
किञ्च वै काङ्क्षसे गावः किं वा राज्यमकण्टकम्[१]॥२५॥
अथ चेच्छसि कन्यानां सहस्त्रं दिव्यमुत्तमम्।
वररत्नसमृद्धानां हेमभाण्डविभूषितम्॥२६॥
सर्वासां दिव्यरूपाणां भवन्त्यप्सरसां गणाः।
ददामि ते वरं चैव रैभ्य यत्ते विचिन्तितम्॥२७॥

सहस्त्ररश्मि सूर्य के स्वरूप वाले, हजार फण वाले शेषनाग के स्वरूप वाले, सहसा कार्य को पूर्ण करने वाले, सहसा भक्ति का समादर करने वाले आपको नमस्कार है।।२३।।

स्कन्द जी ने कहा

इस प्रकार बुद्धिमान् रैभ्य ने महाविष्णु की स्तुति की। तदनन्तर विष्णु ने विनय से अवनत उनसे मधुर वाणी में कहा।।२४।।

श्रीभगवान् ने कहा

तुम्हारे हृदय में जो अभिलाषा है, उस कल्याणकारी वर को माँग लो, क्या तुम गायों को चाहते हो अथवा निष्कण्टक राज्य की अभिलाषा करते हो।।२५।।

अथवा उत्तम रूप वाली सहस्त्रों दिव्य कन्याओं को प्राप्त करने की कामना करते हो, जो कन्याएँ श्रेष्ठ तत्त्वों से अलङ्कृत हों एवं सुवर्ण के पात्रादिकों से विभूषित हों।।२६।।

हे रैभ्य! यदि तुम दिव्यरूपवती अप्सराओं के समुदाय को चाहते हो, तो मैं तुम्हारे द्वारा विशेष रूप से सोचे गये वरदान को प्रदान कर दूँ।।२७।।

---

१. मसङ्कटमिति ग.।

रैभ्य उवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि यस्य त्वं दृष्टिगोचरः।
न चाऽहं काञ्चनं गावो न स्त्रियो राज्यमेव च॥२८॥
नो काङ्क्षे जगतां नाथ त्वत्कृपां प्रार्थये विभो।
यदि प्रसन्नो भगवँल्लोकनाथ जनार्दन॥२९॥
तव चाऽत्र निवासं वै नित्यमिच्छामि माधव।
यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदत्र मम प्रभो॥३०॥
स्नानं तव मम स्थानं तव नामामृतं भुवि।
भक्तिश्च स्याद् रमानाथ तव पादाम्बुजद्वये॥३१॥

स्कन्द उवाच

रैभ्यस्यैवं वचः श्रुत्वा भगवान् भूतभावनः।
वाढमित्येव विप्रेन्द्र सर्वमेतद् भविष्यति॥३२॥
यस्मादाम्रं समाश्रित्य कुब्जरूपेण वै त्वया।
दृष्टोऽस्मि रैभ्य तस्माद् वै कुब्जाम्रकमिति स्फुटम्॥३३॥

रैभ्य ने कहा

आज आप मेरी दृष्टि के सामने आ गये हैं, इसलिए मैं आज धन्य हो गया हूँ, कृतकृत्य हो गया हूँ। मैं न काञ्चन (सुवर्ण), न गौ, न स्त्री अथवा राज्य भी नहीं चाहता हूँ।।२८।।

हे जगत् के स्वामी सर्वव्यापक भगवान्! मैं केवल आपकी कृपा चाहता हूँ। दुष्ट जनों को उनके कर्मानुसार दुःख देने वाले हे जगन्नाथ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो हे माधव! मैं यह चाहता हूँ कि आपका यहाँ नित्य निवास हो। हे प्रभो! जब तक ये लोक अधिष्ठित रहें, तब तक इस मेरे आश्रम में आपका निवास हो।।२९-३०।।

हे रमानाथ! आपका अमृतरूपी नाम भूमण्डल पर विद्यमान रहे; मैं यहाँ स्नान करता रहूँ, आपके चरणकमल में मेरी भक्ति बनी रहे।।३१।।

स्कन्द जी ने कहा

रैभ्य के वचन को सुनकर भगवान् भूतभावन ने कहा कि हे विप्रश्रेष्ठ! बहुत अच्छा, यह सब ऐसा ही होगा।।३२।।

हे रैभ्य! आम्र का आश्रय लेकर तुमने कुब्जरूप हमारा दर्शन किया है, इसलिए कुब्जाम्रक नाम से यह तीर्थ विख्यात होगा।।३३।।

तीर्थमेतन्महापुण्यं करिष्यन्त्यविधानतः।
अस्मिन् क्षेत्रेऽपि ये मर्त्याः स्नानं दानं जपादिकम्॥३४॥
करिष्यन्ति महाभाग तत्सर्वं कोटिसंख्यकम्।
करिष्यन्ति निवासं च तीर्थेऽस्मिन् प्रवरे नराः॥३५॥
प्राप्स्यन्ति परमं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
पापिनश्चापि विप्रेन्द्र मृता विष्णुमवाप्नुयुः॥३६॥
पितरस्तस्य हृष्यन्ति यस्यास्मिन् क्षेत्रके स्थितिः।
येऽपि बिन्दुप्रमाणं वै दद्युर्जलमनुत्तमम्॥३७॥
पितृभ्यस्तारितास्तेन संसारात् पितरो मुने।
परमाणुप्रमाणं च ये च दद्युर्हिरण्यकम्॥३८॥
दत्तं तेन भवेद्विप्र सहस्रं परिसंख्यया।
ये च दद्युर्महाभाग वासोगोभूषणादि च॥३९॥

यह महान् पुण्यशाली तीर्थ इसी (कुब्जाम्रक) नाम से अभिहित किया जायेगा। जो मनुष्य इस क्षेत्र में स्नान, दान, जप आदि करेंगे।।३४।।

हे महाभाग! वह सब करोड़ गुना अधिक हो जायेगा। जो मनुष्य इस श्रेष्ठ तीर्थ में निवास करेंगे।।३५।।

उन्हें ऐसे परम स्थान की प्राप्ति होगी। जहाँ से पुनः लौटना नहीं होता है। हे विप्रश्रेष्ठ! यदि पापी भी इस क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त करेंगे, उन्हें भी विष्णु अर्थात् विष्णुलोक की प्राप्ति होगी।।३६।।

जो मनुष्य इस क्षेत्र में निवास करेंगे, उनके पितर भी प्रसन्न हो जायेंगे। हे मुनि! जो मनुष्य यहाँ पर अपने पितरों के निमित्त बिन्दुमात्र भी जल प्रदान कर देता है, वह संसार से अपने पितरों का उद्धार करता है। अर्थात् उनके पितरों की मुक्ति हो जाती है। जो लोग यहाँ परमाणुमात्र[१] भी सुवर्ण का दान करते हैं।।३७-३८।।

हे विप्र! उन्हें उस वस्तु के सहस्र संख्या दान करने का फल मिल जाता है। हे महाभाग! जो मनुष्य यहाँ वस्त्र, गौ, आभूषण आदि दान करते हैं।।३९।।

---

१. जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः। तस्य या षष्ठको भागः परमाणुः स उच्यते।। अर्थात् सूर्य का प्रकाश झरोखे से भीतर प्रविष्ट होता है, उसमें जो रजकण दिखाई पड़ता है, उसी रज के छठें भाग को परमाणु कहते हैं।

तेन दत्तं भवेदेव सर्वं वस्तु महामुने।
कुब्जाम्रके महातीर्थे वसामि रमया सह॥४०॥

हृषीकेशनामकरणे हेतुः

हृषीकाणि पुरा जित्वा दर्शः सम्प्रार्थितस्त्वया।
यद्वाऽहं तु हृषीकेशो भवाम्यत्र समाश्रितः॥४१॥
ततोऽस्याऽपरकं नाम हृषीकेशाश्रितं स्थलम्।
त्रेतायुगे दाशरथिर्नाम्ना भरतसंज्ञितः॥४२॥
तुर्यो भागो मदीयो वै भविष्यति सहाग्रजः।
शङ्करः शङ्करः साक्षात् पुनर्मां स्थापयिष्यति॥४३॥
कलौ भरतनामानं वदिष्यन्ति महीतले।
कृते वाराहरूपेण त्रेतायां कृतवीर्यजम्॥४४॥
द्वापरे वामनं देवं कलौ भरतमेव च।
नमस्यन्ति महाभाग भवेयुर्मुक्तिभागिनः॥४५॥

हे महामुनि! उन्हें सम्पूर्ण वस्तुओं के दान करने का फल उपलब्ध हो जाता है। हे महामुनि! मैं लक्ष्मीसहित इस कुब्जाम्रक तीर्थ में सदा ही निवास करता हूँ।।४०।।

हृषीकेश नामकरण में हेतु

तुमने हृषीक अर्थात् इन्द्रियों का दमन करके हमारे दर्शनों की आकांक्षा की थी। इसलिए मैं यहाँ हृषीकेश (इन्द्रियों का स्वामी) नाम से विख्यात होऊँगा।।४१।।

इसीलिए इस स्थान का दूसरा नाम हृषीकेशाश्रित होगा। त्रेतायुग में दशरथ के पुत्र भरत नाम वाले होंगे।।४२।।

वे अपने ज्येष्ठ भ्राता सहित हमारे चतुर्थ अंश से प्रादुर्भूत होंगे। कल्याण करने वाले शङ्कर भी यहाँ मेरी स्थापना करेंगे।।४३।।

कलियुग में लोग शिव को पृथ्वीतल में भरत नाम से विख्यात करेंगे। सत्ययुग में वाराहरूप से और त्रेतायुग में कार्तवीर्य नाम से विख्यात करेंगे।।४४।।

जो लोग द्वापर में वामन और कलियुग में भरत नाम से नमस्कार करेंगे, वे लोग मुक्ति के भागी बन जायेंगे।।४५।।

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णू रैभ्यं नाम तपोनिधिम्।
तत्राऽन्तर्द्धानमापन्नः पश्यतस्तस्य नारद॥४६॥
इति ते कथितोत्पत्तिः क्षेत्रकुब्जाम्रकस्य हि।
श्रुत्वेमां सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥४७॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायापुरीकुब्जाम्रकमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११६ ।।

हे नारद! भगवान् विष्णु रैभ्य नामक तपोनिधि से इस प्रकार कहकर उनके देखते-देखते वहीं पर अन्तर्धान हो गये।।४६।।

इस प्रकार हमने तुमसे कुब्जाम्रक नामक तीर्थ की उत्पत्ति का आख्यान कह सुनाया। इसका श्रवण करने से मनुष्य निश्चित ही मुक्त हो जाता है।।४६।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ सोलह अध्याय पूर्ण हुआ।।११६।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-६०७+४७=६५४]



अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जाम्रकतीर्थसीमानिरूपणम्

नारद उवाच

कियन्मानं परं क्षेत्रं कानि तीर्थानि तत्र वै।
किं तत्र पुण्यं लभते स्नानाद् दानात् तथाऽर्चनात्॥१॥
उत्पत्तिं चैव माहात्म्यं सर्वं विस्तरतो वद।
केन केन फलं प्राप्तमत्र क्षेत्रे शिवात्मज॥२॥
के के परां गतिं प्राप्ता हृषीकेषाश्रयात् तथा।
सर्वं विस्तरतो ब्रूहि श्रोष्यमाणाय मे प्रभो॥३॥

स्कन्द उवाच

साधु पृष्टं त्वया विप्र कुब्जाम्रकसुतीर्थकम्।
सुन्देश्वरीं समारभ्य यावद्धैमवती नदी॥४॥

कुब्जाम्रक (हृषीकेश) क्षेत्र की सीमा का निरूपण

नारद ने कहा

उस परम श्रेष्ठ तीर्थ का प्रमाण कितना है, यहाँ कौन-कौन अन्य तीर्थ हैं। साथ ही वहाँ स्नान, दान और आपके पूजन करने से किस पुण्य की प्राप्ति होती है।।१।।

हे शिवकुमार! उस क्षेत्र की उत्पत्ति एवं उसके माहात्म्य का वर्णन विस्तारपूर्वक मुझसे करें। यहाँ पर किन-किन लोगों ने तपस्या की है, उसे भी कहें।।२।।

हे प्रभो! हृषीकेश क्षेत्र का आश्रय लेने से किन व्यक्तियों को परम गति का लाभ हुआ है। श्रवण करने में तत्पर मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन करें।।३।।

स्कन्द ने कहा

हे विप्र! तुमने अच्छा प्रश्न किया है, यह कुब्जाम्रक नामक सुतीर्थ है। सुन्देश्वरी नदी से आरम्भ कर हेमवती नदीपर्यन्त इसका क्षेत्र है।।४।।

तावत्कुब्जाम्रकं क्षेत्रं पापिनामपि मुक्तिदम्।
करमाने स्थले तत्र तीर्थानां पञ्चकं ध्रुवम्॥५॥
तत्राऽपि विप्र श्रेष्ठानि स्वर्गदान्यपि दर्शनात्।
शृणु तीर्थानि पुण्यानि मुक्तिदानि परात्मनाम्॥६॥

मायातीर्थस्य माहात्म्यम्

मायातीर्थं परं ख्यातं यत्र दृष्टो जनार्दनः।
गङ्गा च यमुना चापि द्वयं यत्र समास्थितम्॥७॥
तस्मिन् कृतोदको विप्र तारयेत् कुलसप्तकम्।
सकृत् स्नातोऽपि भवनं कुबेरस्य लभेन्मुने॥८॥

मायाक्षेत्रस्योत्पत्तिः, तदाख्याने सोमशर्मणो वृत्तान्तम्

शृणूत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि मायाक्षेत्रस्य नारद।
सर्वपापहरां दिव्यां मोक्षस्वर्गानुदर्शिनीम्॥९॥

यही कुब्जाम्रक क्षेत्र है। यह क्षेत्र पापियों को भी मुक्ति प्रदान करने वाला है। वहाँ हस्तप्रमाण की दूरी से पाँच तीर्थ हैं।।५।।

हे विप्र! वे पाँचों तीर्थ केवल दर्शन करने मात्र से स्वर्ग प्रदान करने वाले हैं। पुण्यशाली व्यक्तियों को मुक्ति प्रदान करने वाले उन तीर्थों का श्रवण करो।।६।।

मायातीर्थ का माहात्म्य

जहाँ भगवान् जनार्दन का दर्शन हुआ था, उसे मायातीर्थ कहा जाता है। वहाँ गङ्गा और यमुना दोनों स्थित हैं।।७।।

उसमें पितरों को जल-दान करने से सात कुल का उद्धार हो जाता है। हे मुनि! उसमें एक बार भी स्नान करने से कुबेर के धाम की प्राप्ति होती है।।८।।

मायाक्षेत्र की उत्पत्ति के आख्यान में सोमशर्मा का वृत्तान्त

हे नारद! सुनो, अब मैं मायाक्षेत्र की उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ। यह क्षेत्र सम्पूर्ण पापों का हरण करने वाला, दिव्य मोक्ष और स्वर्ग के मार्ग को दिखलाने वाला है।।९।।

पुरा कृतयुगे विप्रः सोमशर्मेति विश्रुतः।
तपस्वी निरपेक्षश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः॥१०॥
तपस्तताप परमं जितात्मा पापवर्जितः।
ग्रीष्मे पञ्चतपाश्चैव वर्षायां वृष्टिसाहकः॥११॥
हेमन्ते जलधाराभिः सिच्यमानः समन्ततः।
इति वर्षसहस्रं वै ततोऽभूदूर्ध्वबाहुकः॥१२॥
एकपादेन तस्थौ च शिलायां नियतासनः।
सहस्रद्वितयं तस्य ययावेवं महामते॥१३॥
वायुभक्षः सहस्रं च सहस्रं तूर्ध्वपादकः।
एवं वै तप्यमानस्य प्रसन्नोऽभूज्जनार्दनः॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

साधु साधु महाभाग सोमशर्मन् द्विजोत्तम।
वरं वरय भद्रं ते यदस्त्यभिमतं तव॥१५॥

प्राचीनकाल में कृतयुग में सोमशर्मा नामक एक ब्राह्मण थे। वे तपस्वी, निरपेक्ष भाव से रहने वाले, सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे।।१०।।

वे पापरहित होकर अपने आत्मा का निग्रह कर उग्र तप का आचरण करते थे। वे ग्रीष्मकाल में पञ्चाग्नि का अनुष्ठान करते थे और वर्षा ऋतु में वृष्टि के आघात को सहन करते थे।।११।।

हेमन्त ऋतु में चारों ओर से जल की धारा से सिञ्चित होते रहते थे। इस प्रकार उन्होंने ऊपर बाहु किये हुए एक हजार वर्ष तक तपस्या का अनुष्ठान किया था।।१२।।

उस समय शिला के ऊपर अपने आसन को नियत कर एक पैर से ही स्थित रहते थे। हे महामति! इस प्रकार तप करते हुए उनके दो हजार वर्ष व्यतीत हो गये।।१३।।

तदनन्तर उन्होंने एक हजार वर्ष तक केवल वायुभक्षण कर व्यतीत कर दिया। इसके बाद वे एक हजार वर्ष तक ऊपर पैर कर स्थित रहे। इस प्रकार तप करने वाले सोमशर्मा पर भगवान् जनार्दन प्रसन्न हुए।।१४।।

श्रीभगवान् ने कहा

हे द्विजश्रेष्ठ! सोमशर्मन्! महाभाग! तुम धन्य हो, तुम्हारा कल्याण हो, जो तुम्हारा अभीष्ट हो, उसे वर के रूप में मुझसे माँग लो।।१५।।

प्रसन्नोऽस्मि न सन्देहस्तपसाऽनेन सुव्रत।
दुर्लभं तव विप्रेन्द्र नास्ति त्रैलोक्यमण्डले॥१६॥

मायास्वरूपवर्णनम्

सोमशर्मोवाच

यदीच्छसि वरं दातुं प्रसन्नो यदि वै मयि।
जानीयां तव मायां हि मुग्धं त्रैलोक्यकं यया॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

मम मायां महाभाग न जानन्ति दिवौकसः।
ब्रह्माद्या ये पुरा सृष्टाः सा माया मम कीर्तिता॥१८॥
वर्षन्ति च महामेघाः सा माया मम कीर्तिता।
यया निर्जलतां यान्ति सा माया मम कीर्तिता॥१९॥
चन्द्रो यत् क्षीयते पक्षे पक्षे पूर्णत्वमेति च।
मायैषा मम विप्रेन्द्र ग्रहनक्षत्रतारकाः॥२०॥

सुन्दर व्रत का आचरण करने वाले हे विप्रश्रेष्ठ! तुम्हारे इस तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह नहीं है। इस तपस्या के प्रभाव से तीनों लोकों में कोई भी पदार्थ तुम्हारे लिये दुर्लभ नहीं है।।१६।।

माया के स्वरूप का वर्णन

सोमशर्मा ने कहा

यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे वर प्रदान करना चाहते हैं, तो मैं आपकी उस माया को जानना चाहता हूँ, जिसने त्रिलोकी को मोह में डाल रखा है।।१७।।

श्रीभगवान् ने कहा

हे महाभाग! हमारी माया ऐसी प्रबल है कि जिनकी रचना सबसे पहले की गयी थी, वे ब्रह्मा आदि देवता भी उस माया को नहीं जानते हैं।।१८।।

जिसके प्रभाव से मेघ जल की वर्षा करते हैं, वही मेरी माया कही गयी है। जिससे पुनः वे निर्जल हो जाते हैं, वही मेरी माया है।।१९।।

हे विप्रश्रेष्ठ! एक पक्ष में चन्द्रमा क्षीण होता है, पुनः दूसरे पक्ष में परिपूर्ण हो जाता है, ग्रह, नक्षत्र और तारा आदि भी हमारी माया के प्रभाव से प्रभावित हैं।।२०।।

हेमन्तर्तौ च सलिलं कूपे कोष्णं विभाति च।
शीतलं च तथा ग्रीष्मे सा माया मम कीर्तिता॥२१॥
उदेति सविता प्राच्यां प्रतीच्यामस्तमेति च॥२२॥
शोणितं च तथा रेतः संयुक्तं स्यान्महामते।
गर्भे चोत्पद्यते जन्तुस्तन्माया प्रबला मम॥२३॥
जठराग्नौ प्रदीप्ते हि गर्भाशयगतो मुने।
मातृभक्तानुसारेण प्रयाति प्राणकूटकः॥२४॥
पूर्वजन्मसहस्राणि पापपुण्ये कृताकृते।
विजानात्यवशो जन्तुर्गर्भे मायाबलं मम॥२५॥
जानाति सुखदुःखे च तथाऽऽत्मानं च विन्दति।
अङ्गुल्यश्चरणौ चैव भुजौ शीर्षं कटिस्तथा॥२६॥
पृष्ठं तथोदरं चैव दन्तौष्ठपुटनासिकाः।
कर्णादिचक्षुरादीनि सर्वं मायाकृतं मम॥२७॥

हेमन्त ऋतु में कूप का जल कुछ उष्ण हो जाता है और ग्रीष्म ऋतु आने पर वह शीतल हो जाता है, यही हमारी माया कहलाती है।।२१।।

सूर्य पूर्व दिशा में उदित होता है और पश्चिम दिशा में अस्त होता है, यह मेरी माया ही है।।२२।।

हे महामतिमान्! रक्त और वीर्य के संयोग से गर्भ में जीव की उत्पत्ति होती है, यह मेरी प्रबल माया ही है।।२३।।

हे मुनि! जब यह प्राणी गर्भाशय में स्थित होता है, उस समय जठराग्नि प्रदीप्त होती है, उस समय माता के ही भोजन से उसके प्राण की पुष्टि होती है।।२४।।

गर्भ में स्थित जीव अवश होते हुए भी हजारों पूर्व जन्म के किये गये पाप-पुण्यों को और अपने कृत्य तथा अकृत्य को मेरी माया के बल से जानता है।।२५।।

उस समय गर्भस्थ जीव सुख-दुःख तथा अपने आपको जानता है। गर्भ में ही अङ्गुलियाँ, चरण, भुजा, शिर तथा कमर भी मेरी माया से निर्मित हो जाते हैं।।२६।।

उसी समय पीठ, उदर, दाँत, ओष्ठपुट, नासिका, कर्ण और नेत्र आदि सभी अङ्ग हमारी माया के द्वारा ही निर्मित किये जाते हैं।।२७।।

बधिरस्यापि व्यापारोऽन्धस्यापि हृत्सुनेत्रता।
मूकस्य चेष्टनं ज्ञानं सर्वं मायाकृतं मम॥२८॥
मूढत्वं संसृतौ चैव जातमात्रे महामते।
धर्माधर्मपरिज्ञानं विस्मृतिश्च तथा मम॥२९॥
मायया मे महाभाग योनियन्त्राद् बहिर्गतिः।
कृमिर्व्रणादिव प्राण्यपवृत्तोऽपानवायुभिः॥३०॥
निष्क्रम्य मम मायाया वशमाप्नोति सत्वरम्।
जरायुजाश्चाण्डजाश्च स्वेदजा द्विजपुङ्गव॥३१॥
उद्भिजाः प्राणिनश्चैव जायन्ते निजरूपतः।
श्वेतकृष्णादयो भावा मायया मम देहिनाम्॥३२॥
शब्दः स्पर्शस्तथा गन्धो रूपं चापि तथा रसः।
मायया मम भाव्यन्ते लीयन्ते च द्विजेश्वर॥३३॥

बहरे को सुनाई देना, अन्धे को उत्तम नेत्र हो जाना, गूँगे को बोलने की चेष्टा और ज्ञान, यह सब कुछ हमारी माया से ही होता है।।२८।।

हे महामते! इस संसार में जन्म लेते ही अज्ञानता, धर्म और अधर्म का ज्ञान तथा मेरी विस्मृति हो जाती है।।२९।।

हे महाभाग! हमारी माया के द्वारा ही व्रण से कीड़े के समान अपानवायु से प्राणी योनियन्त्र के माध्यम से गर्भ से बाहर निकलता है।।३०।।

वहाँ से बाहर निकलते ही जीव प्राणी हमारी माया के वशीभूत हो जाता है। जरायुज (जरे से उत्पन्न होने वाले पशु और मनुष्य), अण्डज (अण्डे से उत्पन्न होने वाले पक्षी आदि), स्वेदज (पसीने से उत्पन्न होने वाले जूँ, लीख, खटमल आदि) हैं।।३१।।

उद्भिज (पृथ्वी का भेदन कर उत्पन्न होने वाले वृक्ष आदि) प्राणी ये सभी योनि के जीव अपनी-अपनी आकृति के अनुसार श्वेत, कृष्ण आदि भाव हमारी माया से ही धारण करते हैं।।३२।।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये सब हमारी माया से ही उपलक्षित होते हैं। हे द्विजश्रष्ठ! अन्त में पुनः लीन हो जाते हैं।।३३।।

समुद्राश्च तथा दिव्यभौमैर्जलैरलङ्कृताः।
पूर्यमाणा न वर्द्धन्ते मायया मम सर्वतः॥३४॥
वर्षासु बहुतोयाश्च सरितः पल्वलानि च।
सरांसि वृद्धिमायान्ति शुष्यन्ति तपनेऽखिलाः॥३५॥
एष मायाप्रभावो मे मेघा गृह्णन्ति यज्जलम्।
लवणं लवणाब्धेश्च वर्षन्ति मधुरं पुनः॥३६॥
एष मायाप्रभावो मे हिमवच्छिखरादधः।
मन्दाकिनी समाख्याता गङ्गा जाता ततः परम्॥३७॥
वन्यौषद्ध्यौ वीर्यरूपा जीवन्ति प्राणिनो द्विजाः।
पुनस्त एव चौषद्ध्यो नाशमायान्ति सत्वरम्॥३८॥
आयुक्षयपरिज्ञानं सर्वं वीर्यं हराम्यहम्।
जायमानोऽल्पतनुको यौवने च तथा महान्॥३९॥
अवस्थायां तृतीयायां जराव्याप्तः श्लथस्तथा।
पश्चादिन्द्रियनाशश्च सर्वं मायाबलं मम॥४०॥

समुद्र भी दिव्य जल और रत्नादिकों से परिपूर्ण हो रहे हैं और अपनी मर्यादा से अधिक नहीं बढ़ते, यह भी हमारी माया ही है।।३४।।

वर्षा ऋतु में नदियाँ और छोटे-छोटे जलाशय तथा सरोवर आदि प्रभूत जल होने के कारण वृद्धि को प्राप्त होते हैं, किन्तु ग्रीष्म ऋतु के आने पर वे सभी सूख जाते हैं।।३५।।

यह मेरी माया का ही प्रभाव है कि मेघ खारे समुद्र से खारे जल को ग्रहण करता है; किन्तु उसे मधुर रूप में वर्षा करता है।।३६।।

यह भी मेरी ही माया का प्रभाव है कि जो हिमालय के शिखर के नीचे मन्दाकिनी कही जाती हैं, वही इसके आगे गङ्गा नाम से विख्यात है।।३७।।

हे द्विज! पराक्रम को प्रदान करने वाली वन की औषधियाँ प्राणियों को जीवित करती है; किन्तु पुनः वे ही औषधियाँ शीघ्र नष्ट हो जाती हैं।।३८।।

जब आयु के क्षय का परिज्ञान होता है, तब देहधारियों के सम्पूर्ण पराक्रम का अपहरण कर लेता हूँ। जन्म के समय प्राणी का शरीर छोटा सा होता है; किन्तु युवावस्था में महान् हो जाता है।।३९।।

जब तीसरी वृद्धावस्था प्राप्त होती है, तब वृद्धभाव प्राप्त होने के कारण सभी अङ्ग शिथिल हो जाते हैं तथा अन्त में इन्द्रियों की शक्ति का नाश हो जाता है, यह सब कार्य हमारी माया से ही होता है।।४०।।

अणुमात्रेऽश्वत्थबीजे वापितेऽङ्कुरसम्भवः।
पुनः पत्रादिकोत्पत्तिस्तथा शाखाः प्रशाखिकाः॥४१॥
जायन्ते मायया विप्र पुनर्बीजं तथाङ्कुरम्।
यो यो विभूतिमाञ्जन्तुर्दरिद्रश्च तपोधन॥४२॥
मायामेतामहं कृत्वा तोषयामि दिवौकसः।
ब्रह्मा सृजति लोकं हि चेति सर्वे वदन्ति हि॥४३॥
मायामयं वपुः कृत्वा ह्यहमेव सृजामि वै।
लोका वदन्ति शक्रोऽयं देवान् पालयति द्विज॥४४॥
अहमेवेन्द्रवपुषा पालयामि दिवौकसः।
मायया यमरूपेण नाश्यते च मया जगत्॥४५॥
कौबेरं रूपमास्थाय धनानां रक्षिता ह्यहम्।
इन्द्रमायां समाश्रित्य वृत्रो मे नाशितः पुरा॥४६॥
रुद्रमायां समाश्रित्य त्रिपुरोऽपि विनाशितः।
वायुमायां समाश्रित्य प्राणिनां देहसंस्थितः॥४७॥

जब हम अणुमात्र अश्वत्थ का बीज बोते हैं, उस समय केवल अङ्कुर उत्पन्न होता है, तदनन्तर पत्र आदि, इसके बाद शाखा-प्रशाखा आदि की उत्पत्ति होती है।।४१।।

हे विप्र! हमारी माया से ही पुनः बीज और अङ्कुर का क्रम चलता रहता है। हे तपोधन! संसार में जो ऐश्वर्यशाली अथवा दरिद्र जीव देखे जाते हैं, यह सब कार्य हमारी माया से ही होता है।।४२।।

हम अपनी माया करके ही देवताओं को सन्तुष्ट करते हैं। सब लोग यही कहते हैं कि ब्रह्मा जी लोक की रचना करते हैं।।४३।।

किन्तु मैं ही मायामय देह धारण कर संसार की रचना करता हूँ। हे द्विज! लोग यह कहते हैं कि ये इन्द्र देवों का पालन करते हैं।।४४।।

मैं ही इन्द्र का शरीर धारण कर देवताओं का पालन करता हूँ। अपनी माया से यम का रूप धारण कर मैं ही संसार का नाश करता हूँ।।४५।।

कुबेर का रूप धारण कर मैं ही धन की रक्षा करता हूँ। प्राचीनकाल में मैंने इन्द्र की माया का आश्रय लेकर वृत्रासुर का विनाश किया था।।४६।।

मैंने ही रुद्र की माया का आश्रय लेकर त्रिपुर को भी विनष्ट किया था। मैं ही वायु की माया में आश्रित होकर प्राणियों के शरीर में निवास करता हूँ।।४७।।

जाठराग्निरहं भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
चतुर्विधं पचाम्यन्नं मायैषा मम कीर्तिता॥४८॥
वाडवं रूपमास्थाय सामुद्रं जलमन्वहम्।
पिबामि मायया विप्र समुद्रे कृतसंश्रयः॥४९॥
सामुद्रं रूपमास्थाय सन्धरामि जगद् बहिः।
लोकानाश्रित्य भूरादीञ्जगद्रूपोऽस्मि मायया॥५०॥
सौरीं मायां समाश्रित्य सन्तरामि जगत् त्रयम्।
मायां मेघमयीं कृत्वा सन्धरामि जलं तथा॥५१॥
राजरूपं समाश्रित्य पालयामि स्वमायया॥५२॥
अहमेव पुरा मत्स्यो वेदोद्धारं तथाऽकरम्।
कौर्मीं मायां समाश्रित्य धृतो वै मन्दराचलः॥५३॥
वाराहरूपमाश्रित्य धरोद्धारः कृतो मया।
नारसिंहं वपुर्धृत्वा हिरण्यकशिपुर्हतः॥५४॥

मैं ही जठराग्नि रूप से प्राणियों के देह में आश्रित रहकर चार प्रकार के अन्न (खाद्य, लेह्य, चोष्य और पेय) को पकाता हूँ, यह मेरी माया ही कही गयी है।।४८।।

हे विप्र! वडवानल का रूप धारण कर समुद्र में निवास करके प्रतिदिन समुद्र के जल का पान करता हूँ।।४९।।

पुनः समुद्र के रूप में मैं बाहर से जगत् को धारण करता हूँ। मैं अपनी माया से भूः आदि लोकों का आश्रय लेकर जगत् के रूप में विद्यमान हूँ।।५०।।

सूर्य के रूप में माया का आश्रय लेकर मैं ही तीनों लोकों का सन्तरण करता हूँ। इसी प्रकार मेघमयी माया करके मैं जल को धारण करता हूँ।।५१।।

मैं ही अपनी माया के द्वारा राजा का रूप धारण कर संसार का पालन करता हूँ।।५२।।

प्राचीनकाल में मैंने ही मत्स्य का रूप धारण कर वेदों का उद्धार किया था। इसके बाद कूर्म की माया का आश्रय लेकर मन्दराचल को धारण किया था।।५३।।

मेरे द्वारा ही वाराह (सूकर) का रूप धारण कर धरा (पृथिवी) का उद्धार किया गया था। मनुष्य और सिंह का शरीर धारण कर हिरण्यकशिपु का वध किया गया था।।५४।।

वामनं रूपमास्थाय बलिर्नीतो रसातले।
भूत्वा परशुरामोऽहं क्षत्रस्यान्तकरोऽभवम्॥५५॥
भूमेर्भारापनोदश्च रामरूपेण वै कृतः।
कृष्णमायां समाश्रित्य भूमिभारो हृतो मया॥५६॥
योगमायां समाश्रित्य बदरीविपिने स्थितः।
कल्किर्भूत्वा म्लेच्छजातीन्नाशयिष्ये स्वमायया॥५७॥
यत् किञ्चिद् दृश्यते विप्र जगत्स्थावरजङ्गमम्।
मायैषा मम विप्रेन्द्र सर्वमेतत् प्रकीर्तितम्॥५८॥

॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कुब्जाम्रकमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

वामन रूप धारण कर राजा बलि को पाताल ले गया था। परशुराम का अवतार लेकर क्षत्रियों का अन्त मैंने ही किया था॥५५॥

मैंने ही राम के रूप से भूमि के भार को दूर किया था। कृष्ण का रूप ग्रहण कर हमने ही भूमि के भार का उद्धार किया था॥५६॥

हमने ही योगमाया का आश्रय लेकर बदरीवन में स्थिति की है। अपनी माया से कल्कि का अवतार लेकर म्लेच्छों का विनाश करूँगा॥५७॥

हे विप्र! यह जो कुछ भी स्थावर या जङ्गम जगत् दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब मेरी माया ही कही गयी है॥५८॥

॥ इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के केदारखण्ड के अन्तर्गत एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥११७॥

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-६५४+५८=७१२]



अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

भगवता वार्यमाणेऽपि सोमशर्मणा भगवन्तं मायादर्शनयाचना

सोमशर्मोवाच

प्रोक्ता माया त्वया देव जगदेतच्चराचरम्।
कथं परमहं जाने तव मायां दुरत्ययाम्॥१॥
स्वकर्मणा ह्ययं लोकः कर्मसु वै प्रवर्त्तते।
त्वन्मायाप्रेरितो जन्तुः करोतीति कथं नरः॥२॥
तस्माद्यथा महाविष्णो तव मायां दुरत्ययाम्।
जानीयाममितां देव वृणे वरमिमं ध्रुवम्॥३॥

श्रीभगवानुवाच

मम माया महाभाग दुर्गम्या च सुरैरपि।
अन्यं वरं वृणुष्व त्वं धनं रत्नं वसुन्धराम्॥४॥

भगवान् के मना करने पर भी सोमशर्मा द्वारा माया-दर्शन की याचना

सोमशर्मा ने कहा

हे देव! आपने इस समस्त चराचर जगत् को अपनी माया कहकर कीर्तन किया है; किन्तु आपकी इस मनोहारिणी माया को मैं कैसे जान सकता हूँ।।१।।

अपने-अपने कर्मों के द्वारा ही यह संसार कर्मों के आचरण में प्रवृत्त होता है। किन्तु आपकी माया से प्रेरित होकर जीव कैसे कार्य करने लगता है।।२।।

हे विष्णु! जिस प्रकार मैं आपकी इस दुर्ज्ञेय असीम माया को भली-भाँति जान सकूँ, निश्चित ही मैं यही वर की याचना करता हूँ।।३।।

भगवान् ने कहा

हे महाभाग! हमारी माया तो देवताओं के द्वारा भी दुर्बोध्य है, इसलिए तुम धन या भूमि सम्बन्धी किसी अन्य वर की याचना करो।।४।।

अथवा स्वर्गगमनं रम्भासेवनमेव च।
स्वच्छन्दगमनं चैव भूरादिषु महामते॥५॥
अथ चेच्छसि त्रैलोक्ये राज्यं निहतकण्टकम्।
अथ चेच्छसि पुत्रादींस्तथा वाचां प्रचारणम्॥६॥
अवध्यत्वं सुरेन्द्राद्यैरजेयत्वं सुरासुरैः।
अमरत्वं तथान्यद्वै मन ईहितमेव च॥७॥
ददामि सर्वं प्रवरं विना मायां तपोनिधे।
मायां द्रष्टुं न योग्योऽसि तपसां निधिरेव हि॥८॥

सोमशर्मोवाच

न काङ्क्षे भगवन् विष्णो वरमन्यत्तथा महत्।
मायां दर्शय मे स्वीयां यदि तप्तं मया तपः॥९॥

स्कन्द उवाच

वारं वारं महाभाग मुनिना सोमशर्मणा।
याचितोऽपि रमाकान्तो न ददौ तद्वरं द्विज॥१०॥

हे महामति! अथवा स्वर्गगमन, रम्भा अप्सरा का सम्भोग या भू आदि लोकों में स्वच्छन्द गमन की याचना कर लो।।५।।

त्रिलोकी में निष्कण्टक राज्य अथवा पुत्र आदि या वाणी का विलास, इसमें जो कुछ चाहते हो, उसे माँग लो।।६।।

इन्द्रादि देवताओं के हाथ से भी अवध्यत्व अथवा देवता और असुरों के द्वारा अजेयत्व अथवा अमरत्व इनमें जो कुछ भी तुम्हारे मन में अभीप्सित हो।।७।।

हे तपोनिधि! केवल एक माया के दर्शन को छोड़कर अन्य सब कुछ वरदान के रूप में मैं तुम्हें दे सकता हूँ; क्योंकि तुम तपस्या के निधि हो, इसलिए माया के दर्शन के अधिकारी नहीं हो।।८।।

सोमशर्मा ने कहा

हे भगवान् विष्णु! मैं बड़े से बड़े अन्य किसी वर को नहीं चाहता हूँ, यदि मैंने तप किया है, तो आप अपनी माया को मुझे दिखायें।।९।।

स्कन्द जी ने कहा

हे महाभाग! यद्यपि सोमशर्मा ने इस विधि से बार-बार प्रार्थना की, तथापि रमा के स्वामी विष्णु ने इस वर को उन्हें प्रदान नहीं किया।।१०।।

एवं तेन तपस्तप्तं त्रिवारं विष्णुदर्शनम्।
वार्यमाणोऽपि हरिणा पुनर्मायामयाचत॥११॥
भक्तानुकम्पी भगवानुवाच च शुभां गिरम्।
मायां मे सोमशर्मंस्त्वं[1] मदीयां परिवेत्स्यसे॥१२॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुस्तस्मिन् क्षेत्रे शुभावहे।
सोमशर्माऽपि गङ्गायां ययौ स्नातुं द्विजोत्तम॥१३॥
धृत्वा कुण्डीं त्रिदण्डं च धौतमासनमेव च।
कमण्डलुं पुस्तकं च सोमशर्मा सरित्तटे।
संन्यस्य प्रययौ स्नातुं गङ्गायां नियतव्रतः॥१४॥
यावत्प्रविशते विप्र गङ्गायां नाभिमात्रतः।
तावद्धृतो महास्येन कच्छपेन महामुने॥१५॥
निगीर्णश्चर्वितश्चैव प्राणैस्त्यक्तो बभूव ह।
आकृष्टो यमदूतैश्च वायवीयवपुर्मुनिः॥१६॥

इस प्रकार उसने तीन बार तप किया और उसे भगवान् विष्णु के दर्शन हुए। यद्यपि नारायण ने उसे बार-बार निषेध किया, तथापि उन्होंने माया के अवलोकन करने की ही प्रार्थना की।।११।।

तब भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले भगवान् ने शुभ वाणी में कहा— हे सोमशर्मन्! तुम हमारी माया को जानोगे।।१२।।

सोमशर्मा द्वारा नरक का अवलोकन

यह कहकर भगवान् विष्णु वहीं कल्याणकारी क्षेत्र में अन्तर्धान हो गये। हे द्विजश्रेष्ठ! तदनन्तर सोमशर्मा भी किसी समय गङ्गा में स्नान करने के लिए गये।।१३।।

सोमशर्मा वहाँ नदी के तट पर कुण्डी, त्रिदण्ड, धोती, आसन, कमण्डलु और पुस्तक रखकर स्नान करने की कामना से गङ्गा में प्रविष्ट हुए।।१४।।

हे महामुनि! जैसे ही वे गङ्गा के नाभिपर्यन्त जल में प्रविष्ट हुए, उसी समय बहुत बड़े मुख वाले एक कच्छप ने उन्हें पकड़ लिया।।१५।।

वह कच्छप उन्हें निगल गया और चबा गया, जिससे वे प्राण से रहित हो गये। उनके वायवीय शरीर को यमदूत आकर्षित करने लगे।।१६।।

---

१. सोमशर्मस्त्वमिति ख.।

मायानरकसामग्रीं ददर्श स महातपाः।
क्रकचैः पाट्यमानांश्च क्वथमानांश्च सर्वतः॥१७॥
ताड्यमानांश्च मुशलैर्हाहाकाररवांस्तथा।
ददर्श किङ्करांस्तत्र यमस्य परितो बहून्॥१८॥
सिंहाननान् वृकमुखान् विकृतान् विकृताननान्।
केचिद् गर्जन्ति केचित्तु साट्टहासास्तथापरे॥१९॥
भिन्धि भिन्धि च्छिन्धि च्छिन्धि भक्ष भक्षामि चापरः।
इति नानाविधा वाचः शुश्राव यममन्दिरे॥२०॥
दृष्टा पापगतिस्तेन तथा पुण्यगतिर्मुने।
त्रासयुक्तो महाभाग ददर्श विविधा गतीः॥२१॥
असिभिश्छिद्यमानाश्च चक्रक्षेपार्त्तिपीडिताः।
निगडैर्बध्यमानाश्च तप्तैरायसनिर्मितैः॥२२॥

तदनन्तर उस महामुनि ने मायारूप नरक की सामग्री का अवलोकन किया। नारकी जीव कहीं आरे से चीरे जा रहे थे। पापी जीव चारों ओर उबाले जा रहे थे।।१७।।

वे सब मुसलों से पीटे जा रहे थे, इसलिए वे लोग हाहाकार के शब्द कर रहे थे। इस प्रकार उन्होंने वहाँ चारों ओर यमराज के दूतों को यातना देते हुए देखा।।१८।।

किन्ही-किन्ही यमदूतों का सिंह का मुख था। किसी का भेड़िये का मुख था, कोई विकृत शरीर और विकृत मुख वाले थे। कुछ यमदूत गर्जना कर रहे थे, तो दूसरे अट्टहास कर रहे थे।।१९।।

कोई कहता काटो, काटो कोई कहता छेदन करो, छेदन करो, कोई कहता था कि मैं इसे भक्षण करने जा रहा हूँ। इस प्रकार सोमशर्मा ने यमराज के भवन में नाना प्रकार के शब्द का श्रवण किया।।२०।।

हे मुनि! उन्होंने वहाँ पापियों की गति को देखा, साथ ही पुण्यों की गति का भी अवलोकन किया। हे महाभाग! इस प्रकार उनसे भयभीत होकर वहाँ अनेक प्रकार की गतियों को देखा।।२१।।

उन्होंने वहाँ पापियों को खड्ग से काटे जाते हुए देखा। कहीं पापी चक्र के प्रहार से पीड़ित हो रहे थे। कहीं कोई पापी गरम लोहे की बनी बेड़ियों से बाँधे जा रहे थे।।२२।।

त्रिशूलैर्भेद्यमानाश्च भिन्नाश्चेष्टतरं तथा।
अपरे भिद्यमानाश्च भिन्नाङ्गाश्च तथाऽपरे॥२३॥
लोहस्तम्भेषु तप्तेषु बद्धान् दृष्ट्वा मुनिस्तथा।
नदीं वैतरणीं तत्र पूयशोणितवाहिनीम्॥२४॥
तथा कृमिकुलैश्छन्नां तप्तां पूरीषकर्दमाम्।
सङ्कीर्णां पापिभिश्चापि क्रन्दमानैरितस्ततः॥२५॥
असिपत्रवनं चैव तथा सन्तप्तबालुकम्।
रौरवं च महाघोरं योजनत्रयविस्तृतम्॥२६॥
सन्तप्यमानं तीक्ष्णेन वह्निना च समन्ततः।
हाहारवशताकीर्णं महारौरवमेव च॥२७॥
योनिपुंसाख्यमपरं तामिस्त्रं च महार्त्तिदम्।
महातामिस्त्रकं चैव सम्भ्रमं च तथैव च॥२८॥

कोई त्रिशूल से और कोई अन्य प्रकार से मारे जा रहे थे। कुछ लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से मारे जाने के कारण छिन्न-भिन्न अङ्ग वाले हो गये थे।।२३।।

वहाँ मुनि सोमशर्मा ने तपाये हुए लोहे के खम्भों में बाँधे जाते हुए पापियों को देखा। वहाँ पर उन्होंने वैतरणी नामक नदी को भी देखा, जो पीब, रक्त को प्रवाहित कर रही थी।।२४।।

उस वैतरणी नदी में अनेक प्रकार के कीड़े व्याप्त थे। उसमें तप्त पुरीष के पङ्क थे, चारों ओर आर्त्तध्वनि करते हुए पापियों से वह नदी व्याप्त थी।।२५।।

वहाँ सोमशर्मा ने तलवार के समान पत्र वाले वन को देखा, पुनः सन्तप्त बालु वाले वन का अवलोकन किया। तदनन्तर महान् भयङ्कर रौरव नरक को देखा, जो तीन योजन अर्थात् बारह कोश में विस्तृत था।।२६।।

वहाँ चारों ओर सन्दीप्त अग्नि से पापी जीव जलाये जा रहे थे। वहाँ महारौरव नरक था, जो हाहाकार के शब्द से व्याप्त था।।२७।।

वहाँ एक अन्य नरक योनिपुंस नाम वाला था, दूसरा अति पीड़ादायक तामिस्त्र नामक नरक था। वहीं पर महातामिस्त्र और सम्भ्रम नामक नरक भी था।।२८।।

अभेद्यकृमिसम्पूर्णं पुरीषभक्षणं तथा।
स्वमांसभक्षणं चैव कुम्भीपाकं च दृष्टवान्॥२९॥
एते चान्ये च बहवो यातनानरकास्तथा।
दृष्टास्तेन महाभाग लम्बमानास्तरुव्रजे॥३०॥
पश्यन् महातपा विप्रस्त्रस्तः पापान् समीक्ष्य वै।
ततो ब्रह्मपुरे विद्वन्नानाभोगपरिप्लुतः॥३१॥
क्षुत्तृष्णारहितस्तत्र दुःखेन रहितस्तथा।
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च महर्जनम्॥३२॥
तपःसत्ये च पातालमव्याहतगतिर्द्विजः।
यत्रेच्छति स वै गन्तुं तत्र तत्र विमानगः॥३३॥
जगामाऽप्सरोगन्धर्वकिन्नरैरुपशोभितः ।
एवं वर्षसहस्त्रं च भुक्त्वा दिव्यं च भोगकम्॥३४॥

वहाँ ऐसे भी नरक थे, जिसमें अभेद्य कीड़े भरे पड़े थे। जहाँ विष्ठा का भोजन करना पड़ता है, कहीं पापी अपने मांस को ही खा रहे थे। वहाँ उन्होंने कुम्भीपाक नामक नरक भी देखा।।२९।।

इस प्रकार उन्होंने वहाँ अनेक प्रकार की नरकयातनाओं का अवलोकन किया। हे महाभाग! उन्होंने वहाँ वृक्षों पर पापियों को लटकते हुए देखा।।३०।।

हे द्विजश्रेष्ठ! वहाँ पापियों की यातनाओं को देखता हुआ वह तपस्वी ब्राह्मण सोमशर्मा ब्रह्मलोक गया। वहाँ उसने अनेक प्रकार के भोगों को प्राप्त किया।।३१।।

वहाँ वह भूख और प्यास से रहित हो गया। उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं था। पुनः वह भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और महर्लोक गया।।३२।।

तदनन्तर तप:लोक, सत्यलोक, पाताललोक में भी बिना रुकावट के गया, इस प्रकार जहाँ-जहाँ जाने की इच्छा करता था, वह विमान से वहीं पर गमन करता था।।३३।।

वह अप्सरा, गन्धर्व और किन्नरों से उपशोभित लोकों में भी गया। इस प्रकार वह एक हजार वर्ष तक दिव्य भोगों का उपभोग करता रहा।।३४।।

पृथिव्यां च पुनर्जातो राजा परमधार्मिकः।
बुभुजे च ततो भोगान् राज्यप्राप्तान् महायशाः॥३५॥
इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः।
पुनः स्वर्गं जगामाऽपि भुक्त्वा भोगांश्च शाश्वतान्॥३६॥
ततश्चन्द्रस्य बिम्बे च भूत्वा नीहाररूपधृक्।
स्रवते स्म तथौषध्यां जीवश्चन्द्रस्य मण्डलात्॥३७॥
एतस्मिन्नन्तरे काचिन्निषादवनिता ततः।
जाता ऋतुमती तत्र गर्भाधानपराऽभवत्॥३८॥
निषादेन तु यद् भुक्तं तत्र प्राप्तोऽमृतात्मकः।
निषाद्या योनियन्त्रे वै क्षिप्तो मैथुनकर्म्मणा।
रेतः सञ्चालितो जन्तुर्लिङ्गात्स्त्रीयोनिसञ्चितः॥३९॥
योनिरक्तेन संयुक्तो जरायुपरिवेष्टितः।
दिनेनैकेन कललं कठिनत्वमगात्ततः॥४०॥

इसके बाद वह पृथिवी पर परम धार्मिक राजा के रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसने राज्य प्राप्त कर महान् यश को अर्जित करता हुआ भोगों का उपभोग किया।।३५।।

वह अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान किया और उन यज्ञों को श्रेष्ठ दक्षिणा प्रदान करते हुए समाप्त करता था। फिर वह अनेक प्रकार के सनातन भोगों को भोग कर पुनः स्वर्गलोक में चला गया।।३६।।

तदनन्तर चन्द्रमण्डल में जाकर नीहार (पाले) का रूप धारण कर चन्द्रमा के मण्डल से औषधियों के मध्य में जीवनी शक्ति प्रदान करने लगा।।३७।।

इसी अवसर पर किसी निषाद की स्त्री ऋतुमयी हुई और वह गर्भाधान की इच्छा करने लगी।।३८।।

निषाद ने वहाँ जो भोजन किया था, वह औषधियों से अमृत बनकर प्राप्त हुआ। उसने उसे मैथुन कर्म के द्वारा निषादी के गर्भाशय में सञ्चित कर दिया।।३९।।

इस प्रकार वह गर्भाशय के रक्त से संयुक्त होकर जरायु से भी परिवेष्टित हो गया। वह एक दिन में कलल का रूप धारण करने के बाद कठोरता को प्राप्त हो गया।।४०।।

बुद्बुदाकारतां प्राप्तः पञ्चरात्रेण स द्विजः।
ततः पेशित्वमापन्नो मांसस्य सप्तरात्रितः[१]।।४१।।

मासार्धेन मांसपेशी रुधिरेण परिप्लुतः।
कठिनत्वं तदाप्नोति पञ्चविंशतिरात्रिषु[२]।।४२।।

मासाच्छिरःसमुत्पत्तिर्ग्रीवास्कन्धौ तथोदरम्।
पृष्ठवंशस्तथोत्पन्नः पञ्चधाङ्गानि तत्क्रमात्।।४३।।

पाणिपादौ तथा पार्श्वौ कटिर्जानुद्वितीयकम्।
त्रिभिर्मासैः कराङ्गुल्यः सन्धयश्च महामुने।।४४।।

मासेन च चतुर्थेन सर्वाङ्गुल्यस्तपोनिधे।
नासिकाकर्णनेत्राणि पञ्चमे मासि संस्फुटम्।।४५।।

दन्तभूमिर्नखा गुह्यं जीवश्च जठरस्थितः।
अङ्गच्छिद्राणि षष्ठे च पायुर्मेढ्रं तथा मुने।।४६।।

तदनन्तर वह ब्राह्मण सोमशर्मा पाँच दिन में बुद्बुद के आकार को प्राप्त हो गया। इसके बाद सात रात्रि में वह मांसपेशी के आकार को प्राप्त किया।।४१।।

पुनः आधे माह के बाद वह मांसपेशी रक्त से भर गयी। उसके बाद पच्चीस रात्रि में कठिनता को प्राप्त हो गयी।।४२।।

इस प्रकार मांसपेशी से ही शिर, ग्रीवा (गर्दन), स्कन्ध, उदर (पेट), पृष्ठ का भाग आदि उत्पन्न हो गये। इसी क्रम में पाँच प्रकार के अङ्गों की उत्पत्ति भी हो गयी।।४३।।

तदनन्तर हाथ, पैर, पार्श्वभाग, कटि (कमर) और दोनों जानु ये सब बन जाते हैं। हे महामुनि! तीसरे महीने में हाथ की अङ्गुलियाँ और समस्त सन्धि (जोड़) बन जाती है।।४४।।

हे तपोनिधि! चौथे महीने में समस्त अङ्गुलियाँ बन जाती हैं। नासिका, कर्ण, नेत्र ये सब पञ्चम मास में स्फुट हो जाते हैं।।४५।।

इस समय तक गर्भाशय में स्थित जीव में दाँत के स्थान और नाखून भी हो जाते हैं। हे मुनि! षष्ठ मास में अङ्गों के छिद्र, गुदा और शिश्न ये सब बन जाते हैं।।४६।।

---

१. 'सप्तरात्रतः' इति ख.। २. 'पञ्चविंशतिरात्रितः' इति ख.।

नाभिश्च सप्तमे मासि जातास्तस्य महामते।
लोमानि च महाभाग शीर्षकेशास्तथोद्गताः॥४७॥
विभिन्नावयवत्वं च सर्वं जातं तथाष्टमे।
ववृधे जठरे जन्तुः संस्मरन् पूर्वकर्म तत्॥४८॥
नाना जन्मानि जातानि तथा चोच्चावचानि च।
जठराग्निसमुद्विग्नः कति वारं स्वजन्मसु॥४९॥
स्वकर्मणा कर्महीनो जातोऽहं देहदुःखभाक्।
न मे मृत्युः कर्मसूत्रान्निबद्धस्यापि पीडतः॥५०॥
नानायोनिसहस्राणि ह्यनुभूतानि वै मया।
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारास्तथैव च॥५१॥
कुटुम्बभरणासक्तिर्जाता च मम सर्वदा।
सत्कर्म न कृतं येन जातो मुक्तिविवर्जितः॥५२॥

हे महामति! सप्तम मास में उस जीव के नाभि बनती है। हे महाभाग! उसी मास में लोम एवं शिर के बाल भी उत्पन्न हो जाते हैं।।४७।।

इसके पश्चात् अष्टम मास में भिन्न-भिन्न सभी अङ्ग परिलक्षित होने लगते हैं। उस समय उदर (गर्भ) में स्थित जीव अपने पूर्व जन्म के कर्मों का स्मरण करता है।।४८।।

जीव स्मरण करता है कि इसके पूर्व ऊँच-नीच जाति में मेरे अनेक जन्म हुए हैं। इसी कारण अपने जन्म के समय में न जाने कितनी बार जठराग्नि के द्वारा पीड़ित हुआ हूँ।।४९।।

अपने ही कर्म से अच्छे कर्म से रहित होने के कारण पुनः मुझे शरीर धारण करने का दुःख भोगना पड़ा है, कर्म-सूत्र के बन्धन में निबद्ध होने के कारण मैं अत्यन्त पीड़ित हूँ। मेरी मृत्यु अर्थात् दुःखों से मुक्ति नहीं हो रही है।।५०।।

मैंने अनेक प्रकार की सहस्रों योनियों का उपभोग किया है। इसी प्रकार मेरे सहस्रों माता-पिता और हजारों स्त्री-पुत्र आदि भी हुए हैं।।५१।।

सभी जन्मों में कुटुम्ब के पालन-पोषण की आसक्ति मुझमें बनी रही; किन्तु मैंने कोई अच्छा कार्य नहीं किया, जिस कारण से मैं मुक्ति से अलग ही रहा, अर्थात् मुक्ति न मिल पायी।।५२।।

न जाने पातकं तद्वै येन जातोऽस्मि गर्भगः।
स्त्रीशरीरो भाग्यहीनो निषादीगर्भमागतः॥५३॥
जातं मे दर्शनं विष्णोस्तपस्तप्तं च मे महत्।
केन कर्मविपाकेन निषादीगर्भसंस्थितः॥५४॥
किं करोमि क्व गच्छामि पीड्यमानोऽग्निना मुहुः।
भक्ष्याभक्ष्यविधिश्चैव न स्थिरो मम साम्प्रतम्॥५५॥
अत ऊर्ध्वं कदाचिद्धि भविष्यति गतिर्बहिः।
कर्तव्या मे विष्णुचिन्ता गर्भवासो यतो न हि॥५६॥
इति वै चिन्तयोद्विग्नः स वै ब्राह्मणसत्तमः।
दशमे मासि योनेस्तु कुर्वन् मातुः प्रपीडनम्॥५७॥
पीड्यमानः स्वयं चैव नरकात्पातकी यथा[१]।
निर्गतस्तु स्वरूपेण स्पृष्टः संसारवायुना॥५८॥

वह गर्भस्थ सोमशर्मा सोचता है कि मैं उस पाप को नहीं जानता, जिससे मुझे गर्भ में आना पड़ा है। मैं भाग्यहीन स्त्री का शरीर धारण कर दु:खित होकर गर्भ में उपस्थित हो रहा हूँ।।५३।।

मुझे भगवान् विष्णु का दर्शन हुआ था, मैंने महान् तप का अनुष्ठान किया था, फिर भी किस कर्म के परिणामस्वरूप मैं निषाद की पत्नी के गर्भ में प्राप्त हुआ हूँ।।५४।।

हाय! मैं बारम्बार जठराग्नि से पीड़ित हो रहा हूँ। इस समय मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? सम्प्रति मेरी भक्ष्य और अभक्ष्य की विधि भी निश्चित नहीं है।।५५।।

यदि अब मेरा गर्भ के बाहर निकास होता है, तो मैं अवश्य भगवान् विष्णु का निदिध्यासन करूँगा, जिससे कि पुनः मेरा गर्भ में निवास न हो।।५६।।

इस प्रकार की चिन्ता से वह ब्राह्मणश्रेष्ठ सोमशर्मा उद्विग्न हो गया, तदनन्तर दशम मास प्राप्त होने पर माता के गर्भाशय को पीड़ित करने लगा।।५७।।

स्वयं भी पीड़ित होता हुआ वह जीव इस प्रकार बाहर निकला, जैसे पापी जीव नरक से बाहर निकलता है। बाहर निकलते ही सांसारिक वायु ने उसका स्पर्श किया।।५८।।

१. पातकीऽऽयथेति ग.।

जायमाना तु सा कन्या रुरोद क्षुधयाऽऽवृता।
अजानती महामायां वैष्णवीं विष्णुतत्परा॥५९॥
विण्मूत्रपरिक्लिन्नाङ्गी स्तनपानपरायणा।
वक्तुं किमपि नो शक्ता न गन्तुं च क्वचिन्मुने॥६०॥
एवं बाल्येऽपि दुःखानि ह्यनुभूतानि चैतया।
क्रमेण यौवनाक्रान्ता जाता नैषादकन्यका[1]॥६१॥
पित्रा दत्ताऽपि कस्मैचिन्निषादाय महामते।
तत्रापि पुत्रभृत्यादिसंयुताऽऽसीत्क्रमेण सा॥६२॥
एवं जातानि पञ्चाशद्वर्षाणि द्विजपुङ्गव।
एकदा सा नदीतीरे गता स्नातुं महामते॥६३॥
यावत्स्नाति महाशूद्रा तावत्कच्छपमूर्त्तिना।
कालेन सङ्ग्रहीता सा पुनर्जातो यथा पुरा॥६४॥

कन्या के रूप में उत्पन्न होते ही क्षुधा से व्याकुल होकर वह जीव रोदन करने लगा। विष्णु भगवान् में तत्पर रहने पर भी वह वैष्णवी माया के विषय में कुछ भी नहीं जान सका।।५९।।

अब वह कन्या विष्ठा और मूत्र से भींगी हुई स्तनपान करने लगी। हे मुनि! वह कुछ कहने में समर्थ नहीं थी, न वह कहीं जा सकती थी।।६०।।

इस प्रकार बाल्यावस्था में भी दु:खों का अनुभव करती रही। पुन: क्रमश: वह निषाद की कन्या युवावस्था को प्राप्त हो गयी।।६१।।

हे महामति! तदनन्तर उसके पिता ने किसी निषाद को उसे दान कर दिया। वहाँ भी वह युवती पुत्र तथा भृत्य आदि से युक्त हो गयी।।६२।।

हे द्विजश्रेष्ठ! इसी क्रम में उसके पच्चास वर्ष व्यतीत हो गये। हे महामति! एक समय वह स्नान करने के लिए नदी के तट पर गयी।।६३।।

जैसे ही वह महाशूद्रा स्नान करने लगी, उसी समय काल ने कच्छप रूप होकर उसे पकड़ लिया। वह कन्या रूप को छोड़कर फिर वैसा ही हो गया, जैसा पहले उसका ब्राह्मण का रूप था।।६४।।

---

१. नैषदिकन्यकेति ख.।

स्नातः समागतो यद्वत्त्रिदण्डी दण्डकुण्डिकाम्।
गृहीत्वा वाससी तद्वत्पश्यतां वै तपस्यताम्॥६५॥
एतस्मिन्नेव काले तु निषादः क्रोधमूर्च्छितः।
महायष्टिं गृहीत्वा तु तामन्वेष्टुं समाययौ॥६६॥
अन्वेषमाणः सततं तीरे तीरे विशेषतः।
वनानां चैव कुञ्जेषु वप्रेषु तटवीचिषु॥६७॥
एवमन्विष्यतस्तस्य निषादस्य महामते।
दिनं सर्वं क्षयं जातं प्राप्ता चैव तु शर्वरी॥६८॥
विललाप ततोऽरण्ये गङ्गातीरे समाश्रितः।
हा प्रिये क्व गतासि त्वं त्यक्त्वा मां पुत्रदारिकाः॥६९॥
किं करोमि क्व गच्छामि कथं जीवेयुरर्भकाः।
का मां प्रिये चिन्तयानं शयानं शयने स्थिता॥
मधुरालापप्रश्नैश्च तूर्णमाश्वासयिष्यति॥७०॥

स्नान कर त्रिदण्ड, कुण्डी एवं वस्त्रों को लेकर तपस्वियों के देखते-देखते वह फिर लौट आया।।६५।।

इसी समय उसका पति निषाद क्रोध से मूर्च्छित होता हुआ बड़े दण्डे को लेकर उसको खोजने के लिए चल पड़ा।।६६।।

वह निषाद सर्वत्र विशेषकर प्रत्येक घाट पर उसका अन्वेषण करने लगा। वह वनों की कुञ्जों में, पहाड़ी टीलों पर, तट की वीचियों में खोजता रहा।।६७।।

हे महामति! इस प्रकार अन्वेषण करते हुए उस निषाद का सारा दिन तो व्यतीत हो ही गया और रात भी हो गयी।।६८।।

तब वह वन के मध्य में गङ्गा के तट पर बैठकर विलाप करने लगा। हाय प्रिये! तुम मुझको तथा इन पुत्र और पुत्रियों को छोड़कर कहाँ चली गयी।।६९।।

हाय! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मेरे बच्चे कैसे जीवित रहेंगे? हे प्रिये! जब मैं चिन्तातुर होकर पलङ्ग पर लेटूँगा, उस समय शय्या पर बैठकर मीठी-मीठी बातों से पूछकर मुझे कौन आश्वासन देगी।।७०।।

स्तनन्धयश्च स कथं भविष्यति दिनात्यये।
मातर्मातः पुनर्मातरित्युक्त्वाऽश्रुपरिप्लुतः॥७१॥
रोदयिष्यति मां चैव तथान्याञ्जातिबान्धवान्।
कच्चित्त्वं परिहासाय लीलापुलिनसंस्तरे॥७२॥
कच्चिन्मम प्रेम द्रष्टुं स्थिता कुञ्जेऽतिवेश्मनि।
कच्चित्त्वां व्याघ्रसर्पाद्या चक्रुरसुविवर्जिताम्॥७३॥
कच्चित्त्वं गह्वरे तन्वि गता नीता च राक्षसैः।
इति लालप्यमाने तु तत्र तस्मिन्निषादजे॥७४॥
मुमोह माययाऽऽविष्टो दृष्ट्वा तं तादृशं मुने।
उवाच वचनं दीनो वाष्पकण्ठः सगद्गदम्॥७५॥
मा रोदीस्त्वं निषादेश कालो वै दुरतिक्रमः।
अप्रमादेन स्थातव्यं शत्रुमित्रेषु सर्वदा॥७६॥
इति सर्वं वचः श्रुत्वा वाष्पगद्गदया गिरा।
उवाच सहसाऽऽगत्य तत्र ब्राह्मणसन्निधौ॥७७॥

वे दुधमुहे बालक दिन के बीतने पर कैसे रहेंगे। वे हे माता, हे माता, इस प्रकार बोलते हुए आँसुओं से भर जायेंगे।।७१।।

तब वे मुझको एवं अन्य बन्धु-बान्धवों को भी रुला देंगे। क्या तुम परिहास में कहीं नदी के किनारे पर चली गयी हो।।७२।।

अथवा मेरे प्रेम की परीक्षा लेने के लिए कुञ्जगृह में चली गयी हो। अथवा व्याघ्र, सर्प आदि किसी हिंसक जीव ने तुम्हारे प्राण हरण कर लिये हैं।।७३।।

हे तन्वि! क्या तुम किसी गुफा में गयी थी, वहाँ तुम्हें राक्षसों ने पकड़ लिया है। इस प्रकार वहाँ वह निषाद बार-बार विलाप करता रहा।।७४।।

हे मुनि! उस निषाद को इस प्रकार विलाप करते हुए देखकर वह ब्राह्मण भी मोहित हो गया। तदनन्तर वाष्प से उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया, अतः गद्गद स्वर से इस प्रकार दीन वचन बोला।।७५।।

हे निषादराज! तुम इस प्रकार मत रोओ, क्योंकि काल की गति को कोई पार नहीं कर सकता है। इसलिए आलस्यरहित होकर शत्रु और मित्रों के बीच सर्वदा व्यवहार करना चाहिए।।७६।।

वह निषाद ब्राह्मण के इस वचन को सुनकर वहाँ उसके समीप आया। उसने ब्राह्मण के समक्ष वाष्प से गद्गद वाणी से कहा।।७७।।

भो भो द्विजवरश्रेष्ठ क्व गता सा मम प्रिया।
तया विना क्षणमपि न जीवेयं सुदुःखितः॥७८॥
कयाऽत्र वनकुञ्जेषु नदीनां सङ्गमेषु च।
वहन् कुटजवातेषु पर्वतानां च मूर्द्धसु॥७९॥
तमालमालाजालेषु कूजितेषु च कोकिलैः।
रमयिष्यामि विप्रेश तथा विपिनपङ्क्तिषु॥८०॥
कथयस्व महाभाग क्व गता सा प्रियंवदा।
प्राणदो भव मे सौम्य रक्षस्व मम बालकान्॥८१॥
इतीरितं तस्य वचो निशम्य वै निषादपुत्रस्य विमोहितो द्विजः।
सवाष्पकण्ठोद्गतमन्दवाक्यो जगाद भूयो जगदीशमोहितः॥८२॥
अहं तव स्त्री भवनाधिवासिनी स्थिता निषादेश्वर गच्छ मन्दिरम्।
एतावदेवाभवदस्ति नो तव सम्बन्धकः कर्मगतानुसारिकः॥८३॥

हे द्विजश्रेष्ठ! वह मेरी प्रिया कहाँ चली गयी। उसके बिना अत्यन्त दुःखित होता हुआ मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता हूँ।।७८।।

यहाँ वन की कुञ्जों में, नदियों के सङ्गम में, हिलते हुए कुटज वृक्षों के पवनों में, पर्वतों के शिखरों पर किसके साथ रमण करूँगा।।७९।।

हे विप्रेश! तमाल वृक्षों की श्रेणियों में, कोकिलों के द्वारा कूजन करते रहने पर वनों की पंक्तियों में मैं किसके साथ विहार करूँगा।।८०।।

हे महाभाग! आप बतलायें, प्रियभाषिणी वह कहाँ चली गयी। हे सौम्य! आप मेरे प्राणों के दाता बनें तथा मेरे बालकों की रक्षा करें।।८१।।

उस निषादकुमार के इस प्रकार के कहे गये वचन को सुनकर वह ब्राह्मण मोहित हो गया। अत एव उसका कण्ठ आँसू के निकलने से रुद्ध हो गया और उसकी वाणी लड़खड़ाने लगी। इस प्रकार जगदीश्वर की माया से मोहित होकर बोला।।८२।।

हे निषादेश्वर! तुम्हारे भवनों में अधिकारपूर्वक निवास करने वाली स्त्री मैं ही था। अब तुम अपने भवन को जाओ। कर्मों की गति के अनुसार तुम्हारे साथ हमारा इतने ही दिनों का सम्बन्ध था।।८३।।

रक्षस्व चेमानतिबालकान् मे त्वमेव तेषां जननी पिता च।
कनिष्ठको यः सततं हि रक्ष्यो गच्छस्व गेहं वचनं कुरुष्व॥८४॥
एवं लुब्धं वाक्यमुक्त्वा द्विजस्तु रुरोदोच्चैस्तेन साकं मुनीश[1]।
विष्णोर्मायासंवशो ह्यस्वतन्त्रो हाहेत्युक्त्वा पातयामास वाष्पान्॥८५॥
व्याधोऽपि तत्राशु तदीयबालानानाययामास विमोहनार्थकम्।
रुरोद पादे पतितो जगाद भूयश्च देवेशविमोहितः परम्॥८६॥

एते वै बालका मह्यं मोहयन्तितरां मुने।
गच्छ मे मन्दिरं शीघ्रं त्वां मत्वा मातरं तथा॥८७॥
जीविष्यन्ति तथाऽहं च रक्ष नो म्रियमाणकान्।
रक्षा त्वया प्रकर्तव्या गृहे त्वया यथा वनात्॥८८॥
आनेया मृगपक्ष्याद्या भक्षणार्थं यथा पुरा।
तवैव[2] सर्वं भवनं बालकाश्च धनं तथा॥८९॥

अब तुम ही हमारे इन बालकों की रक्षा करो; क्योंकि तुम ही इनके माता-पिता हो, हमारा वचन मानकर घर जाओ और जो सबसे छोटा है, उसकी रक्षा पूर्ण रूप से करो।।८४।।

हे मुनीश! मोहग्रस्त उस निषाद से इस प्रकार कहकर वह ब्राह्मण भी उच्च स्वर से रोदन करने लगा। भगवान् विष्णु की माया के वशीभूत होकर वह ब्राह्मण अपने अधीन न रह सका, अत एव हाहाकार के शब्दों का उच्चारण करते हुए आँसू बहाने लगा।।८५।।

इतने में ही वह व्याध मोह के कारण उसके बालकों को वहाँ ले आया। फिर मोहित होकर उसके चरणों में गिर कर रोदन करने लगा। तत्पश्चात् देवेश की माया से विमोहित होकर बोला।।८६।।

हे मुनि! ये बालक मुझे मोहित कर रहे हैं, ये सब तुम्हें अपनी माता समझ रहे हैं, इसलिए हमारे घर चलो। ऐसा करने से ये सब जीवित हो जायेंगे। अब तुम मरणासन्न हम लोगों की रक्षा करो। अब तुम्हें वन से घर जाकर हमारी रक्षा करनी चाहिए। जिस प्रकार पहले वन से पशु-पक्षियों को लाया करती थी, उसी प्रकार हम लोगों के खाने के लिए उन्हें लाना चाहिए। वह भवन, वे बालक, वह धन सब कुछ पहले की भाँति तुम्हारा ही है।।८७-८९।।

---

१. मुनीशेति प्रथमान्तप्रयोगः-ग.। २. तदैवेति ग.।

इति श्रुत्वा वचो विप्र निषादस्य नदीतटे।
चकार मनसो भावं गेहे गन्तुं त्वरान्वितः॥९०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र न व्याधो न च बालकाः।
ददर्श दण्डं कुण्डीं च धौतं पात्रं स्थितं तदा॥९१॥
दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यं हरिमायावशो द्विजः।
किमेतद्धि किमेतद्धि चकितोऽभून्महामते॥९२॥
स्मृत्वा तन्मरणं चैव नरकाणां च दर्शनम्।
गर्भवासं च नैषाद्यास्तथा वै स्त्रीस्वरूपताम्॥९३॥
तत्र मायां च पुत्रेषु धनेषु च तथा पतौ।
परमं खेदमापन्नो दुरात्माऽहं भृशं खलः॥९४॥
यस्य मे तादृशी जाता गतिर्विष्णोस्तु चिन्तनात्।
अभक्ष्यं भक्षितं चैवाऽपेयं पीतं च वै मया॥९५॥
अगम्यागमनं चैव कृतं यद्वै दुरात्मना।
भवित्री का गतिर्मे हि कृतपापस्य सर्वदा॥९६॥

जब ब्राह्मण ने नदी के तट पर निषाद का इस प्रकार वचन सुना, तब उसके चित्त में शीघ्र ही घर जाने का भाव उदित हो गया।।९०।।

इसी बीच वहाँ न तो वह व्याध ही रहा और न बालक ही रहे। केवल उसने दण्ड, कुण्डी, धोती और पात्रों को रखा हुआ देखा।।९१।।

हे महामति! हरि की माया के वशीभूत वह ब्राह्मण यह देखकर महान् आश्चर्यचकित हुआ। यह क्या हो गया है? यह क्या हो गया है? इस प्रकार वह चकित हो गया।।९२।।

तदनन्तर उन सभी मरण, नरकों का दर्शन, निषादपत्नी के गर्भ में निवास, स्त्रीरूप की प्राप्ति का स्मरण करने लगा।।९३।।

वहाँ पुत्र, धन और पति में माया आदि का स्मरण करने से उसे अतीव खेद की प्राप्ति हुई और वह कहने लगा कि मैं अत्यन्त ही दुष्ट एवं दुराचारी हूँ।।९४।।

भगवान् विष्णु की माया का चिन्तन करने से मेरी यह दशा हुई है, मैंने उस समय अभक्ष्य का भक्षण किया और अपेय का पान किया।।९५।।

दुराचारी मैंने अगम्या स्त्रियों के साथ गमन किया, हाय सर्वदा दुष्ट आचरण करने वाले मुझ पापी की क्या गति होगी।।९६।।

पापादस्मात्कथं मेऽद्य निष्कृतिर्भविता तथा।
तपश्चर्या कृता पूर्वं प्राप्तं दुःखमनन्तकम्॥९७॥
का भविष्यति पापैर्हि परत्र च गतिर्मम।
इति तच्चिन्तयानस्य द्विजस्य नरपुङ्गव॥९८॥
भक्तानुकम्पी भगवान् प्रत्यक्षं निजगाद ह।
शङ्खचक्रगदापद्मधरैर्बाहुभिरन्वितः॥९९॥
पीताम्बरलसत्कान्तिर्वनमालाविभूषितः।
श्रीवत्सवक्षास्तेजस्वी नवनीरदरूपधृक्॥१००॥
अनन्तमणिमुक्ताभिर्ललितं मुकुटं तथा।
धारयन् वै त्रिलोकीशो रमया सहितः प्रभुः॥१०१॥
रुदन्तं तं समासीनमधोवक्त्रं विमोहितम्।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपोराशे महामते॥१०२॥

मैं यह नहीं जानता कि इस पाप से मेरा उद्धार किस प्रकार होगा। मैंने पहले तपश्चर्या भी की और मुझे अनन्त दुःख की प्राप्ति भी हुई।।९७।।

इन पापकर्मों के आचरण करने से परलोक में मेरी क्या गति होगी? हे नरश्रेष्ठ! वह द्विज इस प्रकार चिन्ता करने लगा।।९८।।

उसी समय भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने वाले भगवान् उसके सामने प्रत्यक्ष होकर इस प्रकार बोले। उस समय भगवान् शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए चार भुजाओं से युक्त थे।।९९।।

पीताम्बर से उनकी कान्ति सुशोभित हो रही थी। भगवान् वनमाला से समलङ्कृत थे। उन तेजस्वी के वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न विराजमान था। भगवान् अभिनव जलद (बादल) के सदृश नील रूप धारण कर रहे थे।।१००।।

अनेक प्रकार की मणियों तथा मुक्ताओं से उनका मुकुट चमक रहा था। ऐसे त्रिलोकी के स्वामी, लक्ष्मी के साथ प्रभु वहाँ विराजमान थे।।१०१।।

इस प्रकार प्रभु ने रोदन करते हुए नीचे मुख कर बैठे हुए अज्ञानाक्रान्त उस ब्राह्मण से कहा—हे महामतिमान् तपोराशि! उठो, तुम्हारा कल्याण हो।।१०२।।

त्वत्समो नास्ति त्रैलोक्ये मद्भक्तो विजितेन्द्रियः।
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि न ते दुर्गतिरस्ति हि॥१०३॥
न त्वया भक्षितं किञ्चिन्न पीतं न कृतं तथा।
न तेऽभून्मरणं विप्र यातना नारकी न हि॥१०४॥
न ते [१]भूत्स्वर्गवासश्च न राज्याप्तिर्न वै मृतिः।
न तेऽभूद् गर्भवासश्च न ते जाठरवेदना॥१०५॥
न ते स्त्रीत्वस्य सम्प्राप्तिर्न निषादगृहे जनिः।
न विवाहो न पुत्राद्या नैतत्सर्वं प्रपञ्चितम्॥१०६॥
यत्त्वया याचितं भद्र तपश्चर्याफलं पुरा।
सेयं माया मया विप्र दर्शिता प्रियलिप्सुना॥१०७॥
एतयैव परं मूढो न जानाति परायणम्।
त्वं तया मोहितो विप्र दृष्टवानिदमद्भुतम्॥१०८॥

तुम्हारे समान जितेन्द्रिय हमारा भक्त इस त्रिलोकी में कोई अन्य नहीं है। तुम धन्य हो, तुमने अपने कर्तव्यों का आचरण कर लिया, तुम्हारी दुर्गति कदापि नहीं होगी।।१०३।।

तुमने न तो कुछ अभक्ष्य का भक्षण किया है, न हि अपेय का पान किया है और न तुमने कोई अकर्तव्य कर्म ही किया है। हे विप्र! तुम्हारा मरण भी नहीं हुआ है और न तुमने किसी नरक की यातना का भोग किया है।।१०४।।

तुम्हें स्वर्ग का निवास और गर्भवास का दुःख भी नहीं प्राप्त हुआ है। न तुम्हें किसी राज्य की प्राप्ति हुई है और न मृत्यु की प्राप्ति हुई है।।१०५।।

न तुम्हें स्त्री का स्वरूप धारण हुआ है और न तुम्हारा जन्म ही निषाद के घर में हुआ है। न तुम्हारा विवाह हुआ और न तुम्हारे पुत्र आदि ही हुए। यह सब मायाजनित प्रपञ्च था।।१०६।।

हे कल्याणमूर्ति! तुमने पहले जो अपनी तपश्चर्या के फल की याचना की थी, उसी अपनी माया को हमने तुम्हें दिखलाया है, क्योंकि मैं तुम्हारा प्रिय करने की इच्छा करता हूँ।।१०७।।

मूर्खजन हमारी इसी माया को नहीं जान सकते हैं। हे विप्र! उसी माया से मोहित होकर तुमने इस अद्भुत माया का अवलोकन किया है।।१०८।।

१. भू इति ग.।

स्वावज्ञा न च ते कार्या मायारूपमिदं जगत्।
स्वभाव एष मायायाः प्रपञ्चः सार्वकालिकः॥१०९॥
अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिर्हि या मता।
तया सम्मोह्यते सर्वं जगदेतच्चराचरम्॥११०॥
परमात्मनो न जन्मापि मरणं न च वेदना।
न वृद्धिर्न च वै ह्रासो न बाल्यं न च यौवनम्॥१११॥
न वा वार्द्धक्यभावोऽस्ति नित्यस्य परमात्मनः।
मम चेष्टास्वरूपस्य स्वभावोऽयं प्रवर्त्तते॥११२॥
संसारमूलभूता सा माया मे द्विजपुङ्गव।
शक्यते सा यदि त्यक्तुं प्रसादेन मम प्रभो॥११३॥
तदा तरति संसारं नानादुःखमयं चलम्।
अतः परं महाभाग मे माया सा दुरत्यया॥११४॥

इसलिये तुम्हें अपनी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए; क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् मायारूप ही है। सभी कालों में प्रपञ्च की रचना करना माया का स्वभाव ही है।।१०९।।

जो अपना नहीं है, ऐसे शरीर आदि में जो आत्मबुद्धि मान रखी है, यह मायाजनित अज्ञान है। उसी माया से चराचर सम्पूर्ण जगत् मोहित है।।११०।।

परमात्मा का न जन्म होता है, न मरण होता है और न किसी प्रकार की पीड़ा ही होती है। उनकी वृद्धि और ह्रास भी नहीं होते हैं। उनकी बाल्यावस्था अथवा युवावस्था भी नहीं आती है।।१११।।

परमात्मा नित्य हैं, इसलिए उनको कभी वार्द्धक्यभाव की भी प्राप्ति नहीं होती है, यह सब कुछ हमारी चेष्टा के प्रभाव से ही प्रवृत्त होता है।।११२।।

हे द्विजश्रेष्ठ! यही हमारी माया संसार का मूल कारण है। हमारी कृपा से ही कोई व्यक्ति उस माया का परित्याग कर सकता है।।११३।।

हमारी कृपा से ही अनेक दुःखों से व्याप्त एवं चल अर्थात् नाशवान् इस संसार से पार पा सकता है। हे महाभाग! मेरी कृपा के बिना यह माया अत्यन्त दुःख से पार करने योग्य है।।११४।।

मायाक्षेत्रस्याभिधाने रहस्यकथनम्

व्यापयिष्यति त्वां नैव यथा संसृज्यते जगत्।
इदं च परमं स्थानं संसारातपनाशनम्॥११५॥
माया ते दर्शिता यद्वै ततो मायाभिधन्त्विदम्।
तीर्थं पापवनाग्निर्वै सद्यः शुद्धिकरं स्मृतम्॥११६॥
ये नराः पिण्डदानं हि करिष्यन्ति महाशयाः।
तेषां गयाश्राद्धशतैः किं कर्तव्यं कृतैस्तथा॥११७॥
दानमत्र कुरुक्षेत्रवृद्धितोऽष्टगुणं तथा।
मायाकुण्डे तथा स्नानं कोटिकोटिगुणं भवेत्॥११८॥
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
सर्वं कोटिस्तथा कोटी भविष्यन्ति न संशयः॥११९॥
मायाकुण्डमिदं मायाक्षेत्रे श्रेष्ठतमं स्मृतम्॥१२०॥

मायाक्षेत्र के अभिधान का रहस्य

अब इसके आगे हमारी मोहिनी माया, जो सम्पूर्ण संसार की रचना करती है, अब तुम्हें व्याप्त नहीं होगी। यह परम स्थान सांसारिक सन्तापों का विनाश करने वाला है।।११५।।

इस स्थान पर हमने तुम्हें अपनी माया दिखलायी है, इसलिए इसका भी नाम माया-क्षेत्र होगा। यह तीर्थ पापरूपी वन को जलाने के लिए अग्नि के समान है तथा शीघ्र ही मन को शुद्ध कर देने वाला है।।११६।।

जो महाशय मनुष्य इस तीर्थ में पिण्डदान करेंगे, उन्हें सैकड़ों गयाश्राद्ध करने से भी कोई लाभ नहीं है।।११७।।

कुरुक्षेत्र में दान करने से जो कुछ फल उपलब्ध होता है, उससे आठ गुणा अधिक फल इस स्थान में दान करने से होता है। मायाकुण्ड में स्नान करने से कोटिगुण अधिक फल होता है।।११८।।

इस तीर्थ में स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और पितृतर्पण जो कुछ भी किया जाय, सभी करोड़ गुणा अधिक फल देने वाला होता है।।११९।।

मायाक्षेत्र में इस मायाकुण्ड का कीर्तन बहुत अधिक किया गया है।।१२०।।

स्कन्द उवाच

इत्युदीर्य स भगवान् महाविष्णुर्महामते।
अन्तर्दधौ ब्राह्मणस्य पश्यतः सोमशर्म्मणः॥१२१॥
आश्चर्यं परमं लेभे सोमशर्मा द्विजोत्तमः।
तत्रैव संस्थितो विप्रो दृष्टवान् मुनिपुङ्गवान्॥१२२॥
स्नातुं समागतास्ते चाऽपृच्छंस्तं महदाशयाः।
किं कृता शीघ्रता विप्र मज्जने चाघमर्षणे॥१२३॥
इति तेषां च वचनं श्रुत्वा मायाबलं च तत्।
न मुमोह महाभाग कृपया जगदीशितुः॥१२४॥
सोऽपि कालेन केनापि सायुज्यं प्राप्तवान् परम्।
इति ते कथितं विप्र मायातीर्थस्य वैभवम्॥१२५॥

स्कन्द जी ने कहा

हे मतिमान्! इसके अनन्तर भगवान् महाविष्णु सोमशर्मा ब्राह्मण के देखते-देखते ही अन्तर्धान हो गये।।१२१।।

तब तो द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा परम आश्चर्य को प्राप्त हुए और वहाँ बैठे-बैठे ही उन्होंने उत्तमोत्तम मुनियों का अवलोकन किया।।१२२।।

वे महान् आशय वाले मुनि स्नान करने के लिए वहाँ आये थे। उन लोगों ने उनसे पूछा—हे विप्र! आप ने स्नान और अघमर्षण कर्म में इतनी शीघ्रता क्यों की?।।१२३।।

उनके इस प्रकार के वचन को सुनकर माया के बल से वह ब्राह्मण जगदीश्वर की माया के वशीभूत होने के कारण उनके वचनों से मोहित नहीं हुआ।।१२४।।

इस प्रकार कुछ काल के पश्चात् उसने भगवान् की सायुज्य मुक्ति प्राप्त की। हे विप्र! इस प्रकार हमने मायाक्षेत्र का माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया है।।१२५।।

श्रुत्वा यत्सर्वमायाभ्यो लिप्यते न हि मायया।
इदं स्थानं परं गोप्यं भवमुक्तिकरं ध्रुवम्॥१२६॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये कुब्जाम्रके सोमशर्मोपाख्यानं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।।११८।।

इसके माहात्म्य को सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण माया से दूर रहकर माया से लिप्त नहीं होता है। यह तीर्थस्थान परम गोपनीय है; क्योंकि यह भवबन्धन से मुक्त करने वाला है।।१२६।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में मायाक्षेत्र का माहात्म्यवर्णन नामक एक सौ अट्ठारह अध्याय पूर्ण हुआ।।११८।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-७१२+१२६=८३८]



अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कौमुदतीर्थस्य माहात्म्यम्

स्कन्द उवाच

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थं परमपावनम्।
तस्मादूर्ध्वप्रदेशे हि धनुषां पञ्चविंशतौ॥१॥
कौमुदं नाम तत्तीर्थं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
यत्र स्नात्वा नरो विप्र सोमलोके महीयते॥२॥
कार्तिके च तथा राधे माघे मार्गशिरे तथा।
स्नानं कुर्वन्ति येऽप्यत्र ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा॥३॥
प्राप्नुवन्ति परं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति।
यदि कश्चिद्भाग्यवशात् प्राणाँस्त्यजति तत्र वै॥४॥
पुमान् वा यदि वा षण्ढो नारी वा पापसंयुता।
स याति परमाँल्लोकान् पुनरावृत्तिदुर्लभान्॥५॥

कौमुदतीर्थ का माहात्म्य

स्कन्द जी ने कहा

इसके बाद अब हम एक अन्य परम पवित्र तीर्थ का वर्णन करते हैं, उस मायाक्षेत्र से ऊपर की ओर उसकी दूरी पचीस धनुष है।।१।।

वह कौमुद नामक तीर्थ है, जो कि तीनों लोकों में परम दुर्लभ है। हे विप्र! उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य चन्द्रलोक में ऐश्वर्य का उपभोग करता है।।२।।

जो व्यक्ति ज्ञान से अथवा अज्ञान से भी कार्तिक, राध (वैशाख), माघ और मार्गशीर्ष (अगहन) महीनों में वहाँ स्नान करते हैं।।३।।

वे लोग ऐसे परम स्थान को प्राप्त करते हैं, जहाँ जाकर पुनः शोक नहीं रह जाता है। यदि कोई व्यक्ति भाग्य से वहाँ प्राणों का त्याग कर देता है।।४।।

वह चाहे पुरुष हो या नपुंसक अथवा पापिनी नारी हो, उसे ऐसे परम स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ से पुनः परावर्तन नहीं होता है।।५।।

तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि यथा तज्ज्ञायते परम्।
कुमुदस्य तथा गन्धो लक्ष्यते मध्यरात्रके॥६॥
अकस्माच्चन्द्रिका तत्र दृश्यते तीर्थराजके।
पुरा तत्र महाभाग चन्द्रो वै तप्तवाँस्तपः॥७॥
दिव्यं वर्षसहस्रं च महादेवमनुस्मरन्।
ततः प्रसन्नो भगवान् सन्तुष्टो वृषभध्वजः॥८॥
प्रादात्स्थानं ललाटे स्वे चन्द्राय ध्रुवमुत्तमम्।
कौमुदस्य तु मासस्य राकायां यन्निशाकरः॥९॥
वरं च प्राप्तवान् रुद्रात्तीर्थं कौमुदकं ततः।

शिवचन्द्रेश्वरतीर्थस्य माहात्म्यम्

तस्यैव दक्षिणे भागे शिवचन्द्रेश्वराभिधः॥१०॥
यस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ते पापकोटयः।
चन्द्रेश्वरं सकृद्दृष्ट्वा स्नात्वा वै कौमुदे ह्रदे॥११॥

अब मैं उसका चिह्न बतला रहा हूँ, जिससे उसको पहचाना जाता है। वहाँ से रात्रि के मध्य में कुमुद की सुगन्ध आती है।।६।।

उस तीर्थराज में अकस्मात् ही चन्द्रिका भी अवलोकित होती है। हे महाभाग! प्राचीनकाल में वहाँ पर चन्द्रमा ने तप किया था।।७।।

वे वहाँ दिव्य एक हजार वर्ष तक महादेव का स्मरण करते रहे। तदनन्तर वृषभध्वज भगवान् शङ्कर उनसे सन्तुष्ट और प्रसन्न हुए।।८।।

भगवान् शङ्कर ने चन्द्रमा को अपने उत्तम ललाट पर स्थान प्रदान किया। चन्द्रमा ने इस वर की प्राप्ति रुद्र से कौमुद (कार्तिक) मास की पूर्णिमा को की थी।।९।।

इसलिए उक्त तीर्थ का नाम कौमुद हुआ।

शिवचन्द्रेश्वर तीर्थ का माहात्म्य

इस तीर्थ के दक्षिण भाग में शिवचन्द्रेश्वर नाम का तीर्थ है।।१०।।

जिसके दर्शन कर लेने मात्र से करोड़ों पाप विनष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति एक बार भी चन्द्रेश्वर महादेव का दर्शन करता है और कौमुद ह्रद में स्नान करता है।।११।।

पुष्कलां लभते सिद्धिं विष्णुलोकं च गच्छति।

सार्षपतीर्थस्य वर्णनम्

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तीर्थं सार्षपकं परम्॥१२॥
यस्य दर्शनमात्रेण शुद्धो भवति मानवः।
तस्माच्छरद्वये पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥१३॥
यत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च विष्णुश्चैव सुरासुराः।
वापयामासुरत्यर्थं सर्षपान् यज्ञहेतवे॥१४॥
यदा दक्षो महातेजा गङ्गाद्वारसमीपतः।
चकार विपुलं यज्ञं यत्र दग्धा सती पुरा॥१५॥
ततश्चेदं महातीर्थं नाम्ना सार्षपकं स्मृतम्।
यत्र स्नानान्नरो याति लोकान् पुण्यान् सनातनान्॥१६॥

उसे विपुल सिद्धि का लाभ होता है और अन्त में विष्णुलोक को चला जाता था।

सार्षप तीर्थ का वर्णन

अब मैं आपके प्रति सार्षप नामक अन्य तीर्थ का वर्णन करता हूँ।।१२।।

जिसके दर्शन करने मात्र से मनुष्य शुद्ध हो जाता है। उस चन्द्रेश्वर तीर्थ से दो बाण की दूरी पर अत्यन्त पवित्र और समस्त पापों का विनाश करने वाला यह तीर्थ है।।१३।।

यहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा देव और असुरों ने मिलकर यज्ञ के निमित्त बहुत अधिक सर्षप बोया था।।१४।।

यह उस समय का वृत्तान्त है, जब महातेजस्वी प्रजापति दक्ष ने गङ्गाद्वार (हरिद्वार) के समीप उत्कृष्ट यज्ञ का अनुष्ठान किया था और उसी यज्ञ में सती दग्ध हो गयी थी।।१५।।

उसी समय में यह महान् तीर्थ सार्षपक नाम से जाना जाने लगा। इस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य पुण्य और सनातन लोकों को प्राप्त करता है।।१६।।

अथात्र मुञ्चते प्राणान् महापापैर्युतोऽपि वा।
सङ्गच्छति परं स्थानं यत्र ब्रह्मादयः सुराः॥१७॥
यदि भाग्यवशाद्विप्र वैशाखे स्नाति मानवः।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं कल्पेनापि न शक्यते॥१८॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
तत्फलं लभते तत्र स्नानमात्रेण मानवः॥१९॥
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि मध्याह्ने मृगरूपधृक्।
समायाति रविः स्नातुं रविवारे विशेषतः॥२०॥

कुब्जाम्रके पूर्णमुखतीर्थस्य वर्णनम्

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तीर्थं कुब्जाम्रके महत्।
नाम्ना पूर्णमुखं ख्यातं देवानामपि दुर्लभम्॥२१॥

जो व्यक्ति यहाँ पर प्राणों का परित्याग करता है, वह महापापों से मुक्त होकर उस परम स्थान को चला जाता है, जहाँ ब्रह्मा आदि देवता निवास करते हैं॥१७॥

हे विप्र! यदि कोई व्यक्ति सौभाग्य से वैशाख मास में इस तीर्थ में स्नान का अवसर प्राप्त करता है, उसके पुण्य का फल एक कल्प में भी नहीं कहा जा सकता है॥१८॥

सम्पूर्ण तीर्थों में जाने से जो पुण्य प्राप्त होता है और सम्पूर्ण यज्ञों के अनुष्ठान से जो फल मिलता है, उस फल को मनुष्य यहाँ स्नान करने मात्र से प्राप्त कर लेता है॥१९॥

उस तीर्थ का एक चिह्न बतला रहा हूँ—विशेषरूप से रविवार को भगवान् सूर्यनारायण मृग का रूप धारण कर मध्याह्न में स्नान करने के लिए आते हैं॥२०॥

कुब्जाम्रक में पूर्णमुख तीर्थ का वर्णन

कुब्जाम्रक तीर्थ में ही पूर्णमुख नामक एक अन्य बड़ा तीर्थ है, उसका वर्णन मैं कर रहा हूँ; क्योंकि उस तीर्थ की प्राप्ति देवताओं के लिए भी दुर्लभ है॥२१॥

यत्र वै स्नानामात्रेण सोमलोकं स गच्छति।
ज्ञेयं तत्रोष्णसलिलं शीते गङ्गाजले पुनः॥
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२२॥

सोमेश्वरमहालिङ्गस्य वर्णनम्

सोमेश्वरं महालिङ्गं जलमध्ये प्रवर्त्तते।
जलमध्येऽथ सम्पूज्य शिवलोके महीयते॥२३॥
शतवर्षसहस्राणि दिव्यभोगसमन्वितः।
ततस्तस्मात्परिभ्रष्टो ब्राह्मणः शुद्धवंशजः॥२४॥
जायते शिवभक्तश्च सर्वशास्त्रविशारदः।
पुनर्मुक्तिमवाप्नोति मृत्वा यत्तीर्थके परे॥२५॥
द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु यस्तत्र कुरुते क्रियाम्।
सर्वा ह्यनन्तफलदास्तस्मात्पापं विवर्जयेत्॥२६॥

उस तीर्थ में स्नान करने मात्र से मनुष्य चन्द्रलोक में चला जाता है। उस तीर्थ की पहचान यह है कि वहाँ शीतल गङ्गाजल में भी गरम जल की अनुभूति होती है। जिसके दर्शन करने मात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।२२।।

सोमेश्वर महालिङ्ग का वर्णन

उस जल के मध्य में सोमेश्वर नामक महालिङ्ग विराजमान है। जल के मध्य में उनकी पूजा करने से मनुष्य शिवलोक में ऐश्वर्यों का उपभोग करता है।।२३।।

उस मनुष्य को शिवलोक में सौ सहस्र वर्षपर्यन्त दिव्य भोगों का उपभोग करने को मिलता है। तदनन्तर वहाँ से च्युत होकर शुद्ध ब्राह्मण वेश में उत्पन्न होता है।।२४।।

वहाँ भी वह सर्वशास्त्रविशारद एवं शिव का भक्त होता है। पुनः उस श्रेष्ठ तीर्थ में मृत्यु को प्राप्त होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।।२५।।

शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को जो मनुष्य वहाँ कोई सुकर्म करता है, उसके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं और वह सम्पूर्ण कर्म उसके लिए अनन्त फल देने वाले हो जाते हैं।।२६।।

प्राणाँस्त्यजति वा ह्यत्र व्रतेन व्रततत्परः।
विष्णुर्ददाति साक्षाद्वै दर्शनं चामृतं तथा॥२७॥

करवीरकतीर्थस्य वर्णनम्

तस्माद्बाणप्रमाणे हि तीर्थकं करवीरकम्।
माघमासे सिते पक्षे द्वादश्यां करवीरकः॥२८॥
पुष्पितो दृश्यते तत्र तस्मात्तज्ज्ञायते शुभम्।
पितृभ्यश्चाम्बुदानं हि यैः कृतं शुभलिप्सुभिः॥२९॥
कल्पकोटिसहस्रैस्तु विमानवरमाश्रितः।
मोदते भवने विष्णोः पितृभिः सह नारद॥३०॥

पुण्डरीकतीर्थस्य वर्णनम्

ततो गच्छेत्पुण्डरीके तीर्थे पापवनानले।
यत्र चक्रप्रमाणो वै चरते कमठो मुने॥३१॥
मध्याह्ने तत्र देवेशो ह्यायाति निजशुद्धये।
तत्र स्नात्वा महाभाग पुण्डरीकफलं लभेत्॥३२॥

जो व्यक्ति व्रताचरण में तत्पर होकर इस तीर्थ में प्राण का परित्याग करता है, उसे भगवान् श्रीविष्णु साक्षात् अमृतस्वरूप अपना दर्शन प्रदान करते हैं अथवा अपना दर्शन देकर उसे अमरत्व प्रदान करते हैं।।२७।।

करवीरक तीर्थ का वर्णन

उससे एक बाण की दूरी पर एक करवीर नामक तीर्थ है, माघ शुक्ल द्वादशी के दिन वहाँ कस्वीर का वृक्ष पुष्पित दिखाई पड़ता है। तब शुभ की प्राप्ति होती है। हे नारद! शुभ को चाहने वाले जो मनुष्य अपने पितरों को वहाँ जलदान करते हैं, वे पुरुषश्रेष्ठ विमानों में आरूढ़ होकर सहस्त्रों करोड़ कल्पपर्यन्त अपने पितरों सहित विष्णु के धाम में आनन्द प्राप्त करते हैं।।२८-३०।।

पुण्डरीक तीर्थ का वर्णन

इसके बाद पुण्डरीक तीर्थ के लिये यात्रा करनी चाहिये। हे मुनि! वह तीर्थ पापरूपी वन के लिए अग्नि है। वहाँ पर चक्रप्रमाण का कच्छप विचरण करता रहता है।।३१।।

मध्याह्न में देवराज इन्द्र अपनी शुद्धि के लिए स्नानार्थ आते हैं। हे महाभाग! उसमें स्नान करने से पुण्डरीक (यज्ञ) के फल की प्राप्ति होती है।।३२।।

यस्तत्र त्यजते प्राणान् स याति हरिमव्ययम्।
यस्तत्र कुरुते दानं त्रुटिमात्रं हिरण्यकम्।।३३।।
दशानां पुण्डरीकानां यज्ञानां फलभाग्भवेत्।
अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि तीर्थं कुब्जाम्रके स्थितम्।।३४।।

अग्नितीर्थ का वर्णन

पुण्डरीकस्य तीर्थस्य वामभागे धनुःशते।
गुह्यमेतच्छुभं कुण्डं ज्ञायते नैव पापिना।।३५।।
येन स्नातं च तीर्थेषु येन वै पूजनं हरेः।
कृतं तद्वै विजानाति तीर्थं परमपावनम्।।३६।।
यत्राग्निः संस्तुतो देवैः पुरा प्रादुर्बभूव ह।
तस्मादिदं परं तीर्थमग्निसंज्ञां गतं शुभम्।।३७।।
धन्यः स एव लोकेषु पुण्यात्मा मुनिपुङ्गव।
अग्नितीर्थं येन दृष्टं विष्णुसायुज्यदं परम्।।३८।।

जो प्राणी वहाँ अपने प्राणों का परित्याग करता है, वह अविनाशी भगवान् हरि को प्राप्त कर लेता है। जो वहाँ अणुमात्र भी सुवर्ण का दान करता है।।३३।।

वह दश पुण्डरीक यज्ञ करने के फल का भागी हो जाता है। अब कुब्जाम्रक तीर्थ में ही स्थित अन्य तीर्थों का वर्णन करता हूँ, उसे श्रवण करो।।३४।।

अग्नितीर्थ का वर्णन

पुण्डरीक तीर्थ के वामभाग में सौ धनुष की दूरी पर एक तीर्थ है, यह कुण्ड अत्यन्त गोपनीय है तथा शुभ को प्रदान करने वाला है। पापियों को इसका दर्शन प्राप्त नहीं हो पाता है।।३५।।

जिसने उस पुण्डरीक तीर्थ में स्नान और भगवान् हरि का पूजन किया है, वही महात्मा इस परम पावन तीर्थ को जान सकता है।।३६।।

प्राचीनकाल में इस स्थान में देवताओं के द्वारा स्तुति किये जाने पर अग्निदेव प्रकट हुए थे, इसीलिए इस शुभ तीर्थ का नाम अग्नितीर्थ पड़ा।।३७।।

हे मुनिश्रेष्ठ! संसार में वही पुण्यात्मा मनुष्य धन्य है, जिसने भगवान् विष्णु की सायुज्य पदवी को प्रदान करने वाले इस परम पवित्र अग्नितीर्थ का दर्शन किया है।।३८।।

यदत्र क्रियते कर्म सर्वं तत्स्यादनन्तकम्।
यत्र वै स्नानमात्रेण ब्रह्महत्याग्रकोटिभिः।।३९।।
संयुक्तोऽपि नरः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।
त्रैलोक्ये धन्यतां याति दर्शनाद्दर्शनार्थवित्।।४०।।
अग्नितीर्थस्य संयोगो यावन्नो भवति द्विज।
तावत्कलिभयं विद्यात् स्पृष्टे पापक्षयो भवेत्।।४१।।

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये कुब्जाम्रके एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।११९।।

इस तीर्थ में जो जो शुभ कर्म किया जाता है, वह अनन्त फल देने वाला हो जाता है। इसमें केवल स्नान मात्र करने से ही ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पापों से युक्त प्राणी भी सभी पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। तीर्थों के दर्शन के वास्तविक रहस्य को जानने वाले मनुष्य का कथन है कि इसके दर्शन करने से मनुष्य तीनों लोकों में धन्यवाद के योग्य हो जाता है।।३९-४०।।

हे द्विजश्रेष्ठ! जब तक अग्नितीर्थ का संयोग नहीं होता है, तभी तक कलियुग के पापों का भय बना रहता है; क्योंकि उस तीर्थ का स्पर्श होते ही पापों का विनाश हो जाता है।।४१।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।।११९।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-८३८+४१=८७९]



अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

एकान्तगतयोः शिवयोर्मध्ये गतस्याग्ने रुद्रकोपाद्दाहः

स्कन्द उवाच

श्रृणु वत्स पुरावृत्तं पापघ्नं सर्वकामदम्।
यथा वैश्वानरो देवः प्राप्तवाञ्छापमीशतः॥१॥
एकदा हिमशोभाढ्ये कैलासे प्रमथावृते।
शिवश्च शिवया सार्द्धं क्रीडन्नास्ते रसाप्लुतः॥२॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च खर्जूरैः पनसैर्वटैः।
भूर्जैर्भज्जकरैश्चैव कुङ्कुमैश्चम्पकद्रुमैः॥३॥
घने नीहारसंयुक्ते रजतेनेव संवृते।
तत्र स्वर्णमया वृक्षाः पक्षिणश्च हिरण्मयाः॥४॥

एकान्त में विद्यमान शिव-पार्वती के मध्य में जाने से रुद्र के कोप से अग्नि का दाह

स्कन्द जी ने कहा

हे वत्स! एक प्राचीन इतिहास का श्रवण करो। यह समस्त पापों का विनाश करने वाला और निखिल कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। यह वही आख्यान है, जिससे अग्निदेव को भगवान् शिव से शाप की प्राप्ति हुई थी।।१।।

एक समय भगवान् शिव पार्वती के साथ प्रेमरस से सिञ्चित होते हुए हिम की शोभा से व्याप्त, प्रमथगण से घिरे हुए कैलास पर्वत पर क्रीड़ा कर रहे थे।।२।।

वह स्थान शाल, तमाल, ताल, खर्जूर, पनस (कटहल), वट, भूर्जपत्र, देवदारु, केसर और चम्पक के वृक्षों से सुशोभित था।।३।।

वह स्थान घने हिम से इस प्रकार आच्छादित था, मानों चाँदी से आवृत्त हो। वहाँ वृक्ष सुवर्णमय थे और पक्षी भी सुवर्णमय थे।।४।।

नानाप्रसवशोभाढ्ये धातुरागविभूषिते।
रमयामास देवेशो गिरौ गिरिजया सह॥५॥
वसन्तश्च सदा तत्र समग्रेणेन्दुना सह।
पुंस्कोकिलरुतैश्चैव तथा मधुरनिःस्वनैः॥६॥
पुष्पितानि वनान्यासन् विचेरुर्भ्रमरास्ततः।
एवं तस्मिन् वनोद्देशे क्रीडायां संस्थितौ शिवौ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दर्शनार्थमुमापतेः।
आजगाम सुनासीरस्त्रिदशौघसमन्वितः॥८॥
यावद् गच्छति कैलासे प्रणन्तुं च सदाशिवम्।
तावन्निवारितो नन्दिगणेन प्रमथेशिना॥९॥
एकान्ते संस्थितो देवः शिवया सहितः प्रभो।
न कालो दर्शनस्याऽयं गच्छध्वं त्रिदशेश्वराः॥१०॥

विविध वनस्पतियों की शोभा से सम्पन्न वह पर्वत विविध धातुओं के राग से रञ्जित था, उसी दिव्य गिरि पर देवेश भगवान् शङ्कर गिरिजा के साथ रमण कर रहे थे।।५।।

पूर्ण चन्द्रमा के साथ वसन्त वहाँ सदा निवास कर रहे थे। मधुर शब्द का उच्चारण करने वाले कोकिलों की आवाज से वह पर्वत व्याप्त था।।६।।

वहाँ सम्पूर्ण वन पुष्पित हो रहे थे, इधर-उधर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे, इस प्रकार के वनविभाग में शिव-पार्वती क्रीड़ा में आसक्त थे।।७।।

इसी बीच उमाकान्त शिव के दर्शन करने की इच्छा से सुरराज इन्द्र देवसमाज के साथ वहाँ उपस्थित हुए।।८।।

जैसे ही वे लोग सदाशिव को प्रणाम करने के लिए कैलास पर्वत पर आये, उसी समय प्रमथों के स्वामी नन्दी नामक गण ने उन लोगों को रोक दिया।।९।।

उसने कहा कि हे प्रभो! पार्वती के साथ देव शङ्कर एकान्त में स्थित हैं, इसलिए यह दर्शन का उचित समय नहीं है, इसलिए आप लोग लौट जायें।।१०।।

इत्युक्तो नन्दिना शक्रो जगादाग्निमितः स्थितम्।
त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि सर्वदा॥११॥
त्वया तत्र प्रगन्तव्यं विलीनेन मदाज्ञया।
सत्यं वा यदि वाऽसत्यं वदति प्रमथो ह्ययम्॥१२॥
शिवोऽन्तः किं प्रकुरुते सर्वं विज्ञाय चेष्टितम्।
शीघ्रं त्वयात्राऽऽगन्तव्यं मा विलम्बं कुरु प्रभो॥१३॥
इत्याज्ञां शिरसा धृत्वा वह्निः कालप्रचोदितः।
जगाम तत्र देशे हि यत्राऽऽस्ते भगवाञ्छिवः॥१४॥
अग्नेर्विचेष्टितं[1] ज्ञात्वा महादेवो दिवस्पतेः।
कारितं च तथा ज्ञात्वा शशापाग्निं त्वरान्वितः॥१५॥
यज्ञभागाश्च देवानां नाशमेष्यन्ति सत्वरम्।
अयमग्निश्च लोकाद्धि विनंक्ष्यति[2] न संशयः॥१६॥

जब नन्दी ने इस प्रकार कहा, तब इन्द्र ने अपने समीपवर्ती अग्नि से कहा—हे अग्नि! तुम सर्वदा सभी प्राणियों के अन्तर में विचरण करते हो।।११।।

इसलिए तुम हमारी आज्ञा से छिपकर वहाँ जाओ। पता नहीं कि यह प्रमथ सत्य कहता है या असत्य बोल रहा है।।१२।।

शिव भीतर क्या कर रहे हैं, इन सब चेष्टाओं को जानकर शीघ्र ही तुम यहाँ चले आना। हे प्रभो! इसमें विलम्ब मत करो।।१३।।

काल से प्रेरित अग्नि देवराज इन्द्र की आज्ञा को सिर से धारण कर जिस स्थान पर भगवान् शिव विराजमान थे, वहाँ गये।।१४।।

इन्द्र की प्रेरणा से किए हुए अग्नि की चेष्टा को जानकर महादेव ने तत्काल ही अग्नि को शाप दे दिया।।१५।।

देवताओं के यज्ञ का भाग अभी विनष्ट हो जायेगा, यह अग्नि भी इस लोक से विनष्ट हो जायेगा, इसमें कोई संशय नहीं है।।१६।।

---

१. विचेष्टिमिति ख.।
२. विनश्यतीति ख.।

इतीरितं शिवस्याग्निर्ननाश क्षणतस्तदा।
इन्द्रो वै दैवतैः सार्द्धं वेपमानो गृहं ययौ॥१७॥
निःस्वाध्यायवषट्कारं त्रैलोक्यमभवत्क्षणात्।
निश्चेष्टाश्च तथा ह्यासन् प्राणिनो वह्निवर्जिताः॥१८॥
प्रलये यानि कर्माणि तान्यासन् वह्निसङ्क्षये।
उल्कापाताश्च शतशो पेतुर्वै धरणीतले॥१९॥
इन्द्रोऽपि दैवतैः सार्द्धं ययौ क्षीरोदसागरे।
तत्र स्थितं रमानाथं ब्रह्मणा सहितस्तदा॥२०॥
ब्रह्माऽपि तत्र गत्वा च विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमे।
विनयावनतो भूत्वा वासवेन समन्वितः॥२१॥

ब्रह्मोवाच

नमस्ते भगवन् विष्णो चराचरगत प्रभो।
रमापते रसाधीश कृतदैत्यविनाशन॥२२॥

शिव के इस प्रकार कहने पर उसी क्षण अग्नि का नाश हो गया। देवताओं के साथ इन्द्र भी भय से काँपते हुए अपने स्थान को चले गये।।१७।।

उसी क्षण तीनों लोक वेद के पाठ और वषट्कार के नाद से रहित हो गये। अग्नि के अभाव में सभी प्राणी उस समय निश्चेष्ट हो गये।।१८।।

प्रलय के समय जो उत्पात होते हैं, वे सभी अग्नि के क्षय हो जाने से होने लगे। भूमण्डल के ऊपर सैंकड़ों उल्कापात होने लगे।।१९।।

तदनन्तर देवताओं सहित ब्रह्मा जी के साथ इन्द्र क्षीरसागर में गये, जहाँ रमापति विष्णु स्थित रहते हैं।।२०।।

वहाँ जाकर इन्द्र सहित ब्रह्मा जी विनय से अवनत होकर भगवान् विष्णु की स्तुति करने के लिए उद्यत हुए।।२१।।

ब्रह्मा ने कहा

हे भगवन्! आप सबके स्वामी और चराचर जगत् के गति (शरणदाता) हैं, आप लक्ष्मी के स्वामी हैं तथा रसों के अधीश्वर हैं। आपने ही दैत्यों का विनाश किया है। हम आपको नमस्कार करते हैं।।२२।।

मुरारये नमस्तेऽस्तु नमो भक्तजनाश्रय।
नमस्ते सुरराजाय सहस्राक्षाय ते नमः।।२३।।
ऋग्वेदाय नमस्तुभ्यं यजुर्वेद नमोऽस्तु ते।
सामवेदाय देवाय नमोऽथर्वस्वरूपिणे।।२४।।
अग्निनाशेन सर्वेषां नाशो भवति निश्चितम्।
निःस्वाध्यायवषट्कारं त्रैलोक्यं सचराचरम्।।२५।।
विनङ्क्ष्यामो रमानाथ वयं सर्वे सवासवाः।
त्वयैवेदं कृतं पूर्वमकाले क्षयमेति च।।२६।।
रुद्रशापाग्निनिर्दग्धो नष्टोऽग्निर्भुवनत्रये।
यदा यदा महाविष्णो ग्लानिर्भवति संसृतौ।।२७।।
तदा त्वयैव सर्वं हि कृतं शत्रुविनाशनम्।
पुनर्यथा वीतिहोत्रो जायते च तथा कुरु।।२८।।

आप मुर नामक दैत्य के शत्रु हैं, आपको नमस्कार है। आप अपने भक्तों को आश्रय प्रदान करते हैं, इसलिए आपको नमस्कार है। आप देवताओं के अधिपति हैं, आपके सहस्र नेत्र हैं, आपको हमारा नमस्कार है।।२३।।

आपका स्वरूप ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का है, अत एव आपको बारम्बार नमस्कार है।।२४।।

अग्नि के विनाश हो जाने के कारण सभी जीवों का नाश हो रहा है और चराचर त्रिलोकी में वेदपाठ और वषट्कार का पूर्णरूप से लोप हो गया है।।२५।।

हे रमाकान्त! इन्द्र सहित हम सभी देवता विनष्ट हो जायेंगे, आपकी निर्माण की हुई यह सृष्टि असमय में ही नाश को प्राप्त हो रही है।।२६।।

भगवान् रुद्र के शाप से जलते हुए अग्नि त्रैलोक्य से ही नष्ट हो रहे हैं। हे महाविष्णु! जब कभी सृष्टि ग्लानि को प्राप्त होती है, उस समय आप ही शत्रुओं का विनाश करते हैं। इसलिए इस समय भी आप ऐसा उपाय करें, जिससे पुनः अग्नि का प्रादुर्भाव हो जाय।।२७-२८।।

श्रीभगवानुवाच

गच्छध्वं त्रिदशाः सर्वे कुब्जाम्रकक्षेत्र उत्तमे।
तत्राऽहं च शिवश्चापि संस्थितौ[१] चतुरानन॥२९॥

तत्र ह्याराधयिष्यामो भगवन्तं महेश्वरम्।
नित्यं सन्निहितस्तत्र पिनाकी त्रिदशेश्वरः[२]॥३०॥

देवैः शिवस्य स्तुतिः

स्कन्द उवाच

इति कृत्वा मतिं तां वै ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः।
गताः कुब्जाम्रके क्षेत्रे शिवं स्तोतुं प्रचक्रमुः॥३१॥

देवा ऊचुः

प्रतिष्ठितानीश्वरमार्यवृत्तिः कृत्तिप्रवृत्ते नवमालतीभे।
वृन्दारवन्द्याखिलमूर्त्तकन्दे नन्दीशवन्दीभवचन्द्रचूडे॥३२॥

श्रीभगवान् ने कहा

हे देवगण! आप सभी लोग श्रेष्ठ कुब्जाम्रक क्षेत्र में जायें, हे चतुर्मुख ब्रह्मा जी! वहाँ हम तथा भगवान् शिव दोनों स्थित रहते हैं।।२९।।

वहाँ हम लोग भगवान् महेश्वर की आराधना करेंगे; क्योंकि पिनाक धनुष को धारण करने वाले वहाँ नित्य निवास करते हैं। वे ही देवताओं के अधीश्वर भी हैं।।३०।।

स्कन्द ने कहा

ब्रह्मा आदि सभी देवता इस प्रकार मन्त्रणा कर कुब्जाम्रक क्षेत्र में गये और वहाँ भगवान् शिव की स्तुति करने के लिए उद्यत हुए।।३१।।

देवताओं द्वारा शिव की स्तुति

देवताओं ने कहा

आर्य व्यवहार वाले हम ईश्वर के समीप आये हैं। वे हस्तिचर्म को धारण किये हैं। नव-मालती पुष्प के समान जिनकी कान्ति है, उनकी मूर्ति देवताओं से वन्दनीय है तथा वे सम्पूर्ण मूर्त्त जगत् के मूल हैं। वे नन्दी के स्वामी, संसार के रक्षक एवं चन्द्रमा को शिर पर धारण कर रहे हैं।।३२।।

---

१. संस्थित इति ग.। २. त्रिदशेश्वरा इति ख.।

अधीश्वरे सागरकालकूटकण्ठे प्रचण्डापरवारहृद्ये।
विद्यानवद्येऽमितवैद्यविद्ये सिद्धे प्रसिद्धे विधुबुद्धिशुद्धे।।३३।।
भावः स्यान्नो भीतिभाजोंऽशभाजो भूयः स्याम श्वेतभूभृद्वरेशात्।
केशावासेऽनेन नीतांशरूपाद् भूतेशो भूभीमभूपान्तराजा।।३४।।
स्फुरद्विधुदलादिकं कलितकालिसम्मालिकं
सुनेत्रवनमञ्जरीप्रभवभूरिगङ्गास्पदम्।
वमद्विषपरम्पराभयकराहिभूषाधरं
धराधरसुतावरं परमहं भजामो वयम्।।३५।।
प्रपन्नपरमापहं वृजिनदोहमोहापहं
जलौघवरधीप्रदं सुरवरं धियार्थप्रदम्।
जरामरणकालिनं भवबलाज्ञसंशालिनं
गले कलितकालिकं भुवनपालकं चालकम्।।३६।।

जो सबके अधीश्वर हैं, समुद्र से उत्पन्न कालकूट विष को कण्ठ में धारण करते हैं, प्रचण्ड आपत्तियों को दूर करने वाले हैं। श्रेष्ठ विद्याओं से युक्त हैं, असीमित चिकित्सा विद्या को जानते हैं, सिद्ध और प्रसिद्ध हैं, चन्द्रमा के समान शुद्ध बुद्धि वाले हैं।।३३।।

आपमें हमारा भाव (आस्था) हो, हम लोग श्रेष्ठ कैलास पर्वत के स्वामी से भयभीत हैं, हम लोग पुनः यज्ञ के अंश के भागी हों, हे विष्णु में वास करने वाले! राजा आपको वंशरूप में ग्रहण करता है और आप भूमि के भयङ्कर राजाओं का नाश करने वाले राजा हैं।।३४।।

कान्तिमान् चन्द्रमा की कला को धारण करने वाले, कण्ठ में काली की मुण्डमाला की गणना करने वाले, सुन्दर नेत्ररूप वन-मञ्जरी से उत्पन्न अनेक गङ्गा के आस्पद, वमन करते हुए विषपरम्परा से भयोत्पादक सर्पों का आभूषण धारण करने वाले, पर्वतपुत्री के वर तथा परम शिव का हम भजन करते हैं।।३५।।

भक्तों के परम रक्षक, पापसमूह एवं मोह को दूर करने वाले, जलसमूह तथा श्रेष्ठ बुद्धि देने वाले, देवों में श्रेष्ठ, बुद्धि के दाता बुढ़ापा और मृत्यु के लिए कालस्वरूप, सांसारिक बल से यज्ञ को अनुगृहीत करने वाले, गले में कालकूट से विभूषित, संसार के पालक और उसके चलाने वाले हैं।।३६।।

भजेम गजचर्मणा प्रकटशुद्धतत्कर्मणा
सुशोभितकटोत्कटं नटितभूरिचञ्चज्जटम्।
चराचरपरम्पराहरणधीरमन्दासुरा-
सुरेशमृतिकारकं जितमनोजकं तारकम्॥३७॥
श्रयेम नवभावनप्रखरचण्डनन्द्याहत-
प्रकीर्णमणिमञ्जरीमुकुटकूटभूतावृतम्।
महेशभवनं वनं परमुदा पुनर्भावितं
विरोधिविविधार्थदं विबुधवन्द्यपादे नताः॥३८॥

स्कन्द उवाच

इति देवैः स्तुतो देवो भगवान् पार्वतीपतिः।
आविर्बभूव तरसा वृषस्थश्चन्द्रशेखरः॥३९॥
उवाच वचनं देवान् ब्रह्मादीञ्जातवेदसम्।
इच्छतो भक्तिनम्राँस्तान् मेघगम्भीरनिःस्वनः॥४०॥

गजचर्म से सुशोभित, शुद्ध कर्मों को प्रकट करने वाले, विशाल गण्डस्थल वाले, नृत्य करती हुई चञ्चल जटाओं वाले, चर-अचर जगत् की परम्पराओं का हरण करने वाले, धैर्यशाली, मूढ़ असुरों और असुरेश्वरों को मारने वाले, कामदेव को जीतने वाले, संसार का उद्धार करने वाले शिव का हम लोग भजन करते हैं।।३७।।

नवीन भावना से प्रखर एवं प्रचण्ड नन्दी आदि गणों से आहत होने से जिन पर्वत शिखरों पर मुकुट की मणि-मञ्जरियाँ बिखर गयी हैं, उन पर स्थित भूतगणों से घिरे हुए, परम प्रसन्नता से बार-बार ध्यान किये गये, परस्पर विरोधी विविध अर्थों को बतलाने वाले, वन में स्थित महेश के भवन का हम लोग आश्रय लेते हैं, देवों के वन्दनीय हे महेश! हम लोग आपके चरणों में नत हैं।।३८।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार देवताओं द्वारा स्तुति किए जाने पर भगवान् पार्वतीपति महादेव वृष पर आरूढ़ एवं चन्द्रमा को ललाट में धारण करते हुए वहाँ शीघ्र ही प्रकट हो गये।।३९।।

उन्होंने भक्ति से नम्र ब्रह्मा आदि देवताओं तथा जातवेदा अग्नि के प्रति मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहा।।४०।।

ईश्वर उवाच

भो भो देवगणाः सर्वे यदर्थपरिचिन्तया।
समागताः स्तुतोऽहं च सन्तुष्टः प्रवदामि वः॥४१॥
मन्नेत्रप्रभवेनाऽऽशु बह्निना कुरुत क्रतुम्।
आप्यायध्वं तथा भूता नयध्वं ददतो मम॥४२॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा सहसा भीमो नेत्रज्वालां[१] भयानकाम्।
ददौ दीनान् महाभाग लेलिहानां त्रिलोककम्॥४३॥
तां ज्वालां शिवनेत्रोत्थां दृष्ट्वा त्रस्ताः सुरासुराः।
प्रसादयामासुरपि स्तोत्रेणाऽऽनतमस्तकाः॥४४॥

सर्वसिद्धिप्रदायकान्यग्नेर्नामानि

देवा ऊचुः

अग्निर्वैश्वानरो वह्निः कृष्णवर्त्मा भयानकः।
प्रभवो विभवश्चैव वीतिहोत्रस्तनूनपात्॥४५॥

ईश्वर ने कहा

हे देवगण! आप लोग जिस वस्तु की चिन्ता करते हुए यहाँ आये हैं और मेरी स्तुति कर रहे हैं, उससे सन्तुष्ट होकर मैं आप लोगों से कहता हूँ।।४१।।

आप लोग मेरे नेत्र से उत्पन्न अग्नि से यज्ञ सम्पन्न करें, आप लोग प्राणियों को तृप्त करें, मेरे समीप से इस अग्नि को ले जायें, जिससे सभी प्राणी तृप्त हों।।४२।।

स्कन्द ने कहा

हे महाभाग! इतना कहकर रुद्र ने दीन-दुखी देवताओं को अपनी भयङ्कर नेत्र की ज्वाला प्रदान की, जो तीनों लोकों को चाट रही थी।।४३।।

शिव के नेत्र से उत्पन्न उस ज्वाला को देखकर देवता तथा दानव सभी भयभीत हो गये। नतमस्तक होकर उन लोगों ने स्तुति द्वारा अग्नि को प्रसन्न किया।।४४।।

सर्वसिद्धिप्रदायक अग्नि के नाम

देवताओं ने कहा

आप अग्नि, वैश्वानर (विश्वानर के पुत्र), वह्नि, कृष्णवर्त्मा (कृष्ण मार्ग वाले), भयानक, प्रभव, विभव, वीतिहोत्र (जिसमें वीतिपुरोडाश आदि की आहुति दी जाती है) और तनूनपात् (जो शरीर को न गिराये) हैं।।४५।।

१. नेत्रज्वालेति ख.।

भव्यो भीमो भीमनेत्रसमुत्थो देहसंस्थितः।
त्रैलोक्यदीपको भानुः स्वर्भानुः सर्वगस्तथा॥४६॥

चित्रभानुः शीतहन्ता शीतसंस्थः कृपाकरः।
धेनुको वाडवाजन्मा जाठरो जठरस्थितः॥४७॥

यज्ञनेता यज्ञभोक्ता भक्तगम्यो भयङ्करः।
कृपीटयोनिः शोचिष्माञ्ज्वलनो जातरूपदः॥४८॥

जातवेदा वेदसंस्थो ह्याश्रयाशो महाप्रभुः।
दानवारिर्ज्वलत्केशो मदनो दीनवत्सलः॥४९॥

स्कन्द उवाच

अग्नेरेतानि नामानि यः पठेत्प्रयतो नरः।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति शतयज्ञफलं लभेत्॥५०॥

आप भव्य, भीम, भयङ्कर रुद्र के नेत्र से उत्पन्न, देह में स्थित, तीनों लोकों के दीपक, भानु (अपनी प्रभा से दीप्त), स्वर्भानु (आकाश में दीप्त), सर्वगामी हैं।।४६।।

आप चित्रभानु (विचित्र प्रभा वाले) शीतनाशक, शीत में स्थित रहने वाले, कृपा करने वाले, धेनुक, वडवा से उत्पन्न, उदर में उत्पन्न होने वाले, उदर में निवास करने वाले हैं।।४७।।

आप यज्ञ के नेता हैं, यज्ञ का भोग करने वाले, भक्तों से गम्य और भयङ्कर हैं, कृपीट से उत्पन्न होने वाले, शोचिष्मान् (प्रकाश करने वाले), ज्वलन और जातरूप (सुवर्ण) को देने वाले हैं।।४८।।

आप जातवेद (जिससे धन का लाभ हो), वेदों में अवस्थित आश्रयाश (आधार का भक्षण करने वाले), महाप्रभु, दानवारि (दानवों के शत्रु), जलते हुए केशों वाले, मदन तथा दीनवत्सल हैं।।४९।।

स्कन्द ने कहा

जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक अग्नि के इन नामों का पाठ करता है, वह सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है तथा वह सौ यज्ञ के फल को प्राप्त करता है।।५०।।

मन्दाग्निर्यो नरो विप्र सुभक्त्या प्रतिपत्तिथौ।
नामामृतं पिबेन्नित्यं त्रिवारं नियतः शुचिः॥५१॥
मन्दाग्निस्तस्य नश्येद्वै सर्वरोगक्षयस्तथा।
धन्यो भवति लोकेषु पूतात्मा नात्र संशयः॥५२॥
स्तूयमानस्ततो वह्निः शान्तात्मा ह्यभवत्क्षणात्।
ततो देवा महेशाद्यास्तीर्थमेतत्समाश्रिताः॥५३॥
ततो मुने शुभं तीर्थमग्निसंज्ञं स्मृतं त्विदम्।
यत्र स्नात्वा शुभाँल्लोकान् प्राप्नोति च परं पदम्॥५४॥
तस्यैवमभिधानं तु कृत्वा देवाः सवासवाः।
प्राप्याग्निं शिवतो विप्र यथास्थानं ययुस्ततः॥५५॥
इति ते कथिता वह्नितीर्थोत्पत्तिः शुभङ्करी।
यां श्रुत्वाऽपि नरो याति पूतात्मा स्वर्गलोककम्॥५६॥

हे विप्र! जिस मनुष्य को मन्दाग्नि हो गयी है, वह नित्य प्रतिपदा तिथि को पवित्र होकर भक्तिपूर्वक इस नामामृत का तीन बार पाठ करे।।५१।।

ऐसा करने से उसकी मन्दाग्नि नष्ट हो जाती है, उसके सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, वह पवित्रात्मा तीनों लोकों में धन्य हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।।५२।।

इस प्रकार देवताओं द्वारा स्तुति किया जाता हुआ अग्नि क्षण भर में ही शान्त हो गया। उसी समय से महेश आदि सभी देवता इस तीर्थ में निवास करने लगे।।५३।।

हे मुनि! उसी समय से इस शुभ तीर्थ का नाम अग्नि पड़ गया, इस तीर्थ में स्नान करने से शुभ लोकों तथा परमपद की प्राप्ति होती है।।५४।।

हे विप्र! शिव से अग्नि को प्राप्त कर और उस तीर्थ का इस प्रकार अग्नितीर्थ नाम रखकर इन्द्र सहित सभी देवता अपने स्थानों को चले गये।।५५।।

हे नारद! इस प्रकार हमने तुम्हारे समक्ष शुभ करने वाले वह्नितीर्थ की उत्पत्ति का वर्णन किया है। इसका श्रवण कर मनुष्य पवित्र आत्मा वाला होकर स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेता है।।५६।।

आषाढ्यां चैव द्वादश्यां कार्तिक्यां च विशेषतः।
तथा मार्गशिरे मासि द्वादश्यां दर्शकेऽपि वा॥५७॥
यः करोत्यग्निपूजां वै स्नानं दानं जपं तथा।
स याति परमाँल्लोकान् पुनरावृत्तिदुर्लभान्॥५८॥
चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम्।
उष्णं भवति हेमन्ते ह्यष्टधारं महामते॥५९॥
गङ्गा भवति तत्रोष्णा ग्रीष्मे शीताऽतिमात्रतः।
यस्तत्र मुञ्चते प्राणान् दिव्याँल्लोकान् स गच्छति॥६०॥
[१]कोटिवर्षसहस्राणि विमानवरमास्थितः।
अप्सरोगणसंयुक्तो भोगभाग्भवति ध्रुवम्॥६१॥
भुक्त्वा भोगं पुनर्मर्त्यो राजा भवति धार्मिकः।
पुत्रपौत्रैः परिवृतः शत्रुपक्षविवर्जितः॥६२॥

विशेष रूप से आषाढ़ की पूर्णिमा, द्वादशी अथवा कार्तिकी पूर्णिमा या मार्गशीर्ष (अगहन) मास में द्वादशी के दिन जो मनुष्य अग्निपूजा, स्नान, दान, तथा जप करता है, वह परमलोक को प्राप्त करता है, जहाँ से फिर लौटना दुर्लभ है॥५७-५८॥

अब उसके चिह्न का वर्णन करता हूँ, जिससे उस तीर्थ की पहचान ठीक-ठीक हो जाय। हे महामति! हेमन्त ऋतु में वहाँ आठ धाराओं में उष्ण जल प्रवाहित होने लगता है॥५९॥

वहाँ गङ्गा भी उष्ण हो जाती हैं और ग्रीष्म ऋतु में गङ्गा का जल अत्यधिक शीतल हो जाता है। जो मनुष्य वहाँ अपने प्राणों का त्याग करता है, वह दिव्य लोकों को चला जाता है॥६०॥

श्रेष्ठ विमानों में आरूढ़ होकर वह सहस्र करोड़ वर्षपर्यन्त अप्सरासमूह से सेवित होता हुआ दिव्य भोगों का उपभोग करता है॥६१॥

इस प्रकार के भोगों का उपभोग करने के उपरान्त वह मनुष्य मर्त्यलोक में धार्मिक राजा होता है। वह पुत्र-पौत्र से युक्त होकर शत्रुपक्ष से रहित हो जाता है॥६२॥

---

१. कोटिवर्षमिति ग.।

संशास्ति पृथिवीमेतां ससागरवनावृताम्।
अन्ते तद्वैष्णवं धाम सम्प्राप्नोति न संशयः॥६३॥
एतदेव परं क्षेत्रं तीर्थं पुण्यतमं स्मृतम्।
तरन्ति मानुषा यस्माद् घोरं संसारसागरम्॥६४॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कुब्जाम्रकेऽग्नितीर्थकथनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२०।।

वह मनुष्य सागरपर्यन्त काननसहित भूमि का शासन करता है, अन्त में वह निःसन्देह भगवान् विष्णु के परम धाम को सम्यक् रूप से प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है।।६३।।

इस परम क्षेत्र को पुण्यतम तीर्थ कहा गया है, क्योंकि इसी क्षेत्र से मनुष्य घोर संसाररूपी सागर को पार करते हैं।।६४।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ बीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१२०।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-८७९+६४=९४३]



अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

वायव्यतीर्थस्य माहात्म्यम्

स्कन्द उवाच

अन्यतीर्थं शृणु प्राज्ञ वायव्यं तीर्थमुत्तमम्।
कुब्जाम्रके महाभाग सर्वपापभयापहम्॥१॥
यत्र वायुस्तपस्तेपे पञ्चवर्षसहस्रकम्।
प्राप्तवाँश्च तथा तत्र दिक्पालत्वं महायशाः॥२॥
अस्मिन् कृतोदको यस्तु पुण्यात्मा पितृतारकः।
दिव्यवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥३॥
यः करोति तथा स्नानं वाजपेयशतस्य च।
फलं प्राप्नोति मनुजः स्वयमेतद्वदामि ते॥४॥

वायव्य तीर्थ का माहात्म्य

स्कन्द जी ने कहा

हे प्राज्ञ! अब आप वायव्य नामक अन्य तीर्थ के विषय में श्रवण करें। हे महाभाग! सम्पूर्ण पापों के भय को दूर करने वाला यह तीर्थ कुब्जाम्रक क्षेत्र ही विद्यमान है।।१।।

उसी स्थान में वायु ने पाँच हजार वर्षपर्यन्त तप का आचरण किया था। वहीं पर महान् यशस्वी वायु ने दिक्पाल के पद को प्राप्त किया था।।२।।

इस क्षेत्र में जो पुण्यात्मा पितरों को जल प्रदान करता है, उसके पितरों का तो उद्धार हो ही जाता है, वह व्यक्ति स्वयं भी दिव्य हजार वर्षों पर्यन्त स्वर्गलोक में ऐश्वर्य का उपभोग करता है।।३।।

जो मनुष्य उस तीर्थ में स्नान करता है, वह सौ वाजपेय यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है, यह मैं आपसे स्वयं ही कह रहा हूँ।।४।।

यस्तत्र त्यजते प्राणान् वायव्ये विजितेन्द्रियः।
न स भूयो महाराज जायते नरलोकके॥५॥
तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि वायव्यस्य महामते।
तत्राश्वत्थछदाश्चैव[१] चलन्ते वायुनेरिताः॥६॥
स्वनन्ते च तथा तत्र द्वादश्यां दृश्यते मुने।

वासवतीर्थस्य माहात्म्यम्

अन्यत्तत्रैव विख्यातं वासवं तीर्थमुत्तमम्॥७॥
तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम्।
पदानि तत्र दृश्यन्ते हस्तिनो वासवस्य तु॥८॥
नित्यमायाति तत्रैव वासवो वसुसंवृतः।
तत्र स्नानेन संयाति पुरुहूतपुरं शुभम्॥९॥

जो पुरुष इन्द्रियनिग्रहपूर्वक उक्त तीर्थ में प्राणों का परित्याग करता है, हे मुनिमहाभाग! वह पुनः नरलोक में जन्म नहीं लेता है।।५।।

हे महामति! अब मैं वायव्यक्षेत्र के चिह्न का वर्णन करता हूँ। वहाँ वायु से प्रेरित होने पर अश्वत्थ के पत्ते हिलते रहते हैं, अर्थात् उस क्षेत्र में अश्वत्थ के वृक्ष अधिक हैं।।६।।

हे मुनि! वहाँ वे द्वादशी के दिन ही शब्द करते हुए दिखाई पड़ते हैं। वहीं पर एक वासव तीर्थ भी विख्यात है।।७।।

वासवतीर्थ का माहात्म्य

अब मैं वासवतीर्थ के चिह्न का वर्णन करता हूँ, जिससे उस शुभ उत्तम तीर्थ का ज्ञान हो जाय। वहाँ इन्द्र के हाथी के पैरों के चिह्न दिखाई पड़ते हैं।।८।।

इन्द्र वसु देवताओं से घिरे हुए वहाँ पर प्रतिदिन आते हैं। वहाँ स्नान करने से मनुष्य इन्द्र के शुभलोक को जाता है।।९।।

---

१. तत्राश्वत्थस्य पत्राणीति क., तत्राश्वत्थच्छदाश्चैव पत्राणीति ख.।

चन्द्रिकानाम्न्याः पवित्रनद्याः कथनम्

चन्द्रिकेति समाख्याता नदी परमपावनी।
तत्सङ्गमे नरः स्नात्वा चन्द्रलोके महीयते॥१०॥
तत्रैव गणपो नाम भैरवो भीषणाकृतिः।
तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि सिन्दूराभा तु मृत्तिका॥११॥
यस्य दर्शनमात्रेण नरो याति परां गतिम्।

वारुणतीर्थस्य वर्णनम्

अन्यच्च तीर्थप्रवरं वारुणं वरुणास्पदम्॥१२॥
वरुणेन तपस्तप्तं शतं वै दिव्यवर्षकम्।
पाशं प्राप महादेवात्तीर्थेऽस्मिन् वारुणे वरे॥१३॥
उपोष्य दश रात्राणि यस्त्यजेदत्र देहकम्।
स याति रुद्रसदनं यावदाचन्द्रतारकम्॥१४॥
स यातो रुद्रसदनं पुनर्जायेत भूमिपः।
यत्कर्म क्रियते तत्र तत्सर्वं शतसंख्यकम्॥१५॥

चन्द्रिका नामक पवित्र नदी का कथन

वहाँ पर चन्द्रिका नाम की एक परम पवित्र नदी विख्यात है। उसके सङ्गम-स्थल में स्नान कर मनुष्य चन्द्रलोक में जाकर ऐश्वर्य का उपभोग करता है।।१०।।

वहाँ पर भयानक आकृति वाले भैरव जी गणनायक के रूप में विराजमान हैं। उस तीर्थ के चिह्न का कथन करता हूँ, वहाँ की मृत्तिका का वर्ण सिन्दूर की कान्ति के समान है।।११।।

जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य परम गति को प्राप्त कर लेता है।

वारुण तीर्थ का वर्णन

वहीं पर वरुण से अधिष्ठित एक वारुण नामक अन्य तीर्थ भी है। उस तीर्थ में वरुण ने दिव्य एक हजार वर्ष पर्यन्त तप का आचरण किया था। उसी श्रेष्ठ तीर्थ में वरुण ने भगवान् महादेव से दिव्य पाश को प्राप्त किया था।।१२-१३।।

जो मनुष्य दश रात्रिपर्यन्त उपवास व्रत का आचरण करता हुआ तीर्थ में प्राणों का त्याग करता है, वह तब तक रुद्रलोक में जाकर निवास करता है, जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं। जब वह पुनः रुद्रलोक से लौटता है, उस समय वह राजा होता है। उस तीर्थ में जो भी कर्म किया जाता है, वह सौ गुना अधिक फल देने वाला हो जाता है।।१४-१५।।

वाराहतीर्थस्य वर्णनम्

अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि वाराहं तीर्थमुत्तमम्।
यत्र विष्णुः क्रोडरूपी शिलारूपेण संस्थितः॥१६॥
तत्र वै स्नानदानाद्यैर्लभते परमं पदम्।

सामुद्रकतीर्थस्य वर्णनम्

ततो वै उत्तरे भागे धनुषां च चतुःशते॥१७॥
सप्तसामुद्रकं नाम तीर्थं विष्णुसलोकदम्।
अश्वमेधत्रयस्यात्र फलं वै स्नानमात्रतः॥१८॥
कुब्जाम्रके परं पुण्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
भाग्येन यस्त्यजेत्प्राणाञ्जन्मनाशादिवर्जितः॥१९॥
तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि सप्तसामुद्रके महत्।
विमलं हि तथा गाङ्गं दृश्यते चित्रवन्मुने॥२०॥

वाराह तीर्थ का वर्णन

अब मैं आपसे उत्तम वाराह तीर्थ का वर्णन करता हूँ। उस तीर्थ में भगवान् विष्णु वाराहरूप से शिला बनकर स्थित है।।१६।।

उस तीर्थ में स्नान, दान आदि कर्म करने से परम पद की प्राप्ति होती है।

सामुद्रक तीर्थ का वर्णन

उस तीर्थ से उत्तर की ओर चार सौ धनुष की दूरी पर एक सप्तसामुद्रक नाम का तीर्थ है।।१७।।

वह तीर्थ विष्णुलोक की प्राप्ति कराने वाला है। उसमें केवल स्नान करने से ही तीन अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है।।१८।।

यह पवित्र तीर्थ भी कुब्जाम्रक क्षेत्र में ही स्थित है। उसका प्राप्त होना त्रिलोकी में दुर्लभ है। जो मनुष्य भाग्यवशात् यहाँ प्राणों का परित्याग करता है, उसे पुनः जन्म-मरण का क्लेश भोगना नहीं पड़ता है, अर्थात् उसकी मुक्ति हो जाती है।।१९।।

सप्तसामुद्रक तीर्थ में जो उत्तम चिह्न हैं, अब मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ। हे मुने! वहाँ पर निर्मल गङ्गा का वर्णन कर रहा हूँ। हे मुने! वहाँ पर निर्मल गङ्गा का जल चित्रवत् दिखाई पड़ता है।।२०।।

क्षीरवर्णं कदाचित्तु कदाचित्पीतवर्णकम्।
कदाचिद् दृश्यते रक्तं तथा मारकतप्रभम्॥२१॥
एतैर्नानाविधैश्चिह्नैर्ज्ञेयं तीर्थमिदं ध्रुवम्।
तत्र स्नानादिना विप्र लभ्यन्ते सर्वसिद्धयः॥२२॥

ऋषिपर्वतस्य वर्णनम्

कुब्जाम्रकादुत्तरत ऋषिपर्वत उत्तमे।
ऋषयः सिद्धगन्धर्वास्तत्र सन्ति महामुने॥२३॥
नानाविधानि लिङ्गानि तत्र सन्ति पराणि वै।
यस्योपत्यधारायां हि गङ्गायाः पश्चिमे तटे॥२४॥
तपोवनं मुनीनां तु यत्र सौमित्रिरुत्तमः।
प्राप्तराज्ये तथा रामे निहते दशकन्धरे॥
[1]समाययौ तपस्तप्तुं लक्ष्मणो लक्ष्मणान्वितः॥२५॥

उसका वर्ण कभी क्षीर (दूध) के समान, कभी पीला, कभी लाल, कभी मरकत मणि के समान नीलवर्ण का दिखलाई पड़ता है।।२१।।

इन्हीं विविध चिह्नों के द्वारा उस तीर्थ को पहचानना चाहिये। हे विप्र! वहाँ स्नान आदि करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।।२२।।

ऋषिपर्वत का वर्णन

हे महामुनि! कुब्जाम्रक तीर्थ से उत्तर की ओर उत्तम ऋषि-पर्वत है। उस पर सिद्ध, गन्धर्व और मुनिजन निवास करते हैं।।२३।।

वहाँ पर अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम लिङ्ग विद्यमान हैं। उस पर्वत की तलहटी की भूमि में गङ्गा का पश्चिमी तट स्थित है।।२४।।

वहाँ महर्षियों की तपोवन-भूमि है। दशवदन रावण को मारकर रामचन्द्र जी ने अपने राज्य को अङ्गीकार किया था, तदनन्तर शुभलक्षणसम्पन्न एवं अतिशय पराक्रमी सुमित्रानन्दन लक्ष्मण तप करने के लिये उसी स्थान पर आये थे।।२५।।

---

१. तस्योपत्येति क.।

शेषनागस्य निवासस्थानम्

तस्मात्स्थलादधोभागे बिलमस्ति महत्तरम्।
तत्र शेषः स्वयं नित्यं वसते नात्र संशयः॥२६॥
श्वेतवर्णः श्वेतबिन्दुः कृष्णनेत्रः प्रदृश्यते।
पुण्यात्मभिर्महाभाग यैर्गन्तव्यं हरिक्षये॥२७॥

नारद उवाच

लक्ष्मणेन तपस्तप्तं किमर्थं तत्र तीर्थके।
किं प्राप्तं च फलं तेन शुद्धेन परमात्मना॥२८॥
किमर्थं तत्र वसते वासुकिः सर्पनायकः।
एतत्सर्वं समासेन कथयस्व शिवात्मज॥२९॥

संक्षेपेण रामरावणयोर्युद्धवर्णनम्

स्कन्द उवाच

श्रृणु नारद वृत्तान्तं पापघ्नं सर्वकामदम्।
श्रुत्वापि यन्महाभाग मुच्यते सर्वकिल्विषैः॥३०॥

शेषनाग का निवासस्थान

उस स्थान के नीचे की ओर एक बहुत बड़ा बिल है, उसमें स्वयं शेष जी निःसन्देह निवास करते हैं।।२६।।

हे महाभाग! उनका श्वेतवर्ण, श्वेतबिन्दु और कृष्ण नेत्र अवलोकित होता है; किन्तु यह दृश्य पुण्यात्माजन को ही दिखाई पड़ता है।।२७।।

नारद ने कहा

किस कारण से लक्ष्मण ने उस तीर्थ में तप का अनुष्ठान किया था, पुनः आत्मा अर्थात् अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने पर उन्हें किस फल की प्राप्ति हुई थी।।२८।।

वहाँ सर्पराज वासुकि किस निमित्त निवास करते हैं। हे शिवनन्दन! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मुझसे संक्षेप में बतलायें।।२९।।

संक्षेप में राम और रावण का युद्धवर्णन

स्कन्द ने कहा

हे नारद! पापों का नाश करने वाले समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले उस वृत्तान्त को सुनो। हे महाभाग! उसके श्रवण करने से मनुष्य सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।।३०।।

पुरा रामो महातेजाः पितुराज्ञां समाश्रितः।
सीतया सहितो भ्रात्रा लक्ष्मणेन समन्वितः॥३१॥
ययौ वै दण्डकारण्ये नानामुनिगणान्विते।
पञ्चवट्यां महाभाग कृत्वा पर्णमयीं कुटीम्।
कारयामास भगवन्निवासार्थं महामतिः॥३२॥
तत्र वै वसतस्तस्य रामस्य विदितात्मनः।
रावणस्य स्वसा तत्र नाम्ना शूर्पणखा ययौ॥३३॥
दृष्ट्वा तौ भ्रातरौ तत्र कन्दर्पाविव रूपिणौ।
कामस्य वशमापन्ना चकमे तत्परिग्रहम्॥३४॥
रामस्य सविधे गत्वा विकटाङ्गी घटोदरी।
विहस्य वचनं प्रोचे रामं दशरथात्मजम्॥३५॥
भो भोः पुरुषशार्दूल भुवने त्वत्समो न हि।
आगच्छ त्वं मया सार्द्धं गिरीणां कन्दरेषु च॥३६॥
सङ्गमेषु नदीनां च वनान्तेषु महत्सु च।
क्रीडस्व त्वं मया सार्द्धं यौवनं ते निवर्त्तते॥३७॥

प्राचीनकाल में महातेजस्वी रामचन्द्र पिता की आज्ञा को मानकर पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ अनेक मुनियों से व्याप्त दण्डकारण्य में चले गये थे। हे महाभाग! वहाँ पञ्चवटी में पर्णशाला बनाकर महामति राम ने निवास करने के लिये विचार बनाया।।३१-३२।।

आत्मतत्त्व के जानने वाले राम जब वहाँ निवास करने लगे, उस समय उनके समीप रावण की बहन शूर्पणखा गयी।।३३।।

कामदेव के समान सुन्दर रूप वाले दोनों भाई राम और लक्ष्मण को देखकर शूर्पणखा काम के वशीभूत हो गयी और उनके साथ विवाह करने की अभिलाषा करने लगी।।३४।।

विकट (कुडौल) अङ्ग वाली, घड़े के समान उदर वाली वह राक्षसी राम के समीप जाकर दशरथ के पुत्र रामचन्द्र से हँसकर बोली।।३५।।

हे नरश्रेष्ठ! संसार में तुम्हारे समान, अन्य कोई सुन्दर नहीं है। इसलिये आप हमारे साथ इस पर्वत की कन्दरा में चलें।।३६।।

आप मेरे साथ नदियों के सङ्गम और वन के मध्य में क्रीड़ा करें; क्योंकि आपका यौवन बीता जा रहा है।।३७।।

चतुर्दशसहस्राणामधिपौ खरदूषणौ।
भ्रातरौ रामवीर्याढ्यौ जनस्थाननिवासिनौ॥३८॥
लङ्केश्वरेण प्रहितौ भ्रात्रा मे हिंसितुं मुनीन्।
अन्यथा वां भक्षयिष्ये अनया सह मानुष॥३९॥
इत्युक्तः सहसा रामस्तदा भागवतोत्तमः।
उवाच विहसन् वाक्यं सौमित्रिं वरयस्व भोः॥४०॥
अहं कलत्रवानस्मि सपत्नीको वरानने।
एवमुक्ता तु रामेण लक्ष्मणं च तथाऽब्रवीत्॥४१॥
लक्ष्मणोऽपि विहस्यैनामुत्तरं प्रोक्तवान् कटुम्।
ततः क्रुद्धा शूर्पणखा तान् हन्तुमुपचक्रमे॥४२॥
इति तच्चेष्टितं दृष्ट्वा रामो राजीवलोचनः।
चकर्त नासां कर्णौ च तस्यास्तत्र महामते॥४३॥
रुदन्ती रुधिरासिक्ता ययौ शीघ्रं खराश्रमम्।
खरं च दूषणं चैव ह्यानयामास सैनिकैः॥४४॥

हे राम! मेरे भाई खर और दूषण चौदह हजार दैत्यों के अधिपति हैं, वे दोनों अत्यन्त बलशाली हैं और इसी जनस्थान में निवास करते हैं।।३८।।

मेरे भाई लङ्कापति रावण ने मुनियों की हिंसा करने के लिये उन दोनों को यहाँ भेजा है। हे मनुष्य! यदि तुम मेरा कहना नहीं मानोगे, तो मैं इस स्त्री के साथ तुम दोनों को खा जाऊँगी।।३९।।

हे भागवतोत्तम! जब उसने रामचन्द्र जी से इस प्रकार का वचन कहा, तब वे हँसकर उससे बोले। अये! तुम सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण का वरण करो।।४०।।

हे सुमुखि! मेरे पास स्त्री है, अतएव मैं सपत्नीक हूँ। जब रामचन्द्र ने उससे उस प्रकार कहा,तब वह इसी प्रकार लक्ष्मण के समीप जाकर कहने लगी।।४१।।

लक्ष्मण ने भी उसकी हँसी उड़ाते हुए कटु वचन में उससे उत्तर दिया। तदनन्तर शूर्पणखा क्रोधित हो गयी और उन सभी लोगों को मारने का उपक्रम करने लगी।।४२।।

कमल के समान नेत्र वाले रामचन्द्र ने जब उसकी ऐसी चेष्टा देखी। हे महामतिमान्! तब उन्होंने उसके नाक और दोनों कान काट डाला।।४३।।

इसके बाद रक्त से रञ्जित वह रोती-कलपती खर के आश्रम में गयी। वहाँ से सैन्य के साथ खर और दूषण को लिवा लायी।।४४।।

निहतौ राक्षसौ तेन रामेणाऽपि जनस्थले।
साऽपि कर्म महद् दृष्ट्वा ययौ लङ्कां विनासिका॥४५॥
रुधिराप्लुतसर्वाङ्गी जगाद परुषं वचः।
मृतोऽसि राक्षसश्रेष्ठ भ्रातरौ निहतौ तव॥४६॥
जनस्थाने मनुष्येण स्त्रीसहायेन रावण।
खरश्च निहतः सङ्ख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा॥४७॥
अहं च विकृता तेन कृता त्वत्कार्यसम्मुखी।
स्त्रीरत्नं च त्वदर्थं हि ह्यानेतुमहमुद्यता॥४८॥
किं करोमि मम भ्रातर्हन्तुं त्वां समुपस्थितः।
स्वसुस्तद्गदितं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः॥
जगाम सहसा तत्र जनस्थाने महामते॥४९॥
अहरत्तत्र हैमेन छद्मयित्वा मृगेण तम्।
रामं राजीवपत्राक्षं सीतां नीत्वा गृहं ययौ॥५०॥

श्रीराम ने जनस्थान में उन दोनों राक्षसों को भी मार डाला। इसके बाद नाक, कान से रहित शूर्पणखा इस भयङ्कर कार्य को देखकर लङ्का चली गयी।।४५।।

उसका सम्पूर्ण शरीर रुधिर से लथपथ था, उसने रावण से कठोर वचन कहा। हे राक्षसश्रेष्ठ! क्या तुम मर गये हो? तुम्हारे दोनों भाई मारे गये।।४६।।

हे रावण! जनस्थान में स्त्री के साथ रहने वाले एक मनुष्य के द्वारा खर, दूषण और त्रिशिरा युद्ध में मार डाले गये।।४७।।

उसने ही मुझे भी कुरूपिणी बना दिया है, मैं तुम्हारा कार्य करना चाहती थी, क्योंकि मैं तुम्हारे लिये उस स्त्रीरत्न को लाना चाहती थी।।४८।।

हे भाई! मैं क्या करूँ? लगता है कि वह मनुष्य तुमको मारने के लिये ही वहाँ आये हैं। हे महामति! बहन शूर्पणखा के इस प्रकार के वचन को सुनकर रावण क्रोध से मूर्च्छित हो गया और एकाएक उस जनस्थान में चला गया।।४९।।

वहाँ उसने सुवर्ण के मृग को आधार बनाकर कमलपत्र के समान नेत्र वाले रामचन्द्र को छलकर सीता का हरण कर लिया और अपने घर ले आया।।५०।।

रामोऽपि तन्महाश्चर्यं दृष्ट्वा विस्मयमाययौ।
विलपन् प्रययौ भ्रात्रा ऋष्यमूके महागिरौ॥५१॥
सुग्रीवेण तथा सख्यं कृत्वा वै चाग्निसाक्षिकम्।
हत्वा च बालिनं तत्र स्थापयित्वा नृपासने॥५२॥
सुग्रीवं च तथा तेन ससैन्येन हनूमता।
अन्यैश्च कपिभिः सार्धं ययौ लङ्कां महायशाः॥५३॥
बभूव तुमुलं युद्धं नरवानररक्षसाम्।
लङ्कायां विविधैः शस्त्रैस्तथाश्मतरुवृष्टिभिः॥५४॥
निकुम्भिलाशिलायां तु तप्यमानं महत्तपः।
मेघनादं सौमित्रिविषमस्थं महायशाः॥५५॥
सञ्छाद्य शरधाराभिर्विभीषणसहायवान्।
निजघान महोरस्कं शार्दूल इव कुञ्जरम्॥५६॥
रामोऽपि कपिभिर्युक्तो हत्वा राक्षसमन्त्रिणः।
पुत्रान् सम्बन्धिनश्चैव निजघान दशाननम्॥५७॥

रामचन्द्र भी इस महान् आश्चर्य को देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये और विलाप करते हुए भाई लक्ष्मण के साथ ऋष्यमूक नामक महान् पर्वत पर चले गये।।५१।।

वहाँ श्रीराम ने अग्नि को साक्षी बनाकर सुग्रीव के साथ मैत्री कर ली। इसके बाद बालि को मारकर सुग्रीव को राज्यासन पर बैठा दिया।।५२।।

इसके बाद सेना सहित सुग्रीव और हनुमान् के साथ महायशस्वी रामचन्द्र अन्य वानरों को साथ लेकर लङ्का में गये।।५३।।

वहाँ लङ्कापुरी में विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से तथा पाषाण एवं वृक्षों की वर्षा करके नर, वानर और राक्षसों का भयङ्कर युद्ध हुआ।।५४।।

निकुम्भिला शिला में उग्र तप करते हुए विषम भाव से बैठे हुए मेघनाद को महायशस्वी सुमित्रानन्दन लक्ष्मण ने देखा।।५५।।

उन्होंने विभीषण की सहायता से बाण की वर्षा के द्वारा उसे ढ़क दिया और उस विशाल वक्षःस्थल वाले मेघनाद का वध उसी प्रकार कर दिया, जिस प्रकार सिंह हाथी को मार डालता है।।५६।।

तदनन्तर रामचन्द्र ने भी वानरों के साथ मिलकर राक्षसों, मन्त्रियों, पुत्रों और सम्बन्धियों को मार कर दश मुख वाले रावण को भी मार डाला।।५७।।

तत्र संस्थापयामास तद्भ्रातरमनिन्दितम्।
लङ्काधिपत्ये विप्रर्षे मन्दोदर्यास्तथैव च॥५८॥
इति तद्वै महत्कर्म कृत्वा रामो महायशाः।
लक्ष्मणश्च महाबाहुर्दृष्ट्वा सर्वान् दिवौकसः॥५९॥
तथा दशरथं चैव पितरं सुविमानगम्।
शुद्धिं दृष्ट्वा तु सीताया वह्नौ मानुषविग्रहः॥६०॥
विष्णुः पुष्पकमारुह्य सविभीषणवानरः।
सीतया सहितश्चैवायोध्यायां च समाययौ॥६१॥

लक्ष्मणस्य राजयक्ष्माप्राप्तिः

तत्रासने शुभे पित्र्ये रामे राज्यं प्रशासति।
राजयक्ष्मा लक्ष्मणं च जगृहे गेहसंस्थितम्॥६२॥
तथाविधं लक्ष्मणं हि रोगग्रस्तं समीक्ष्य सः।
रामो नाम महातेजाश्चिन्तयामास राघवः॥६३॥

हे विप्र! इसके बाद राम ने वहाँ लङ्का के राज्यसिंहासन पर मन्दोदरी के निरीक्षण में रावण के यशस्वी भाई विभीषण को स्थापित कर दिया।।५८।।

इस प्रकार का उग्र कर्म करने के पश्चात् महायशस्वी रामचन्द्र और विशालबाहु लक्ष्मण ने सभी देवताओं का दर्शन किया।।५९।।

पुनः सुन्दर विमान में आरूढ होकर अपने पिता दशरथ का भी दर्शन किया। इसके साथ अग्नि में शुद्ध हुई सीता का अवलोकन किया।।६०।।

विभीषण तथा वानरों सहित पुष्पक विमान में आरूढ़ होकर सीता के साथ विष्णुस्वरूप राम अयोध्या पुरी में आये।।६१।।

लक्ष्मण को राजयक्ष्मा रोग की प्राप्ति

वहाँ जब रामचन्द्र पिता के शुभ राज्यसिंहासन पर आरूढ़ होकर राज्य का शासन करने लगे, उस समय घर में ही निवास करने वाले लक्ष्मण को राजयक्ष्मा रोग ने घेर लिया।।६२।।

इस प्रकार रोगग्रस्त लक्ष्मण को देखकर महातेजस्वी, रघुवंशभूषण रामचन्द्र चिन्ता करने लगे।।६३।।

पप्रच्छ च वसिष्ठं वै स्वगुरुं ब्रह्मपुत्रकम्।
केन वै कर्मणा चेमं राजयक्ष्मा गृहीतवान्।।६४।।
इति मे संशयं देव छिन्धि धीरवर प्रभो।
इत्युक्तो मुनिराड् विप्रः कथयामास पातकम्।।६५।।

वसिष्ठोपदेशाद्रामलक्ष्मणयोः कुब्जाम्रक्षेत्रे तपःकरणम्

वसिष्ठ उवाच

इन्द्रजिद्वधनिर्णीतं घोररूपं महत्तरम्।
यस्मादेतस्य तपतः शिरश्चिच्छेद लक्ष्मणः।।६६।।
युद्धाद्वै विनिवृत्तस्य ब्रह्मवंशस्य रक्षसः।
तस्मादयं महातेजा राजरोगप्रपीडितः।।६७।।
तपस्तपतु कुब्जाम्रे लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्द्धनः।
ततोऽयं भविता शीघ्रं राजयक्ष्मविवर्जितः।।६८।।
त्वं च राम महाबाहो प्रायश्चित्तं तपात्मकम्।
कुरुष्व रावणवधजन्यपापापनुत्तये।।६९।।

तदनन्तर उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र अपने कुलगुरु वसिष्ठ से पूछा कि किस कर्म को करने से लक्ष्मण को इस राजयक्ष्मारोग ने सताया है।।६४।।

धैर्यशालियों में श्रेष्ठ हे प्रभो! हमारे इस सन्देह को आप दूर करें, जब द्विजराज से रामचन्द्र ने इस प्रकार कहा, तब वे पातक का वर्णन करने लगे।।६५।।

मुनि वसिष्ठ के उपदेश से राम और लक्ष्मण का कुब्जाम्रक क्षेत्र में तपस्या करना

वसिष्ठ जी ने कहा

मेघनाद के वध करने से यह घोर पातक उत्पन्न हुआ है, क्योंकि लक्ष्मण ने तप करते हुए इस मेघनाद का शिरछेदन कर दिया था।।६६।।

वह राक्षस उस समय युद्ध से पराङ्मुख था, ब्राह्मण के वंश में उत्पन्न उस राक्षस के वध करने के कारण महातेजस्वी लक्ष्मण इस राजरोग से प्रपीडित हैं।।६७।।

इसलिये लक्ष्मी को बढ़ाने वाले लक्ष्मण कुब्जाम्रक नामक तीर्थ में तप करें। ऐसा करने से ये शीघ्र ही राजयक्ष्मा रोग से रहित हो जायेंगे।।६८।।

हे महाबाहु राम! तुम भी रावण के वध से उत्पन्न पाप की शान्ति के लिये तपरूप प्रायश्चित्त करो।।६९।।

इति श्रुत्वा महातेजा विस्मयाविष्टमानसः।
पप्रच्छ गुरुमासीनं वसिष्ठं वाग्विदां वरम्॥७०॥

राम उवाच

ब्रह्मवंशसमुत्पन्नरावणस्य वधान्मुने।
कथं मे पातकं जातं पापस्य दुरितात्मनः॥७१॥
गोविप्रहतकस्यापि देवानां चैव द्रोहिणः।
हर्त्तुश्च परदाराणां परक्षेत्रधनादिनाम्॥७२॥
कथं तन्मारणे[1] पापं युद्धस्योच्छ्वासवर्त्तिनः।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वज्ञोऽसि यतो मुने॥७३॥

॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायापुरीमाहात्म्ये कुब्जाम्रके लक्ष्मणोपाख्यानवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

इस प्रकार के गुरु के वचन को सुनकर महातेजस्वी राम का मन विस्मय से आविष्ट हो गया। तदनन्तर उन्होंने विद्वानों में श्रेष्ठ, आसनासीन गुरु वसिष्ठ से पूछा॥७०॥

राम ने कहा

हे मुनीश्वर! यद्यपि रावण ब्राह्मण वंश में उत्पन्न था, तथापि वह दुराचारी पापी था, तब उस रावण के वध से मुझे पाप क्यों लगा?॥७१॥

वह दुष्ट गौ, ब्राह्मण का हत्यारा था, देवताओं का द्रोही था, उसने पराई स्त्रियों का, दूसरे के धन का एवं अन्य के क्षेत्र का हरण किया था॥७२॥

ऐसे निर्दयी के वध करने में मुझे पाप क्यों लगा, क्योंकि वह तो युद्ध करने के लिये भी तत्पर था। हे मुनिराज! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव मेरे इस सन्देह को दूर करें॥७३॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ इक्कीस अध्याय पूर्ण हुआ॥१२१॥

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-९४३+७३=१०१६]



---

१. तन्मारके इति ख.।

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्राह्मणस्य महत्त्ववर्णनम्

वसिष्ठ उवाच

श्रृणु राम महाबाहो ब्राह्मणानां महामते।
माहात्म्यं सर्वपापघ्नं तापत्रयविनाशनम्॥१॥
ब्राह्मणा जङ्गमा मूर्त्तिः श्रीविष्णोः परमात्मनः।
अत एव हि विख्याताः[१] क्षितिदेवा महामते॥२॥
येषां वै दर्शनात्सद्यो नश्यन्ते पापराशयः॥३॥
ब्राह्मणानां च सञ्चारो यत्र तिष्ठति सर्वदा।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति नितरां सदा॥४॥
भोजनीयाः प्रयत्नेन यद्यदिच्छन्ति तेन ते।
यत्किञ्चिद्दुर्ल्लभं वस्तु ब्राह्मणेभ्यो ददेत्तु तत्॥५॥

ब्राह्मण के महत्त्व का वर्णन

वसिष्ठ ने कहा

हे महाबाहु, राम! आप अति बुद्धिमान् हैं, आप ब्राह्मणों के माहात्म्य को सुनें, यह माहात्म्य सब पापों का नाश करने वाला तथा दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों प्रकार के तापों को शान्त करने वाला है।।१।।

हे मतिमान्! ब्राह्मण भगवान् श्रीविष्णु की जङ्गम (चलती-फिरती) मूर्ति हैं, इसी कारण ये पृथिवी के देवता (भूसुर) नाम से प्रसिद्ध हैं।।२।।

ब्राह्मणों के दर्शन करने से पापसमुदाय शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।।३।।

जिस स्थान में ब्राह्मणों का सञ्चार (आवागमन) होता है, वहाँ सम्पूर्ण तीर्थ नित्य निवास करते हैं।।४।।

ब्राह्मणों की जो-जो इच्छा हो, प्रयत्नपूर्वक उसी का उन्हें भोजन कराना चाहिये। जो वस्तु दुर्लभ हैं, उन्हीं वस्तुओं को उन्हें प्रदान करना चाहिये।।५।।

---

१. विख्यात इति ख.।

ब्राह्मणानां च सङ्गत्या ब्राह्मणानां च पूजनात्।
तर्पणाद् ब्राह्मणानां च पितॄणां तारणं भवेत्॥६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नरो ब्राह्मणमाश्रयेत्।
ब्रह्मवीर्यसमुत्पन्नो वरजातिषु वा विभो॥७॥
सोऽपि देवो महाराज विज्ञेयो भवलिप्सुभिः।
ब्राह्मणस्य पदाङ्गुष्ठे दक्षिणे नरपुङ्गव॥८॥
सर्वतीर्थानि पुण्यानि वसन्ति नितरां सदा।
यावन्ति विप्रपादोत्थरजांसि शिरसा नरैः॥९॥
धार्यन्ते नरशार्दूल तावद्वर्षसहस्रकम्।
स्वर्गलोके वसेन्मर्त्यो विमानवरमास्थितः॥१०॥
यावन्त्यः कणिका देहे पतन्ति चरणाम्बुनः।
तावद्वर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते॥११॥
श्राद्धे च ब्राह्मणा यत्र न सन्ति नृपसत्तम।
पितरश्चैव तेषां च नरके निवसन्त्यलम्॥१२॥

ब्राह्मणों की सङ्गति, उनका पूजन तथा उनको तृप्त करने से पितरों का उद्धार हो जाता है।।६।।

इसलिये मनुष्यों को सर्वथा प्रयत्नपूर्वक ब्राह्मणों का आश्रय करना कर्तव्य है। हे विभो! ब्राह्मण तो श्रेष्ठ जाति में ब्रह्मा के तेज से उत्पन्न हुआ है।।७।।

हे महाराज! संसार में लिप्त रहने वाले मनुष्यों को चाहिये कि वे ब्राह्मण को देवता समझें। हे नरश्रेष्ठ! ब्राह्मणों के दाहिने पैर के अङ्गुष्ठ में सम्पूर्ण पवित्र तीर्थ सर्वदा निवास करते हैं। मनुष्य अपने शिर के ऊपर ब्राह्मणों के चरणरज के जितने कण धारण करता है। हे नरश्रेष्ठ! उतने सहस्रवर्षपर्यन्त वह पुरुष श्रेष्ठ विमान में आरूढ़ होकर स्वर्गलोक में निवास करता है।।८-१०।।

ब्राह्मणों के चरणप्रक्षालन के जल के जितने कण मनुष्य के शरीर पर पड़ते हैं, उतने सहस्रवर्षपर्यन्त वह मनुष्य ब्रह्मलोक में ऐश्वर्य-भोग को प्राप्त करता है।।११।।

हे राजश्रेष्ठ! जिनके श्राद्ध में ब्राह्मण लोग उपस्थित नहीं रहते हैं, उनके पितर निरन्तर नरक में निवास करते हैं।।१२।।

---

१. धार्य्यमिति ख.।

मूर्खा अपि महाबाहो ब्राह्मणाः पुण्यसञ्चयाः।
किं पुनश्चैव विद्वांसो वेदवेदाङ्गपारगाः॥१३॥
धन्यास्ते पुरुषा लोके ब्राह्मणानां च ये प्रियाः।
ये विप्रपूजाकामार्था न तेषां पुनरागमः॥१४॥
ते सर्वे निर्जरा ज्ञेया ब्राह्मणान् प्रणमन्ति ये।
विप्रपादोदकं पुण्यं सर्वव्याधिविनाशनम्॥१५॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्॥१६॥
धन्यं वै कीर्त्तितं विष्णोर्धन्यं ब्राह्मणपूजनम्।
विप्रपादोदकं धन्यं धन्यं गङ्गाजलं स्मृतम्॥१७॥
ब्राह्मणानां प्रसादाद्वै लभ्यन्ते सर्वसिद्धयः।
ब्राह्मणानां प्रकोपेण दह्यन्ते भवकोटयः॥१८॥

हे महाबाहु! मूर्ख ब्राह्मण भी पुण्यराशि होते हैं, क्योंकि पुण्य के सञ्चय होने पर ही ब्राह्मण जाति में जन्म होता है। अतः वे पुण्य समूह को देने वाले हैं। वेद और वेदाङ्ग के ज्ञाता विद्वानों के लिये तो कहना ही क्या है।।१३।।

लोक में वे मनुष्य धन्य हैं, जो ब्राह्मणों को प्रिय हैं, जो प्राणी ब्राह्मणों का पूजन करने की कामना करते हैं, संसार में उनका पुनर्जन्म नहीं होता है।।१४।।

वे सभी लोग भी देवता ही हैं, जो प्रतिदिन ब्राह्मणों को प्रणाम करते हैं। ब्राह्मणों का पवित्र चरणोदक सम्पूर्ण व्याधियों का विनाश करने वाला है।।१५।।

विप्र का चरणोदक सभी पापों का शमन करने वाला एवं सभी प्रकार के उपद्रवों को शान्त करने वाला होता है।।१६।।

भगवान् विष्णु का कीर्तन, ब्राह्मणों की पूजा, ब्राह्मणों के चरणों का जल और गङ्गा का जल ये सब धन्य माने गये हैं। अर्थात् इन सब को श्रेष्ठ कहा गया है।।१७।।

जिस मनुष्य पर ब्राह्मण प्रसन्न हो जाते हैं, उस मनुष्य को सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं; किन्तु ब्राह्मणों के क्रोधित हो जाने से करोड़ों लोक दग्ध हो जाते हैं।।१८।।

अविद्योऽपि महाराज नावमान्यो द्विजः सदा।
अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो भगवत्तनुः॥१९॥
संसारतापतप्तानां भेषजं ब्राह्मणा विभो।
यावद् ब्राह्मणपूजाऽस्ति यावद् गङ्गा धरातले॥२०॥
यावद्वेदमयो घोषस्तावन्नो विशते कलिः।
ब्राह्मणोऽस्ति परं तत्त्वं ब्राह्मणोऽस्ति परं तपः॥२१॥
ब्राह्मणोऽस्ति परा विद्या नास्ति ब्राह्मणतः क्वचित्।
अविद्यं ब्राह्मणं वाऽपि सविद्यं वा नराधिप॥२२॥
योऽवमन्यति दुष्टात्मा तस्यर्द्धिर्नश्यति क्षणात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नावमन्येद् द्विजातिकम्॥२३॥
ब्राह्मणानां प्रकोपेण नहुषोऽजगरतां गतः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणं नाऽवकोपयेत्॥२४॥

हे महाराज! ब्राह्मण चाहे विद्याविहीन ही क्यों न हो, परन्तु उसका निरादर नहीं करना चाहिये, क्योंकि ब्राह्मण विद्वान् हो या विद्याहीन हो, वह भगवान् नारायण का शरीर कहा गया है।।१९।।

हे विभो! जो व्यक्ति सांसारिक तापों से सन्तप्त हैं, उनके लिये ब्राह्मण ही औषधिस्वरूप हैं, अर्थात् जो प्राणी सांसारिक क्लेशों से व्यथित हैं, ब्राह्मण अपने उपदेश से उन्हें शान्ति प्रदान करते हैं। भूमि के ऊपर जब तक ब्राह्मणों की पूजा और गङ्गाजल विद्यमान है।।२०।।

जब तक पृथिवी पर वेद का निर्घोष हो रहा है, तब तक कलि अर्थात् पापों का प्रवेश नहीं हो सकता है। ब्राह्मण परम तत्त्व हैं, ब्राह्मण परम तप हैं।।२१।।

ब्राह्मण ही श्रेष्ठ विद्या हैं, ब्राह्मण से बढ़कर कुछ भी नहीं है। हे राजन्! ब्राह्मण विद्वान् हो अथवा अविद्वान् हो, चाहे जैसा भी हो, उसका जो निरादर करता है, उसका ऐश्वर्य क्षणभर में नष्ट हो जाता है। अतएव ब्राह्मणों का निरादर कदापि नहीं करना चाहिये। इसलिये पूर्ण प्रयत्न के साथ कभी भी ब्राह्मणों का अपमान नहीं करना चाहिये।।२२-२३।।

क्योंकि ब्राह्मणों के प्रकोप के कारण राजा नहुष अजगर की योनि को प्राप्त किये थे। इसलिये यह सदा प्रयत्न करना चाहिये कि ब्राह्मण कुपित न हों।।२४।।

वेदलेशोऽस्ति यत्रेश शास्त्रलेशोऽपि यत्र च।
तस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ते पापराशयः॥२५॥
वेदविन्मानुषो विप्रः स वै यत्र प्रगच्छति।
गच्छन्ति तत्र निधयः क्षेत्राण्यतितरां तथा॥२६॥
यत्रास्ति शास्त्रवेत्ता हि तत्र विष्णुः सनातनः।
पुराणसंहितावक्ता[१] यत्र सञ्चरते द्विजः॥२७॥
तत्रैव सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे प्रतिष्ठिताः।
ब्रह्महत्यादिपापानां ब्राह्मणादेव निष्कृतिः॥२८॥
गतश्रियश्च मर्त्या ये तथा चैव गतायुषः।
द्विषन्ति ब्राह्मणान् ये वै ते वा[२] नरकगामिनः॥२९॥
आसन्नमरणा ज्ञेया हतश्रीकाश्च राघव।
ये द्विषन्ति महाभाग भिषक्कालज्ञसत्तमान्॥३०॥
यस्य भाव्या परा सिद्धिर्यस्य भाव्या महार्थता।
यस्य भाव्यं परं ज्ञानं तस्य ब्राह्मणसङ्गतिः॥३१॥

हे राजन्! जिस ब्राह्मण में वेद का लेश मात्र भी है, अथवा जिसमें शास्त्र का लेश है, उस ब्राह्मण के दर्शन करने मात्र से पापों का विनाश हो जाता है।।२५।।

वेदों का जानने वाला ब्राह्मण मनुष्य जहाँ जाता है, वहीं सब निधियाँ और सम्पूर्ण तीर्थ चले जाते हैं।।२६।।

जहाँ शास्त्रज्ञ ब्राह्मण रहते हैं, उसी स्थान में सनातन भगवान् विष्णु का निवास होता है। पुराणों और संहिताओं का पाठ करने वाला ब्राह्मण जहाँ जाता है, उसी स्थान में सभी देवता और सम्पूर्ण तीर्थ प्रतिष्ठित हो जाते हैं। ब्रह्महत्या आदि पापों का उद्धार भी ब्राह्मण से ही होता है।।२७-२८।।

जिनकी लक्ष्मी और आयु नष्ट हो चुके हैं, अथवा जो नरक में जाने वाले हैं, वे ही लोग ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं।।२९।।

हे महाभाग! राघव! कालज्ञानी श्रेष्ठ वैद्यों के समान ब्राह्मणों से जो लोग द्वेष करते हैं, उनकी मृत्यु को निकट और उनकी लक्ष्मी को नष्ट समझना चाहिये।।३०।।

जिसको अपार सिद्धि प्राप्त होने वाली है, जिसे प्रभूत धन प्राप्त होने वाला है, जिसे परम ज्ञान की प्राप्ति होने वाली है, उसी मनुष्य को ब्राह्मणों की सङ्गति होती है।।३१।।

१. पुण्यासंहितावक्तेति ख.। २. ब्राह्मणांस्ते वे वै वेति ख.।

तेन तप्तं हुतं तेन तेन जप्तं महत्तरम्।
पूजिता येन विप्रेशाः सत्यमेव नराधिप॥३२॥
आधिव्याधिभयं नैव भक्त्या यत्र द्विजार्चनम्।
यथा सर्वेषु देवेषु श्रेष्ठो वै गरुडध्वजः॥३३॥
वेदेषु च यथा साम शास्त्रे वेदान्त उच्यते।
पुरीणां च यथा काशी क्षेत्राणां परमं त्विदम्॥३४॥
हिमवान् पर्वतश्रेष्ठो यथा पशुषु धेनवः।
तथा सर्वपदार्थेषु ब्राह्मणाः परिकीर्त्तिताः॥३५॥
इह चैव परत्रापि ब्राह्मणास्तारकाः स्मृताः।
केचिदैहिककर्माणः केचित्परसुखप्रदाः॥३६॥
विप्रेतरो[1] महाभाग यदि शास्त्रविशारदः।
ब्राह्मणश्च तथा मूर्खस्तस्माच्छ्रेष्ठतमो मतः॥३७॥

हे नराधिप! जिसने ब्राह्मणों का पूजन किया है, उसी ने महान् तप किया है, उसी ने जप किया है, यह सत्य है।।३२।।

जहाँ पर ब्राह्मणों की पूजा होती है, वहाँ पर किसी प्रकार की आधि (मानसिक व्यथा), व्याधि (शारीरिक रोग) का भय नहीं रहता है। जिस प्रकार समस्त देवताओं में गरुडध्वज भगवान् विष्णु श्रेष्ठ हैं, वेदों में सामवेद और शास्त्रों में वेदान्तशास्त्र उत्कृष्ट कहा जाता हैं, जैसे पुरियों में काशी तथा अखिल क्षेत्रों में यह कुब्जाम्रक क्षेत्र परमश्रेष्ठ है।।३३-३४।।

जैसे पर्वतों में हिमालय श्रेष्ठ है, पशुओं में गाय श्रेष्ठ मानी गयी है, उसी प्रकार सभी प्राणियों में ब्राह्मण श्रेष्ठ कहा गया है।।३५।।

इस लोक तथा परलोक में ब्राह्मण ही उद्धार करने वाला है। कुछ तो सांसारिक कर्मों का साधन करने वाले होते हैं और कुछ परलोक में सुख देने वाले होते हैं।।३६।।

हे महाभाग! ब्राह्मणों के अतिरिक्त यदि कोई अन्य पुरुष सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता है और ब्राह्मण निरा मूर्ख है; तो उस विद्वान् की अपेक्षा वह मूर्ख ब्राह्मण ही श्रेष्ठ माना गया है।।३७।।

---

१. 'विप्रेतर' इति ख.।

ब्राह्मणाँश्चैव सम्पूज्य यत्कर्म प्रकरोति हि।
अविधानात्कृतमपि सम्पूर्णं स्यादिति स्मृतिः॥३८॥
अपृष्ट्वा ब्राह्मणान् ये वै स्वयं कर्म प्रकुर्वते।
तत्कर्म निष्फलं ज्ञेयमायासेनापि यत्कृतम्॥३९॥
दम्भं करोति विप्रेषु विद्यायां यो नराधमः।
स याति नरकं घोरं यावदाभूतसम्प्लवम्॥४०॥
यो निन्दति महाराज ब्राह्मणं ब्रह्मतत्परम्।
कुलं तस्य क्षयं याति ततो नरकमाप्नुयात्॥४१॥
विद्यया जयते विप्रान् स वै नरकमश्नुते॥४२॥
ब्राह्मणार्थं यस्य वित्तं ब्राह्मणार्थं पराक्रमः।
स एव पुरुषो लोके पुण्यात्मा नात्र संशयः॥४३॥
चाण्डालीष्वपि सञ्जाता[१] ब्राह्मणानां हि वीर्यतः।
तेऽप्यवध्या महाराज किमु विद्वान् सुकर्मकृत्॥४४॥

ब्राह्मणों की पूजा करके जो कुछ कर्म किया जाता है, वह विधिहीन होने पर भी पूर्ण माना जाता है।।३८।।

जो व्यक्ति ब्राह्मणों से बिना पूछे स्वयं ही कर्म करता है, वह चाहे जितना परिश्रम से किया गया हो, उसे निष्फल ही समझना चाहिये।।३९।।

जो नराधम मनुष्य ब्राह्मणों के प्रति विद्याविषयक दम्भ करता है, वह मनुष्य प्रलयपर्यन्त घोर नरक में वास करता है।।४०।।

हे महाराज! जो पुरुष ब्रह्मविचार करने में तत्पर ब्राह्मण की निन्दा करता है, उसके कुल का सत्यानाश होता ही है, वह स्वयं मर कर नरक में जाता है।।४१।।

जो मनुष्य विद्या के द्वारा ब्राह्मणों पर विजय करता है, उसे नरक भोगना पड़ता है।।४२।।

जिस व्यक्ति का धन और पराक्रम ब्राह्मणों के ही निमित्त है, अर्थात् उनकी सहायता और उपकार के लिये है, निस्सन्देह उसी को लोक में पुण्यात्मा समझना चाहिये।।४३।।

हे महाराज! ब्राह्मणों के तेज से चाण्डाली में भी जिसका जन्म हुआ है, उनका भी तिरस्कार करने का निषेध किया गया है, ऐसी स्थिति में विद्वान् और श्रेष्ठ कर्म करने वालों का तो कहना ही क्या है।।४४।।

---

१. सञ्ज्ञातेति ख.।

पौलस्त्यपुत्रो भगवन् हतो यद्वै त्वया विभो।
रक्षणार्थं[१] ब्राह्मणानां गवां चैव महामते॥४५॥
अलेपस्यापि ते राम लक्ष्मणस्यापि पातकम्।
लोकानुवृत्तयेऽवश्यं कर्तव्यं पापसङ्क्षयम्॥४६॥
कुब्जाम्रकात्परं क्षेत्रं ब्रह्महत्यानिवारणम्।
नास्ति राघवशार्दूल पृथिव्यां पुण्यदं महत्॥४७॥
लक्ष्मणेन प्रगन्तव्यं त्वया तत्र महीपते॥४८॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कुब्जाम्रकमाहात्म्ये ब्राह्मणप्रशंसा नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२२।।

हे सर्वव्यापक! हे भगवन्! आपने पुलस्त्यनन्दन वृद्धश्रवा के पुत्र रावण को ब्राह्मणों तथा गौओं की रक्षा के लिये मारा है।।४५।।

यद्यपि आपको तथा लक्ष्मण को पापों का स्पर्श नहीं हो सकता, तथापि लोकशिक्षा के लिये प्रायश्चित्त द्वारा पातक का मार्जन आपको अवश्य करना चाहिये।।४६।।

हे रघुकुलश्रेष्ठ! पृथिवी के ऊपर कुब्जाम्रक तीर्थ से बढ़कर ब्रह्महत्या का निवारण करने वाला तथा महत् पुण्यदायक कोई अन्य क्षेत्र नहीं है।।४७।।

हे महीपति! इसलिये आप और लक्ष्मण दोनों को ही वहाँ प्रायश्चित्त करने के लिये जाना चाहिये।।४८।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ बाइस अध्याय पूर्ण हुआ।।१२२।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-१०१६+४८=१०६४]



---

१. रक्षार्थमिति ख.।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जाम्रकतीर्थे रामलक्ष्मणयोस्तपश्चरणम्

स्कन्द उवाच

इत्युक्तो वै वसिष्ठेन रामो धर्मभृतां वरः।
कुब्जाम्रके महाक्षेत्रे जगाम च सहानुजैः॥१॥

नारद उवाच

लक्ष्मणेन तपस्तप्तं कथं कुब्जाम्रके महत्।
कस्मिन् प्रदेशे भगवन् कानि तीर्थानि तद्वद॥२॥
रामेणापि कृतं किं वा कस्मिन् क्षेत्रे कृतं तपः।
एतत्सर्वं समासेन कृपया वद मे प्रभो॥३॥

कुब्जाम्रक तीर्थ में राम और लक्ष्मण की तपस्या

स्कन्द जी ने कहा

इस प्रकार वसिष्ठ जी के कहने पर धर्म के पालन करने वालों में श्रेष्ठ रामचन्द्र अपने छोटे भाइयों के साथ कुब्जाम्रक नामक महान् तीर्थ में गये।।१।।

नारद ने कहा

हे भगवान् कुब्जाम्रक में किस स्थान पर लक्ष्मण जी ने उग्र तप किया? वहाँ कौन से तीर्थ हैं, यह मुझसे बतलायें।।२।।

क्या रामचन्द्र जी ने भी तप किया था, तो उन्होंने किस क्षेत्र में तप किया था? हे प्रभो! यह सब वृत्तान्त संक्षेप में मुझसे कहें।।३।।

स्कन्द उवाच

सर्वं ते वच्मि विप्रेश महदज्ञाननाशनम्।
लक्ष्मणेन यथा तप्तं ब्रह्महत्यानिवारणम्।।४।।
रामेणापि परक्षेत्रे कृतं पापप्रणाशनम्।
भारापनुत्तये भूम्याः प्रार्थितस्य परात्मनः।
कृतदुष्टविनाशस्य रक्षणार्थं भवादृशाम्।।५।।
श्रीरामस्य महाबाहोर्लीलामानुषरूपिणः।
पुण्यपापादिकं चैव नैव दोषविकल्पना।।६।।
विशेषतोऽस्य पापस्य रावणस्य दुरात्मनः।
गोविप्रहन्तुर्विप्रेश मारणे नास्ति यद्यपि।।७।।
पातकं तदपि प्राज्ञ लोकचेष्टानुसारिणा।
प्रायश्चित्तं कृतं तेन लक्ष्मणेन च नारद।।८।।

स्कन्द ने कहा

हे विप्र! महान् अज्ञान को नष्ट करने वाला यह सम्पूर्ण आख्यान हम आपके प्रति वर्णन कर रहे हैं, जिस प्रकार लक्ष्मण ने ब्रह्महत्या की निवृत्ति करने के लिए तप किया था।।४।।

जिस प्रकार उस परम क्षेत्र में रामचन्द्र जी ने भी पाप का नाश किया था। भूमि का भार उतारने के लिए जिनकी प्रार्थना की गयी, इसलिए जिन परमात्मा ने दुष्टों का नाश किया है तथा आप जैसे सौम्यस्वभाव वाले महात्माओं की रक्षा करना ही उन दुष्टों के वध का कारण है।।५।।

जिन महाप्रभु ने अपनी लीला से ही नरदेह धारण किया है, उन महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी को पुण्य-पाप का स्पर्श नहीं है तथा उनके लिए दोषों की आशंका भी नहीं करनी चाहिये।।६।।

हे विप्रेश! यद्यपि पापाचरणशील दुराचारी तथा गौ एवं ब्राह्मणों का हनन करने वाले रावण का वध करने में पाप लग ही नहीं सकता है।।७।।

हे प्राज्ञ नारद! तथापि लोक में प्रचलित व्यवहारों का पालन करने वाले राम और लक्ष्मण ने प्रायश्चित्त का आचरण किया।।८।।

कुब्जाम्रकोत्तरे भागे गव्यूत्यर्द्धे तथाऽर्द्धके।
क्रोशे गङ्गातटे पश्चान्नानामुनिगणान्विते॥९॥
अद्यापि तत्प्रदेशे हि लक्ष्मणस्यास्य रूपतः।
सर्परूपेण शेषांशो वर्त्तते भगवत्प्रियः॥१०॥
शिवमाराधयामास वर्षैर्द्वादशसङ्ख्यकैः।
निराहारो महातेजाः शिवसंन्यस्तमानसः॥११॥
जजाप परमां विद्यां षड्वर्णां भक्तितत्परः।
वाय्वाहारो वर्षशतं शतपत्रफलाशनः॥१२॥
तस्थावेकेन पादेन शिवभक्तो जितेन्द्रियः।
ततः शिवो महाभाग प्रत्यक्षं तस्य नारद॥१३॥
बभूव सहसा पुत्र कान्तिव्याप्तदिगन्तरः।
वृषसंस्थोऽर्द्धचन्द्रेण संशोभितललाटकः॥१४॥

कुब्जाम्रक के उत्तर भाग में तीन कोश की दूरी पर अनेक मुनियों से सेवित प्रसिद्ध गङ्गा जी का तट है।।९।।

आज भी उस प्रदेश में भगवान् विष्णु के प्रिय शेष के अंशावतार लक्ष्मण जी की मूर्ति सर्प रूप में विद्यमान है।।१०।।

महान् तेजशील लक्ष्मण जी ने बारह वर्षपर्यन्त निराहार रहकर भगवान् शिव में अपने मन को लगाकर उनकी आराधना की।।११।।

उन्होंने भक्ति में तत्पर होकर परम षडक्षर महामन्त्र का जप किया। उन्होंने सौ वर्षपर्यन्त शतपत्र (कमल) के फल (कमलगट्टा) का आहार लेकर एवं सौ वर्षों तक वायु का आहार लेकर जप करते रहे। तदनन्तर शिव की भक्ति में तत्पर लक्ष्मण इन्द्रियों का निग्रह कर एक पैर पर खड़े होकर तप करते रहे। हे महाभाग नारद! लक्ष्मण द्वारा इस प्रकार के उग्र तप करने के बाद भगवान् शङ्कर उनके सामने प्रत्यक्ष हुए।।१२-१३।।

उस समय उनकी कान्ति से दिग्दिगन्त व्याप्त हो गया। भगवान् शङ्कर स्वयं वृषभ पर आरूढ़ थे तथा अर्द्धचन्द्रमा के द्वारा उनका ललाट सुशोभित हो रहा था। उन्होंने व्याघ्रचर्म का परिधान और सर्पों का यज्ञोपवीत धारण किया

व्याघ्रचर्मपरीधानो व्यालयज्ञोपवीतवान्।
उमानीतार्द्धतनुकस्त्रिनेत्रो गजकृत्तिधृक्॥१५॥
उवाच वचनं तत्र सौमित्रिं मित्रवत्सलम्॥१६॥

श्रीशिव उवाच

साधु साधु महाभाग सुमित्रानन्दवर्द्धन।
गतं ते पातकं तेन मत्प्रसादेन लक्ष्मण॥१७॥
अस्मिन् क्षेत्रे सकृत्स्नानाद् ब्रह्महत्या त्रिकोटिभिः।
मुच्यन्ते किमु त्वं शुद्धो मुनिहिंसकहिंसकः॥१८॥
शुद्धस्त्वं सर्वपापेभ्यो देहजेभ्यो महाशय।
गच्छ गच्छ स्वके स्थाने कुरु राज्यं सुखानि च॥१९॥
गतो वै राजयक्ष्मा ते देहतः शुभगेहतः।
त्वन्नाम्नेदं पुण्यतमं लक्षितं वै भविष्यति॥२०॥

था। उनके आधे अङ्ग में पार्वती जी विराजमान थीं तथा उन त्रिनेत्रधारी ने गजराज के चर्म को भी धारण कर रखा था। इस प्रकार वहाँ उपस्थित होकर भगवान् शिव ने मित्रों के साथ वत्सलता का आचरण करने वाले लक्ष्मण से कहा।।१४-१६।।

श्रीशिव ने कहा

हे महाभाग! तुम सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले हो, तुम धन्य हो, धन्य हो। हे लक्ष्मण! हमारी कृपा से तुम्हारे सम्पूर्ण पातक नष्ट हो गये हैं।।१७।।

इस क्षेत्र में स्नान करने से जब मनुष्य ब्रह्महत्या आदि तीन करोड़ पातकों से मुक्त हो जाता है, इस स्थिति में तुमने तो मुनि जन के विनाशकर्ता राक्षस का वध किया है, इसलिए तुम्हारी शुद्धि के लिए कहना ही क्या है, तुम स्वयं शुद्ध हो।।१८।।

हे महाशय! तुम देहज सम्पूर्ण पातकों से शुद्ध हो, अब तुम अपने स्थान को जाओ और राज्य तथा सुख का भोग करो।।१९।।

अब तुम्हारे देह से राजयक्ष्मा रोग भी दूर हो गया, अब यह क्षेत्र तुम्हारे ही नाम से विख्यात होगा।।२०।।

अहं च भगवन्नित्यं लक्ष्मणेश्वरतां गतः।
तिष्ठामि मुक्तिदो नृणामतिदुष्कृतिनां तथा॥२१॥

लक्ष्मेश्वरस्य वर्णनम्

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा च ततो दत्त्वा लक्ष्मणाय वरं तदा।
तत्रैवान्तर्दधे रुद्रो भक्तिगम्यो दुरासदः॥२२॥
सोऽपि लक्ष्मणनामा वै विष्णोरंशो महात्मनः।
स्थितवाँस्तत्र स्वांशेन पूर्णोऽपि प्रभुरच्युतः॥२३॥
तत्रैव वामभागे तु शिवो ज्ञानगतिः प्रभुः।
नाम्ना लक्ष्मेश्वरः ख्यातो दर्शनात्सर्वपापहा॥२४॥

लक्ष्मणकुण्डस्य वर्णनम्

गङ्गायाः पश्चिमे तीरे यत्र सिन्दूरवर्णका।
मृत्तिका वर्त्तते विप्र तत्र लक्ष्मणकुण्डकम्॥२५॥

हे भगवान्! मैं भी यहाँ लक्ष्मणेश्वर नाम को प्राप्त करूँगा। मैं यहाँ पापी मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करता हुआ निवास करूँगा।।२१।।

लक्ष्मेश्वर शिव का वर्णन

स्कन्द जी ने कहा

यह कहकर लक्ष्मण जी को वर देकर भगवान् शिव उसी स्थान पर अन्तर्धान हो गये। वे रुद्र भक्ति के द्वारा ही प्राप्त किए जाते हैं, अन्य व्यक्तियों को उनकी प्राप्ति दुर्लभ है।।२२।।

वे भी महात्मा भगवान् श्रीविष्णु के अंश लक्ष्मण नाम से वहाँ स्थित हो गये। यद्यपि भगवान् अच्युत अपने अंशों से परिपूर्ण भी थे।।२३।।

उसी के वामभाग में ऐसे भगवान् शिव विद्यमान हैं, जिनकी प्राप्ति ज्ञान के द्वारा होती है। उनका लक्ष्मेश्वर (लक्ष्मणेश्वर) नाम प्रसिद्ध है। उनके दर्शन करने मात्र से शीघ्र ही पापों का विनाश हो जाता है।।२४।।

लक्ष्मणकुण्ड का वर्णन

हे विप्र! गङ्गा के पश्चिमी तट पर जहाँ सिन्दूर के वर्ण की मिट्टी है, वहीं पर लक्ष्मणकुण्ड भी है।।२५।।

तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च फलानन्त्यं लभेन्नरः।

मुनिकुण्डस्य वर्णनम्

तत्र वामविभागे तु मुनिकुण्डमिति स्मृतम्।।२६।।
तत्र स्नात्वा शुभाँल्लोकान् प्राप्नोति परमं पदम्।
तत्र विष्णोर्गदा विप्र निहिता क्रुद्धचेतसा।।२७।।
विष्णुना वृत्रदमने तत्रास्ति चिह्नितं जले।

इन्द्रकुण्डस्य वर्णनम्

इन्द्रकुण्डमिति ख्यातं तत्रैव भवमोचनम्।।२८।।
यत्रेन्द्रस्तपसा वृत्रं निजघान महामुने।

वायुकुण्डस्य स्थितिः

तस्य वामे महत्तीर्थं वायुकुण्डमिति स्मृतम्।।२९।।

उस कुण्ड में स्नान करने एवं वहाँ मन्त्रों के जप करने से मनुष्य को सिद्धिरूप अनन्त फल की प्राप्ति होती है।

मुनिकुण्ड का वर्णन

उसी के वामभाग में एक अन्य कुण्ड भी है, जिसका नाम मुनिकुण्ड रूप में प्रसिद्ध है।।२६।।

उसमें स्नान करने से शुभ लोकों एवं परम पद मोक्ष की प्राप्ति होती है। हे विप्र! वहाँ पर भगवान् विष्णु की एक गदा स्थापित है।।२७।।

उस गदा को क्रोधित विष्णु ने वृत्रासुर का वध करने में ग्रहण किया था। उसका चिह्न वहाँ आज भी जल में विद्यमान है।

इन्द्रकुण्ड का वर्णन

वहीं पर इन्द्रकुण्ड भी प्रसिद्ध है, जो संसार के आवागमन को छुड़ाने वाला है।।२८।।

हे महामुनि! वहीं पर तप करने के प्रभाव से इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था।

वायुकुण्ड की स्थिति

उसके वामभाग में वायुकुण्ड नामक एक महान् तीर्थ है।।२९।।

स्नात्वा तत्र महाभाग शतगोदानजं फलम्।

नन्दिशिलानन्दिकुण्डयोः स्थितिः

तस्मिन्नेव स्थले रम्ये स्थिता नन्दीशिला शुभा॥३०॥
स्पर्शमात्रेण यस्यास्तु मुच्यते सर्वपातकैः।
नन्दीकुण्डमिति ख्यातं सर्वतीर्थेषु चोत्तमम्॥३१॥

धर्मेश्वरमहादेवस्य वर्णनम्

तत उत्तरदिग्भागे नाम्ना धर्मधराधरः।
धर्मधारेति विख्याता सर्वपापक्षयङ्करी॥३२॥
आयाति पर्वतश्रेष्ठाद्धर्माख्या धर्म्मवर्द्धिनी।
तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या वाजपेयफलं लभेत्॥३३॥
धर्मेश्वरो महादेवो वर्त्तते लिङ्गरूपधृक्।
यः स्नापयति लिङ्गं तन्मण्डलं भक्तितत्परः॥३४॥

हे महाभाग! उसमें स्नान करने से सौ गोदान करने का फल प्राप्त होता है।

नन्दीशिला एवं नन्दीकुण्ड की स्थिति

उसी रमणीक स्थल में नन्दी नामक एक शिला है, जो अत्यन्त शुभ है।।३०।।

उसके केवल स्पर्श करने मात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। वहीं नन्दीकुण्ड नाम का तीर्थ प्रसिद्ध है, यह भी सभी तीर्थों में उत्तम है।।३१।।

धर्मेश्वर महादेव का वर्णन

उससे उत्तर दिशा की ओर धर्मधराधर नाम की धर्मधारा विख्यात है, वह समस्त पापों का विनाश करने वाली है।।३२।।

धर्म की वृद्धि करने वाली वह धारा धर्म नामक श्रेष्ठ पर्वत से आती है, उसमें भक्तिभावपूर्वक स्नान करने से मनुष्य को वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है।।३३।।

वहाँ पर धर्मेश्वर महादेव लिङ्गरूप में विराजमान हैं। जो मनुष्य भक्ति में तत्पर होकर उस लिङ्ग को स्नान कराता है।।३४।।

सर्वान् कामानवाप्नोति जलदानेन नारद।

माहेश्वरीक्षेत्रस्य स्थितिः

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि पीठं परमदुर्लभम्।।३५।।
यत्रैकरात्राल्लभते सिद्धिं परमदुर्लभाम्।
माहेश्वरीति विख्याता सर्वसिद्धिप्रदायिनी।।३६।।
यत्र रुद्रः स्वयं साक्षाद्देवैः सन्निहितः सदा।
माहेश्वरीति नाम्ना वै कृष्णवर्णा महामुने।।३७।।
तस्या वै दर्शनाद्याति रुद्रलोकं दुरासदम्।
आनागतीर्थतो विप्र तथा हैमवतीतटम्।।३८।।
मायाक्षेत्रमिदं ख्यातं सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम्।
यस्यैकवारमपि यो दर्शनं प्रकरोति हि।।३९।।
कोटिजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।
धन्यानां वसतिर्ह्यत्र क्षेत्रराजे महामुने।।४०।।

हे नारद! जलदान करने से वह अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त कर लेता है।

माहेश्वरी क्षेत्र की स्थिति

सम्प्रति मैं एक दूसरे परम दुर्लभ पीठ का वर्णन करता हूँ।।३५।।

जहाँ एक ही रात्रि में परम दुर्लभ सिद्धि की प्राप्ति होती है। समस्त सिद्धियों को देने वाले उस पीठ का नाम माहेश्वरी है।।३६।।

वहाँ साक्षात् स्वयं महादेव शङ्कर देवताओं सहित विद्यमान रहते हैं। हे महामुने! माहेश्वरी नाम से प्रसिद्ध वे देवी कृष्णवर्ण की हैं।।३७।।

उनके दर्शन करने से दुष्प्राप्य रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। हे विप्र! नाग तीर्थ से प्रारम्भ कर हैमवती के तटपर्यन्त जो स्थान है, उसे मायाक्षेत्र कहते हैं, यह सभी क्षेत्रों में उत्तमोत्तम है। जो मनुष्य इस क्षेत्र का एक बार भी दर्शन करता है, नि:सन्देह वह करोड़ जन्म में किये पापों से भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है। हे महामुनि! इस क्षेत्रराज में जिसे रहने का स्थान प्राप्त हुआ है, वह धन्य है।।३८-४०।।

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः।।४१।।
श्रीविष्णोर्यत्र सान्निध्यमीश्वरस्य तथैव च।
दक्षादिभिर्मुनिवरैः कृताः क्रतुवरा यतः।।४२।।
एतत्क्षेत्रसमं क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
मृता यत्र महाभाग प्रयान्ति परमं पदम्।।४३।।
तिर्यग्योनिगताश्चापि तथा स्थावरतां गताः।
प्रयान्ति भवनं विष्णोस्त्यक्तदेहा महामते।।४४।।
शृणु विप्र पुरावृत्तं चित्रं परमकं तथा।
यथाऽत्र प्रवरस्थाने वृषव्याघ्रौ महामुने।।४५।।
ययतुः परमां सिद्धिं प्राप्ते चापरजन्मनि।
इतिहासमिमं श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।।४६।।

सैकड़ों-करोड़ों कल्पों में भी पुनः उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। इस क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता हैं; क्योंकि इस क्षेत्र में भगवान् श्रीविष्णु और भगवान् शिव की स्थिति है। दक्ष आदि श्रेष्ठ मुनियों ने इसी स्थान में श्रेष्ठ यज्ञों का अनुष्ठान किया था।।४१-४२।।

इसलिए इस क्षेत्र के समान अन्य क्षेत्र का होना तीनों लोकों में दुर्लभ है। हे महाभाग! इस क्षेत्र में प्राण का परित्याग करने वाले व्यक्ति परम पद मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।।४३।।

चाहे वे कीट-पतङ्ग आदि की योनि में हों या वृक्ष आदि स्थावर योनि में ही क्यों न उत्पन्न हुए हों। हे महामते! इस क्षेत्र में देह का परित्याग करके वे सभी विष्णुलोक को चले जाते हैं।।४४।।

हे विप्र! इस सम्बन्ध में प्राचीनकाल का एक विचित्र आख्यान सुनो। हे महामुनि! इस परमोत्कृष्ट क्षेत्र में जिस प्रकार वृष और व्याघ्र अन्य जन्म प्राप्त होने पर परम सिद्धि को प्राप्त किये थे। इस इतिहास को श्रवण कर मनुष्य सम्पूर्ण पापों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है।।४५-४६।।

ब्रह्मदत्तवैश्यस्याख्यानम्

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे बभूव वणिजां वरः।
ब्रह्मदत्त इति ख्यातः कुबेर इव चापरः॥४७॥
एकदा स महाभाग! शकटे स्थाप्य द्रव्यकम्।
सुवर्णमुक्तारत्नानि प्रवालानि च नारद॥४८॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन दैवात्कुब्जाम्रके ययौ।
व्यापाराश्च कृतास्तेन तीर्थयात्रा च वै तथा॥४९॥
ब्रह्मदत्तस्य गेहे तु गत एको वृषस्तदा।
सार्थाच्चैव परिभ्रष्टो भूयः कुब्जाम्रकं ययौ॥५०॥
देवालयसमीपे तु स्थितवान् कतिचित्समाः।
निर्माल्यफलपत्राणि भक्षयन् वृषभो मुने॥५१॥
दिने स्वयं वनं याति रात्रावायाति तत्र वै।
एवं हि वसतस्तस्य तत्र देवगृहाद्बहिः।
व्याघ्रश्चैको रिपुर्जातो दृष्ट्वा पुष्टशरीरकम्॥५२॥

ब्रह्मदत्त वैश्य का आख्यान

धर्म के उत्पत्तिरूप कुरुक्षेत्र में ब्रह्मदत्त नाम का एक श्रेष्ठ वैश्य था, वह दूसरे कुबेर के समान धनाढ्य था।।४७।।

हे महाभाग नारद! एक समय वह वैश्य गाड़ी में प्रभूत धन, सुवर्ण, मोती, रत्न और मूँगा को लाद लिया।।४८।।

दैवयोग के कारण तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में वह कुब्जाम्रक तीर्थ में गया, वहाँ उसने तीर्थयात्रा तो की ही, व्यापार भी करने लगा।।४९।।

इस क्रम में ब्रह्मदत्त के घर कोई एक बैल था, जो सार्थ (व्यापारी) से विछुड़ कर दूर कुब्जाम्रक में चला आया था।।५०।।

हे मुनि! वह वृषभ कुछ वर्षों तक देवमन्दिर के निकट स्थित रहा और मन्दिर के निर्माल्य फल और पत्रों का भक्षण करता था।।५१।।

वह दिन में तो जङ्गल में चला जाता और रात्रि में वहाँ आ जाता था। इस प्रकार देवमन्दिर के बाहर निवास करते-करते उसके शरीर को पुष्ट देखकर कोई व्याघ्र उसका शत्रु बन गया।।५२।।

तत्प्रसङ्गाच्च तत्रैव समायाति जिघाँसया।
एवं तयोर्महद्वैरं बभूव मुनिपुङ्गव॥५३॥
वृषभः सोऽपि पुष्टाङ्गो न तं गणयति ध्रुवम्।
तीक्ष्णशृङ्गो महोच्चो वै ककुद्वान् दृढविक्रमः॥५४॥
सहसा सोऽपि व्याघ्रश्च वृषभं न जिघांसति।
एकदा मुनिशार्दूल गतोऽरण्ये महावृषः॥५५॥
तृणानि खादितुं विप्र निर्जनेऽतिभयङ्करे।
महावराहसञ्छन्ने सरीसृपनिषेविते॥५६॥
व्याघ्रऋक्षशताकीर्णे दुर्गमे खड्गसेविते।
तयोर्युद्धं समभवन्महद् वृषभव्याघ्रयोः॥५७॥
वृषश्च तं महाभाग शृङ्गाभ्यां व्याघ्रकं तदा।
दधार च तथा भूमौ चिक्षेप प्रबलं खलु॥५८॥
उत्थाय सहसा सोऽपि वृषं कष्टाज्जघान ह।
सोऽपि सिंहो महातेजा आविद्धो वृषभेण ह॥५९॥

इसी प्रसङ्ग में उसको मारने की कामना से वह व्याघ्र नित्य वहाँ आता था। हे मुनिपुङ्गव! इस प्रकार दोनों का परस्पर वैर बहुत अधिक बढ़ गया।।५३।।

बैल का शरीर भी अत्यन्त पुष्ट था, अत एव वह उस व्याघ्र को कुछ नहीं समझता था। उस वृषभ के शृङ्ग तीक्ष्ण और ऊँचे-ऊँचे कन्धे थे और वह महान् पराक्रमी था।।५४।।

इसलिए वह व्याघ्र भी उस वृषभ को सहसा मारने की इच्छा नहीं करता था। हे मुनिश्रेष्ठ! एक समय वह महावृषभ घास चरने के लिए अति भयङ्कर घोर जङ्गल में चला गया। वह जङ्गल अनेक सूकरों और सर्पों से व्याप्त था, सैकड़ों व्याघ्र और भालुओं से व्याप्त था, उसमें भयङ्कर गैंड़े भी भरे पड़े थे। इस प्रकार के भयङ्कर वन में उन दोनों महावृषभ और व्याघ्र का घोर युद्ध हुआ। हे महाभाग! वृषभ ने उस व्याघ्र को अपने दोनों सींगों से उठाकर बलपूर्वक भूमि पर पटक दिया।।५५-५८।।

उठकर उस सिंह ने भी बड़ी कठिनाई से उस बैल को मार डाला; किन्तु वह महातेजस्वी सिंह भी उस बैल के द्वारा सींगों से छेद दिया गया।।५९।।

ममार च महाभाग तस्मिन् कुब्जाम्रके वने।
अवन्तीविषये तौ च कुब्जाम्रमृतिवैभवात्॥६०॥
पितापुत्रौ राजपुत्रौ बभूवतुरनिन्दितौ।
पूर्वजन्मविरोधेन जातौ तत्र विरोधिनौ॥६१॥
वृषो राजा बभूवाथ सिंहो वै राजपुत्रकः।
एकपुत्रस्तदा राजा किञ्चित्पुत्रं न भाषते॥६२॥
सोऽपि राजकुमारश्च राजानं न च पश्यति।
प्रजायाश्चानुरोधेन कुमारं च जिघांसति॥६३॥
राजा स्मरति वृत्तान्तं पूर्वजन्मभवं खलु।
इति तयोर्महाभाग दैवयोगादभून्मतिः॥६४॥
कुब्जाम्रकं महातीर्थं गन्तुं राज्ञो महात्मनः।
स कुमारो महाराजो निजधाम्नः[१] पदैर्युतः॥६५॥
ययौ हिमाद्रिनिकटे मायापुर्यां महामते।
यावत्प्रविशते राजा कुब्जाम्रक्षेत्र उत्तमे॥६६॥

हे महाभाग! इस प्रकार उस कुब्जाम्रक वन में वे दोनों एक-दूसरे को मार डाले। कुब्जाम्रक तीर्थ में मरने के कारण वे दोनों अवन्ती देश में प्रशंसनीय राजपुत्र पिता-पुत्र बने। इनमें बैल राजा और सिंह राजकुमार के रूप में उत्पन्न हुए थे; परन्तु पूर्व जन्म के विरोध के कारण वे वहाँ भी परस्पर विरोधी बन गये। यद्यपि राजा को एक ही पुत्र था, तथापि वह अपने पुत्र से कुछ नहीं बोलता था।।६०-६२।।

इसी प्रकार वह राजकुमार भी राजा को देखता तक नहीं था। पूर्वजन्म के वृत्तान्त का स्मरण करने से और प्रजा के अनुरोध से राजा उस पुत्र को मारना चाहता था।।६३।।

हे महाभाग! राजा पूर्वजन्म के वृत्तान्त का स्मरण करता था। इसी क्रम में दैवयोग से कुब्जाम्रक तीर्थ में उन दोनों का जाने का विचार हुआ।।६४।।

हे महामति! वह राजकुमार और राजा दोनों ही अपने भवन से पैदल चलकर हिमालय पर्वत के निकट मायापुरी में गये।।६५।।

जहाँ अनेक मुनिजन विराजमान थे, देवता और गन्धर्व जिनकी सेवा कर रहे थे, जो समस्त क्षेत्रों में उत्तम था, इस प्रकार के कुब्जाम्रक क्षेत्र में राजा

---

१. निजधानेति ख.।

नानामुनिगणाकीर्णे देवगन्धर्वसेविते।
तावत्सस्मार पुत्रोऽपि वृत्तान्तं पूर्वसम्भवम्॥६७॥
वैरस्य कारणं स्वस्य राज्ञश्चैव महामते।
तस्मिन्नेव क्षणे तौ च निर्वैरौ हि बभूवतुः॥६८॥
क्षेत्रस्यास्य प्रभावेण शुद्धौ चैव तथा मुने।
तत्रैव स्थितवन्तौ च किञ्चित्कालं महामती॥६९॥
कालेन व्ययमापन्नौ यत्र गत्वा न शोचति।
इति वै परमाश्चर्यं मृगेन्द्रवृषयोर्वने॥७०॥
तिर्यग्योनिप्रगतयोर्मूढयोर्बद्धवैरयोः।
राज्यं चैव तथा प्राप्तं मोक्षश्चापरजन्मनि॥७१॥
कुब्जाम्रके मृतो विप्र विप्रहत्यायुतोऽपि वा।
मोक्षं प्राप्नोति सततं कुष्ठी वा मृतसन्ततिः॥७२॥

ने जैसे ही प्रवेश किया। हे महामति! उसी समय राजा के साथ राजकुमार को भी अपने पूर्वजन्म के अर्जित वृत्तान्त का स्मरण हो आया।।६६-६७।।

राजा के साथ अपने वैर के कारण का स्मरण हो आया। हे मुनि! उसी समय दोनों का वैर दूर हो गया और वे दोनों ही इस क्षेत्र के प्रभाव से वैर-रहित हो गये।।६८।।

इस क्षेत्र के प्रभाव से वे दोनों शुद्ध हो गये। वे दोनों महाबुद्धिमान् उसी स्थान में कुछ कालपर्यन्त स्थित रहे।।६९।।

समयानुसार मृत्यु को प्राप्त होकर वे दोनों उस स्थान को चले गये, जहाँ जाकर मनुष्य शोकग्रस्त नहीं होता है। इस प्रकार पशुयोनि में जन्म लेने वाले मूढमति होने के कारण परस्पर वैर करने वाले सिंह और वृष दोनों का वैर वन में हुआ था। इस प्रकार उन्हें राज्य की प्राप्ति हुई और अन्य जन्म में मुक्ति का लाभ हुआ।।७०-७१।।

हे विप्र! कुब्जाम्रक तीर्थ में मृत्यु को प्राप्त करने वाला व्यक्ति चाहे वह ब्रह्महत्यारा हो या कुष्ठरोगग्रस्त हो अथवा मृतसन्तति हो, सभी प्रकार के लोग मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।।७२।।

वाराहतीर्थस्य वर्णनम्

अथान्यच्चात्र परमं तीर्थं वाराहसंज्ञितम्।
धरण्या यत्र नियतं संस्तुतो भगवानजः॥७३॥
तस्मादिदं परं क्षेत्रं वाराहं नाम विश्रुतम्।
यत्र ब्रह्मादयो देवास्तपस्तेपुः सुदारुणम्॥७४॥
वाराहतीर्थमहिमा केन वर्णयितुं क्षमः।
तत्रैका परमा मूर्त्तिः शिलारूपा महात्मनः॥७५॥

सूर्यपुत्र्या वृत्तान्तम्

तच्छिलास्पर्शनादेव विष्णुलोके वसेच्चिरम्।
सूर्यपुत्री नदी तत्र समायाति महामते॥७६॥
गालवेन पुरा सूर्यः समाराधित ईश्वरः।
प्रसन्नश्चाब्रवीत्सूर्यो वरं वरय गालव॥७७॥

वाराह तीर्थ का वर्णन

इसके अनन्तर यहाँ एक अन्य वाराह नामक तीर्थ है, इसी तीर्थ में पृथिवी ने अजन्मा भगवान् विष्णु की स्तुति की थी।।७३।।

इसी कारण इस उत्तम क्षेत्र का वाराह नाम विख्यात हुआ है तथा इसी स्थान में ब्रह्मा आदि देवताओं ने कठोर तपस्या का अनुष्ठान किया था।।७४।।

इस वाराहतीर्थ की महिमा का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है। वहाँ भगवान् की एक महामूर्ति शिलारूप में विद्यमान है।।७५।।

सूर्यपुत्री का वृत्तान्त

उस शिला का केवल स्पर्श करने मात्र से ही मनुष्य चिरकालपर्यन्त विष्णुलोक में निवास करता है। हे महामतिमान्! वहाँ सूर्य की पुत्री यमुना नदी के रूप में आती है।।७६।।

प्राचीनकाल में गालव ऋषि ने सूर्य नारायण की आराधना की थी, जिससे प्रसन्न होकर सूर्य ने कहा कि हे गालव! वर की याचना करो।।७७।।

सोऽब्रवीद्देहि भगवँस्तव पुत्री तु या स्मृता।
यमुनेति समाख्याता नदी परमपावनी॥७८॥
सा समायातु सततं गङ्गायां सङ्गता भवेत्।
तीर्थराजप्रयागाच्च समं तीर्थं भवत्विति॥७९॥
अत्र स्नास्यन्ति ये मर्त्यास्ते प्रयान्तु परं पदम्।
तव चात्र स्थितिश्चास्तु सर्वतीर्थेषु चोत्तमे॥८०॥
सूर्यश्चापि तथेत्युक्त्वा ददौ वरमनुत्तमम्।
यमुना च महाभाग कलया चात्र संस्थिता॥८१॥
तस्यास्तु सङ्गमे पुण्ये प्रयागात्कोटिसङ्ख्यके।
स्नात्वा तत्र नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥८२॥

सूर्यकुण्डस्य स्थितिः

तत्रैव सूर्यकुण्डाख्यं तीर्थं परमपावनम्।
यस्य संस्पर्शनादेव सूर्यलोके महीयते॥८३॥

तदनन्तर उन्होंने कहा—हे भगवन्! आपकी परमपावनी पुत्री यमुना नाम वाली है, उसे मुझे प्रदान करें।।७८।।

वह नदी के रूप में यहाँ आकर नित्य गङ्गा में मिलती रहे, इसलिए यह तीर्थ तीर्थराज प्रयाग के समान पुण्यप्रद हो।।७९।।

जो मनुष्य इसमें स्नान करेंगे, उन्हें परम पद मोक्ष की प्राप्ति होनी चाहिये। सभी तीर्थों में उत्तम इस तीर्थ में आपकी भी निरन्तर स्थिति होनी चाहिये।।८०।।

'ऐसा ही हो' यह कहकर सूर्य ने भी उत्तम वर प्रदान कर दिया। हे महाभाग! यमुना भी यहाँ अपनी एक कला मात्र से स्थित रहती है।।८१।।

प्रयाग की अपेक्षा करोड़ गुना अधिक फल प्रदान करने वाले उसके पवित्र सङ्गम में भक्तिभावपूर्वक स्नान करने वाले मनुष्य को भगवान् शिव का सायुज्य प्राप्त होता है।।८२।।

सूर्यकुण्ड की स्थिति

वहीं पर सूर्यकुण्ड नामक परम पवित्र एक अन्य तीर्थ है, उसका केवल स्पर्श करने मात्र से ही सूर्यलोक में ऐश्वर्य भोगने को मिलता है।।८३।।

तत्रैव पश्चिमे भागे तीर्थं गालवसंज्ञितम्।
यत्र स्नानात्परं याति पुनरावृत्तिवर्जितम्॥८४॥
तत उत्तरवायव्ये शिवो यज्ञेश्वरः प्रभुः।
विष्णुना स्थापितो यत्र यज्ञादौ विघ्ननाशने॥८५॥

हृषीकेशक्षेत्रस्य वर्णनम्

यत्र विष्णुश्चक्ररूपी तत्रेदं लिङ्गमुत्तमम्।
इदं परमकं पीठं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्॥८६॥
यत्रार्चया सकृदपि लभते यद्यदिच्छति।
तस्य वामप्रदेशे हि शिला विष्णुकलेवरा॥८७॥
यस्यां कृते हृषीकेशस्त्रेतायां भरतो हरिः।
द्वापरे वामनो देवो भूयश्च भरतः कलौ॥८८॥

उसी के पश्चिम भाग में गालव नाम का एक तीर्थ है, उसमें स्नान करने से ऐसे लोक की प्राप्ति होती है, जहाँ से पुनः लौटना नहीं पड़ता है।।८४।।

वहाँ से उत्तर ओर वायुकोण में सर्वशक्तिमान् यज्ञेश्वर भगवान् शिव विद्यमान हैं, यज्ञ के प्रारम्भ में श्रीविष्णु ने विघ्नों को विनष्ट करने के लिए उनकी स्थापना की थी।।८५।।

हृषीकेश क्षेत्र का वर्णन

जहाँ पर भगवान् विष्णु चक्ररूप में स्थित हैं, वहीं पर भगवान् शिव उत्तम लिङ्गरूप में विद्यमान हैं, यह परम श्रेष्ठ पीठ मनुष्यों की सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाला है।।८६।।

वहाँ एक बार भी पूजन करने से मनुष्य जो-जो अभिलाषा करता है, उसकी प्राप्ति हो जाती है। उसी के वामभाग में विष्णु के शरीर के रूप में एक शिला है।।८७।।

जिस शिला में भगवान् विष्णु सत्ययुग में हृषीकेश के रूप में, त्रेतायुग में भरत के रूप में, द्वापर में वामन के रूप में एवं पुनः कलियुग में भरत के रूप में स्थित हैं।।८८।।

तस्य सन्दर्शनादेव महापातककोटयः।
नश्यन्ति ब्राह्मणश्रेष्ठ सिद्ध्यन्ति सर्वसिद्धयः॥८९॥
एतन्नाम्नैव सकलं प्राप्नोति निजवाञ्छितम्।
इति ते कथितं देव माहात्म्यं जगदीशितुः॥९०॥
हृषीकेशाश्रमे पुण्ये यथा रैभ्यो ह्यनुग्रहम्।
कुब्जाम्रकस्य माहात्म्यं यः शृणोति महामते॥९१॥
सोऽपि वैकुण्ठनिलये याति ब्रह्मसनातनम्।
मोदते त्रिदिवैस्सार्द्धं पितृभिः सह नारद॥९२॥
अस्य क्षेत्रस्य महिमा न वक्तुं केन[1] शक्यते।
सङ्क्षेपेण मयाऽऽख्यातं पापघ्नं सर्वकामदम्॥९३॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! उस शिला के केवल दर्शन करने से ही करोड़ों महापातक नष्ट हो जाते हैं और सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।।८९।।

इसका केवल नाम लेने मात्र से ही मनुष्य अपनी इच्छित वस्तु को प्राप्त कर लेता है। हे भूदेव! इस प्रकार हमने आपसे भगवान् जगदीश्वर के माहात्म्य का कथन किया।।९०।।

इस पुण्यशाली हृषीकेश के आश्रम में जिस प्रकार रैभ्य को ईश्वर के अनुग्रह की प्राप्ति हुई थी। हे महामति! जो मनुष्य कुब्जाम्रक क्षेत्र के माहात्म्य को सुनता है।।९१।।

वह मनुष्य भी वैकुण्ठ लोक में सनातन भगवान् श्रीविष्णु को प्राप्त हो जाता है। हे नारद! वह मनुष्य अपने पितरों के साथ वहाँ जाकर देवताओं के साथ आनन्द को प्राप्त करता है।।९२।।

इस क्षेत्र की महिमा का वर्णन करने में कोई समर्थ नहीं हो सकता है, मैंने संक्षेप में ही पापों का नाश करने वाले और सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान करने वाले इस क्षेत्र का आख्यान वर्णन किया है।।९३।।

---

१. केनापीति क.।

य इदं पठति श्राद्धे शृणोति च महामते।
तारिताः पितरस्तेन सत्यमेव न संशयः॥९४॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे मायाक्षेत्रमाहात्म्ये कुब्जाम्रकमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२३।।

हे महामतिमान्! जो मनुष्य इस क्षेत्र के माहात्म्य को श्राद्धकाल में पढ़ता है, अथवा श्रवण करता है, निश्चित रूप से उसने अपने पितरों का उद्धार कर दिया, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।।९४।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ तेइस अध्याय पूर्ण हुआ।।१२३।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-१०६४+९४=११५८]



अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामाश्रमस्य वर्णनम्

नारद उवाच

अथान्यद्वद माहात्म्यं क्षेत्राणां हिमपर्वते।
श्रोतुकामोऽस्मि भगवन् कृपां कुरु दयानिधे॥१॥
कुत्र तप्तं हि रामेण तपः परमदारुणम्।
यस्मात्पौलस्त्यवधजातात् पाताकान्मुक्त ईश्वरः॥२॥
कुत्र तद्वै महाक्षेत्रं कैलासे पर्वतोत्तमे।
यत्र ब्रह्मादिदेवानां वसतिर्नित्यमेव हि॥३॥

स्कन्द उवाच

साधु पृष्टं त्वया विप्र कथयामि तवानघ।
यस्य सन्दर्शनादेव मुच्यते सर्वपातकैः॥४॥

रामाश्रम का वर्णन

नारद ने कहा

हे भगवन्! हिमालय के ऊपर अन्य भी जितने क्षेत्र हैं, उनके माहात्म्य का वर्णन करें। हे दयानिधान! मैं सुनने की इच्छा करता हूँ, इसलिए मुझ पर कृपा करें।।१।।

श्रीरामचन्द्र ने परम दारुण तप कहाँ किया था, जिसके आचरण से वे पौलस्त्य के पुत्र रावण के वधजनित पाप से स्वयं मुक्त हुए थे।।२।।

सभी पर्वतों में उत्तम कैलास पर्वत के ऊपर वह स्थान कहाँ है? जहाँ ब्रह्मा आदि देवताओं का नित्य निवास है।।३।।

स्कन्द जी ने कहा

हे निष्पाप, विप्र! तुमने उत्तम प्रश्न किया है, मैं उसे तुमसे कह रहा हूँ, जिसके दर्शन करने मात्र से ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।४।।

गङ्गाद्वारादुत्तरेऽस्मिन् भागे वायव्यमाश्रिते।
रामाश्रम[१] इति ख्यातो माने षोडशयोजने॥५॥
धेनुपर्वतमारभ्य यावद्वेत्रवती नदी।
तावत्क्षेत्रं विजानीयात्पापघ्नं सर्वकामदम्॥६॥
तत्र रम्या नदी श्रेष्ठा कालिकेति परिश्रुता।
यस्यां स्नात्वा नरो याति ब्रह्मलोके न संशयः॥७॥
यत्र विष्णुः स्वयं साक्षान्नित्यं सन्निहितः प्रभुः।
यत्र चण्डी च दुर्गा च पूर्वपश्चिमयोः स्थिते॥८॥
घण्टाकर्णो यत्र पुरा शिवमाराधयच्छुचिः।
गणत्वं प्राप विभुतः शिवसान्निध्यसंस्थितः॥९॥
ततः पश्चिमतो लिङ्गं भूतेश इति कीर्त्तितम्।
तत्र गत्वा नरो विप्र जपन् पञ्चाक्षरं मनुम्॥१०॥

गङ्गाद्वार से उत्तर और वायव्य की ओर रामाश्रम नाम का एक तीर्थ विख्यात है, जो प्रमाण में सोलह योजन अर्थात् चौंसठ कोश विस्तृत है।।५।।

धेनुपर्वत से प्रारम्भ करके वेत्रवती नदीपर्यन्त इस रामक्षेत्र का प्रमाण जानना चाहिये। यह क्षेत्र पापों का विनाश करने वाला एवं सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला बताया गया है।।६।।

वहाँ परम मनोरम एक श्रेष्ठ नदी है, जो कालिका नाम से परिश्रुत है, जिसमें स्नान करने से मनुष्य ब्रह्मलोक में चला जाता है, इसमें संशय नहीं है।।७।।

वहाँ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीविष्णु नित्य उपस्थित रहते हैं, उनके पूर्वभाग में चण्डी एवं पश्चिम भाग में दुर्गा जी स्थित हैं।।८।।

प्राचीनकाल में वहाँ परम पवित्रतापूर्वक घण्टाकर्ण ने भगवान् शिव की आराधना की थी, जिससे उन्होंने भगवान् शिव के गणत्व को प्राप्त किया, इसलिए वे शिव की सन्निधि में सदा स्थित रहते हैं।।९।।

उस क्षेत्र से पश्चिम की ओर भूतेश नाम का एक प्रसिद्ध लिङ्ग है। वहाँ जाकर जो मनुष्य पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करता है।।१०।।

---

१. रामाश्रय इति ख.।

पश्यति प्रभुमीशानं त्रिरात्रेण न संशयः।
कुहूनाम्नी नदी तत्र सर्वपापप्रमोचिनी॥११॥
तस्या जलस्य संस्पर्शान्मुच्यते पापकञ्चुकात्।
तत्रैका शिवदा नाम्नी शिला परमपावनी॥१२॥
तत्र पिण्डप्रदानेन गयाश्राद्धफलं लभेत्।
तदधः पीतवर्णं तु जलं निस्सरति ध्रुवम्॥१३॥
तस्य स्पर्शनमात्रेण शिवलोके महीयते।
तत्रैलापत्रको नागः शिवमस्तकभूषणः॥१४॥
वर्त्तते शिवसंन्यस्तमानसो भक्तिसंयुतः।
तस्माद्वामप्रदेशे हि गुहा परमगह्वरा॥१५॥
विंशद्योजनविस्तीर्णा[1] नानामुनिगणान्विता।
जाबालिर्गालवश्चैव मार्कण्डेयो महामनाः॥१६॥

उस मनुष्य को तीन रात्रि में ही भगवान् शिव का दर्शन प्राप्त हो जाता है। वहाँ पर समस्त पापों को नष्ट करने वाली कुहू नाम की एक नदी है।।११।।

उसके जल का स्पर्श करने से मनुष्य समस्त पापों (के आवरण) से मुक्त हो जाता है। वहीं पर शिवदा नाम की एक परम पवित्र शिला है।।१२।।

वहाँ पितरों को पिण्ड प्रदान करने से मनुष्य गया में किये गये श्राद्ध का फल प्राप्त कर लेता है। उस शिला के नीचे से पीले रंग का जल निकलता रहता है, उस जल के केवल स्पर्श करने से ही शिवलोक में ऐश्वर्य का उपभोग करने का फल प्राप्त होता है।।१३-१४।।

वहाँ एलापत्र नामक नाग महादेव शङ्कर के मस्तक का भूषण बना रहता है। वह भी भक्तिभावपूर्वक भगवान् शङ्कर में अपने चित्त को लगाये रहता है। उसके वामभाग में अतीव गहन एक गुहा है।।१५।।

वह बीस योजन विस्तृत है तथा वह अनेक मुनिगण से संयुक्त है। वहाँ पर जाबालि, गालव, महामनस्वी मार्कण्डेय, महातेजस्वी च्यवन, भार्गव, अङ्गिरा,

---

१. त्रिंशद्योजनविस्तीर्णेति ग.।

च्यवनश्च महातेजा भृगुपुत्रोऽङ्गिरा मनुः।
एते चाऽन्ये च बहवो मुनयस्तप्तुमाश्रिताः॥१७॥

सीताकुण्डस्य स्थितिः

तस्या वै दक्षिणे भागे सीताकुण्डमिति श्रुतम्।
यत्र सीता च रामेण सहासीत्तप आस्थिता॥१८॥
तत्र स्नानेन दानेन याति स्वर्गं न संशयः।

हनुमत्कुण्डस्य स्थितिः

रामकुण्डात्पूर्वभागे सीताकुण्डाच्च दक्षतः॥१९॥
हनुमत्कुण्डमाख्यातं रुद्रलोकप्रदायकम्।
तत्र वै कपिरूपेण हनुमान्नित्यमाश्रितः॥२०॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः पश्यतीमं महामतिः।
ततः पारे महादुर्गा कोटरे पर्वतस्य वै॥२१॥
तत्र स्थित्वा कदाचिद्धि जपेच्च शिवमन्त्रकम्।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति दुष्प्राप्यां योगिनामपि॥२२॥

मनु आदि स्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य बहुत से महर्षिगण वहाँ तप करने के लिए उपस्थित रहते हैं।।१६-१७।।

सीताकुण्ड की स्थिति

उसके दक्षिणभाग में सीताकुण्ड प्रसिद्ध है। जहाँ पर सीता जी तप करने के लिए रामचन्द्र जी के साथ उपस्थित हुई थीं। उस सीताकुण्ड में स्नान करने एवं वहाँ दान करने से मनुष्य स्वर्गलोक में चला जाता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।।१८-१९।।

हनुमत्कुण्ड की स्थिति

रामकुण्ड से पूर्वभाग में एवं सीताकुण्ड से दक्षिण की ओर प्रसिद्ध हनुमत्कुण्ड है, जो रुद्रलोक को प्रदान करने वाला है। वहाँ पर हनुमान् जी वानर रूप में नित्य उपस्थित रहते हैं।।२०।।

जिसके सम्पूर्ण पाप दूर हो गये हैं, वही महामतिमान् मनुष्य उनका दर्शन कर पाता है। उसके आगे पर्वत की गुफा में महादुर्गा हैं।।२१।।

वहाँ स्थित रहकर जो मनुष्य शिव के मन्त्र का जप करता है, उसे उन सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति होती है, जो योगियों को भी दुष्प्राप्य है।।२२।।

भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां तत्रायान्ति सहस्त्रशः।
योगिन्यश्चार्द्धरात्रे हि नानाकृतिविभूषणाः॥२३॥
श्रूयते च ततः शब्दो गीतस्ताभिश्च[1] तत्र वै।
श्रुत्वाऽऽदरसमायुक्तो ह्रियते च ततः क्षणात्॥२४॥
वाद्यानि चैव श्रूयन्ते कार्त्तिके बलिराजके।
पातालाद् बलिराजोऽपि तत्राऽऽयाति महामते॥२५॥
बलिराजे तत्र योऽपि सम्पूजयति चाम्बिकाम्।
तस्मै सर्वं महेशानी ददाति शुभवाञ्छितम्॥२६॥
तत्र दुर्गेश्वरो देवो लिङ्गरूपी महार्थदः।
तत्र पार्श्वे महच्छ्वभ्रं तत्र दीपेश्वरी शिवा॥२७॥
तां कदाचिद्दैवयोगात्पश्यते यदि मानवः।
प्राप्नोति परमां सिद्धिं योगिनामपि दुर्लभाम्॥२८॥

भाद्रपद मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को अर्धरात्रि के समय अनेक प्रकार की आकृति और आभूषणों को धारण करके हजारों योगिनियाँ वहाँ आती हैं॥२३॥

उनके द्वारा गान किया गया गीत वहाँ श्रवणगोचर होता है, आदरपूर्वक उसका श्रवण करने से मनुष्य तत्काल ही मोहित हो जाता है॥२४॥

कार्तिक में बलिराज दिवस (देवोत्थान के दिन) में अनेक वाद्यों का शब्द श्रवणगोचर होता है। हे मतिमान्! उस दिन राजा बलि पाताल से वहाँ आते हैं। (कुछ लोगों के मत से बलिराज दिवस कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को मनाया जाता है। इस दिन इन्द्र विष्णु के लिए राजा बलि से छीनकर लक्ष्मी को लाये थे)॥२५॥

राजा बलि के समक्ष जो व्यक्ति अम्बिका की पूजा करता है, उसके सम्पूर्ण मनोरथों को महेशानी देवी पूर्ण करती हैं॥२६॥

प्रभूत धन प्रदान करने वाले दुर्गेश्वर महादेव लिङ्ग रूप में वहाँ विराजमान रहते हैं। उनके निकट विशेष श्वेतता रहती है और वहाँ दीपेश्वरी नाम की भगवती विराजमान रहती हैं॥२७॥

दैवयोग से यदि कोई मनुष्य उस शिवानी देवी का दर्शन कर लेता है, तो योगियों के लिये भी दुर्लभ परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है॥२८॥

---

१. गीतोक्ताभिश्चेति ख.ग.।

तत्र दक्षिणादिग्भागे शिवो रामेश्वरो मतः।
तस्य दर्शनमात्रेण सेतुबन्धादनन्तकम्॥२९॥
फलं प्राप्नोति मनुजः सत्यं हि शिवभाषितम्।
तत्र प्रवालिका नाम्नी देवी दैत्यवधोद्यता॥३०॥
यस्या वै पूजनान्मर्त्यो देवीलोके वसेच्चिरम्।
तत्रापि जलदेवीति नाम्ना ब्रह्मर्षिसेविता॥३१॥
जलमध्ये स्थिता नित्यं नवरात्रे प्रदृश्यते।
वीणाकर्णो मुनिस्तत्र तपस्तेपे पुरा यतः॥३२॥
जले ददौ दर्शनं यज्जलदेवीति सा स्मृता।
सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं साधकानन्ददायिनी॥३३॥

भाग्यतीर्थस्य स्थितिः

ततो वै पश्चिमे भागे भाग्यतीर्थमिति स्मृतम्।
भाग्यहीनोऽपि यत्र स्याद् भाग्यवान्नात्र संशयः॥३४॥

उसके दक्षिण दिशा में वहीं पर राम के द्वारा पूजित शिव विद्यमान हैं। उनके दर्शन मात्र से मनुष्य सेतुबन्ध रामेश्वर की अपेक्षा अनन्तफल प्राप्त करता है। शिव का यह कथन सत्य है। दैत्यों का वध करने के लिए उद्यत प्रवालिका नाम की देवी वहाँ उपस्थित रहती हैं।।२९-३०।।

जिनका पूजन करने से मनुष्य चिरकाल तक देवलोक में निवास करता है। वहीं पर जलदेवी नाम वाली देवी हैं. जो नित्य ब्रह्मर्षियों से सेवित हैं।।३१।।

वे देवी नित्य जल के मध्य में स्थित रहती हैं। उनका दर्शन केवल नवरात्र में होता है। प्राचीनकाल में वीणाकर्ण नामक मुनि ने वहाँ तप का आचरण किया था।।३२।।

क्योंकि देवी ने उन्हें जल में दर्शन दिया था, इसलिए उनका नाम जलदेवी प्रसिद्ध हो गया। वे देवी सम्पूर्ण सिद्धियों को प्रदान करने वाली एवं साधकों को आनन्द देने वाली हैं।।३३।।

भाग्यतीर्थ की स्थिति

वहाँ से पश्चिमभाग में भाग्यतीर्थ नाम का एक क्षेत्र है। भाग्यहीन मनुष्य भी उस तीर्थ में भाग्यशाली हो जाता है, उसमें सन्देह नहीं है।।३४।।

अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे रामो नाम महायशाः।
तपश्चकार परमं दिव्यं वर्षशतं पुरा॥३५॥
तत्र रामेश्वरं लिङ्गं संस्थाप्य विधिवत्सुधीः।
कृतकृत्यो बभूवाथ रामो नारायणः स्वयम्॥३६॥
कृतकृत्योऽपि भगवान्निर्गुणो गुणवर्जितः।
भक्ताधीनतया विप्र स करोति गतागतम्॥३७॥
इति ते कथितो दिव्यो विभवो रामतीर्थतः।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥३८॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसने उत्तरभागे रामतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२४।।

प्राचीनकाल में इसी महाक्षेत्र में महायशस्वी श्रीराम ने दिव्य सौ वर्षों तक परम तप का आचरण किया था।।३५।।

वहाँ पर सुबुद्धिमान् श्रीरामचन्द्र जी ने रामेश्वर लिङ्ग की स्थापना कर स्वयं नारायण स्वरूप होकर कृतकृत्य हो गये थे।।३६।।

हे विप्र! कृतकृत्य भी मायाजनित गुणों से रहित अत एव निर्गुण भगवान् श्रीरामचन्द्र भक्तों के अधीन होने के कारण अवतार आदि धारण करते हैं।।३७।।

इस प्रकार रामतीर्थ का दिव्य माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है, इसको सुनकर मनुष्य निश्चित ही सभी पापों से मुक्त हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है।।३८।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ चौबीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१२४।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-११५८+३८=११९६]



अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाश्रमस्य स्थितिवर्णनम्

नारद उवाच

द्रोणाश्रमः पुरा प्रोक्तः त्वया यः पापनाशनः।
कानि तत्र च क्षेत्राणि किं पुण्यं तत्र जायते॥१॥
एतत्सर्वं समासेन वद मे शङ्करात्मज।
कथं चास्मिन् प्रकर्तव्यं कर्म पापविनाशनम्॥२॥

स्कन्द उवाच

शृणु वच्मि महाभाग द्रोणक्षेत्रस्य वैभवम्।
मायाक्षेत्राद्धि पाश्चात्ये भागे सूर्यसुतावधि॥३॥
तत्त्रियोजनविस्तारमष्टयोजनदीर्घकम्।
क्षेत्रं परमकं ख्यातं दर्शनादेव कामदम्॥४॥

द्रोणाश्रम की स्थिति का वर्णन

नारद ने कहा

आपने पूर्व में पापों का विनाश करने वाले द्रोणाश्रम का कथन किया था, वहाँ अन्य कौन-कौन क्षेत्र हैं, वहाँ की यात्रा करने से किस पुण्य की प्राप्ति होती है?।।१।।

हे शिवनन्दन! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त आप हमसे संक्षेप में वर्णन करें। साथ ही यह भी बतलायें कि इस क्षेत्र में पापों को नष्ट करने वाले कर्मों का आचरण किस प्रकार करना चाहिये।।२।।

स्कन्द जी ने कहा

हे महाभाग! सुनो, मैं द्रोणक्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन करता हूँ। मायाक्षेत्र से पश्चिम की ओर सूर्यपुत्री यमुना तक इस क्षेत्र की सीमा है।।३।।

तीन योजन चौड़ा और आठ योजन लम्बा यह क्षेत्र है, उसके दर्शन करने से ही कामनाओं की सिद्धि होती है।।४।।

द्रोणो नाम महाभाग ब्रह्मर्षिः प्रियदर्शनः।
तेपे पुरा तपो यत्र प्राप्तवाँश्चात्र शिक्षणम्॥५॥

नारद उवाच

कथं द्रोणो महाभाग तप्तवाँश्च पुरा तपः।
प्राप्ता कथं धनुर्विद्या विस्तरेण वदस्व मे॥६॥

स्कन्द उवाच

श्रृणु देव पुरावृत्तं द्रोणस्य परमं तपः।
महादेवो यथा तुष्टो दत्तवान् सर्वशास्त्रकम्॥७॥
देवधाराचले विप्र द्रोणो नाम महामतिः[१]।
तपश्चकार परमं शिवमाराधयन् मुने॥८॥
शिवमन्त्रजपो विप्रोऽभूद्वै द्वादशवत्सरम्।
निराहारो महातेजा जितसर्वपरिग्रहः॥९॥

हे महाभाग! द्रोण नाम वाले सुन्दर प्रियदर्शन ब्रह्मर्षि ने प्राचीनकाल में यहीं पर तप का आचरण किया था और उन्होंने यहीं पर शिक्षा भी प्राप्त की थी।।५।।

नारद जी ने कहा

हे महाभाग! प्राचीनकाल में द्रोण ने किस प्रकार तप का आचरण किया था और उन्हें किस प्रकार धनुर्विद्या की प्राप्ति हुई थी, यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन करें।।६।।

स्कन्द जी ने कहा

हे भूदेव! परम तपस्वी द्रोणाचार्य के पूर्वकालिक वृत्तान्त का श्रवण करो। जिस प्रकार उनके तप से सन्तुष्ट भगवान् शिव ने उन्हें सम्पूर्ण शास्त्रों को प्रदान किया था।।७।।

हे मुनि! महामतिमान् द्रोणाचार्य ने देवधारापर्वत पर शिव की आराधना करते हुए तप का अनुष्ठान किया था।।८।।

उस ब्राह्मण ने बारह वर्षपर्यन्त भगवान् शिव के मन्त्र का जप किया था। उस समय उस महातेजस्वी ने निराहार रहकर समस्त परिग्रह का परित्याग कर दिया था।।९।।

---

१. महामुनिरिति ग.।

जितेन्द्रियो जितारातिः शिवसंन्यस्तमानसः।
दृष्ट्वा तपो महादेवो द्रोणस्यैव महात्मनः॥१०॥
विप्ररूपं समाधाय यत्र द्रोणः समाययौ।
देवधारे गिरौ रम्ये देवजन्या नदी यतः॥११॥
द्रोणं प्रोवाच विप्रात्मा देवदेवः सनातनः।
किं कार्यं ते महाभाग कायक्लेशेन पर्वते॥१२॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा द्रोणो नाम महामुनिः।
बुद्ध्वा ब्राह्मणवेषस्थं भगवन्तं महेश्वरम्॥१३॥
उवाच भक्तिनम्रोऽयं स्तोत्रेण सहसा पदोः।
पतित्वाऽऽनन्दपूर्णाङ्गो द्रोणो नाम महातपाः॥१४॥

द्रोण उवाच

निराकाराय शुद्धाय निर्द्वन्द्वाय दयावते।
निरीहाय समीहाय निर्गुणाय गुणाकृते॥१५॥

उन्होंने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर काम, क्रोध आदि सभी शत्रुओं को भी जीत लिया था, उस समय वे शिव में मन लगाकर ध्यानमग्न स्थित थे। महात्मा द्रोणाचार्य के तप को भगवान् महादेव ने देखा।।१०।।

जहाँ द्रोणाचार्य तप कर रहे थे, विप्र का रूप धारण कर भगवान् शङ्कर उनके समीप आये। उस देवाधार नामक मनोरम पर्वत पर देवजन्या नामक नदी भी स्थित है।।११।।

वहाँ सनातन देवाधिदेव विप्ररूप भगवान् शङ्कर ने द्रोणाचार्य से कहा। हे महाभाग! इस पर्वत पर आपके शरीर को कष्ट देने का क्या प्रयोजन है।।१२।।

इस प्रकार के वचन को सुनकर महामतिमान् द्रोणाचार्य ने यह समझ लिया कि भगवान् महेश्वर ही ब्राह्मण वेष में यहाँ उपस्थित हैं।।१३।।

भक्तिपूर्वक नम्र होकर स्तुति करते हुए सहसा उनके पैरों पर गिरकर महातपस्वी द्रोणाचार्य ने कहा, उस समय उनका सम्पूर्ण अङ्ग आनन्द में मग्न था।।१४।।

द्रोणाचार्य ने कहा

जो शिव निराकार, शुद्ध, द्वन्द्वरहित, दयावान्, ईहा से रहित, ईहा से युक्त निर्गुण और गुणयुक्त हैं, उन्हें नमस्कार है।।१५।।

अरूपाय विरूपाय स्वरूपाय परात्मने।
जलाय मलहीनाय सम्मोहायाऽवनीजिते॥१६॥
निर्वासनाय मेध्याय निरध्यासाय ते नमः।
व्यापिने व्यपदेश्याय वन्दिने बन्धनन्दिने॥१७॥
नन्दानन्दस्वरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मपूजिते।
ज्योतिरूपाय भूपाय मनोऽमेयाय ते नमः॥१८॥
भव्याय भव्यरूपाय भव्यदाय भवासिने।
भवद्भूतभविष्याय कालाय विकरालिने॥१९॥
नीलकण्ठाय रुद्राय पशूनां पतये नमः।
निर्मर्यादाय वर्याय गरिष्ठाय भवादये॥२०॥
नमः स्वातन्त्र्यरूपाय परतन्त्राय मन्त्रिणे।
नेदिष्ठाय दविष्ठाय श्रेष्ठाय यदवे नमः॥२१॥

रूप से रहित, विरूप, स्वरूप, परात्मा, जलरूप, मलहीन, मोह से युक्त तथा मोह को जीतने वाले शङ्कर को नमस्कार है।।१६।।

जो वासनाओं से रहित, पूजनीय, अध्यास से रहित हैं, ऐसे शिव के लिए नमस्कार है। सर्वव्यापक, व्यपदेश्य, वन्दना करने योग्य, बन्ध में पड़े मनुष्यों को प्रसन्न करने वाले शिव को नमस्कार है।।१७।।

नन्द और आनन्द स्वरूप, ब्रह्मरूप, ब्राह्मणों से पूजित, प्रकाशस्वरूप, भूप तथा मन से अमेय शङ्कर को नमस्कार है।।१८।।

जो भव्य हैं तथा भव्य रूप धारण करने वाले हैं, जो भव्यता को प्रदान करते हैं, जो संसार के बन्धन को नष्ट करने वाले हैं, वर्तमान, भूत और भविष्यत् कालरूप, विकराल स्वरूप वाले शिव को नमस्कार है।।१९।।

नीले कण्ठ वाले, रुद्र तथा पशुओं के पति, किसी प्रकार की मर्यादा में न बँधने वाले, श्रेष्ठ, गरिष्ठ, संसार के आदि कारण शङ्कर को नमस्कार है।।२०।।

स्वतन्त्र रूप होते हुए भी भक्तों के अधीन रहने वाले, सबको मन्त्रणा देने वाले, समीप में रहने वाले, दूर रहने वाले, श्रेष्ठ, यदुवंशरूप शिव को नमस्कार है।।२१।।

निरञ्जनाय कूप्याय वाट्याय च नमो नमः।
सौरये शूरसंस्थाय वैण्वाय वेणुनादिने॥२२॥
धनिने धनरूपाय स्वरूपायासुरारये।
बलाय बलदेवाय वामदेवाय ते नमः॥२३॥
भीमाय भीमकान्ताय त्र्यम्बकाय कपालिने।
त्रिलोचनाय देवाय देवानां पतये नमः॥२४॥
उमेशाय महेशाय गिरीशाय विनाशिने।
गिरिव्रजैकरूपाय केदारेशाय ते नमः॥२५॥
एकलिङ्गाय लिङ्गाय नमो मीनाङ्कहारिणे।
सतीश्वराय डिम्भाय शङ्करायाघनाशिने॥२६॥
मृडाय शितिकण्ठाय तथोग्राय च ते नमः॥२७॥

निरञ्जन, कुओं तथा बावलियों में रहने वाले, सौरिस्वरूप, शूर देश में स्थित रहने वाले, वेणुरूप, वेणु को बजाने वाले शिव को नमस्कार है।।२२।।

धनी, धनस्वरूप, अपने स्वरूप में रहने वाले, असुरों के शत्रु, बलस्वरूप, बलदेवस्वरूप एवं वामदेव भगवान् शङ्कर को नमस्कार है।।२३।।

भीमस्वरूप, भयङ्कर कान्ति वाले, तीन नेत्रों वाले, कपाल को धारण करने वाले, त्रिलोचन, देव एवं देवों के स्वामी शिव को नमस्कार है।।२४।।

उमा के स्वामी, महेश, गिरीश, मद-मात्सर्य आदि दोषों का विनाश करने वाले, गिरि एवं वज्र के रूप वाले, केदारेश्वर भगवान् शिव को नमस्कार है।।२५।।

एकलिङ्ग रूप, लिङ्गस्वरूप, मीन से चिह्नित वामदेव का विनाश करने वाले, सती के ईश्वर, डिम्भरूप, सबका कल्याण करने वाले, पापों का विनाश करने वाले शिव को नमस्कार है।।२६।।

सबके आदि कारण, नीले कण्ठ वाले तथा उग्र स्वरूप वाले शिव को नमस्कार है।।२७।।

स्कन्द उवाच

य एतैर्नामभिः स्तौति भक्त्या विप्र महेश्वरम्।
इह लोके परान् भोगान् भुक्त्वा व्रजति धूर्जटिम्॥२८॥
इदं स्तोत्रमधीयानो वने चौरादिसङ्कुले।
न भयं शश्वदाप्नोति ग्रहपीडाश्च दारुणाः॥२९॥
इति स्तुतो महेशानो दर्शयित्वा स्वकं वपुः।
वरं वरय चोवाच भक्तिनम्रं मुनीश्वरम्॥३०॥

श्रीशिव उवाच

सन्तुष्टोऽस्मि भरद्वाज स्तोत्रेण तपसा तव।
यद्यदिच्छसि तद् ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि तवानघ॥३१॥
इदं क्षेत्रं मदीयं च मानं षोडशयोजनम्।
अत्र यत्क्रियते कर्म तत्कोटिगुणितं भवेत्॥३२॥

स्कन्द ने कहा

हे विप्र! जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन नामों से भगवान् महेश्वर की स्तुति करता है, वह इस लोक में श्रेष्ठ भोगों का उपभोग करके धूर्जटी भगवान् शिव के धाम को चला जाता है।।२८।।

चोर आदि से घिरे हुए वन में भी इस स्तोत्र का पाठ करने वाला मनुष्य कभी भी भयभीत नहीं होता है। उसे ग्रहजनित दारुण पीड़ा भी नहीं होती है।।२९।।

द्रोणाचार्य के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाते हुए महेशान भगवान् शिव ने अपना स्वरूप उनको दिखला कर भक्ति से नम्र, मुनीश्वर से कहा—तुम वर माँगो।।३०।।

श्रीशिव ने कहा

हे भरद्वाज! तुम्हारे इस स्तोत्र एवं तुम्हारे तप से मैं सन्तुष्ट हूँ। हे निष्पाप! तुम्हारी जो इच्छा हो, उसे कहो, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ।।३१।।

हमारे इस क्षेत्र का प्रमाण सोलह योजन है, इसमें जो कुछ भी कर्म किया जाता है, उसका करोड़ गुना अधिक फल प्राप्त होता है।।३२।।

त्वया यत्तपसा विप्र स्तोत्रेणानेन तोषितः।
वरं ददामि सर्वस्वं यत्ते मनसि वर्त्तते॥३३॥

द्रोण उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽस्मि यस्य त्वं दर्शनं गतः।
तत्तस्मात्पूर्तकामोऽहं न तृष्णा मयि वर्त्तते॥३४॥
ददासि चेद्वरं मह्यं धनुर्वेदं प्रशंस मे।
गमनं च तथा ह्यन्तेऽनन्ते रूपविवर्जिते॥३५॥

ईश्वर उवाच

धनुर्वेदं गृहाण त्वं यथावत्सार्ववर्णिकम्।
इदं च परमं स्थानं त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति॥३६॥
देवधाराचले मां यो ध्यायिष्यति महेश्वरम्।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम्॥३७॥

हे विप्र! तुमने अपनी तपस्या से एवं हमारी स्तुति करके हमें सन्तुष्ट किया है, इसलिए तुम्हारे मन में जो कुछ इच्छा है, वह सब तुम्हें वर के रूप दे सकता हूँ।।३३।।

द्रोणाचार्य ने कहा

हे देव! आपके दर्शन से मैं धन्य हो गया हूँ, मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण हो गयी हैं, मुझे अब किसी बात की तृष्णा नहीं है।।३४।।

इसके बाद भी यदि आप मुझे वर प्रदान करना ही चाहते हैं, तो मुझे धनुर्विद्या का उपदेश करें, साथ ही अन्त में रूपरहित अनन्त देव में लीन होने की प्रक्रिया भी बतलायें।।३५।।

ईश्वर ने कहा

तुम सब वर्णों के ग्रहण करने योग्य धनुर्वेद को ग्रहण करो। यह परम श्रेष्ठ स्थान भी तुम्हारे ही नाम से विख्यात होगा।।३६।।

जो व्यक्ति इस देवधाराचल पर मुझ महेश्वर का ध्यान करेगा, निःसन्देह मैं उसकी समस्त बाधाओं का विनाश कर दूँगा।।३७।।

साङ्गं चैव धनुर्वेदं गृहाण वरमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा योत्स्यसे विप्र सर्वैरपि सुरासुरैः॥३८॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ सर्वं[१] धनुर्वेदं द्विजातये।
यथावत्सर्वमन्त्रैश्च सहितं सार्ववर्णिकम्॥३९॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे द्रोणतीर्थमाहात्म्ये द्रोणवरप्रदानं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२५।।

हे द्विजश्रेष्ठ! तुम अङ्गों सहित श्रेष्ठ धनुर्वेद को ग्रहण करो। इस विद्या को जानकर तुम देवता और दानवों से भी युद्ध कर सकोगे।।३८।।

स्कन्द जी ने कहा

इस प्रकार कहकर भगवान् शिव ने उस ब्राह्मण द्रोणाचार्य को सभी वर्णों के लिए उपादेय, सम्पूर्ण मन्त्रों के साथ सारे धनुर्वेद को यथावत् प्रदान कर दिया।।३९।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ पच्चीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१२५।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत- ११९६+३९=१२३५]



---

१. सर्वे इति ख.।

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

साङ्गधनुर्वेदशस्त्रास्त्रविद्यानिरूपणम्

नारद उवाच

कथं धनुर्वेदमिमं परमात्मा सदाशिवः।
प्रोक्तवान् देवदेवेशो द्रोणाय दुरितापहम्॥१॥

स्कन्द उवाच

धनुर्वेदं प्रवक्ष्यामि सर्वपापभयापहम्।
यस्य श्रवणमात्रेण धनुर्वेदं चतुर्मुखः॥२॥
चतुष्पादो धनुर्वेदो विस्तारस्तस्य नैकधा।
सङ्क्षेपतः शृणु द्रोण विस्तारात्केन दृश्यते॥३॥
रथं चैव तथा नागं तुरङ्गं योधमुख्यकान्।
समाश्रित्य चतुष्पादः स एव च धनुष्क्रमः॥४॥

अङ्गों सहित धनुर्वेद की शस्त्रास्त्र-विद्या का निरूपण

नारद ने कहा

परमात्मा सदाशिव ने पापों का विनाश करने वाले इस धनुर्वेद को किस प्रकार द्रोणाचार्य को प्रदान किया था।।१।।

स्कन्द जी ने कहा

अब मैं समस्त पापों तथा भय का विनाश करने वाले धनुर्वेद का वर्णन करता हूँ, जिसको श्रवण करने से ही चार मुख वाले ब्रह्मा जी ने धनुर्वेद को प्राप्त कर लिया था।।२।।

यद्यपि धनुर्वेद के चार पाद हैं, तथापि वह अनेक प्रकार से विस्तृत है। हे द्रोण! संक्षेप में उसका वर्णन सुनो, विस्तार तो देखा ही किसने है।।३।।

मुख्य योधा, रथ, हाथी तथा अश्व के आश्रय से अस्त्र का प्रक्षेप किया जाता है, यही चार पाद रूप धनुष का क्रम है।।४।।

प्रत्येकं पञ्चधा तद्धि कथ्यते स्थानभेदतः।
प्रथमं मन्त्रमुक्तं तु करमुक्तं द्वितीयकम्॥५॥
मुक्तसन्धारितं तद्वदमुक्तं च चतुर्थकम्।
बाहुयुद्धं तथा ख्यातं पञ्चमं सर्वसम्मतम्॥६॥
तच्छस्त्रास्त्रोक्तसम्पत्त्या द्विविधं तु ततः स्मृतम्।
पुनर्द्वैविध्यकं तस्य ऋजुमायाविभेदतः॥७॥
क्षेपणीयादिमन्त्रोत्थं मुक्तं चैतत्प्रकीर्त्तितम्।
शक्तितोमरपाषाणाः पाणिमुक्ताः[१] प्रकीर्तिताः॥८॥
मुक्तसन्धारितं तद्वत्प्रासाराद्यपि यद् भवेत्।
खड्गादिकं तथाऽमुक्तं बाहुयुद्धं गतायुषम्[२]॥९॥
अङ्गुष्ठगुल्फपार्ष्ण्यङ्घ्रिश्लिष्टाः स्युः संहता यदि।
स्थानं समपदं दृष्टं पृथग्लक्षणतो मुने॥१०॥

स्थान के भेद से प्रत्येक अङ्ग पाँच प्रकार का कहा गया है—प्रथम मन्त्रमुक्त, द्वितीय करमुक्त है।।५।।

तीसरा मुक्त-सन्धारित, चतुर्थ अमुक्त तथा पञ्चम सर्वसम्मत बाहुयुद्ध माना गया है।।६।।

यह भी शस्त्र और अस्त्र के सम्पात के कारण दो प्रकार का माना गया है। पुनः ऋजु (सरल, सामान्य) एवं माया के भेद से इनके दो भेद हो जाते हैं।।७।।

क्षेपणीय आदि मन्त्रों के जप के साथ जो अस्त्र का प्रहार किया जाता है, उसे मन्त्रमुक्त कहते हैं। हाथों से फेंके जाने वाले शक्ति, तोमर, पाषाण के प्रहार को करमुक्त कहते हैं।।८।।

जिन आयुधों को फैलाकर फेंका जाता है और पुनः समेट लिया जाता है, उसे मुक्तसन्धारित कहते हैं, जैसे पाश, कोड़ा आदि। खड्ग आदि अमुक्त कहे जाते हैं। भुजाओं से युद्ध करके शत्रु को मार दिया जाय, तो उसे बाहुयुद्ध कहा गया है।।९।।

हे मुनि! यदि अङ्गुष्ठ, गुल्फ, एड़ी, पैर ये सब सटकर मिले हों, पृथक् लक्षणों के अनुसार इस प्रकार की स्थिति को 'समपद' कहते हैं।।१०।।

---

१. पाणियुक्तेति क.। २. गतायुधमिति ख.।

बाह्याङ्गुलिस्थितौ पादौ स्तब्धजानुतलावुभौ।
विशिखस्य तथा स्थानं सार्द्धहस्तान्तरं स्मृतम्॥११॥
मरालालिसमे यत्र लक्ष्यते विप्र जानुनी।
द्विहस्तपरिमाणं च मण्डलं परिकीर्त्तितम्॥१२॥
हलाकृतिसमं यद्वत्तद्वज्जानूरुदक्षतः[१]।
तदालीढं परिख्यातं सार्द्धद्वयकरोन्मितम्॥१३॥
विपरीतमिदं ख्यातं प्रत्यालीढमिति स्मृतम्।
वामस्तिर्यग्भवेद्यत्र दक्षिणश्चैव सङ्गतः॥१४॥
पार्ष्णिस्थितौ तथा गुल्फौ तथा पञ्चाङ्गुलान्तरौ।
जायते च महाभाग स्थानं तद् द्वादशाङ्गुलम्॥१५॥
प्रसारितं यत्र जानु दक्षिणमृजु[२]वामकम्।
दक्षिणं जानु कुब्जं वा पादौ दण्डायतौ भवेत्॥
विकटं च तथा प्रोक्तं द्विकरान्तरमायतम्॥१६॥

दोनों पैरों की अङ्गुलियाँ बाहर की ओर स्थित हों, तथा दोनों घुटने भूमि पर रखे हों, इस स्थिति में बाणों के छोड़ने की स्थिति बनती है, तो उसे अर्धहस्तान्तर कहते हैं।।११।।

हे विप्र! जब दोनों घुटनों को हंसपंक्ति के समान बनाकर दो हाथ के बराबर मण्डल बनाया जाय, तो इसे द्विहस्तिपरिमाणमण्डल कहते हैं।।१२।।

जहाँ जानु हल की आकृति में स्थित रहता है, उस समय उसका परिमाण ढाई हाथ का होता है, इस मण्डल को आलीढ़ कहते हैं।।१३।।

यदि इसके विपरीत स्थिति हो, दाँया घुटना भूमि पर रखा हो तथा बाँया घुटना तिरछा हल की आकृति में हो, तो इसको प्रत्यालीढ कहते हैं।।१४।।

हे महाभाग! जब दोनों गुल्फ (टखने) पार्ष्णि (एड़ी) पर पाँच-पाँच अङ्गुल का अन्तर देकर टिकाये जाँय, तब उस स्थिति को द्वादशाङ्गुल कहते हैं।।१५।।

जहाँ जानु को बिल्कुल सीधा फैला दिया जाय और दक्षिण जानु कुछ एक टेढ़ा हो अथवा दोनों पैर दण्ड के समान किये जाँय, तो ऐसे दो हाथ की आयताकार स्थिति को विकट कहते हैं।।१६।।

---

१. जानूकदक्षत इति ग.। २. दक्षिणश्चर्जेति क.।

उत्तानौ चरणौ पूर्वं[1] जानुनी द्विगुणं तथा।
इदं सम्पुटकं नाम विधिस्ते परिकीर्त्तितः॥१७॥
समदण्डायतौ पादौ किञ्चिच्चैव निवर्त्तितौ।
विस्तारात्षोडशाङ्गुल्यमुक्तं न्यासं मुनीश्वर॥१८॥
स्वस्तिकाकृतिनमनं कुर्याद्देवं च संस्मरन्।
धनुरुत्थाप्य सव्येनाऽपसव्येन च सायकम्॥१९॥
उत्थितो वा स्थितो वाऽपि वैशाखे गुणयोगतः।
धनुषोऽधः कोटिरपि फलं स्थाने च पत्रिणः॥२०॥
पृथिव्यां स्थापयित्वा तु तोलयित्वा प्रियं धनुः।
कुब्जाभ्यामथ बाहुभ्यां प्रकोष्ठाभ्यां तथैव च॥२१॥
यस्य बाणधनुः श्रेष्ठे मुखदेशे च पत्रिणः।
विन्यासो धनुषश्चैव द्वादशाङ्गुलमन्तरम्॥२२॥

यदि पैरों को लम्बायमान कर जानुओं को द्विगुणित किया जाय, तो इस स्थिति को सम्पुटक नामक आसन कहते हैं, हमने तुम्हारे प्रति इस विधि का वर्णन किया है।।१७।।

हे मुनीश्वर! यदि दोनों पैरों को दण्ड के आकार में सम सीधा करने के अनन्तर कुछ मोड़ लिया जाय और इनमें सोलह अङ्गुल के विस्तार का अन्तर रखा जाय, तो इस स्थिति को षोडशाङ्गुल मुक्तक कहते हैं।।१८।।

परमेश्वर शिव का स्मरण करता हुआ युद्ध करने वाला बायें हाथ में धनुष और दाहिने हाथ में बाण को उठाकर यदि तिरछी रीति से खड़ा होता है, तो उसे स्वस्तिक आसनबन्धन कहते हैं।।१९।।

खड़े होकर अथवा बैठकर धनुष पर डोरी चढ़ाकर बाण की नोक को लक्ष्य पर साधकर एक पैर पीछे तना हुआ, दूसरा पैर कुछ आगे झुका हो, उसे वैशाखी पैंतरा कहा गया है।।२०।।

धनुष को भूमि के ऊपर स्थापित कर किञ्चिन्मात्र मुड़ी हुई दोनों भुजाओं से धनुष का उत्तोलन कर सन्तुलन बनाये।।२१।।

योद्धा का बाण और धनुष श्रेष्ठ होना चाहिए। बाण के मुखभाग पर पङ्ख लगा होना चाहिए। बाण और धनुष के विन्यास में बारह अङ्गुल का अन्तर होना चाहिए।।२२।।

१. पूर्वे इति ग.।

गुणावशिष्टः कर्तव्यो नातिहीनो न चाधिकः।
धनुर्निवेश्य नाभ्यां च कण्ठे वै सशरं करम्॥२३॥
श्रुतिनेत्रान्तरेणाऽऽशु हस्तं वर्त्तिनमुत्क्षिपेत्।
पूर्वेण मुष्टिना ग्राह्यं स्तनाग्रे दक्षिणे शरः॥२४॥
नमनं चैव कृत्वा च पूर्वं चैव प्रसारिते।
नाभ्यन्तरा नैव बाह्या[1] नोर्ध्वाकारा धना तथा॥२५॥
न वक्रा न तथोत्ताना नातिवेष्टनशीलिता।
समा स्थैर्यगुणोपेता प्रोक्ता दण्ड इवायता॥२६॥
लक्षञ्च छादयित्वा वै मुष्टिना दृढकृष्टिना।
ऊरू जान्वन्विते यत्नात्त्रिकोणावनतः[2] स्थितः॥२७॥
स्त्रस्ताङ्गो निश्चलग्रीवो मयूराञ्चितमस्तकः।
ललाटनामा वक्राङ्गः कर्पूरश्च समं भवेत्॥२८॥

धनुष को गुण (डोरी) से संयुक्त करना चाहिए। धनुष न तो अधिक छोटा हो और न अधिक बड़ा हो। नाभि में धनुष को और कण्ठ में बाणसहित हाथ को निविष्ट करना चाहिये।।२३।।

कानपर्यन्त आकर्षण कर नेत्रों की दृष्टि के मध्य में टिका कर उसका उत्क्षेपण करना चाहिए। दाहिने हाथ से बाण का आकर्षण कर स्तनपर्यन्त लावे।।२४।।

पहले से फैलाये हुए धनुष को किञ्चिन्मात्र नमन करके नाभि पर टिका लेना चाहिए। नाभि के अन्तर को बाहर न कर धनाकार रखे।।२५।।

यह धनुष न तो तिरछा हो, न ऊपर उठा हो और न बहुत अधिक मोड़ा गया हो। यह दण्ड के समान सीधा फैला हुआ सम और स्थिर होना चाहिए।।२६।।

दृढ़ मुष्टि के द्वारा धनुष के मध्यभाग को आच्छादनपूर्वक पकड़कर ऊरु और जानु को यत्नपूर्वक संगठित कर त्रिकोण हो स्थित रहे।।२७।।

उस समय अङ्ग ढीले हों, ग्रीवा स्थिर हो, मस्तक मयूर के समान ऊँचा उठा हो, अङ्ग वक्र हो, इसे ललाट नामक आसन कहते हैं। कर्पूर आसन भी इसी के समान होता है।।२८।।

---

१. नार्द्धकारो इति क.। २. विनतः इति क.।

अन्तरं त्र्यङ्गुलं प्रोक्तं विकृष्यांशं करस्य च।
प्रथमं त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं द्वितीयं द्व्यङ्गुलं तथा॥२९॥
एकाङ्गुलं तृतीयं तु व्यायतं ज्यायतं तथा।
सङ्गृह्य सायकं पुङ्खात्तर्जन्याङ्गुष्ठकेन च॥३०॥
अनामया पुनर्गृह्य तथा मध्यमयापि[1] च।
तावदाकर्षयेत्पूर्णं यावद् बाणः स पूरितः॥३१॥
एवं विधिमुपक्रम्य क्षेप्तव्यो विधिवत्खगः।
दृष्टिमुष्टिकृतं लक्ष्यं भिन्द्याद् बाणेन सत्वरम्॥३२॥
मुक्त्वा तु पश्चिमं हस्तं प्रक्षिपेद्वेगतः स्थितः।
एतत्प्रेभदकं प्रोक्तं जानीहि द्विजपुङ्गव॥३३॥
कर्पूरात्तदधः कार्यं धनुषाकृष्य तं शरम्।
ऊर्ध्वं विमुक्तके कार्यं पक्षश्लिष्टं तु मध्यमम्॥३४॥
ज्येष्ठं प्रकृष्टं कर्तव्यं विज्ञेयं द्विजपुङ्गव।
श्रेष्ठो बाणो द्विषण्मुष्टिरेकहीनस्तु मध्यमः॥३५॥

आकर्षण करने पर तीन अङ्गुल का अन्तर होना चाहिए, प्रथम दो अङ्गुल और द्वितीय तीन अङ्गुल प्रमाण का जानना चाहिए।।२९।।

इसके बाद धनुष की डोरी को तीसरे एक अङ्गुल तक खींचा जाता है। तर्जनी और अँगूठे से बाण को पङ्ख के प्रदेश से खींचना चाहिए।।३०।।

पुनः अनामिका और मध्यमा अंगुली से उसे ग्रहण कर तब तक आकर्षण करना चाहिए, जब तक वह बाण पूरा आकृष्ट न हो जाय।।३१।।

इस विधि से उपक्रम करके जो बाण प्रक्षेप किया जाता है। वह यदि देखकर निशाना लगाया जाय, तो अवश्य ही लक्ष्य का भेदन करता है।।३२।।

हे द्विजश्रेष्ठ! बाण प्रक्षेप के बाद दूसरे हाथ को पीछे स्थित कर लिया जाता है, इस स्थिति को प्रभेदक नाम से जाना जाता है।।३३।।

जिसमें धनुष को किञ्चित् नीचा करके उसके बाण का ऊपर को परित्याग किया जाय, उसे मध्यम प्रक्षेप कहते हैं।।३४।।

हे द्विजश्रेष्ठ! सीधे हाथ का आकर्षण करना चाहिए। बाण के तीन भेद होते हैं। आठ, नौ और दस मुष्टि का प्रमाण। उसमें आठ मुष्टि वाला बाण श्रेष्ठ और नौ मुष्टि वाला मध्यम कहा गया है।।३५।।

---

१. मध्यमयातीति ख.।

दशमुष्टिर्विकृष्टस्तु त्रयो भेदाः शरस्य वै।
त्रिविधं कार्मुकं प्रोक्तं चतुर्हस्तं वरं स्मृतम्॥३६॥
सार्द्धत्रयान्मध्यमं तु त्रिहस्तं तु कनिष्ठकम्।
एवमेव रथेऽश्वे च गजे चैव क्रमेलके॥३७॥
पत्तौ च द्विज तत्प्रोक्तं संस्कृतं च ततो भवेत्।
द्विजः सूर्याय तं कृत्वा ततो मासैः शतायुषः॥३८॥
मुनिधौतं धनुः कृत्वा यज्ञभूमिविधानवित्।
समागृह्य ततो बाणं दंशितुं सुसमाहितः॥३९॥
तृणमासाद्य बध्नीत दृढां कक्षां च दक्षिणाम्।
चापं विलक्षणमपि तत्र देवं तु संस्थितम्॥४०॥
ततः समुद्धरेद् बाणं तूणाद्दक्षिणपाणिना।
तेनैव सहितं मध्यशरं सङ्गृह्य धारयेत्॥४१॥

दस मुष्टि वाला बाण विकृष्ट (निकृष्ट) होता है। इस प्रकार बाण के तीन भेद कहे गये हैं। इसी प्रकार धनुष भी तीन प्रकार का माना गया है। उनमें चार हाथ का धनुष श्रेष्ठ कहा जाता है।।३६।।

साढ़े तीन हाथ का धनुष मध्यम और तीन हाथ वाला धनुष निकृष्ट होता है। इसी प्रकार रथ, अश्व, हस्ती और ऊँट में भी समझना चाहिए।।३७।।

हे द्विज! पदातियों में भी यही भेद वर्णन किया गया है। ऐसा होने से ही इसका संस्कार ठीक होता है। यदि ब्राह्मण सूर्य को नमस्कार कर कुछ मासपर्यन्त अभ्यास करता है, तो कुछ ही महीने में ऐसी सेना शतायु होती है।।३८।।

विधि के ज्ञाता को चाहिए कि यज्ञभूमि के विधान से धनुष को अपामार्ग से प्रक्षालन कर एकाग्र मन से बाण को ग्रहण करे।।३९।।

पुनः रज्जु लेकर दक्षिणावर्त दृढ़कक्ष बाँधना चाहिए। तदनन्तर देवता की स्थापना करके विलक्षण धनुष को ग्रहण करना चाहिए।।४०।।

इसके बाद दक्षिण हाथ से तरकस से बाण को निकाले और धनुष के मध्य में उसे स्थापित करना चाहिए।।४१।।

सम्पाद्य[१] सिंहकल्केन पुङ्खेनापि समे दृढम्।
वामकक्षोपरिस्थं च फलं वामस्य धारयेत्॥४२॥
वल्लां मध्यमया तत्र वामाङ्गुल्याऽवधारयेत्।
लक्ष्यं चैव तथा कृत्वा मुष्टिना च विधानवित्॥४३॥
दक्षिणे गात्रभागे तु कृत्वा वल्लां विमोक्षयेत्।
ललाटपुटसंस्थानं दण्डलक्षे निवेशयेत्॥४४॥
आकृष्य ताडयेत्तत्र चन्द्रकं षोडशाङ्गुलम्।
मुक्त्वा बाणं ततः पश्चाद्वल्लां चित्या तदा तया॥४५॥
निगृह्णीयान्मध्यमया ततोऽङ्गुल्या पुनः पुनः।
अक्षिलक्ष्यं क्षिपेद् बाणं चतुरस्त्रं च दक्षिणम्॥४६॥
चतुरस्त्रं गतं वेध्यमभिसंवादितः स्थितम्।
तस्मादनन्तरं तीक्ष्णं परावृत्तगतं च यत्॥
निम्नमुन्नतवेध्यं च ज्याभ्यासात्क्षिप्रकं नरः॥४७॥

सिंहोड़ के कल्क से उस बाण को पुंखपर्यन्त सम्पूर्ण रूप से संसिक्त कर बायीं कोख के ऊपर फलक को दृढ़ता से रखकर धारण करना चाहिए।।४२।।

शस्त्र-विधि के ज्ञाता शिक्षार्थी बाँयें हाथ की मध्यमा अङ्गुली से और मुष्टि से डोरी को पकड़कर लक्ष्य का अवधारण करे।।४३।।

दक्षिण भाग में स्थापित कर प्रक्षेप करना चाहिए, अपनी दृष्टि को ठीक निशाने पर स्थिर करना चाहिए।।४४।।

धनुष की डोरी को सोलह अङ्गुल तक आकृष्ट कर जब धनुष चन्द्राकार बन जाय उस समय बाण को छोड़ना चाहिए।।४५।।

तदनन्तर मध्यमा अङ्गुली से डोरी को बार-बार पकड़ना चाहिए। दाहिनी ओर चौकोर लक्ष्य बनाकर आँख से सिद्ध करके बाण को छोड़ना चाहिए।।४६।।

यथोक्त विधि से स्थित होकर चतुरस्र स्थिति में बाण से वेधन करना चाहिए। इसके बाद तेजी से घूमकर नीचा-ऊँचा करके वेधन करना चाहिए।।४७।।

---

१. सपीड्येति ख.।

मध्यस्थाने तथैतेषु संन्यस्य[१] पुटकाद्धनुः।
हस्तावामशतैश्चित्रैस्तर्जयेदुत्तरैरपि॥४८॥
अस्मिन् वेध्यगते विप्र द्वेवेध्ये[२] दृढसंज्ञके।
द्वेविध्ये दुष्करे विप्र तथा चित्रकदुष्करे॥४९॥
अन्तरस्त्रं च तीक्ष्णं च दृढवेध्यं प्रकीर्त्तितम्।
अथाऽस्त्राणि प्रवक्ष्यामि सावधानोऽवधारय॥५०॥
ब्रह्मास्त्रं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं ब्रह्मदण्डकम्।
ब्रह्मशिरस्तृतीयं च तुर्यं पाशुपतं मतम्[३]॥५१॥
वायव्यं पञ्चमं ज्ञेयमाग्नेयं षष्ठकं स्मृतम्।
नारसिंहं सप्तमं च तेषां भेदा ह्यनन्तकाः॥५२॥
ससंहारं सविक्षेपं शृणु द्रोण यथातथम्।
वेदमात्रा सर्वशास्त्रं गृह्यते क्षिप्यतेऽथ वा॥५३॥

पुनः धनुष को मध्य स्थान में स्थापित कर वाम हस्त के आधार से उत्तरोत्तर अभ्यास करना चाहिए।।४८।।

हे विप्र! इस विधि से इस वेधगति में दो संज्ञा हो जाती है। एक दुष्कर और दूसरी चित्रदुष्कर।।४९।।

इसके भी तीन प्रकार कहे गये हैं—अन्तरस्त्र, तीक्ष्ण और दृढ़वेध। अब मैं दिव्य अस्त्रों के विषय में कह रहा हूँ, सावधान होकर श्रवण करो।।५०।।

दिव्य अस्त्रों में सर्वप्रथम ब्रह्मास्त्र कहा गया है, ब्रह्मदण्ड द्वितीय दिव्यास्त्र है। तीसरा ब्रह्मशिर और चतुर्थ पाशुपतास्त्र माना गया है।।५१।।

पाँचवा वायव्य, छठाँ आग्नेय और सप्तम नारसिंह अस्त्र है। ये सात दिव्य अस्त्र बताये गये हैं। इनके भी अनन्त भेद होते हैं।।५२।।

हे द्रोण! अब इनका संहार (लौटा लेना) और विक्षेप (प्रक्षेप करना) सहित इनका यथातथ्य वर्णन सुनो। वेदमाता गायत्री के द्वारा ही सब अस्त्र-शस्त्र ग्रहण किये जाते हैं और उनका प्रक्षेप किया जाता है।।५३।।

---

१. सत्त्वस्येति ख.।　　२. द्वेधोभ्ये इति ग.।
३. ममेति ग.।

ब्रह्मास्त्रस्य प्रयोगविधिः

तत्प्रयोगं शृणु प्राज्ञ ब्रह्मास्त्रं प्रथमं शृणु।
दादिदन्तं च सावित्रीं विपरीतां जपेत्सुधीः॥५४॥
जप्तां पूर्वं निखर्वं[१] चाऽभिमन्त्र्य विधिवच्छरम्।
प्रक्षिप्ते शत्रवः कृत्स्ना नश्यन्ते सर्वजातयः॥५५॥
बाला वृद्धाश्च गर्भस्था ये च योद्धुं समागताः।
सर्वे ते नाशमायान्ति मम चैव प्रसादतः॥५६॥

ब्रह्मदण्डस्य प्रयोगविधिः

यथाक्रमं दादिदन्तं जपेत्संहारसिद्धये।
ब्रह्मदण्डं प्रवक्ष्यामि पूर्वं प्रणवमुच्चरेत्॥५७॥
ततः प्रचोदयाज्ज्ञेयं ततो नो यो धियः क्रमात्।
ततो धीमहि देवस्य ततो भर्गो वरेणियम्॥५८॥

ब्रह्मास्त्र के प्रयोग की विधि

हे प्राज्ञ! अब इन अस्त्रों के प्रयोग की विधि श्रवण करो। उसमें भी प्रथम ब्रह्मास्त्र की प्रयोग विधि बतला रहा हूँ, श्रवण करो। गायत्री के आदि और अन्त में 'द' का प्रयोग कर उसका उल्टा जप करना चाहिए।।५४।।

दस हजार गायत्री का जप करके विधिपूर्वक उससे बाण को अभिमन्त्रित करे, इस विधि से बाण प्रक्षेप करने पर शीघ्र ही सभी प्रकार के शत्रुओं का विनाश हो जाता है।।५५।।

बालक हो या वृद्ध अथवा गर्भ में स्थित हो, जो भी युद्ध करने के लिए आता है, हमारी कृपा से उन सभी का विनाश हो जाता है।।५६।।

ब्रह्मदण्ड के प्रयोग की विधि

बाण के संहार की सिद्धि के लिए क्रमशः 'द' आदि और 'द' अन्त में जोड़कर गायत्री का जप करना चाहिए। अब मैं ब्रह्मदण्ड का कीर्तन करता हूँ। सर्वप्रथम प्रणव (ऊँकार) का उच्चारण करना चाहिए।।५७।।

पुनः 'प्रचोदयात्' फिर 'नो यो धियः' तत्पश्चात् 'धीमहि' इसके बाद 'भर्गो वरेणियम्' का प्रयोग करना चाहिए।।५८।।

---

१. निषर्वमिति क.।

सवितुस्तच्च योक्तव्यं मम शत्रूँस्तथैव च।
ततो हन हन हुं[१] फट् जप्त्वा पूर्वं चैव द्विलक्षकम्॥५९॥
अभिमन्त्र्य शरं तद्वत्प्रक्षिपेच्छत्रुषु द्रुतम्।
नश्यन्ति शत्रवः सर्वे यमतुल्या अपि ध्रुवम्॥६०॥
एतदेव विपर्यस्तं जपेत्संहारसिद्धये।

ब्रह्मशिरोऽस्त्रस्य प्रयोगविधिः

ब्रह्मशिरः प्रवक्ष्यामि प्रणवं पूर्वमुद्धरेत्॥६१॥
धियो यो नः प्रचोदयाद् भर्गो देवस्य धीमहि।
तत्सवितुर्वरेणियं शत्रून् मे हन हनेति च॥६२॥
हुं फट् चैव प्रयोक्तव्यं क्षिपेद् ब्रह्मशिरस्ततः।
पुरश्चर्यां पुरा कृत्वा त्रिलक्षं नियतः शुचिः॥६३॥
नश्यन्ति सर्वे रिपवः सर्वे देवासुरा अपि।
इदमेव विपर्यस्तं प्रयोक्तव्यं विकर्षणे॥६४॥

इसके बाद 'सवितुः' का प्रयोग कर 'मम शत्रून् हन हूँ फट्' जोड़कर दो लक्ष उसका जप करना चाहिए।।५९।।

तत्पश्चात् बाण को अभिमन्त्रित करके शत्रुओं के ऊपर प्रयुक्त करना चाहिए। इस प्रकार प्रयोग करने से सभी शत्रुओं का विनाश हो जाता है, चाहे वे यमराज के समान ही क्यों न हों।।६०।।

संहार की सिद्धि के लिए इसका विपर्यस्त जप करना चाहिए।

ब्रह्मशिरा अस्त्र के प्रयोग की विधि

अब मैं ब्रह्मशिर के प्रयोग का वर्णन करता हूँ। इसमें प्रथम ऊँकार (प्रणव) का उद्धार करे, तत्पश्चात् 'धियो यो नः प्रचोदयात् भर्गो देवस्य धीमहि तत्सवितुर्वरेण्यं शत्रून् मे हन हन हुँ फट्' संयुक्त कर उससे अभिमन्त्रित कर ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र का प्रक्षेप करे। शुद्धता एवं पवित्रतापूर्वक प्रथम पुरश्चरण विधि से तीन लाख जप करना चाहिए।।६१-६३।।

ऐसा करने से देवता अथवा असुर भी शत्रु हों, तो उनका भी विनाश हो जाता है। इस शस्त्र के परावर्तन करने के लिए इसी मन्त्र का विपर्यस्त प्रयोग करना चाहिए।।६४।।

---

१. ततो हन हुं इति क.।

पाशुपतास्त्रस्य प्रयोगविधिः

अतः परं प्रवक्ष्यामि शस्त्रं पाशुपतं मम।
यस्य विज्ञानमात्रेण नश्यन्ते सर्वशत्रवः॥६५॥
दादिदन्तं च सावित्रीं प्रोच्य प्रणवमेव च।
श्लीं पशुं हुं फट् अमुकशत्रून् हन हन हुं फट्॥६६॥
जप्त्वा पूर्वं द्विलक्षं च ततः पाशुपतं क्षिपेत्।
पुनस्तदेव व्यस्तं स्यात्संहारे सन्नियोजयेत्॥६७॥
एतत्पाशुपतं शस्त्रं सर्वशत्रुनिवारणम्।

वायव्यास्त्रस्य प्रयोगविधानम्

वच्मि वायव्यशस्त्रं च नश्यन्ते येन शत्रवः॥६८॥
ॐ वायव्यया वायव्यया[1] रायौर्वा यया वा तथा।
अमुकशत्रून् हन हन हुं फट् चैव प्रकीर्त्तयेत्॥६९॥

पाशुपतास्त्र के प्रयोग की विधि

इसके बाद मैं अपने पाशुपत अस्त्र का वर्णन करता हूँ। इसके केवल ज्ञानमात्र से ही समस्त शत्रुओं का विनाश हो जाता है।।६५।।

आदि और अन्त में 'द' का प्रयोग करते हुए गायत्री का उच्चारण करे, पुन: प्रणव (ऊँकार) का भी उच्चारण करना चाहिए। तदनन्तर 'श्लीं पशुं हुं फट् अमुकशत्रून् हन हन हुं फट्' इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।६६।।

इस मन्त्र का प्रथम दो लक्ष जप कर पाशुपत अस्त्र का प्रयोग करना चाहिए। इसी मन्त्र का व्यस्त (विपरीत) प्रयोग संहार में किया जाता है।।६७।।

यह पाशुपत अस्त्र सम्पूर्ण शत्रुओं का विनाश करने वाला है।

वायव्यास्त्र का प्रयोग-विधान

अब मैं वायव्यास्त्र का वर्णन करता हूँ, जिससे अखिल शत्रुओं का विनाश हो जाता है।।६८।।

सर्वप्रथम 'ऊँ वायव्यया वायव्यया रायौर्वा यया वा अमुकशत्रून् हन हन हुं फट्' इस मन्त्र का जप करना चाहिए।।६९।।

---

१. रोयोर्वेति क.।

पूर्वमेव तदा जप्त्वा नियुतद्वितयं[१] तथा।
पुनः संहाररूपेण संहारं च प्रकल्पयेत्॥७०॥
अस्त्रं वायव्यकं नाम देवानामपि वारणम्।

आग्नेयास्त्रस्य वर्णनम्

आग्नेयं सम्प्रवक्ष्यामि यतः परभयं ददेत्॥७१॥
ओमग्निस्त्यता ऋदुभूं च शिवं वनाश्वाविणि च।
ऋगादुतिदशकपनः सेदवेति[२] ततः क्रमात्॥७२॥
हादितितोयतिराम तथा मसोहिवानसु।
सेदवेदया च वदेत् अमुकादींस्ततो वदेत्॥७३॥
पूर्वोक्तां च पुनश्चर्यां कृत्वा शस्त्रेऽभियोजयेत्।
इमं मन्त्रं पुनर्व्यस्तं संहारे चैव योजयेत्॥७४॥

पहले के समान ही इस मन्त्र का दो लाख जप करके संहाररूपी अस्त्र से शत्रुओं के संहार की कल्पना करे। पुनः संहार क्रम से इस मन्त्र का संहार में भी प्रयोग करना चाहिए॥७०॥

यह वायव्य नामक अस्त्र देवताओं का भी निवारण करने वाला है।

आग्नेयास्त्र का वर्णन

अब शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाले आग्नेय अस्त्र का वर्णन करता हूँ॥७१॥

'ॐ अग्निस्त्यता ऋदुभूं च शिवं वनाश्वाविणि ऋगादुतिदशकपनः सदवेति' इस क्रम से प्रयुक्त करके 'हादिति तोयतिराम मसोहिवानसु सेदवेदया' कहकर 'अमुक' आदि का उच्चारण करे॥७२-७३॥

पूर्वोक्त विधि से पुरश्चरण करके शस्त्र को अभिमन्त्रित करना चाहिए। पुनः संहार में इस मन्त्र का विपरीत प्रयोग करना चाहिए॥७४॥

---

१. नियुताद्वितयमेति ख.। २. सदवेति ख.।

नारसिंहास्त्रस्य सिद्धिविधानम्

ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट्॥७५॥
पूर्वं जप्त्वा च लक्षं हि नारसिंहे च योजयेत्।
सिंहरूपास्तथा बाणाः पतन्ति शात्रवे बले॥७६॥
पूर्वोक्तेन प्रकारेण संहारं च प्रकल्पयेत्।
सङ्क्षेपतो महाभाग तवोक्तानि महामते॥७७॥
त्वदाश्रममिदं पुण्यं ये वसिष्यन्ति मानवाः।
मुक्ताः प्रयान्तु मद्देहं धन्याः पापविवर्जिताः॥७८॥
इति ते कथितो विप्र धनुर्वेदः सुपुण्यदः।
नश्यन्ति तस्य रिपवो येऽप्येनं लोचयन्ति च॥७९॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे उत्तरभागे शस्त्रविद्यानिरुक्तिर्नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२६।।

नारसिंह अस्त्र की सिद्धि का विधान

'ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट्' इस मन्त्र का पहले एक लाख जप कर नारसिंह अस्त्र को प्रयुक्त करना चाहिए।।७५।।

इस मन्त्र के प्रयोग करने से सिंहरूप बाण शत्रु के दल के ऊपर गिरते हैं। पूर्वोक्त प्रकार से संहार में भी उसकी कल्पना करनी चाहिए।।७६।।

हे महाभाग! इस दिव्यास्त्र के प्रयोग का यह वृत्तान्त मैंने संक्षिप्त रीति से आपके प्रति वर्णन किया है।।७७।।

आपके इस पवित्र आश्रम में जो मनुष्य निवास करेंगे, वे लोग धन्य होकर पाप से रहित मुक्ति को प्राप्त कर हमारे देह में लीन हो जायेंगे, अर्थात् सायुज्य मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे।।७८।।

हे विप्र! इस प्रकार हमने इस धनुर्वेद का वर्णन किया है। यह अत्यन्त ही पुण्यप्रद है। जो मनुष्य इसका अवलोकन करते हैं, उनके शत्रुओं का विनाश हो जाता है।।७९।।

।। इस प्रकार स्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ छब्बीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१२६।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-१२३५+७९=१३१४]



अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवेश्वरतीर्थनिरूपणम्

स्कन्द उवाच

ईश्वरोऽपि महाभाग दत्त्वा वरमनुत्तमम्।
देवधारे गिरौ देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥१॥
सोऽपि द्रोणो महाभाग प्राप्य वेदं महेशतः।
कृत्वा बहूनि कर्माणि रणे देवत्वमागतः॥२॥
इति ते कथितो देव देवधारस्य वैभवः।
देवेश्वर इति ख्यातो लिङ्गरूपी सदाशिवः॥३॥
तस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः।
देवजन्यां नदीं स्नात्वा हयमेधफलं लभेत्॥४॥

देवेश्वर तीर्थ का निरूपण

स्कन्द जी ने कहा

हे महाभाग! देवधार पर्वत पर इस प्रकार द्रोणाचार्य को वर प्रदान कर सर्वेश्वर शङ्कर उसी स्थान में अन्तर्धान हो गये।।१।।

वे महात्मा द्रोणाचार्य भी महेश्वर से धनुर्वेद को प्राप्त कर और अनेक कर्म करने के पश्चात् संग्राम में देवत्व को प्राप्त हो गये।।२।।

हे भूदेव! इस प्रकार हमने तुम्हारे प्रति इस देवधार पर्वत के वैभव का वर्णन किया है। वहाँ पर सदाशिव महादेव लिङ्ग रूप धारण कर देवेश्वर नाम से स्थित हैं।।३।।

उस लिङ्ग के दर्शन करने मात्र से मनुष्य समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। देवजन्या नदी में स्नान कर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के फल का लाभ प्राप्त करता है।।४।।

नवदोलायाः स्थितिः

देवधाराचलस्यापि स्थानं पश्चिमदेशतः।
नवदोलेति विख्याता पुरन्ध्री ह्यभवत्पुरा॥५॥
तपस्तप्तं तया ह्यत्र शिवो देवः प्रसाधितः।
अददच्च वरं तस्यै सौभाग्यं पतिना सह॥६॥
ततोऽवधि परं तीर्थं नवदोलेति सञ्ज्ञितम्।
तत्र धारात्रयं ख्यातं जटाजूटाद्विनिर्गतम्॥७॥
त्रिपथेति समाख्याता धारात्रितयसंयुता।
पुरा तत्र बभूवाथ विप्रो जाबालिसञ्ज्ञितः॥८॥
तेनापि परमेशानो भक्तियुक्तेन चेतसा।
आराधितो महाबाहो द्रष्टुं त्रिपथगां पराम्॥९॥
तपो वर्षशतं साग्रं निराहारेण तेन वै।
ततः कतिपयाहेन दर्शिता जाह्नवी परा॥१०॥

नवदोला नामक स्थल की स्थिति

यह देवधाराचल का स्थान है, इसके पश्चिम भाग में नवदोला नाम से विख्यात एक स्थान है। वहाँ पर प्राचीनकाल में पुरन्ध्री का प्रादुर्भाव हुआ था।।५।।

उस पुरन्ध्री ने इसी स्थल पर तप का अनुष्ठान कर महादेव शिव को प्रसन्न किया था, तब उन्होंने उसे पतिसहित सौभाग्य का वर प्रदान किया था।।६।।

उसी समय से वह परम तीर्थ नवदोला नाम से विख्यात हो गया। भगवान् शिव के जटाजूट से निकली हुई तीन धारायें प्रसिद्ध हैं।।७।।

तीन धाराओं से संयुक्त होने के कारण उस नदी को त्रिपथा कहते हैं। प्राचीनकाल में वहीं पर जाबालि नामक ब्राह्मण प्रादुर्भूत हुए थे।।८।।

हे महाबाहो! त्रिपथगा नदी के दर्शन करने की कामना से उन्होंने भी भक्तिभावपूर्वक भगवान् शिव की आराधना की थी।।९।।

उस महर्षि ने निराहार रहकर सौ वर्षपर्यन्त उग्र तप का आचरण किया, तब भूतनाथ शिव ने उन्हें कुछ दिनों के लिए जाह्नवी (गङ्गा) का दर्शन कराया।।१०।।

जटाजूटाटवीजूटान्निर्गता[1] बिन्दुरूपिणी।
ततोऽवधि परा गङ्गा धारारूपेण तिष्ठति॥११॥
तस्याः सन्दर्शनादेव परं ब्रह्माधिगच्छति।
शिवलिङ्गं च तत्रैव जाबालीश्वरसञ्ज्ञितम्॥१२॥
तस्य दर्शनमात्रेण पशुमेधफलं लभेत्॥१३॥

धेनुवनस्य धेनुगङ्गायाश्च स्थितिः

तत उत्तरदिग्भागे माने वै सार्द्धयोजने।
सर्वकुष्ठापहं तीर्थं भक्तिगम्यं दुरासदम्॥१४॥
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वरोगविनाशनम्।
इह चैव परो भोगः परत्र च परा गतिः॥१५॥
तत्र धेनुवनं नाम क्षेत्रं दुरितदुर्लभम्।
धेनुगङ्गेति विख्याता स्पर्शनात्पापनाशिनी॥१६॥

उसी समय से भगवान् शिव के जटाजूटरूपी कानन से बिन्दुरूप में निकली हुई श्रेष्ठ गङ्गा धारारूप से वहाँ विद्यमान हैं।।११।।

उस धारा के केवल दर्शन करने मात्र से मनुष्य परम ब्रह्म में लीन हो जाता है। वहाँ जाबालीश्वर नाम का एक शिवलिङ्ग है।।१२।।

उस लिङ्ग के केवल दर्शन करने से मनुष्य पशुमेधयज्ञ करने का फल प्राप्त कर लेता है।।१३।।

धेनुवन एवं धेनुगङ्गा की स्थिति

वहाँ से उत्तर की ओर डेढ़ योजन (छः कोस) की दूरी पर सभी प्रकार के कुष्ठों का निवारण करने वाला एक तीर्थ है। भक्ति-भाव के द्वारा ही उसकी प्राप्ति होती है, अन्यथा वह दुर्लभ है।।१४।।

उस तीर्थ के दर्शन करने मात्र से समस्त रोगों का निवारण हो जाता है। साथ ही इस लोक में नाना प्रकार के भोगों एवं परलोक में सद्गति की प्राप्ति होती है।।१५।।

वहीं पर धेनुवन नाम का एक ऐसा क्षेत्र है, जिसकी प्राप्ति पापी मनुष्यों को नहीं हो सकती। वहीं पर धेनुगङ्गा नाम की एक नदी है, उसका केवल स्पर्श करने मात्र से पापों का विनाश हो जाता है।।१६।।

---

१. जटान्निर्गतेति ग.।

धेनुप्रस्वेदसम्भूता धेनुगङ्गा समीरिता।
नन्दिनी नाम विख्याता प्रसन्ना यत्र चाभवत्॥१७॥
तदादीदं परं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम्।
धेनुगङ्गां सकृत्स्नात्वा पुनर्जन्म न चाप्नुयात्॥१८॥

काकाचलस्य स्थितिः

ततः पूर्वदिशि ब्रह्मन्नाम्ना काकाचलोऽर्थदः।
यत्र दाशरथी रामो नेत्रं काकस्य नाशयत्॥१९॥
ततः काकाचलः ख्यातो यमलोकनिवारकः।
नदी करेणुकानाम्नी पश्चिमे तस्य भूभृतः॥२०॥
पूर्वे पर्यङ्किनी ख्याता नदीद्वयमिदं स्मृतम्।
एतयोः सङ्गमे स्नात्वा वसुलोकं प्रगच्छति॥२१॥

वह धेनुगङ्गा गाय के प्रस्वेद (पसीने) से प्रादुर्भूत हुई थी, इसलिए धेनुगङ्गा नाम से विख्यात हुई। नन्दिनी नाम की प्रसिद्ध गौ उसी स्थान में राजा दिलीप की सेवा से प्रसन्न हुई थी।।१७।।

उसी दिन से यह परम क्षेत्र सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला प्रसिद्ध हो गया। धेनुगङ्गा में एक बार भी स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता है।।१८।।

काकाचल की स्थिति

हे ब्रह्मन्! वहाँ से पूर्व दिशा की ओर धन प्रदान करने वाला काकाचल नाम का पर्वत है। जहाँ दशरथ के पुत्र राम ने काक (जयन्त) के नेत्र का विनाश किया था।।१९।।

उसी समय से वह पर्वत काकाचल नाम से विख्यात हुआ। वह यमलोक का निवारण करने वाला है। उस पर्वत के पश्चिम भाग में करेणुका नाम की नदी है।।२०।।

उस पर्वत के पूर्वभाग में पर्यङ्किनी नाम की प्रसिद्ध नदी है। इस प्रकार ये दो नदियाँ वहाँ विद्यमान हैं। इन दोनों नदियों के सङ्गम में स्नान करने से मनुष्य अष्ट वसुओं के लोक में चला जाता है।।२१।।

तस्मिन् काकाचले पीठं यत्र गत्वाऽर्थवान् भवेत्।
तत्र पुष्पेश्वरो देवः सर्वापत्तिनिवारकः॥२२॥
देवधारोत्तरे ख्याता तीर्थपङ्क्तिर्महार्थदा।
श्रुत्वा स्नानफलं तत्र पठित्वाऽपि तदाऽऽप्नुयात्॥२३॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे द्रोणतीर्थमाहात्म्येऽनेकतीर्थाभिधानं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२७।।

उस काकाचल पर एक पीठ है, जहाँ जाकर मनुष्य सफल-मनोरथ हो जाता है। वहाँ पुष्पेश्वर नाम के महादेव हैं, जो समस्त आपत्तियों का निवारण करते हैं।।२२।।

देवधाराचल के उत्तर की ओर प्रभूत धन प्रदान करने वाली तीर्थपंक्ति हैं। उसके स्नानफल को सुनकर अथवा पढ़कर भी मनुष्य उसके दर्शन का फल प्राप्त कर लेता है।।२३।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ सत्ताइस अध्याय पूर्ण हुआ।।१२७।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत- १२१४+२३=१२३७]



अष्टाविंशत्यधिकशततमोध्यायः

वामतनुवैश्यस्य तपसा वामनदिग्गजत्वप्राप्तिः

स्कन्द उवाच

देवधाराचलात्तीर्थादाग्नेय्यां च महार्थदः।
क्रोशे च क्रोशखण्डे च नागाचल इतीरितः॥१॥
यत्र नागो वामनश्च पुरा जप्त्वा महत्तपः।
दिग्गजत्वं तथा प्राप तीर्थवर्ये महामते॥२॥

नारद उवाच

कोऽसौ वामनको नाम गजः परमपुण्यभाक्।
दिग्गजत्वं कथं प्राप्तं तेन तत्र वद प्रभो॥३॥

स्कन्द उवाच

श्रृणु विप्र कथामेतां पापघ्नीं सर्वकामदाम्।
सप्तजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥४॥

तपस्या द्वारा वामतनु वैश्य को वामन नामक दिग्गज के पद की प्राप्ति

स्कन्द जी ने कहा

देवधाराचल से अग्निकोण में कोस या कुछ कम एक कोस की दूरी पर प्रभूत धन प्रदान करने वाला नागाचल नाम का एक पर्वत है।।१।।

हे महामति! प्राचीनकाल में उसी महान् तीर्थ में वामन नामक हस्ति ने उग्र तप करके दिग्गजत्व को प्राप्त किया था।।२।।

नारद ने कहा

हे प्रभो! परम पुण्यात्मा वामन नाम वाला यह हाथी कौन था तथा इसको दिग्गजत्व की प्राप्ति कैसे हुई? यह सब मुझसे कहें।।३।।

स्कन्द जी ने कहा

हे विप्र! पापों को नष्ट करने वाली तथा सभी मनोरथों को देने वाली इस कथा का श्रवण करो, इसके श्रवण करने से मनुष्य सात जन्मों के सञ्चित पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।४।।

वामतनुवैश्यस्य कथा

इन्द्रप्रस्थे पुरा ह्यासीद्वैश्यो वामतनुर्द्विज।
सैकदा धनहीनो वै भाग्ययोगादजायत॥५॥
निर्विण्णो ह्यभवद्विप्र धनलोभपराङ्मुखः।
समाययौ तपस्तप्तुं गङ्गाद्वाराद्धि[१] वारुणे॥६॥
संस्थाप्य शिवलिङ्गं वै तत्र पर्वतसत्तमे।
पूजयामास विधिवदभिषेकैर्महामते॥७॥
इति वै तपतस्तस्य तृणाहारस्य धीमतः।
सोग्रं वर्षशतं जातं शिवसंन्यस्तचेतसः॥८॥
ततः प्रसन्नो भगवान् दर्शनं प्रददौ स्वकम्।
भूतिभूषितसर्वाङ्गं जटामुकुटमण्डितम्॥९॥

वामतनु वैश्य की कथा

हे द्विज! प्राचीनकाल की बात है, इन्द्रप्रस्थ नगर में वामतनु (जिसका शरीर बावन अङ्गुल का था) नाम वाला एक वैश्य था। वह भाग्य के योग के कारण किसी समय धनहीन हो गया।।५।।

हे विप्र! धन का लोभ न करने वाला वह वैश्य निर्धन होने के कारण अत्यन्त दुःखित हो गया। तब वह तप करने के लिए हरिद्वार से आगे वारुण (आदिवारुण) पर्वत पर गया।।६।।

हे महामति! उस श्रेष्ठ पर्वत पर शिवलिङ्ग की स्थापना करके अभिषेक द्वारा उनकी विधिपूर्वक पूजा करने लगा।।७।।

महादेव शङ्कर में चित्त लगाकर तृण का आहार करते हुए उग्र तप करने वाले उस वैश्य के सौ वर्ष व्यतीत हो गये।।८।।

तदनन्तर भगवान् आशुतोष ने प्रसन्न होकर उस वैश्य को दर्शन दिया। उस समय उनका सभी अङ्ग विभूति से विभूषित एवं शिर जटाजूट से समलङ्कृत हो रहा था।।९।।

---

१. द्वारादिवारुणे इति ख.।

व्याघ्रचर्मपरीधानं व्यालयज्ञोपवीतिनम्।
कृत्तिप्रच्छन्नतटकं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम्।।१०।।
दृष्ट्वा तु सहसा वैश्यो वामनो मृडतत्परः[१]।
पपात सहसा भूमौ दण्डवद् बहुवारकम्।।११।।
प्रदक्षिणां च शतशः प्रचकार महामतिः।
उवाच वचनं तद्वद्धन्योऽस्मीति पुनः पुनः।।१२।।
उवाच च परो देवो धन्योऽसीति पुनः पुनः।
वरं वरय भद्रं ते यद्वै मनसि वर्त्तते।।१३।।
सोऽब्रवीद्वामनो नाम त्वत्पादमिह संश्रये।
यत्र गत्वा न शोचामि परब्रह्म सनातनम्।।१४।।
पुनः संसारकूपेऽस्मिन्न निक्षिप्यो दयानिधे।
इदं क्षेत्रं तवाऽऽवासो नित्यमस्तु जगत्पते।।१५।।

उस समय भगवान् शिव व्याघ्रचर्म का परिधान किये थे, उनका यज्ञोपवीत सर्पों से ही निर्मित था, कमर हाथी के चर्म से ढँका था तथा उनके मस्तक पर अर्धचन्द्र सुशोभित हो रहा था।।१०।।

उस वामन नामक वैश्य ने भगवान् शङ्कर को एकाएक वहाँ प्रकट देखकर भक्ति में तत्पर हो गया और बार-बार भूमि पर गिर कर दण्ड के समान होकर प्रणाम करने लगा।।११।।

महामतिमान् उस वैश्य ने सैकड़ों बार शिव की परिक्रमा की और वह बार-बार यही कहता रहा कि मैं धन्य हो गया, मैं धन्य हो गया।।१२।।

इसके बाद देवाधिदेव महादेव ने भी उसके प्रति बार-बार यही कहा कि 'तुम धन्य हो'। हे वैश्य! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे चित्त में जो इच्छा हो, उसे वर के रूप में माँग लो।।१३।।

तब वामन नामक उस वैश्य ने कहा—मैंने इसी स्थान में आपके चरणों का आश्रय लिया है। आपका चरणकमल साक्षात् परब्रह्म को प्राप्त कराने वाला है, जहाँ जाने पर पुनः मनुष्य को शोक नहीं करना पड़ता है।।१४।।

हे दयानिधान! मुझे इस संसार-कूप में फिर न गिराइये। हे जगत्पति! यह क्षेत्र आपका नित्य निवास स्थल हो।।१५।।

१. मृलतत्परः इति ग.।

प्रसन्नो भगवान् वैश्यं जगाद वचनं हितम्।
पृथिव्या धारको भूया दिग्गजो दक्षिणां गतः[१]॥१६॥
कल्पान्ते परमं स्थानं प्राप्स्यसि त्वं न संशयः।
इदं स्थानं ममाऽऽवासो भविष्यति तवापि च॥१७॥
यस्मान्नागत्वमापन्नो गिरावस्मिन् महामते।
ततोऽयं नागनामा च पर्वतश्च न संशयः॥१८॥
अत्र नागेश्वरं लिङ्गं मम चैव भविष्यति।
करिष्यन्ति महाभागा दर्शनं पूजनं च मे॥१९॥
न ते संसारदुःखौघपराभूता न संशयः।
नागाचलस्य ये मर्त्याः करिष्यन्ति परिक्रमाम्[२]॥२०॥

शुभस्रवानद्याः स्थितिवर्णनम्

परिक्रान्ता धरा तैस्तु गच्छेयुश्च परं पदम्।
ततः पश्चिमतो विप्र नदी परमपावनी॥२१॥

भगवान् शिव प्रसन्न होकर उस वैश्य के प्रति इस प्रकार हितकारी वचन बोले—हे वैश्य! तुम दक्षिण दिशा की ओर भूमि को धारण करने वाले दिग्गज हो जाओ।।१६।।

कल्प के अन्त में तुम निःसन्देह परमपद मोक्ष को प्राप्त करोगे और यह स्थान हमारा तथा तुम्हारा निवास-स्थल होगा।।१७।।

हे महामति! तुम्हें इस पर्वत पर दिग्गजत्व की प्राप्ति हुई है, इसलिए यह पर्वत भी नाग (हाथी) नाम से प्रसिद्ध होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१८।।

यहाँ मेरा नागेश्वर नाम का लिङ्ग भी स्थापित होगा, जो भाग्यशाली मनुष्य हमारा दर्शन एवं पूजन करेगा।।१९।।

वह कभी सांसारिक क्लेशों से दुःखित नहीं होगा, इसमें कोई संशय नहीं है। जो मनुष्य इस नागाचल की परिक्रमा करेंगे, उन्हें अखिल भूमण्डल की परिक्रमा करने का फल प्राप्त हो जायेगा और वे परमपद (मोक्ष) के भागी होंगे।।२०।।

शुभस्रवा नामक नदी की स्थिति

हे विप्र! वहाँ से पश्चिम की ओर शुभस्रवा नाम की परम पवित्र नदी विख्यात है, उसका केवल दर्शन करने से ही शुभ गति की प्राप्ति होती है।

---

१. ततः इति क.। २. परिक्रममिति ख.।

शुभस्रवेति विख्याता दर्शनाच्छुभदायिनी।
स्नानात्पानाद् दिवं याति यावदाभूतसम्प्लवम्॥२२॥
शुभस्रवा परं तीर्थं शुभस्रवा परं तपः।
शुभस्रवा परं दानं किञ्चिन्नास्ति ततः परम्॥२३॥
देवधारगिरौ पश्चाद्योजने मुनिसेविते।
नाम्ना चन्द्रवनं ख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥२४॥

चन्द्रवनस्य चन्द्रसारस्य च स्थितिः

यत्र चन्द्रश्च विप्रेश नित्यं वसति भूतिदः।
तत एव परं प्राप शिवशेखरवासकम्॥२५॥
इदं परं शिवस्थानं यत्र सन्निहितः सदा।
चन्द्रेश्वर इति ख्यातः पापिनामपि मुक्तिदः॥२६॥
तत्र चन्द्रसरो दिव्यं दिव्याम्भः पुण्यदं महत्।
तत्र वै स्नानमात्रेण लभते परमं पदम्॥२७॥

उसमें स्नान करने अथवा उसका जलपान करने से मनुष्य प्रलयपर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है।।२१-२२।।

शुभस्रवा परम तीर्थ है, शुभस्रवा ही परम तप है, शुभस्रवा श्रेष्ठ दान है, इससे बढ़कर कुछ भी नहीं है।।२३।।

चन्द्रवन एवं चन्द्रसार की स्थिति

देवधाराचल के ऊपर पश्चिम की ओर एक योजन की दूरी पर मुनियों के द्वारा सेवित भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाला चन्द्रवन है।।२४।।

हे श्रेष्ठ विप्र! वहाँ ऐश्वर्य प्रदान करने वाले चन्द्रमा का नित्य निवास रहता है। वहाँ पर ही चन्द्रमा ने भगवान् शिव के शिर पर निवास प्राप्त किया था।।२५।।

यह भगवान् शङ्कर का भी एक मुख्य स्थान है, इसी कारण चन्द्रेश्वर नाम से भगवान् यहाँ विद्यमान रहते हैं। वे यहाँ पापियों को भी मुक्ति प्रदान करते हैं।।२६।।

वहाँ पर ही एक चन्द्रसरोवर है, उस दिव्य सर में दिव्य जल परिपूर्ण है, यह सरोवर अतिशय पुण्य प्रदान करने वाला है, इसमें केवल स्नान करने मात्र से परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।।२७।।

यः करोति नरः स्नानं सोमवारे महामते।
इह लोके वरान् भोगान् प्राप्य चान्ते शिवं लभेत्॥२८॥
यदि भाग्येन लभते सोमो मासं युतं मुने।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देवदेवपुरे वसेत्॥२९॥
कृतं येनात्र दर्शं वै सोमवारेण संयुतम्।
श्राद्धं च श्रद्धया विप्र पितरोऽमृतमाप्नुयुः॥३०॥
येन दत्तं सुवर्णं च यथाशक्तिमितं द्विजे।
तेन दत्तं भवेत्सर्वं भूमण्डलमिदं शुभम्॥३१॥
यदि भाग्येन लभ्येत चन्द्रपर्व महामते।
कुरुक्षेत्राच्छतगुणं फलं प्राप्नोति मानवः॥३२॥
त्रिरात्रं यो जिताहारो जपते शिवमच्युतम्।
परमं शिवमाप्नोति शिवस्य वचनं त्विदम्॥३३॥

हे महामतिमान्! जो मनुष्य सोमवार के दिन इस सरोवर में स्नान करता है, वह इस लोक में श्रेष्ठ भोगों का उपभोग कर अन्त में कल्याणरूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।।२८।।

यदि भाग्यवशात् सोमवती अमावास्या इस स्थान में उपलब्ध हो जाय, अर्थात् उस दिन स्नान करने को मिल जाय, तो वह मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और स्वर्गलोक में निवास प्राप्त कर लेता है।।२९।।

हे द्विजश्रेष्ठ! सोमवती अमावास्या के दिन जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक पितरों के निमित्त इस स्थान में श्राद्ध करता है, उसके पितर अमर हो जाते हैं।।३०।।

जो मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार यत्किञ्चित् भी सुवर्ण का दान करके ब्राह्मण को देता हैं, उसे समस्त भूमण्डल के दान करने का फल प्राप्त हो जाता है।।३१।।

हे मतिमान्! यदि भाग्यवशात् इस स्थान पर चन्द्रपर्व (चन्द्रग्रहण) की प्राप्ति हो जाय, तो मनुष्य को कुरुक्षेत्र की अपेक्षा सौ गुणा अधिक पुण्य उपलब्ध होता है।।३२।।

जो मनुष्य निराहार रहकर तीन रात्रिपर्यन्त अविनाशी महेश्वर का जप करता है, उसको परम कल्याण की प्राप्ति होती है, ऐसा भगवान् शिव का कथन है।।३३।।

चन्द्रवतीनद्या विष्णुपादस्य च स्थितिः

तत्र वामप्रदेशे हि क्रोशार्द्धे मुक्तिदायिनी।
नदी चन्द्रवती ख्याता सर्ववाञ्छितदायिनी॥३४॥
तस्या वै दक्षिणे पार्श्वे विष्णुपादः प्रतिष्ठितः।
शम्भुशर्मा यत्र विप्रो विष्णुमाराधयद् व्रती॥३५॥
दत्तं स्वदर्शनं तत्र तददीदं पदद्वयम्।
तस्य पूर्वोत्तरे पार्श्वे नदो नाकप्रदो नृणाम्॥३६॥

सुहवननदस्य स्थितिः

नाम्ना सुहवनो विप्र ख्यातः सर्वत्र मङ्गलः।
यस्य तीरे नरः स्नात्वा सर्वयज्ञफलं लभेत्॥३७॥
यत्र वै मुनयो विप्र यज्ञं चक्रुः पुरातनम्।
अङ्गुष्ठप्रतिमाः क्रुद्धा इन्द्रवाक्येन नारद॥३८॥

चन्द्रवती नदी एवं विष्णुपाद की स्थिति

उसके वायें भाग में आधे कोश की दूरी पर समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली चन्द्रवती नाम की नदी विख्यात है।।३४।।

उस नदी के दक्षिण भाग में भगवान् विष्णु के चरण का चिह्न प्रतिष्ठित है। जहाँ पर शम्भुशर्मा नामक ब्रह्मण ने व्रतधारणपूर्वक भगवान् विष्णु की आराधना की थी।।३५।।

तब भगवान् ने उस ब्राह्मण को वहाँ दर्शन दिया था, उसी समय से भगवान् विष्णु के दोनों चरण वहाँ उपस्थित हैं। उस स्थान के पूर्वोत्तर भाग में मानवों को स्वर्ग प्रदान करने वाला एक नद भी है।।३६।।

सुहवन नद की स्थिति

हे विप्र! सर्वमङ्गलरूप उस नद का नाम सुहवन प्रसिद्ध है, उसके तट पर स्नान करने से मनुष्यों को समस्त यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है।।३७।।

जहाँ पर प्राचीनकाल में मुनियों ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था। हे नारद! उस यज्ञ में इन्द्र के वाक्य से अङ्गुष्ठ प्रमाण देहधारी बालखिल्य नामक मुनिगण क्रोधित हो गये थे।।३८।।

नारद उवाच

इन्द्रेण किं कृतं तेषां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
यदर्थं क्रतुरारब्धस्तेषां यज्ञेन किं फलम्।।३९।।

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे द्रोणाश्रममाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१२८।।

नारद जी ने कहा

इन्द्र ने ऊर्ध्वरेता उन बालखिल्य मुनियों का कौन-सा अपराध किया था। वहाँ यज्ञ का प्रारम्भ किसलिए किया गया था और उनके यज्ञानुष्ठान का फल क्या हुआ?।।३९।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ अट्ठाइस अध्याय पूर्ण हुआ।।१२८।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-१३३७+३९=१३७६]



अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दक्षयज्ञस्य वृत्तान्तम्

स्कन्द उवाच

शृणु विप्र पुरावृत्तं गङ्गाद्वारे विमुक्तिदम्।
दक्षो नाम महातेजा ब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः॥१॥
प्रजावृद्ध्यर्थकं यज्ञं चकार सह दैवतैः।
सभागान् सर्वशश्चक्रे देवैर्मुनिभिरेव च॥२॥
इन्धनार्थं गताः केचित्केचित्पुष्पार्थकं सुराः।
यज्ञवृक्षार्थमपरेऽपरे विप्रनिमन्त्रणे॥३॥
इति तेषां सुराणां हि वासवो वृत्रसूदनः।
जगाम विपिने घोरे सर्वदेवैरधिष्ठिते॥४॥

दक्ष-यज्ञ का वृत्तान्त

स्कन्द जी ने कहा

हे विप्र! सम्प्रति बालखिल्य मुनियों के क्रोधित होने वाले प्राचीन वृत्तान्त को सुनो। मुक्तिदायक गङ्गाद्वार में ब्रह्मा जी के पुत्र महातेजस्वी दक्ष नामक प्रजापति थे।।१।।

उन्होंने प्रजा की वृद्धि की अभिलाषा से देवताओं के साथ मिलकर एक यज्ञ का अनुष्ठान किया। देवताओं और मुनियों के द्वारा उन्होंने सबके अलग-अलग विभाग बना दिये।।२।।

उनमें कुछ देवता ईंधन लेने के लिए गये और अन्य कुछ लोग पुष्प लेने के लिए गये। दूसरे देवता यज्ञ-वृक्ष को लेने के लिए गये, तो अन्य देव ब्राह्मणों को निमन्त्रित करने के लिए गये।।३।।

इस प्रकार उन सब देवताओं के विभक्त हो जाने पर वृत्रासुर का वध करने वाले वासव इन्द्र भी समस्त देवताओं से अधिष्ठित होने पर भी घोर वन में इन्धन लाने के लिये गये।।४।।

भारं सङ्गृह्य काष्ठानामाययौ वृत्रसूदनः।
यावदायाति विपिने दृष्टवान् मुनिसत्तमान्॥५॥
पलाशवृन्तसंलग्नाननेकान् भारपीडितान्।
गोष्पदं तर्त्तुमिच्छन्तो वर्षापानीयपूरितम्॥६॥
दृष्ट्वा ताँस्तादृशान् विप्रानङ्गुष्ठसमदेहकान्।
अहासीदल्पवीर्यांश्च किं करिष्यन्त्युवाच ह॥७॥
दृष्ट्वा हास्यं महाभागा[१] मुनयः संशितव्रताः।
मदोन्मत्तं परं ज्ञात्वाऽन्यमिन्द्रं कर्तुमुद्यताः॥८॥
क्रोधाविष्टा महात्मानस्तत्र चन्द्रवने मुने।
सम्भारान् साधयामासुर्यज्ञार्थं वरवर्णिनः॥९॥
चक्रुर्यज्ञं महाभाग वासवार्थं महोद्यमाः।
इन्द्रमन्यं करिष्यामः पतिष्यति शठो ह्ययम्॥१०॥

वृत्रासुरविनाशी इन्द्र लकड़ियों का बोझ लेकर आ रहे थे। आते हुए उन्होंने वन में श्रेष्ठ मुनियों को देखा॥५॥

वे महर्षिगण पत्तों के वृन्त से संलग्न बोझ से पीड़ित हो रहे थे, मार्ग में गौओं के खुरों से बने गड्ढ़ों में वर्षा का जल भर गया था, उन्हें वे लोग तैर कर पार करने की इच्छा कर रहे थे॥६॥

अङ्गुष्ठमात्र देह वाले उन ब्राह्मणों को ऐसा करते हुए देखकर अल्प पराक्रमी उन ब्राह्मणों के प्रति इन्द्र ने उपहास कर दिया और बोला कि ये लोग क्या कार्य करेंगे॥७॥

श्रेष्ठ व्रत का आचरण करने वाले महाभाग वे महर्षिगण इन्द्र को उपहास करते देख उसे मद से उन्मत्त जानकर अन्य इन्द्र बनाने के लिए उद्यत हो गये॥८॥

हे मुनि! क्रोध से आविष्ट वे ब्रह्मचारी महात्मा यज्ञ करने के लिए उसी चन्द्रवन में सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित करने लगे॥९॥

हे महाभाग! उन महा उद्यमी मुनियों ने अन्य इन्द्र बनाने की कामना से यज्ञ का अनुष्ठान किया। महर्षि लोग कहने लगे कि यह शठ स्वर्ग से गिर जायेगा और हम लोग दूसरे को इन्द्र बनायेंगे॥१०॥

---

१. महाभागेति ख.।

इत्येतदद्भुतं कर्म दृष्ट्वा तत्र महात्मनाम्।
ब्रह्माणं शरणं देवो जगामाऽतिभयातुरः॥११॥
उवाच वचनं तत्र ब्रह्माणं कमलासनम्।
प्रमादिना मया देव क्रोधिताः परमर्षयः॥१२॥
ते चेन्द्रं कर्त्तुमुद्युक्ता यज्ञेन कमलासन।
श्रुत्वा ब्रह्माऽपि वृत्तान्तमिन्द्रतः करुणोदयम्॥१३॥
जगाम दैवतैः सार्द्धं यत्र ते मुनयः स्थिताः।
तुष्टाव तान् महाभाग मुनीन् वेदपरायणान्॥१४॥
नान्यथा कर्तुमीहन्ते ब्रह्मणा निर्मितं तु यत्।
अकाले देवराजे वै न दूरं कर्त्तुमर्हथ॥१५॥
पक्षीन्द्रो भवतु क्षिप्रं भवतां वै प्रसादतः।
स वै कार्यकरोऽस्माकं विष्णोश्चैव सुवाहनम्॥१६॥

देवराज इन्द्र ने जब उन महात्माओं का इस प्रकार का अद्भुत कर्म देखा, तो भयभीत होकर वह ब्रह्मा जी की शरण में गया।।११।।

वहाँ जाकर कमल के आसन पर बैठे हुए ब्रह्मा जी से उसने कहा— हे देव! मैंने प्रमादवश उन परमर्षियों को क्रोधित कर दिया है।।१२।।

हे कमलासन! वे लोग यज्ञ का अनुष्ठान कर अन्य इन्द्र का निर्माण करने के लिए उद्यत हो रहे हैं। इस प्रकार ब्रह्मा जी ने इन्द्र के द्वारा करुणापूर्ण यह वृत्तान्त श्रवण किया।।१३।।

तदनन्तर वे देवताओं के साथ वहाँ गये, जहाँ वे मुनिलोग स्थित थे। हे महाभाग! उन्होंने वेदाध्ययन में परायण उन मुनियों को सन्तुष्ट किया।।१४।।

तदनन्तर कहा कि ब्रह्मा ने जो कुछ निर्माण किया है, उसे आप लोगों को अन्यथा नहीं करना चाहिए। आप लोग इन्द्र को अनवसर में ही उनके पद से अलग न करें।।१५।।

आपकी कृपा से वे शीघ्र ही गरुड हो जायेंगे। वे हमारे कार्य करने वाले होंगे और विष्णु के सुन्दर वाहन भी होंगे।।१६।।

प्रसन्ना भवथ क्षिप्रं याचध्वं मां[1] पुनः सुरान्।
इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणो मुनिसत्तम॥१७॥
धर्मात्प्रस्वेदपूर्णेभ्यो गात्रेभ्यः स्वेदसम्भवः।
सोऽयं सुहवनः ख्यातो नदः परमपुण्यदः॥१८॥
कृतवन्तो महायज्ञं पक्षीन्द्रश्च बभूव ह।
कश्यपस्य प्रिया भार्या विनतेति परिश्रुता॥१९॥
तस्यां पूर्वं रवेर्विप्रोऽरुणः सारथिसत्तमः।
गरुडश्च ततो जज्ञे पक्षीन्द्रः सम्बभूव ह॥२०॥
सर्वेषां सुरवर्याणां कार्यकर्त्ता बभूव ह।
पक्षिराजोऽभिषिक्तश्च मुनिभिश्च सुरासुरैः॥२१॥
बलवान् सत्त्वसम्पन्नो वेगवानमितद्युतिः।
जहार यो महातेजा अमृतं वृत्रसूदनात्॥२२॥
निर्जित्य तं महातेजा ऋषिवाक्यमनुस्मरन्।
जिता देवगणास्तेन दानवाश्च महामते॥२३॥

अब आप लोग शीघ्र ही प्रसन्न हो जाइये। आप लोग मुझसे एवं देवताओं से जो चाहें माँग लें। हे मुनिश्रेष्ठ! जब उन लोगों ने ब्रह्मा का इस प्रकार का वचन श्रवण किया, तो उष्णता से व्याप्त उनके शरीर से प्रस्वेद (पसीना) का प्रादुर्भाव हुआ। वही यह परम पुण्य प्रदान करने वाला सुहवन नाम का नद प्रसिद्ध हुआ।।१७-१८।।

इस प्रकार मुनियों ने महान् यज्ञ का अनुष्ठान किया और पक्षियों के राजा गरुड का प्रादुर्भाव हुआ। कश्यप जी की प्रिय पत्नी जो विनता नाम से विख्यात है। उसमें प्रथम सूर्य का श्रेष्ठ सारथी अरुण उत्पन्न हुआ। इसके बाद उन्हीं में गरुड उत्पन्न हुआ, जो पक्षियों का राजा बना।।१९-२०।।

वही समस्त देवता का कार्य करने वाला हुआ। तब मुनियों और देव-दानवों ने पक्षिराज गरुड का अभिषेक किया।।२१।।

वह अतिशय बलवान् अत एव पराक्रमी, शीघ्र गमन करने वाला और अमित तेजस्वी था। जिस महातेजस्वी ने वृत्रासुर के शत्रु इन्द्र से अमृत को छीन लिया था।।२२।।

उस महातेजस्वी गरुड ने ऋषियों के वाक्य का स्मरण कर इन्द्र को जीतकर देवताओं और दानवों को भी जीत लिया।।२३।।

---

१. मेति ख.।

विष्णुस्त्रैलोक्यनाथश्च निर्जितः सङ्गरे मुने।
प्रसन्नश्च महाविष्णुः प्रोवाच गरुडं तदा॥२४॥
वरं वरय भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवाधुना।
अहं कर्ता च हर्त्ता च त्रिलोकानां त्वया जितः॥२५॥
वरं ददामि ते प्रीतो यद्यन्मनसि वर्त्तते।
विहस्य गरुडोऽप्याह हरिं लोकपरायणम्॥२६॥
त्वमेव हि हरे ब्रूहि वरं त्रैलोक्यदुर्लभम्।
वाहनत्वं तदा वव्रे वरं नारायणः स्वयम्॥२७॥
वह मां वैनतेय त्वं प्रसन्नश्च यतो मयि।
तथेति सोऽपि गरुडो जगाद हरिमच्युतम्॥२८॥
इति दत्त्वा वरं तस्मै गरुडो वेगसंयुतः।
गृहीत्वा कलशं तस्य पीयूषस्य मुदा ययौ॥२९॥

हे मुनि! इससे अधिक क्या कहा जाय? गरुड ने युद्ध में तीनों लोकों के स्वामी भगवान् विष्णु को भी जीत लिया। तब महान् विष्णु प्रसन्न होकर गरुड से बोले॥२४॥

तुम्हारा कल्याण हो, अब हम तुमसे प्रसन्न हैं, तुम वर की याचना करो; क्योंकि तुमने त्रिलोकी के कर्ता एवं हर्ता मुझको भी जीत लिया है॥२५॥

मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, इसलिए तुम्हारे मन में जो कुछ भी हो, वह वर मैं तुमको प्रदान करूँगा। इसके बाद मुस्कराकर गरुड ने लोकपरायण भगवान् हरि से कहा॥२६॥

हे हरि! तीनों लोक में जो दुर्लभ हो, ऐसे वर को आप ही बतलायें, तब नारायण ने स्वयं ही उन्हें अपना वाहन बना लिया॥२७॥

हे वैनतेय! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो, तो तुम मुझको वहन करो, इसके बाद अविनाशी भगवान् हरि के प्रति उस गरुड ने भी कहा—ऐसा ही हो॥२८॥

जब इस प्रकार वरदान की प्राप्ति हो गयी, तब गरुड भी झटपट ही उस अमृत के कलश को लेकर प्रसन्नतापूर्वक चल दिये॥२९॥

यत्र दासत्वमापन्ना क्रुद्धा वै मुनिसत्तम।
अदासीं मातरं चक्रे यत्पीयूषप्रदानतः॥३०॥
इति ते कथितो दिव्यो नदस्य परमाद्भुतम्।
सुहवनस्य च ख्यातं सर्वपापहरं मुने॥३१॥
पक्षीन्द्रोऽपि तपस्तप्तुं ययौ कैलासमन्दिरे।
इति पुण्यतमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम्॥३२॥
चन्द्रवतीसुहवनयोः सङ्गमोऽतीव पुण्यदः।
नदीत्रयं च शाकिन्या यत्र पुण्ये सुसङ्गता॥३३॥
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात्।
इदं पुण्यतमाख्यानं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते॥३४॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सुहवननदोत्पत्तिवर्णनं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१२९।।

हे मुनिश्रेष्ठ! जहाँ उनकी माता विनता दासी होने के कारण क्रोधित हो रही थी, वहाँ गरुड ने अमृत प्रदान कर उसे दासीभाव से मुक्त कराया।।३०।।

हे मुनि! इस प्रकार हमने सुहवन नद का परम अद्भुत दिव्य आख्यान तुम्हारे प्रति वर्णन किया। यह आख्यान अखिल पापों का अपहरण करने वाला है।।३१।।

इसके बाद गरुड भी तपश्चर्या का अनुष्ठान करने के लिए कैलास पर्वत पर चले गये। यह अतीव पवित्र स्थान देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।।३२।।

चन्द्रवती और सुहवन का सङ्गम स्थल भी अतिशय पुण्य प्रदान करने वाला है। जिस पुण्य स्थल पर तीन पवित्र नदियाँ शाकिनी से मिली हुई हैं।।३३।।

वहाँ स्नान करने से मनुष्य भक्ति के कारण शिव की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। इस पुण्यतम आख्यान के श्रवण करने से भी मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है।।३४।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ उनतीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१२९।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-१३७६+३४=१४१०]



अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गणकुञ्जरपर्वते गणधारानद्याः स्थितिः

स्कन्द उवाच

ततो वै पश्चिमे भागे योजने पर्वतोत्तमे।
गणकुञ्जरनामा वै भैरवो भीमविक्रमः॥१॥
तन्नाम्ना पर्वतश्चापि गणकुञ्जरसञ्ज्ञकः।
गणधारा नदी ख्याता शिवलोकप्रदायिनी॥२॥
यस्तत्र पर्वतश्रेष्ठे पश्येद्वै गणकुञ्जरम्।
कुञ्जराकृतिदेहं च शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥३॥
यद्यदिच्छति मर्त्त्यो वै तत्तत्प्राप्नोति तत्र वै।
महापुण्यतमं पीठं त्रिरात्रात्सिद्धिदायकम्॥४॥

गणकुञ्जर पर्वत पर गणधारा नदी की स्थिति

स्कन्द जी ने कहा

वहाँ से पश्चिम की ओर एक योजन की दूरी पर श्रेष्ठ पर्वत के ऊपर भीषण पराक्रम वाले गणकुञ्जर नामक भैरव हैं।।१।।

उन्हीं के नाम से वह पर्वत भी गणकुञ्जर नाम से विख्यात हुआ। वहाँ पर शिवलोक को प्रदान करने वाली गणधारा नाम की नदी भी विख्यात है।।२।।

जो मनुष्य उस पर्वत के ऊपर हाथी के आकार के समान देह वाले गणकुञ्जर का दर्शन करता है, वह शिव की सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है।।३।।

मनुष्य अपने मन में जिन-जिन वस्तुओं की कामना करता है, उसे अवश्य ही उन वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। वह अतीव पवित्र पीठ है, वहाँ तीन रात्रिपर्यन्त निवास करने से सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।।४।।

चण्डिकादेव्याः स्थितिः

तन्मूर्ध्नि चण्डिका ख्याता गणकुञ्जरसेविता।
चतुर्दश्यां भाद्रपदे पुण्यकृद्भिः प्रदृश्यते॥५॥
तत आयाति परमा गणधारा नदी वरा।
स्नानमात्रेण तस्यां हि लभते परमं पदम्॥६॥

स्वर्णेश्वरमहादेवस्य स्थितिः

तत उत्तरदिग्भागे शिवः परमसुन्दरः।
स्वर्णेश्वर इति ख्यातः पापानामपि मुक्तिदः॥७॥
ततः क्रोशार्द्धखण्डे वै देवगर्भा नदी[1] वरा।
सा यत्र सङ्गता विप्र तथा शङ्करवल्लभा॥८॥
तयोः सुसङ्गमे स्नात्वा वाजपेयशतं लभेत्।
अथ पश्चिमदिग्भागे देवधारागिरौ[2] शुभे॥९॥

चण्डिका देवी की स्थिति

उसी पर्वत के ऊपर गणकुञ्जर से सेवित चण्डिका नाम की देवी प्रसिद्ध है, भाद्रपद के चतुर्दशी के दिन पुण्यात्माओं को उनका दर्शन मिलता है।।५।।

वहीं से गणधारा नाम की श्रेष्ठ नदी आती है, उसमें स्नान करने मात्र से मनुष्य परमपद मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।।६।।

स्वर्णेश्वर महादेव की स्थिति

वहाँ से उत्तर दिशा की ओर स्वर्णेश्वर नाम वाले परम सुन्दर महादेव विद्यमान हैं, जो पापियों को भी मुक्ति प्रदान करते हैं।।७।।

वहाँ से आधे कोस की दूरी पर देवगर्भा नाम की श्रेष्ठ नदी है। हे विप्र! वहीं पर यह नदी शङ्कर की प्रिया देवधारा नदी से मिलती है।।८।।

उन दोनों के सङ्गम में स्नान कर मनुष्य सौ वाजपेय यज्ञ करने का फल प्राप्त कर लेता है। वहाँ से पश्चिम दिशा की ओर शुभकारक देवधारागिरि की स्थिति है।।९।।

---

१. देवगर्भनदीति ख.। २. देवधारगिराविति ग.।

चन्द्रारण्यात्परे भागे योजनद्वयसम्मिते।
गङ्गा च यमुना तत्र सङ्गतेऽतीव पुण्यदे[1]॥१०॥

देवशर्मब्राह्मणस्याख्यानम्

देवशर्मेति विख्यातो ब्राह्मणो वेदपारगः।
उपासिता पुरा तेन गङ्गा भागीरथी परा॥११॥
गङ्गाप्रवाहः पतितस्ततोऽत्र द्विजपुङ्गव।
तदादीदं महापुण्यं जातं वैकुण्ठधामदम्॥१२॥
गङ्गाप्रवाह इति वै नाम तस्य बभूव ह।
स्नानं कुर्वन्ति ये तत्र शतयज्ञफलं भवेत्॥१३॥
यत्र देशे सूर्यजायां सङ्गता जाह्नवी परा।
तत्र पुण्यतमं स्थानं सूर्यलोकप्रदायकम्॥१४॥
स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।
कुर्वन्ति ये महाभाग फलमश्नुवतेऽक्षयम्॥१५॥

वहाँ पर चन्द्रारण्य से आगे दो कोस की दूरी पर अतिशय पुण्य प्रदान करने वाली गङ्गा और यमुना का सङ्गम है।।१०।।

देवशर्मा ब्राह्मण का आख्यान

प्राचीनकाल में वेदों में पारङ्गत देवशर्मा नाम का एक प्रसिद्ध ब्राह्मण था। उसने पवित्र भागीरथी गङ्गा की उपासना की थी।।११।।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ नारद! उसी समय से वहाँ गङ्गा की धारा बहने लगी और वह स्थान वैकुण्ठ धाम को प्रदान करने वाला परम पवित्र हो गया।।१२।।

उसका नाम गङ्गाप्रवाह प्रसिद्ध हो गया, जो व्यक्ति उसमें स्नान करते हैं, वे सौ यज्ञ करने का फल प्राप्त कर लेते हैं।।१३।।

जिस स्थान में पवित्र जह्नुतनया गङ्गा सूर्यपुत्री यमुना में मिलती हैं, वह अत्यन्त पवित्रतम स्थान सूर्यलोक को प्रदान करने वाला है।।१४।।

हे महाभाग! जो व्यक्ति उस स्थान में स्नान, जप, होम, स्वाध्याय (वेदपाठ) अथवा पितृतर्पण करते हैं, वे अक्षय फल को प्राप्त करते हैं।।१५।।

---

१. सङ्गतातीव पुण्यदेति ख.।

यमुनायाः पूर्वभागे सूर्यकुण्डमिति स्मृतम्।
यः स्नाति तत्र विप्रेश सूर्यलोके महीयते॥१६॥
तत्र दिव्यशिला नाम स्पर्शनान्मुक्तिदायिनी।
कलौ धर्मविहीना ये पूजां कुर्वन्ति मानवाः॥१७॥
न तेषां तद्भयं विद्याद्दर्शनात्पूजनादपि।

विष्णुकुण्डस्य स्थितिर्माहात्म्यञ्च

तत उत्तरदिग्भागे विष्णुकुण्डं शरद्वये॥१८॥
यत्र पीतं जलं याति यत्र वज्रशिलार्थदा।
विष्णुकुण्डे सकृत्स्नातो विष्णुलोके महीयते॥१९॥

आम्रातकवनस्य स्थितिः

ततः क्रोशे महापुण्यमाम्रातकवनं महत्।
तत्राऽप्यथ त्रिरात्रं तु जप्त्वा शिवमनुत्तमम्॥२०॥

यमुना के पूर्वभाग में एक सूर्यकुण्ड है। हे विप्रेश! जो व्यक्ति उस कुण्ड में स्नान करता है, वह सूर्यलोक में ऐश्वर्य का उपभोग करता है।।१६।।

वहीं पर एक दिव्य शिला है, जो स्पर्श करने से मुक्ति प्रदान करने वाली है। कलियुग में धर्महीन भी जो मनुष्य उसकी पूजा करते हैं।।१७।।

उन्हें उसके दर्शन और पूजन करने से कलियुग के किसी प्रकार का भय नहीं रह जाता है।

विष्णुकुण्ड की स्थिति और माहात्म्य

वहाँ से उत्तर दिशा में दो बाण की दूरी पर एक विष्णुकुण्ड है।।१८।।

उसमें पीले रंग का जल प्रवाहित होता है। वहीं पर धन प्रदान करने वाली एक वज्रशिला भी है। विष्णुकुण्ड में एक बार भी स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक में आदर को प्राप्त करता है।।१९।।

आम्रातक वन की स्थिति

वहाँ से एक कोस की दूरी पर एक महान् आम्रातक वन है। वहाँ पर भी तीन रात्रिपर्यन्त श्रेष्ठ शिवमन्त्र का जप करने का विधान है।।२०।।

सिद्धिमाप्नोति परमां सत्यमेव शिवोदितम्।

ढक्काहस्तगणेश्वरस्य स्थितिः

तत उत्तरदिग्भागे ढक्काहस्तो गणाधिपः॥२१॥
महादेवस्य पुरतो ढक्कावादनतत्परः।
तस्य स्थानमिदं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम्॥२२॥

शाकम्भरीदेव्या माहात्म्यम्

ततो वै दक्षिणे भागे त्रियोजनमिते स्थले।
शाकम्भरीति विख्याता सर्वकामेश्वरी वरा॥२३॥
तस्याः सन्दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते।
शाकेश्वरो महादेवः प्रत्यक्षं सिद्धिदायकः॥२४॥
पुराऽत्रैव महादेवी मुनींस्तपसि चाऽऽश्रितान्।
विग्रहे शतवार्षिक्ये शाकैः स्वाङ्गसमुद्भवैः॥२५॥

शिव का यह कथन सत्य है कि शिवमन्त्र के जप करने से परम सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।

ढक्काहस्त गणेश्वर की स्थिति

वहाँ से उत्तर दिशा में हाथ में ढक्का लिए हुए ढक्काहस्त नाम के गणेश्वर विद्यमान हैं।।२१।।

वे महादेव भगवान् शिव के समक्ष ढक्का बजाने में तत्पर रहते हैं। उनका यह स्थान अत्यन्त पवित्र और समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाला है।।२२।।

शाकम्भरी देवी का माहात्म्य

वहाँ से दक्षिण की ओर तीन योजन की दूरी पर समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली श्रेष्ठ शाकम्भरी देवी विद्यमान हैं।।२३।।

उस भगवती के केवल दर्शन करने से ही मनुष्य सम्पूर्ण पापों से मुक्ति का लाभ करता है। वहीं पर शाकेश्वर महादेव भी प्रत्यक्ष सिद्धि प्रदान करते हैं।।२४।।

प्राचीनकाल में यहीं पर देवी ने तपश्चर्या में व्रत धारण किये हुए मुनीश्वरों को सौ वर्षपर्यन्त चलने वाले युद्ध में अपने अङ्ग से प्रादुर्भूत हुए शाक से तृप्त किया था।।२५।।

भरयामास परमा ततः शाकम्भरी मता।
प्रत्यक्षसिद्धिदा देवी दर्शनात्पापनाशिनी॥२६॥
इति ते कथितं क्षेत्रं द्रोणर्षेस्तपसः स्थलम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥२७॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे द्रोणतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३० ।।

शाक से भरण-पोषण करने के कारण ही उनका नाम शाकम्भरी प्रसिद्ध हुआ। वे देवी प्रत्यक्ष सिद्धि देने वाली और केवल दर्शन मात्र से ही पापों का नाश करने वाली हैं।।२६।।

इस प्रकार हमने महर्षि द्रोण के तप:स्थल का माहात्म्य वर्णन किया है। इसका श्रवण करने से नि:सन्देह सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है।।२७।।

।। इस प्रकार स्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ तीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१३० ।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-१४१०+२७=१४३७]



अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालेश्वरीकालेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अथ कालेश्वरी देवी प्रोच्यते भक्तवत्सला।
यमुनापश्चिमे भागे सर्वसिद्धिप्रदायिनी॥१॥
तत्र कालेश्वरो नाम महादेवो महार्थदः।
तस्य दर्शनमात्रेण कैलासनिलये वसेत्॥२॥
देवजुष्टा नदी तत्र पुण्यगम्या शिवप्रदा।
यमुनासङ्गता यत्र क्षेत्रं पुण्यतमं स्मृतम्॥३॥
यत्रर्षयः पुरा सर्वे शिवपूजनतत्पराः।
लेभिरे सर्वविद्याश्च ततः पुण्यतमं स्मृतम्॥४॥

कालेश्वरी एवं कालेश्वर के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द जी ने कहा

अब मैं भक्तों के प्रति दया करने वाली कालेश्वरी देवी का वर्णन करता हूँ, वे यमुना से पश्चिम भाग में स्थित रहकर सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करती हैं।।१।।

वहीं पर प्रभूत धन प्रदान करने वाले महाकालेश्वर नामक महादेव विद्यमान हैं, उनका केवल दर्शन करने से कैलास पर्वत पर निवास करने को मिलता है।।२।।

वहीं पर कल्याणप्रदायिनी देवजुष्टा नाम की एक नदी है, उसकी प्राप्ति पुण्यात्माओं को ही होती है। वह जहाँ यमुना से मिलती है, वह क्षेत्र अत्यन्त पवित्र माना गया है।।३।।

प्राचीनकाल में वहाँ सभी महर्षियों ने भगवान् शिव के पूजन में तत्पर होकर समस्त विद्याओं को प्राप्त किया था। उसी समय से वह स्थान अतिशय पवित्र कहा जाता है।।४।।

यमुनामाहात्म्यवर्णनम्

यमुनास्नानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः।
येनैकवारमपि वै कृतं स्नानमिह द्विज॥५॥
यमलोकं न गच्छेत् स पश्येच्च परमं पदम्।
यमुनायां तथा स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः॥६॥
सूर्यलोकं समासाद्य ब्रह्मलोके महीयते।
गङ्गा च यमुना चैव समे त्रैलोक्यपावने॥७॥
ययोर्दर्शनमात्रेण शिवतां याति मानवः।
शतजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥८॥
यस्य भाग्यवशान्मृत्युर्यमुनायास्तटे भवेत्।
स लभेद् ब्रह्मसायुज्यं न स भूयोऽभिजायते॥९॥
प्रसङ्गाद्वा बलात्काराद् भक्त्याऽभक्त्यापि मानवः।
यो गच्छेद्यमुनां धीरो नास्ति तत्सदृशो भुवि॥१०॥

यमुना के माहात्म्य का वर्णन

यमुना में केवल स्नान करने मात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। हे द्विज! जिसने एक बार भी यहाँ स्नान कर लिया है।।५।।

वह यमलोक का तो दर्शन नहीं ही करता है, अपितु परमपद मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। यहाँ यमुना में स्नान कर पितरों को तर्पण करना चाहिए।।६।।

ऐसा करने से मनुष्य सूर्यलोक को प्राप्त कर ब्रह्मलोक में पूजित होता है। इस प्रकार गङ्गा और यमुना दोनों ही समान रूप से तीनों लोकों में पवित्र हैं।।७।।

जिन दोनों के दर्शन करने मात्र से मनुष्य शिवरूप को प्राप्त कर लेता है और इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि मनुष्य सौ जन्म के सञ्चित किये हुए पापों से छुटकारा पा लेता है।।८।।

सौभाग्यवशात् जिस मनुष्य की मृत्यु यमुना के तट पर हो जाती है, वह ब्रह्म के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है और पुनः उसका जन्म नहीं होता है।।९।।

प्रसङ्ग प्राप्त होने पर अथवा बलात्कारपूर्वक भक्ति या अभक्ति से जिस किसी प्रकार जो धीर पुरुष यमुना की यात्रा करता है, भूमितल पर उसके समान सौभाग्यशाली अन्य कोई नहीं है।।१०।।

तावद् गर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
यावन्न जायते स्नानं यमुनायां महामते॥११॥
तावद्यमः प्रभवति श्रेष्ठः पापाद्धि शासितुम्।
यावच्च सूर्यजास्नानं न करोति महामते॥१२॥
यदि भाग्येन लभते सूर्यग्रहणपूर्वकम्।
कुरुक्षेत्राभिधात्काश्याः फलं कोटिगुणं लभेत्॥१३॥
त्रुटिमात्रमपि स्वर्णं ददाति द्विजमूर्त्तये।
स याति परमाँल्लोकान् दरिद्रो न भवेत्पुनः॥१४॥
पितृवंश्याश्च ये केचिन्मातृवंश्यास्तथापरे।
गुरुश्वशुरबन्धूनां तथा वंश्या महामुने॥१५॥
प्रयान्ति परमं स्थानं प्राप्य पिण्डोदकेऽत्र वै।
यमुनास्नानमाहात्म्यं वक्तुं केनापि शक्यते॥१६॥

हे महामतिमान्! जब तक यमुना में स्नान नहीं हो जाता, तभी तक ब्रह्महत्या आदि पाप गर्जना करते हैं, अर्थात् यमुना में स्नान करने से ब्रह्महत्यादिक पाप विनष्ट हो जाते हैं।।११।।

हे महामति! यमराज पाप का दण्ड देने के लिए तभी तक सशक्त हो सकते हैं, जब तक कोई मनुष्य यमुना में स्नान नहीं कर लेता है।।१२।।

यदि भाग्यवशात् सूर्यग्रहण के समय उस स्थान में यमुना का स्नान प्राप्त हो जाय, तो कुरुक्षेत्र और काशी से भी करोड़ गुना अधिक फल मिलता है।।१३।।

जो व्यक्ति त्रुटिमात्र भी सुवर्ण का दान ब्राह्मण को देता है, वह स्वर्ग आदि परम लोकों को प्राप्त कर लेता है और वह पुनः कभी दरिद्र नहीं होता है।।१४।।

जो कोई पिता के वंश के अथवा माता के वंश के या गुरु, श्वसुर अथवा भाई-बन्धुओं के जितने पितर हैं।।१५।।

वे सभी पितर इस क्षेत्र में पिण्ड और तर्पण के जल को प्राप्त करके परमश्रेष्ठ स्थान को चले जाते हैं। इस प्रकार यमुना में स्नान के माहात्म्य का वर्णन करने में कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है।।१६।।

नाऽहं वर्षशतैर्वक्तुं शक्नोमि मुनिवन्दित।
यत्र कुत्रापि सन्दृष्टा यस्मिन् कस्मिन्नपि क्षणे॥१७॥
स्नाताऽवगाहिता पीता दृष्टा पापप्रणाशिनी।
इति ते कथितं दिव्यं यमुनावैभवं वरम्॥१८॥
यस्य श्रवणमात्रेण यमुनास्नानजं फलम्।
लभते सुतरां विप्र मृतो ब्रह्मपुरे वसेत्॥१९॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे यमुनामाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३१ ।।

हे मुनिवन्दित! अन्य को कौन कहे, हम भी सैकड़ों वर्षपर्यन्त वर्णन करके पार नहीं पा सकते हैं। यहाँ कहीं भी जिस किसी क्षण में यमुना का दर्शन हो जाय।।१७।।

उसमें स्नान करने अथवा अवगाहन करने को मिल जाय अथवा उसके जल का पान करने को प्राप्त हो जाय और उसका दर्शन प्राप्त हो जाय, सभी पाप का नाश करने वाले ही होते हैं। इस प्रकार हमने यमुना के दिव्य वैभव का वर्णन तुम्हारे प्रति किया है।।१८।।

हे विप्र! यमुना के माहात्म्य के श्रवण करने मात्र से भी यमुना में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है और अन्त में मृत्यु होने पर ब्रह्मलोक में निवास प्राप्त होता है।।१९।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ इकतीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१३१।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१४३७+१९=१४५६]



द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

योनितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

यमुनायाः पूर्वभागे पीठं परमसुन्दरम्।
चतुर्योजनविस्तारायामं चाघनिवारणम्॥१॥
नाम्ना यवनेशपीठं सर्वदुःखनिवारणम्।
पीठं वै यवनेश्वर्य्याः सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥२॥
एतत्क्षेत्रसमं क्षेत्रं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
त्रैलोक्ये नास्ति विप्रेश सत्यमेव न संशयः॥३॥
यदन्यत्र महाभाग वर्षात्सिद्ध्यति कारकम्।
तदत्र दिवसेनैव सिद्धिमेष्यत्यसंशयम्॥४॥
योनिपर्वतमारूढो यदि देवीमुपासते।
धन्यो भवति लोकेषु तेनैवैकेन कर्मणा॥५॥

योनितीर्थ के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द जी ने कहा

यमुना के पूर्वभाग में परम सुन्दर एक तीर्थ है। जो पापों को दूर करने वाला है, उसका विस्तार चार योजन में है।।१।।

उसका नाम यवनेशपीठ है। वह समस्त दु:खों का निवारण करने वाला है। यहीं पर समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाला यवनेश्वरी-पीठ भी है।।२।।

हे विप्रेश! इस क्षेत्र के समान शीघ्र ही विश्वास कराने वाला त्रिलोकी में अन्य कोई भी क्षेत्र नहीं है, यह सत्य है, इसमें किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं है।।३।।

हे महाभाग! जो कार्य अन्य स्थानों में एक वर्ष में सिद्ध होता है, वह कार्य इस क्षेत्र में निश्चय रूप से एक ही दिन में सिद्ध हो जाता है।।४।।

जो मनुष्य योनि पर्वत पर चढ़कर देवी की उपासना करता है, वह इस एक ही कर्म से सम्पूर्ण लोकों में धन्य हो जाता है।।५।।

यदत्र संस्थिता भूता देवीलोकाधिवासिनः।
अरिमन्त्रोऽपि सञ्जप्तो देशेऽस्मिन् योनिपर्वते॥६॥
सिद्धिं प्रलभते पूर्णां सुरैरपि सुदुर्लभाम्।
राजानो वश्यतां यान्ति नश्यन्ति सर्वशत्रवः॥७॥

नारद उवाच

योनिपर्वतमाहात्म्यं सोद्भवं वक्तुमर्हसि।
यवनेशस्य पीठस्य प्रभावं च तथा वद॥८॥

स्कन्द उवाच

शृणु विप्र समुत्पत्तिं योनिक्षेत्रस्य तद्गिरेः।
माहात्म्यं विस्तराद्वच्मि सावधानोऽवधारय॥९॥
पुरा दक्षमहायज्ञे सती देहं मुमोच ह।
तद्देहं शिरसा धृत्वा प्रचचार महीमिमाम्॥१०॥

यहाँ जितने प्राणी निवास करते हैं, वे सभी देवलोक के निवासी हो जाते हैं। इस योनि पर्वत के प्रदेश में शत्रुमन्त्र का भी जप किया जाता है।।६।।

इस मन्त्र के जप करने से देवता से भी दुर्लभ सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है। राजा भी वशीभूत हो जाते हैं और सभी शत्रुओं का विनाश हो जाता है।।७।।

नारद ने कहा

उत्पत्तिसहित योनि पर्वत के माहात्म्य का वर्णन कीजिए तथा यवनेशपीठ के प्रभाव को भी बतलाइये।।८।।

स्कन्द जी ने कहा

हे विप्र! मैं योनि क्षेत्र और उस पर्वत की उत्पत्ति का वर्णन कर रहा हूँ, आप सावधान होकर श्रवण करें।।९।।

प्राचीनकाल में दक्ष प्रजापति के महायज्ञ में सती ने अपने शरीर का त्याग किया था, उसके शरीर को शिर पर धारण कर भगवान् शिव पृथिवी पर भटकने लगे।।१०।।

शिवस्य मोहनाशार्थं विष्णुश्चक्रेण नारद।
चकर्त्त खण्डशो देहं देव्याश्चैव महामते॥११॥
योनिखण्डं च पतितमत्र वै पर्वतोत्तमे।
तत्र संस्थापयामासुरीश्वरीं देवतागणाः॥१२॥
तदादीदं परं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
महादेवोऽपि तत्रैव संस्थितो लिङ्गरूपधृक्॥१३॥
योनीश्वर इति ख्यातः सर्वसिद्धिप्रदायकः।
देव्यास्तु दक्षिणे भागे कालियो नाम नागराट्॥१४॥
समायाति सदा तत्र येन केनापि हेतुना।
देवीं सम्पूज्य विधिवत्प्रयाति श्वभ्रके[1] वरे॥१५॥
पुराऽत्र कालयवनस्तपस्तप्तुं समागतः।
देवीमाराधयामास विविधैश्चोपचारकैः॥१६॥

हे नारद! भगवान् शिव के मोह को नष्ट करने के लिए भगवान् विष्णु ने अपने चक्र के द्वारा देवी के उस देह को खण्ड-खण्ड कर दिया।।११।।

हे महामते! इस श्रेष्ठ पर्वत पर उनका योनिखण्ड गिरा। तब देवताओं ने वहीं पर देवी परमेश्वरी की स्थापना कर दी।।१२।।

उसी समय से यह परम पीठ शीघ्र ही विश्वास दिलाने वाला प्रसिद्ध हो गया। भगवान् शिव भी वहाँ लिङ्ग का रूप धारण कर रहने लगे।।१३।।

सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाला वह लिङ्ग योनीश्वर नाम से प्रसिद्ध हो गया। देवी के दक्षिण भाग में कालिय नाम वाला सर्पों का राजा निवास करता है।।१४।।

वह किसी न किसी कारणवश वहाँ आता है और देवी की विधिपूर्वक पूजा कर अपने कञ्चुक में प्रविष्ट हो जाता है।।१५।।

प्राचीनकाल में यहाँ कालयवन भी तप करने के लिए आया था। उसने विविध उपचारों से देवी की आराधना की थी।।१६।।

---

१. स्वभ्रके इति ख.।

यवनेशी ततः प्रोक्ता सर्वदारिद्र्यनाशिनी।
तत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव तथा त्रयः॥
संस्थिता नदरूपेण तस्मिन्नेव नगोत्तमे॥१७॥

तस्य वै दक्षिणे भागे नाम्ना ब्रह्मनदो मुने।
तत्र संस्नाति यो मर्त्यो ब्रह्मलोके महीयते॥१८॥

तस्योत्तरप्रदेशे हि नदो वै रुद्रसंज्ञकः।
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन संज्ञायते नरैः॥१९॥

तस्य दक्षिणभागे हि जलं भस्ममयं महत्।
तत्रैकं शिवलिङ्गं च स्फाटिकाभं सुनिर्मलम्॥२०॥

तस्य दर्शनमात्रेण शिवलोके महीयते।
यत्र देव्यः सञ्चरन्ति डाकिनीरूपमाश्रिताः॥२१॥

नानावेषधराः कामरूपा वै डाकिनीगणाः।
सार्द्धद्व्यक्षरं मन्त्रं प्रजपन्ति[१] च तत्र ताः॥२२॥

तदनन्तर सम्पूर्ण दारिद्र्य का विनाश करने वाली देवी का नाम यवनेशी प्रसिद्ध हो गया। उसी श्रेष्ठ पर्वत के ऊपर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों ही नद के रूप में निवास करने लगे।।१७।।

हे मुनि! उसके दक्षिण भाग में एक ब्रह्मनद है, उसमें जो मनुष्य स्नान करता है, उसे ब्रह्मलोक में सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का भोग प्राप्त होता है।।१८।।

उस योनि पर्वत के उत्तर भाग में रुद्र नाम वाला नद है, अब मैं उसका चिह्न बतला रहा हूँ, जिससे मनुष्य उसका ज्ञान कर सकते हैं।।१९।।

उस रुद्र नद के दक्षिण भाग में भस्ममय जल है, वहीं पर स्फटिक के समान चमकीला तथा निर्मल एक लिङ्ग भी है।।२०।।

उसके दर्शन मात्र से शिवलोक में ऐश्वर्य का उपभोग करने को प्राप्त होता है, यहाँ देवियाँ डाकिनी का रूप धारण कर विचरण करती रहती हैं।।२१।।

उन डाकिनियों का समुदाय अपनी इच्छा के अनुरूप स्वरूप बनाने वाला तथा अनेक प्रकार का वेष धारण करने वाला है। वहाँ पर वे सब ढाई अक्षर वाले मन्त्र का जप करती रहती हैं।।२२।।

---

१. प्रजमन्तीति ख., प्रजपतीति ग.।

तत्प्रभावेण विप्रर्षे परमां सिद्धिमागताः।
प्रच्छन्नरूपास्ताः सर्वा विचरन्ति महीतले॥२३॥
अञ्जनाकर्षणाद्याश्च खेचरीप्रमुखा मुने।
सिद्धयः करगास्तासां यत्नतः प्रविशेन्नरः[१]॥२४॥

विष्णुनदस्य स्थितिः

गिरेश्च पूर्वभागे हि नाम्ना विष्णुनदो मुने।
पादुके विष्णुना त्यक्ते पुरा वै तत्र पर्वते॥२५॥
तत्पूर्वोत्तरप्रदेशाद्धि समायाति रमा नदी।
तयोस्तु सङ्गमं पुण्यं विष्णुतीर्थमनुत्तमम्॥२६॥
तत्र स्नात्वा नरो याति विष्णुलोकं न संशयः।

हे विप्रर्षि! उसके प्रभाव से उन्हें परम सिद्धि का लाभ हुआ है, इसलिए वे सब गुप्त रूप धारण कर पृथिवीतल पर विचरण करती रहती हैं।।२३।।

हे मुनि! अञ्जन, आकर्षण आदि तथा खेचरी प्रमुख सिद्धियाँ उनको हस्तगत हो जाती हैं। इसलिए मनुष्य को वहाँ सावधानीपूर्वक प्रवेश करना चाहिए।।२४।।

विष्णुनद की स्थिति

उस पर्वत के पूर्वभाग में विष्णुनद है। हे मुनि! प्राचीनकाल में उस पर्वत के ऊपर उसी स्थान में भगवान् विष्णु ने अपनी पादुकाओं का परित्याग किया था।।२५।।

उसके पूर्वोत्तर के भाग से रमा नाम की नदी का आगमन होता है। उन दोनों का सङ्गम स्थल सर्वोत्तम विष्णुतीर्थ कहलाता है।।२६।।

उसमें स्नान कर मनुष्य निःसन्देह भगवान् विष्णु के लोक में चला जाता है।

---

१. प्रविशन्ति हीति क.।

शिवतीर्थस्य स्थितिः

ततः पश्चिमदिग्भागे यमुनायास्तटे शुभे॥२७॥
शिवतीर्थमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम्।
ऋषिकुण्डं च तत्रैव सर्वपापक्षयङ्करम्॥२८॥
तत्र स्नात्वा नरो याति शिवलोकं न संशयः।

शरभङ्गतीर्थस्य वसिष्ठतीर्थस्य च स्थितिः

तस्य वामप्रदेशे हि शरभङ्गस्य तीर्थकम्॥२९॥
तत्र स्नात्वा दिवं याति यावदाभूतसम्प्लवम्।
ततः शरद्वयेऽत्यर्थं वासिष्ठं तीर्थमुत्तमम्॥३०॥
यत्राऽऽयाति नदश्रेष्ठो ब्रह्मेति परिकीर्तितः।
वसिष्ठेश्वरस्तु तत्रैव शिवः परमसुन्दरः॥३१॥
तत ऊर्ध्वं पर्वते वै सप्तधाराः पतन्ति हि।
तासां संस्पर्शनादेव यमलोकं न गच्छति॥३२॥

शिवतीर्थ की स्थिति

वहाँ से पश्चिम दिशा में यमुना के शुभ तट पर शिवलोक को प्रदान करने वाला शिवतीर्थ नाम का एक क्षेत्र है। वहीं पर एक ऋषिकुण्ड भी है, जो समस्त पापों का क्षय करने वाला है।।२७-२८।।

उसमें स्नान करके भी मनुष्य निश्चित रूप से शिवलोक में चला जाता है।

शरभङ्ग तीर्थ और वसिष्ठ तीर्थ की स्थिति

उसके वामभाग में शरभङ्ग का एक तीर्थ है; उसमें स्नान कर मनुष्य प्रलयपर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है। वहाँ से दो बाण की दूरी पर एक श्रेष्ठ वसिष्ठ तीर्थ है।२९-३०।।

वहीं पर नदियों में श्रेष्ठ ब्रह्मनद आता है, ऐसा कहा गया है। वहीं पर परम सुन्दर वसिष्ठेश्वर नामक शिव विद्यमान हैं।।३१।।

उसके ऊपरी भाग में पर्वत पर सात धाराएँ गिरती हैं। उन धाराओं के स्पर्श करने मात्र से ही मनुष्य यमलोक में नहीं जाता है।।३२।।

इति ते कथितं गुह्यं पीठं परमकं पितुः।
नित्यं सन्निहितो यत्र देव्या सह सदाशिवः॥३३॥
इदं क्षेत्रस्य माहात्म्यं यः श्रृणोति पठेदपि।
स याति परमाँल्लोकान् यत्र गत्वा न शोचति॥३४॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे केदारखण्डे योनितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३२॥

इस प्रकार हमने तुम्हारे प्रति ब्रह्मा के गोपनीय पीठ का वर्णन किया है। जहाँ पर भगवान् सदाशिव देवी पार्वती के साथ नित्य निवास करते हैं। जो मनुष्य इस क्षेत्र के माहात्म्य को सुनता है अथवा पढ़ता है, वह उन परम लोकों में जाता है, जहाँ जाने से पुन: शोक नहीं रह जाता है॥३३-३४॥

॥ इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ बत्तीस अध्याय पूर्ण हुआ॥१३२॥

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-१४५६+३४=१४९०]



अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सुरकूटगिरौ सुरेश्वरीमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

हिमवद्दक्षिणे भागे यानि पीठानि सन्ति हि।
तानि सर्वाणि भगवन् देव विस्तरतो वद॥१॥
केषु सर्वेण भावेन शर्वेण सह पार्वती।
निरन्तरं प्रवसते तद्गदस्व महामुने॥२॥
घोरे कलियुगे तत्र नराः पुण्यविवर्जिताः।
स्वप्नेऽपि तेषां सिद्धिर्हि दुर्लभा नात्र संशयः॥३॥
कथं तेषां गतिर्देव काम्यसिद्धिश्च षण्मुख।
केदारमण्डलेऽन्यानि देवीक्षेत्राणि मे वद॥४॥
येषां स्वल्पप्रयासेन सुखिनः स्युर्नरा विभो।
येषां सन्दर्शनादेव पापराशिर्विनश्यति॥५॥

सुरकूट पर्वत पर सुरेश्वरी के माहात्म्य का वर्णन

नारद ने कहा

हे देव! हिमालय के दक्षिण भाग में जितने पीठ हैं, उन सबका वर्णन विस्तारपूर्वक कीजिए।।१।।

किन स्थानों में पार्वती अपनी सम्पूर्ण भावनाओं से युक्त शिव के साथ निरन्तर निवास करती हैं, हे महामुनि उसे कहें।।२।।

घोर कलियुग में मनुष्य पुण्य से रहित होंगे। उन्हें सिद्धि की प्राप्ति स्वप्न में भी दुर्लभ होगी। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।।३।।

हे देव! ऐसे कलियुगी प्राणी की सद्गति कैसे होगी। हे षडानन! उनकी कामनाओं की सिद्धि कैसे होगी। साथ ही केदारखण्ड में अन्य जो देवी के क्षेत्र हों, उनका भी वर्णन हमारे प्रति करने की कृपा करें।।४।।

हे विभो! जिस प्रकार मनुष्य अल्प परिश्रम करके ही सुखी हो जाँय और जिनके दर्शन मात्र से पापराशि क्षय हो जाय।।५।।

तानि मे शंस भगवन्नगोप्यं ब्रह्मबन्धुषु।
शृण्वतस्ते मुखाम्भोजात्तृप्तिर्मे जायते न हि॥६॥

स्कन्द उवाच

साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ।
सर्वं ते कथयिष्यामि सावधानोऽवधारय॥७॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तत्र स्नात्वाऽत्र सम्भवेत्।
कर्माऽत्र सुकृतं कृत्वा परब्रह्माधिगच्छति॥८॥
स्वर्गभूमिरियं ख्याता यतस्तत्सरणिस्तथा।
अत्र वै वासमात्रेण लभते परमं पदम्॥९॥
श्रृण्वत्र परमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
गङ्गायाः पश्चिमे भागे सुरकूटगिरिः स्थितः॥१०॥
तत्र सुरेश्वरी नाम्नी सर्वसिद्धिप्रदायिनी।
यस्याः सन्दर्शनादेव शिवलोके महीयते॥११॥

हे भगवन्! उन सबका हमारे प्रति वर्णन करें, क्योंकि ब्रह्मबन्धु ब्राह्मणों से कोई वस्तु गोप्य नहीं होती है। आपके मुखकमल से श्रवण करने वाले मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।।६।।

स्कन्द जी ने कहा

हे निष्पाप, द्विजश्रेष्ठ! आप धन्य हैं, धन्य हैं, आपने हमसे इस प्रकार की जिज्ञासा की है। इसलिए मैं आपसे सब कुछ वर्णन करूँगा। आप सावधानीपूर्वक उसे अवधारण करें।।७।।

भूमि पर जितने तीर्थ हैं, उनमें स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है। इन तीर्थों में शुभ कर्म करने से मनुष्य परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।।८।।

इसे स्वर्गभूमि कहा गया है, क्योंकि यह स्वर्ग का मार्ग है। वहाँ केवल निवास करने से परमपद की प्राप्ति हो जाती है।।९।।

शीघ्र ही विश्वास कराने वाला यहाँ एक पीठ है, उसे सुनो। गङ्गा के पश्चिम भाग में सुरकूट नाम का पर्वत है।।१०।।

वहाँ सुरेश्वरी नाम की देवी हैं, जो सम्पूर्ण सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं। उनके दर्शन करने मात्र से शिवलोक में ऐश्वर्य का उपभोग करने को मिलता है।।११।।

शार्दूलोपरि संरूढा भ्रमते तद्वने परा।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चार्द्धरात्रके[१]॥१२॥
सर्वे देवाः समायान्ति दर्शनार्थं महामते।
तथा बहुविधा शब्दाः श्रूयन्ते पुण्यकृज्जनैः॥१३॥
नृत्यन्त्यप्सरसस्तत्र गीतं कुर्वन्ति गीतिनः।
सुरेश्वरी समुद्दिष्टा कुष्ठादिगदनाशिनी॥१४॥
सुरकूटे गिरौ विप्र या या धारा पतन्ति हि।
ताः सर्वाः सदृशा ज्ञेया गङ्गाया नात्र संशयः॥१५॥
एकाकी यस्तत्र गच्छेत्संसारपरमास्थितः।
स्वयं वा म्रियते तत्र निःसन्तानोऽथवा भवेत्॥१६॥
तस्मादस्मिन् वरे पीठे सद्यः प्रत्ययकारके।
जितेन्द्रियः सत्यवचाः प्रगच्छेन्मानवर्जितः॥१७॥
एतत्पीठसमं पीठं त्रैलोक्ये न हि विद्यते।
यस्त्वत्र जापी विप्रेश त्रिरात्रं नियतेन्द्रियः॥१८॥

वहाँ वन में श्रेष्ठ भगवती सिंह पर आरूढ़ होकर भ्रमण करती हैं। हे महामति! अष्टमी, चतुर्दशी तथा नवमी के दिन अर्धरात्रि में भगवती का दर्शन करने के लिए सभी देवता वहाँ आते हैं। पुण्यात्मा जनों को वहाँ अनेक प्रकार के शब्द श्रवणगोचर होते हैं।।१२-१३।।

वहाँ अप्सराओं का समूह नृत्य करता है और गायकों के वृन्द गान करते हैं। सुरेश्वरी कुष्ठ आदि रोगों का विनाश करने वाली कही गयी है।।१४।।

हे विप्र! सुरकूट पर्वत पर जितनी धाराएँ निपतित होती हैं, उन सभी धाराओं को गङ्गा के सदृश मानना चाहिए, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए।।१५।।

इस संसार में आसक्त होकर जो मनुष्य वहाँ अकेला जाता है, वह मानों स्वयं मर जाता है अथवा सन्तानरहित होता है।।१६।।

इसलिए शीघ्र विश्वास उत्पन्न कराने वाले इस पीठ में जितेन्द्रिय होकर सत्यसम्भाषणपूर्वक मान का परित्याग कर गमन करना चाहिए।।१७।।

इस पीठ के समान तीनों लोकों में अन्य कोई पीठ नहीं है। हे द्विजश्रेष्ठ! जो व्यक्ति तीन रात्रिपर्यन्त इन्द्रियनिग्रहपूर्वक जप करता है।।१८।।

१. चार्द्धरात्रिके इति ग.।

प्राप्नोति परमां सिद्धिं सत्यमेव न संशयः।
तस्मिन्नेव महाभाग तथा शौचविवर्जितः॥१९॥
गच्छति ब्राह्मणश्रेष्ठ पुनरावर्त्तते गृहे।

कालिकादेव्या वर्णनम्

तस्या वै पश्चिमे भागे कालिका नाम विश्रुता॥२०॥
यस्य तद्दर्शनं विप्र जायते स मृतिं[१] स्मरेत्।
सिंहव्याघ्राश्च महिषा भल्लूका वनकुक्कुटाः॥२१॥
वसन्ति तत्र पीठे हि ज्ञेया दुर्जनभीषकाः।
तत्तद्रूपं समास्थाय गणास्ते नात्र संशयः॥२२॥
निवारयन्ति दुष्टान् वै स्त्रीसुरद्वेषिणस्तथा।
देवीभक्तिं व्यतिक्रम्येतरदेवमुपासते॥२३॥
ब्राह्मणेतरवर्णाश्च सुरया रहिता मुने।
ब्राह्मणेन न कर्तव्यं सुरापानं कदापि वै॥२४॥

वह मनुष्य परम श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त कर लेता है, यह सत्य है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। हे महाभाग! उस तीर्थ में जो मनुष्य शौच से रहित होकर गमन करता है।।१९।।

कालिकादेवी का वर्णन

ऐसे मनुष्य की मुक्ति नहीं होती, उसे पुनः पुनः जन्म लेना पड़ता है। उसके पश्चिम भाग में कालिका नाम वाली देवी प्रसिद्ध हैं।।२०।।

हे विप्र! जिसको उनका दर्शन हो जाता है, वह मनुष्य अपनी मृत्यु का ही स्मरण करता है। सिंह, व्याघ्र, वनभैंसे, भालू, वनमुर्गे वहाँ निवास करते हैं।।२१।।

ऐसे हिंसक जीव उस पीठ में दुर्जन को डराने वाले हैं। उनके गण ही उन-उन रूपों को धारण कर वहाँ निवास करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२२।।

वे लोग दुष्टों को तथा स्त्री, ब्राह्मण एवं देवता से द्वेष करने वालों को वहाँ जाने से रोकते हैं। यहाँ व्यक्ति देवी की भक्ति को छोड़कर अन्य देवता की भी उपासना करते हैं।।२३।।

हे मुनि! यहाँ ब्राह्मण से इतर वर्ण वाले मनुष्य को भी सुरा से रहित रहना चाहिए। ब्राह्मण को तो कदापि सुरापान नहीं करना चाहिए।।२४।।

१. स्मृतिमिति ख.।

यो मोहादपि चाज्ञानात् सुरापानं करोति वै।
देवीशापमवाप्नोति परत्र नरके व्रजेत्॥२५॥
यत्र चाऽऽवश्यकं कर्म सुरया विप्रसत्तम।
तत्र मिथ्या वदेद्धीमान् दुग्धे वा लवणं क्षिपेत्॥२६॥
सुरेश्वरीं महादेवीं वासवो वृत्रसूदनः।
आराधयामास हरी राज्यभ्रष्टो महामते॥२७॥
ततः सुरेश्वरी ख्याता सर्वापत्तिविनाशिनी।
तत्रैव शिवलिङ्गं वै सुरेश्वरमिति स्फुटम्॥२८॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सुरेश्वरीमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३३।।

जो व्यक्ति मोहवश या अज्ञान के कारण सुरा का पान करता है, वह देवी के शाप को प्राप्त करता है और परलोक में नरक में जाता है।।२५।।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! यदि किसी कर्म में सुरा आवश्यक भी हो, तो बुद्धिमान् को वहाँ मिथ्या भाषण कर देना चाहिए अथवा दूध में नमक डाल देना चाहिए।।२६।।

हे महामतिमान् नारद! प्राचीनकाल में वृत्रासुर का वध करने वाले इन्द्र ने राज्य से भ्रष्ट होकर यहाँ पर महादेवी सुरेश्वरी की अराधना की थी।।२७।।

उसी समय से यह देवी सुरेश्वर इन्द्र से पूजित होने के कारण सुरेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुईं। वे सभी प्रकार की आपत्तियों का विनाश करने वाली हैं। वहीं पर सुरेश्वर नाम से विख्यात एक शिवलिङ्ग भी है।।२८।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ तैंतीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१३३।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-१४९०+२८=१५१८]



अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

चन्द्रवंश्यरजिनृपाख्यानम्

नारद उवाच

राज्यभ्रष्टः कथं जातः शक्रो देवपतिर्विभो।
कथं राज्यं च सम्प्राप्तं तत्र सम्पूज्य चेश्वरीम्॥१॥

स्कन्द उवाच

पुरा रजिर्महाराजश्चन्द्रान्वयसमुद्भवः।
पृथिव्याः सागरान्तायाः पतिरासीन्महामते॥२॥
कन्दर्प इव रूपाढ्यो दाने वै बलिनोपमः।
कालदण्ड इवासीत्स सङ्गरे नियतः शुचिः॥३॥
पालयामास धर्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
नाकालमरणं राज्ये तस्य राज्ञो बभूव ह॥४॥

चन्द्रवंशी महाराज रजि का आख्यान

नारद ने कहा

हे विभो! देवराज इन्द्र किस प्रकार राज्य से भ्रष्ट हो गये और परमेश्वरी का वहाँ पूजन कर पुनः किस प्रकार उन्हें राज्य की प्राप्ति हुई।।१।।

स्कन्द ने कहा

हे महामतिमान्! प्राचीनकाल में चन्द्रवंश में रजि नाम का एक राजा हुआ था। वह सागरपर्यन्त समस्त पृथिवी का शासन करता था।।२।।

वह राजा रूप में कामदेव, दान करने में राजा बलि और संग्राम में यमराज के समान था। वह नियम पालन करने वाला पवित्र राजा था।।३।।

वह राजा अपने औरस पुत्र के समान मानता हुआ धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता था। उस राजा के राज्य में किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी।।४।।

कालवर्षी च पर्जन्य औषध्यः फलपूजिताः।
एवं शासति पृथ्वीन्द्रे रजौ राजनि नारद॥५॥
दैवतैः सह सङ्ग्रामो दैत्यानामभवन्मुने।
दैत्यैरिन्द्रो निजस्थानाच्चालितो द्विजपुङ्गव॥६॥

दैत्यपराजितशक्रप्रार्थनया रजिनाऽसुरद्रावणम्

जगाम शरणं तस्य रजिराज्ञो महात्मनः।
उवाच वचनं चेदं प्रार्थयन् बहुशस्तदा॥७॥
रजे राज्यं हि देवानां हृतं दैत्यैर्महामते।
साहाय्यं मे महाबाहो कर्त्तुमर्हसि मानद॥८॥
त्वं श्रेष्ठेन्द्रपदे राजन् दैत्यानां नाशनं कुरु।
इति तद्वेदितं श्रुत्वा रजिर्नाम महायशाः॥९॥
दैत्यान् योद्धुं मनश्चक्रे स्पृहन्निन्द्रपदं महत्।
जगाम सहसा तत्र चतुरङ्गबलान्वितः॥१०॥

हे नारद! पृथिवीपति राजा रजि के शासन करने पर मेघ समय पर वर्षा करते थे तथा औषधियाँ सदा फल से पूर्ण रहती थीं।।५।।

हे मुनि! उसी समय देवताओं के साथ दैत्यों का संग्राम हुआ। हे द्विजश्रेष्ठ! दैत्यों ने इन्द्र को अपने स्थान से च्युत कर दिया था।।६।।

दैत्यों से पराजित इन्द्र की प्रार्थना से रजि का असुरों से युद्ध

तब इन्द्र महात्मा राजा रजि की शरण में गये और अनेक प्रकार से प्रार्थना करते हुए उनसे यह वचन कहे।।७।।

हे महामति महाराज रजि! आप मान दिलाने वाले हैं। दैत्यों ने देवताओं के राज्य का हरण कर लिया है। हे महाबाहु! आप हम लोगों की सहायता कर सकते हैं।।८।।

हे राजन्! आप श्रेष्ठ इन्द्र के पद पर अधिरूढ़ हुए दैत्यों का विनाश करें। जब महाराज रजि ने इन्द्र का इस प्रकार का वचन सुना।।९।।

तब वह इन्द्र के महान् पद की प्राप्ति की अभिलाषा करता हुआ दैत्यों से युद्ध करने के लिए मन बनाया। तदनन्तर वह चतुरङ्गिणी सेना से युक्त होकर वहाँ गया।।१०।।

युयुधे दानवैः सार्द्धं पञ्चवर्षशतं समाः।
हताश्च तेन दैत्येशा हतशेषा ययुस्तलम्॥
पदं जिगमिषू राजा रजिर्नाम दिवस्पतेः॥११॥
विज्ञापितो महाराजो बद्धाञ्जलिपुटेन हि।
वासवेन महाभाग बहुशो धरणीहरिः॥१२॥
पुत्रोऽहं तव भूमीन्द्र मां राज्ये ह्यभिषेचय।
जनको व्रतदश्चैव विद्यादाता तु यो भवेत्॥१३॥
यस्यान्नं भुज्यते नित्यं भयेभ्यो यश्च रक्षति।
पञ्चैते पितरः प्रोक्तास्तेषां त्वं पञ्चमो ह्यसि॥१४॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा करुणं करुणानिधिः।
तमेव स्थापयामास देवेन्द्रमतिनम्रकम्॥१५॥
एवं बहुतिथे काले व्यतीते दैवतेश्वरे।
दिवं शशास विप्रेश रजिर्वृद्धो बभूव ह॥१६॥

उन्होंने दैत्यों के साथ पाँच सौ वर्ष तक युद्ध किया। उस युद्ध में उन्होंने दैत्य सेनापतियों को मार डाला, जो मरने से बच गये, वे पाताल में चले गये।।११।।

तदनन्तर राजा रजि के मन में इन्द्र के पद को प्राप्त करने की इच्छा होने लगी। हे महाभाग! तब इन्द्र ने हाथ जोड़कर महाराज रजि से सूचित किया।।१२।।

इन्द्र ने राजा से अनेकों बार कहा कि हे पृथिवीपति! मैं आपका पुत्र हूँ। इसलिए आप मुझे पुनः मेरे राज्य पर हमारा अभिषेक कर दें।।१३।।

क्योंकि जन्म देने वाला, मन्त्र देने वाला, विद्यागुरु, जिसका अन्न खाया जाता है तथा जो भय से रक्षा करता है। ये पाँचवें पिता कहलाते हैं।।१४।।

उनमें आप मेरे पाँचों प्रकार के पिता हैं। जब करुणानिधान महाराज रजि ने इन्द्र के इस प्रकार के करुणाजनक वचन सुने, तब उन्होंने अतिनम्र इन्द्र को ही उनके आसन पर अभिषिक्त कर दिया।।१५।।

इस प्रकार इन्द्रलोक का शासन करते हुए देवेश्वर इन्द्र का बहुत काल व्यतीत हो गया। हे विप्रेश! इधर राजा रजि भी वृद्ध हो गये।।१६।।

रजिपुत्रेभ्यः स्वर्गराज्यस्योद्धारः

रजेः पञ्चशतं पुत्रा ह्यासन्नप्रभवा मुने।
रजिर्ययौ हिमवति तपसे धृतमानसः॥१७॥
ते वै पञ्चशतं पुत्रा इन्द्रराज्ये मनो दधुः।
ऊचुश्च वासवं ते वै पित्राऽस्माकं जितं पुरा॥१८॥
स्वर्गाधिपत्यं देवेश प्रयच्छेति हि नः परम्।
इति तेषां दूतमुखाच्छ्रुत्वा पौरुषमाशु वै।
आदिदेश तदा युद्धं राज्योन्मादो[१] हि वासवः॥१९॥
युद्धोद्योगं तेऽपि श्रुत्वा सन्नद्धा वै समाययुः।
यत्रेन्द्रो भगवानिन्द्रः सर्वदेवैरनुष्ठितः॥२०॥
इन्द्रोऽपि दैवतैः सार्द्धं युद्धायाऽऽशु समाययौ।
युयुधुः सङ्गरे तत्र रजिपुत्रास्तथाऽमराः॥२१॥

रजिपुत्रों से स्वर्गराज्य का उद्धार

हे मुनि! राजा रजि के भी पाँच सौ पुत्र बड़े पराक्रमी थे। राजा रजि तप करने के लिए मन में दृढ़ निश्चय कर हिमालय पर्वत पर चले गये।।१७।।

इधर राजा रजि के वे पाँच सौ पुत्र इन्द्र के राज्य को प्राप्त करने का विचार करने लगे। वे लोग इन्द्र से कहे, प्राचीनकाल में मेरे पिता ने तुम्हें जीत लिया था।।१८।।

हे देवेश्वर! इसलिए आप हम लोगों को इस श्रेष्ठ स्वर्ग का आधिपत्य प्रदान कर दें। उनके दूतों के मुख से इस प्रकार के वचन को सुनकर राज्यलक्ष्मी के मद से उन्मत्त इन्द्र ने तत्काल युद्ध करने का आदेश दे दिया।।१९।।

इन्द्र के युद्ध के उद्योग को सुनकर वे राजपुत्र भी युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर वहाँ आ गये, जहाँ सम्पूर्ण देवताओं के साथ इन्द्र विद्यमान थे।।२०।।

तब इन्द्र भी देवताओं को साथ लेकर युद्ध करने के लिए तत्काल चल दिये। इसके बाद रणाङ्गण में रजि के पुत्र और देवताओं का घमासान युद्ध हुआ।।२१।।

प्रबलै रजिपुत्रैश्च जितो वृत्रनिषूदनः।
राज्यभ्रष्टो ययौ क्षीरसमुद्रान्तर्जलाशये॥२२॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सुरेश्वरीमाहात्म्ये इन्द्रपराजयो नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३४।।

तब प्रबल रजिपुत्रों ने वृत्रासुरविनाशी इन्द्र को पराजित कर दिया, इसके बाद राज्य से भ्रष्ट होकर इन्द्र क्षीरसागर के मध्य में स्थित एक जलाशय में चले गये।।२२।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ चौंतीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१३४।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१५१८+२२=१५४०]



अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रजिनृपसुतपराभूतस्य देवेन्द्रस्य विष्णवाराधनाय सुरगुरूपदेशः

स्कन्द उवाच

इन्द्रोऽपि तत्र गत्वा हि क्षीराब्धेर्द्वीप उत्तमे।
सरोवरान्तरे पद्मकर्णिकायां विवेश ह॥१॥
सन्त्रस्तो रजिपुत्रैः स उद्भटैरुरुविक्रमैः।
एवं बहुतिथे काले याते देवगुरुः स्वयम्॥२॥
जगाम यत्र देवेशो भयलीनोऽब्जकोटरे।
तत्र गत्वा गुरुर्विप्र वासवं प्रजगाद ह॥३॥
वासव क्व गतोऽसि त्वमित्युच्चैर्वचसां पतिः।
पुनः पुनरुवाचेदं तत्र द्वीपेऽब्धिमध्यगे॥४॥

पराजित इन्द्र को देवगुरु बृहस्पति द्वारा विष्णु की आराधना का उपदेश

स्कन्द जी ने कहा

देवराज इन्द्र क्षीरसागर के उत्तम द्वीप में जाकर सरोवर के भीतर कमल की कर्णिका में प्रविष्ट हो गये।।१।।

इन्द्र प्रबल पराक्रम वाले उद्भट रजि के पुत्रों से बहुत अधिक भयभीत थे। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जाने पर स्वयं देवताओं के गुरु बृहस्पति वहाँ गये।।२।।

जहाँ कमल के कोटर में इन्द्र भय के कारण छिपे हुए थे। हे विप्र! देवगुरु बृहस्पति वहाँ जाकर इन्द्र के प्रति इस प्रकार बोले।।३।।

समुद्र के मध्य में स्थित उस श्रेष्ठ द्वीप में पहुँचकर वाचस्पति बारम्बार उच्च स्वर से यह कहने लगे—हे इन्द्र! तुम कहाँ हो?।।४।।

ज्ञात्वा बृहस्पतिं तत्र ह्यागतं मुनिसत्तम।
मन्दमन्दमुवाचेदं कर्णिकायामिहास्मि वै॥५॥
रजिपुत्रभयाक्रान्तो न बहिर्गन्तुमुत्सहे।
इति तद्भाषितं श्रुत्वा वासवस्य गुरुः पुनः॥६॥
उवाचेदं महादेव बहिरागन्तुमर्हसि।
अहं तव प्रियं वच्मि यथा तेऽधिपता भवेत्॥७॥
ततो मनोहरा वाचो गुरोः श्रुत्वा दिवस्पतिः।
आजगाम बहिस्तूर्णं प्रपपात पदोस्तथा॥८॥
तमुत्थाप्य देवराजं वाचस्पतिरुदारधीः।
उवाच वचनं चेदं विष्णुं भज महामते॥९॥
स ते राज्याप्तये नूनं हितं तव वदिष्यति।
इत्युक्तः सहसा जिष्णुर्विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमे॥१०॥

हे मुनिसत्तम! बृहस्पति को वहाँ आया हुआ जानकर इन्द्र ने धीरे-धीरे यह कहा—मैं यहाँ कमल के कोटर में हूँ।।५।।

रजि के पुत्रों के भय से आक्रान्त मैं बाहर जाने का साहस नहीं कर पा रहा हूँ। जब देवगुरु बृहस्पति ने इन्द्र के ऐसे वाक्य सुने।।६।।

तब उन्होंने कहा—हे महादेव! तुम बाहर आ सकते हो। मैं तुम्हें हित की बात बतलाऊँगा, जिससे तुम्हें पुनः आधिपत्य की प्राप्ति हो जायेगी।।७।।

जब इन्द्र ने गुरु के इस प्रकार के मनोहर वचन सुने, तब वे शीघ्र ही बाहर निकलकर गुरु बृहस्पति के चरणों में गिर पड़े।।८।।

उदारमति वाले देवगुरु बृहस्पति ने देवराज इन्द्र को उठाकर यह वचन कहा—हे महामतिमान्! तुम भगवान् विष्णु का भजन करो।।९।।

वे अवश्य ही तुम्हारी राज्य-प्राप्ति के लिए कल्याणकारी उपाय बतलायेंगे। इस प्रकार कहने पर इन्द्र तत्काल ही भगवान् विष्णु की स्तुति करने के लिए सन्नद्ध हो गये।।१०।।

इन्द्र उवाच

नमः सहस्त्रशीर्षाय सहस्त्रपादे नमो नमः।
सहस्त्राक्षाय देवाय भूमिं स्पृष्ट्वावतिष्ठते॥११॥
नमो देवाधिदेवाय यदूनां पतये नमः।
देवकीगर्भवासाय वासुदेवाय ते नमः॥१२॥
नमो मत्स्यस्वरूपाय कूर्मरूपाय ते नमः।
नमः कीलस्वरूपाय हिरण्याक्षविमर्दिने॥१३॥
नरसिंहस्वरूपाय दैत्योरःस्थलपाटिने।
नमो वामनरूपाय बलिं छलयते नमः॥१४॥
जामदग्न्यस्वरूपाय क्षत्रियान्तकृते नमः।
नमः पौलस्त्यनाशाय नमस्ते रामरूपिणे॥१५॥

इन्द्र ने कहा

हजारों शिरों वाले आपको नमस्कार है, हजारों पैर वाले को पुनः पुनः नमस्कार है। हजारों नेत्र वाले देव को, जो भूमि का स्पर्श करके स्थित रहते हैं, उनको नमस्कार है।।११।।

देवताओं के भी देवता को नमस्कार है। यदुवंश के स्वामी को नमस्कार है। देवकी के गर्भ में निवास करने वाले वसुदेव के पुत्र को नमस्कार है।।१२।।

मत्स्य का अवतार धारण करने वाले को नमस्कार है, कूर्म का अवतार धारण करने वाले को नमस्कार है। कोल (वराह) के स्वरूप को धारण कर हिरण्याक्ष का वध करने वाले को नमस्कार है।१३।।

दैत्य हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल का विदारण करने के लिए नरसिंह का स्वरूप धारण करने वाले तुमको नमस्कार है। बलि को छलने के लिए वामन का स्वरूप धारण करने वाले विष्णु को नमस्कार है।।१४।।

जमदग्नि के पुत्र परशुराम के स्वरूप को धारण कर क्षत्रियों का अन्त करने वाले को नमस्कार है। पुलस्त्य के पौत्र रावण का नाश करने वाले, राम के स्वरूप को धारण करने वाले विष्णु को नमस्कार है।।१५।।

बलभद्रस्वरूपाय प्रलम्बनिधनाय ते।
नमो बदरिवासाय नमस्ते शुद्धरूपिणे॥१६॥
नमो म्लेच्छप्रहर्त्रे ते कल्किरूपाय ते नमः।
हयग्रीवाय देवाय देवानां पतये नमः॥१७॥
सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं सृष्टिं पालयते नमः।
नमस्तुभ्यं सृष्टिहर्त्रे वेदगम्याय ते नमः॥१८॥
वेदान्तप्रतिपाद्याय बुधानां बुद्धिदायिने[१]।
नमः किञ्जल्कवासाय जगद्वासाय ते नमः॥१९॥
नमो नीरदघोषाय नमो नीरदरूपिणे।
निरञ्जनाय शुद्धाय निर्विकाराय ते नमः॥२०॥
नमो वेदस्वरूपाय वेदवन्द्याय ते नमः।
नमस्ते कमलाकान्त विश्वाधार नमोऽस्तु ते॥२१॥

प्रलम्बासुर का वध करने के लिए बलराम का अवतार धारण करने वाले तुमको नमस्कार है। बदरीविशाल में निवास करने वाले एवं विशुद्ध रूप वाले, नर-नारायण के स्वरूप को धारण करने वाले को नमस्कार है।।१६।।

म्लेच्छों का विनाश करने के लिए कल्कि अवतार धारण करने वाले तुमको नमस्कार है। हयग्रीव का वध करने वाले, हयग्रीव नाम वाले देवता एवं देवताओं के भी स्वामी आपको नमस्कार है।।१७।।

सृष्टि की रचना करने वाले तुमको नमस्कार है। सृष्टि का पालन करने वाले तुम्हीं हो, इसलिए तुमको नमस्कार है। सृष्टि का संहार करने वाले तुमको नमस्कार है। आप वेद से गम्य हैं, ऐसे आपको नमस्कार है। आप वेदान्त के द्वारा प्रतिपादन करने योग्य हैं, विद्वानों को भी आप बुद्धि प्रदान करने वाले हैं, कमलों के केशर में निवास करने वाले तुमको नमस्कार है। जगत् में व्याप्त रहने वाले आपको नमस्कार है।।१८-१९।।

मेघ के समान ध्वनि वाले आपको नमस्कार है, मेघ के समान रूप (वर्ण) वाले आपको नमस्कार है। आप निरञ्जन निर्विकार एवं शुद्धस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है।।२०।।

वेद आपका ही स्वरूप है, आप वेद के द्वारा वन्दनीय हैं। इसलिए आपको नमस्कार है। हे कमला लक्ष्मी के स्वामी! आपको नमस्कार है। आप विश्व के आधार हैं, इसलिए आपको नमस्कार है।।२१।।

---

१. बुद्धिदायिनीति ख.।

नमः पीतसमुद्राय पीतवासाय ते नमः।
वनमालाविशोभाय नमः कोटीनतेजसे॥२२॥
नमः प्रचलनेत्राय नारायण नमोऽस्तु ते।
लक्ष्मीपते नमस्तुभ्यं सर्वशत्रुनिषूदिने॥२३॥

स्कन्द उवाच

इति स्तुतः स भगवानाविरासीन्महामते।
कोटिसूर्यप्रतीकाशो युगान्ताग्निविलोचनः॥२४॥
सनकादिमुनीन्द्रैश्च सेव्यमानो रमापतिः।
गरुडाचलमारुढो नवनीरदरूपधृक्॥२५॥
पीतवासाश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्राम्बुजैर्यतः।
मेघगम्भीरया वाचा जगाद बलसूदनम्॥२६॥

अगस्त्य रूप में समुद्र का पान करने वाले तुमको नमस्कार है। पीले वस्त्र धारण करने वाले आपको नमस्कार है। वनमाला से विभूषित रहने वाले तुमको नमस्कार है। करोड़ों सूर्य के समान तेज वाले आपको नमस्कार है।।२२।।

चञ्चल नेत्रों वाले आपको नमस्कार है। हे नारायण! आप जल में निवास करते हैं, इसलिए आपको नमस्कार है। हे लक्ष्मी के स्वामी! आपको नमस्कार है। सभी प्रकार के शत्रुओं का विनाश करने वाले आपको नमस्कार है।।२३।।

स्कन्द ने कहा

हे महामति! इन्द्र ने जब भगवान् की इस प्रकार स्तुति की, तब वे प्रकट हुए। उस समय भगवान् का प्रकाश करोड़ों सूर्य के समान था तथा प्रलयकालीन अग्नि के समान उनका नेत्र प्रदीप्त हो रहा था।।२४।।

भगवान् रमापति सनकादि ऋषियों से सेवित हो रहे थे। नूतन मेघ के समान स्वरूप वाले भगवान् गरुड पर आरूढ़ थे।।२५।।

पीत वस्त्र धारण करने वाले भगवान् चार भुजाओं से युक्त थे, वे शङ्ख, चक्र और कमल धारण किये हुए थे। वे मेघ के समान गम्भीर वाणी से बलासुर के निहन्ता इन्द्र से बोले।।२६।।

देवेन्द्रस्तुतिना तुष्टस्य विष्णोर्वचनतो हिमवति जगदम्बाराधनाय शक्रगमनम्

श्रीभगवानुवाच

बलाराते च हृदये यदस्ति तद् भविष्यति।
माया या परामाया च श्रीमद्भगवती परा॥२७॥
तयैव सृज्यते सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
सैव पालयते देवी सैव नाशयतेतराम्[१]॥२८॥
तयैव मोहितो जन्तुर्ब्रह्माणं सृजकं तथा।
पालकं मां च जानाति नाशकं रुद्रसञ्ज्ञितम्॥२९॥
एताभिः सर्वमूर्तीभिर्जगत्पालयते परा।
चौरराजाग्निरूपेण दुनोति च तथा त्रयम्॥३०॥
वर्षते मेघरूपेण तपते सूर्यरूपतः।
शोषते वायुरूपेण क्लेदते जलरूपतः॥३१॥

देवराज इन्द्र की स्तुति से प्रसन्न भगवान् के कहने से जगदम्बा की आराधना के लिये हिमालय पर इन्द्र का गमन

श्रीभगवान् ने कहा

हे बलारि! तुम्हारे हृदय में जो अभिलाषा है, वह पूर्ण होगी। सुनो, परामाया, परमेश्वरी भगवती जो माया हैं॥२७॥

वे ही इस चर और अचर जगत् की सृष्टि करती हैं। वे ही इस जगत् का पालन करती हैं और अन्त में वे संहार भी कर देती हैं॥२८॥

उनकी माया से मोहित जीव ब्रह्मा को जगत् का निर्माण करने वाला, मुझको पालन करने वाला तथा रुद्र नाम वाले देवता को सृष्टि का विनाश करने वाला मानता है॥२९॥

किन्तु इन्हीं मूर्तियों के द्वारा वे परा देवी ही जगत् का पालन करती हैं तथा चोर, राज्य, अग्नि आदि के रूप में तीनों लोकों को वे ही कष्ट भी प्रदान करती हैं॥३०॥

वे ही मेघ रूप से वर्षा करती हैं, सूर्य रूप के द्वारा जगत् को तपाती हैं एवं वायु रूप से सुखा देती हैं तथा जल रूप से गीला भी कर देती हैं॥३१॥

१. नाशयतेऽन्तरमिति ख.।

सैव सर्वङ्करी देवी तां भजस्व भयापहाम्।
नारायणीं हिमवतः[२] शुभे केदारमण्डले।।३२।।

गङ्गायाः पश्चिमे भागे सर्वदेवैरनुष्ठिते।
तत्र सा देवता देवसर्वकामप्रदायिनी।।३३।।

स्कन्द उवाच

इति तं देवनाथं स हरिरुक्त्वा तिरोहितः।
सोऽपीन्द्रो भगवान् विप्र जगाम हिमवद्गिरौ।।३४।।
यत्र सन्निहिताः सर्वे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः।
यत्र सर्वांशभावेन जगदीशः प्रतिष्ठितः।।३५।।

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सुरेश्वरीमाहात्म्ये कैलासगमनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३५।।

वे देवी ही सब कुछ करने वाली हैं, इसलिए तुम हिमालय के शुभ केदारखण्ड में भय को दूर करने वाली उन्हीं नारायणी देवी का भजन करो।।३२।।

गङ्गा के पश्चिम भाग में जो स्थान समस्त देवता से अनुष्ठित है, वहीं पर देवताओं के सभी कार्यों को सम्पादित करने वाली वे देवी विराजमान हैं।।३३।।

स्कन्द जी ने कहा

भगवान् नारायण सुरेश्वर इन्द्र से इस प्रकार का वचन कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। हे विप्र! इसके बाद वे भगवान् इन्द्र भी हिमालय पर्वत पर चले गये।।३४।।

वहाँ ब्रह्मा आदि समस्त देवता भी सन्निहित रहते हैं एवं जगदीश्वर अपने पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित रहते हैं।।३५।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ पैंतीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१३५।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१५४०+३५=१५७५]



---

१. हिमवताविति क.।

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवेन्द्रस्तुतिसन्तुष्टभगवतीप्रभावतो मायामोहितरजिसुतविनाशः

स्कन्द उवाच

गङ्गायाः पश्चिमे भागे सुरकूटगिरौ हरिः।
जगाम प्रवरे धाम्नि देवगन्धर्वसेविते॥१॥
अस्तौषीद्वाग्भिरग्र्याभिरिन्द्रो देवगृहच्युतः।
रजिपुत्रभयाक्रान्तः प्राकृतः पुरुषो यथा॥२॥

इन्द्र उवाच

नारायणीं नमस्यामि सृष्टिसंहारकारिणीम्।
जगदानन्दरूपां तां जगदम्बां नतोऽस्म्यहम्॥३॥
जगदीशीं जगद्बीजां जनयित्रीं जरातिगाम्।
जाज्वल्यमानां वपुषा नम्रपीनपयोधराम्॥४॥

देवराज इन्द्र की स्तुति से सन्तुष्ट भगवती की माया से मोहित रजिपुत्रों का विनाश

स्कन्द ने कहा

देवराज इन्द्र गङ्गा के पश्चिम भाग में देवकूट पर्वत के ऐसे स्थान पर गये, जिस परम धाम में देवता और गन्धर्व सेवा का कार्य करते थे।।१।।

स्वर्ग से च्युत देवराज इन्द्र ने रजि के पुत्रों के भय से आकुल होकर प्राकृत (सामान्य) पुरुष के समान दिव्य वाक्यों से भगवती की स्तुति करना प्रारम्भ किया।।२।।

इन्द्र ने कहा

सृष्टि का संहार करने वाली नारायणी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ। मैं जगत् की आनन्दस्वरूपा जगदम्बा के प्रति प्रणत हूँ।।३।।

वे जगत् की स्वामिनी, जगत् की बीजरूप, जगत् को उत्पन्न करने वाली, जरावस्था से रहित, शरीर से जाज्वल्यमान कान्ति वाली एवं झुके हुए पीन पयोधर वाली हैं, उन भगवती को नमस्कार करता हूँ।।४।।

धनदां धनदावासां भवानीं भवनाशिनीम्।
भव्यां भावप्रतीकारां गीर्वाणगणपूजिताम्॥५॥
गरिष्ठां गुरुपत्नीं च गुरुविद्यां गुरूत्सवाम्।
जालपां कामधेनुं च नमस्यामि सुरेश्वरीम्॥६॥
प्रकृतिं पुरुषाकारां हिमालयकृतालयाम्।
निरञ्जनां निर्विकारां निर्गुणां निरुपद्रवाम्॥७॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशां कोटिचन्द्राननां भजे।
धारिणीं धीरसेव्यां च चराचरगुरुं भजे॥८॥
नारदाद्यैः सेव्यमानां सहस्राक्षां महेश्वरीम्।
नमस्यामि महामायां जगन्मोहनकारिणीम्॥९॥
सरस्वतीं च सावित्रीं रुद्राणीं रुद्रवन्दिताम्।
नमस्यामि नराकारां निराकारां[१] परेश्वरीम्॥१०॥

धन को देने वाली, धनद (कुबेर) को आश्रय देने वाली, भवानी, संसार के बन्धन को नष्ट करने वाली, भव्य स्वरूप वाली, भावों के वशीभूत होने वाली तथा देवगण से पूजित सुरेश्वरी देवी को प्रणाम करता हूँ।।५।।

सर्वश्रेष्ठ, गुरु के साथ रहने वाली, गुरुविद्या, गुरु को आनन्द देने वाली, जालपा और कामधेनुरूप सुरेश्वरी देवी को नमस्कार करता हूँ।।६।।

प्रकृति और पुरुष की आकृति वाली, हिमालय को अपना निवास बनाने वाली, निराकार, निर्विकार, निर्गुण तथा उपद्रवों का नाश करने वाली सुरेश्वरी देवी को नमस्कार करता हूँ।।७।।

वे कोटि सूर्य के समान प्रकाशित होने वाली हैं, उनका मुख करोड़ों चन्द्रमा के समान सुन्दर है, ऐसी देवी का मैं भजन करता हूँ। वे सबको धारण करने वाली, धीर पुरुषों के द्वारा सेवनीय तथा चर और अचर जगत् की पूज्य हैं, उनकी सेवा करता हूँ।।८।।

नारद आदि ऋषियों के द्वारा सेवा की जाती हुई, हजार नेत्रों वाली, महान् ईश्वरी, जगत् को मोहित करने वाली, महामाया देवी को मैं नमस्कार करता हूँ।।९।।

वे सरस्वती हैं, सावित्री भी उन्हीं का रूप है, वे रुद्राणी हैं, रुद्र उन्हीं की वन्दना करते हैं, इन स्वरूपों वाली नराकार, निराकार परमेश्वरी को मैं नमस्कार करता हूँ।।१०।।

१. निराकारमिति ख.।

स्कन्द उवाच

इति संस्तुवतस्तस्य मायां भगवतीं पराम्।
निराकाराऽपि सहसा दर्शयामास स्वं वपुः॥११॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रसूर्याग्निलोचनम्।
जाज्वल्यमानं तरसा चन्द्राग्निकृतशेखरम्॥१२॥
दिव्यसिंहसमारूढं पीनोन्नतपयोधरम्।
मणिग्रैवेयहारैश्च भूषितं परमेश्वरम्॥१३॥
सहस्रबाहुसंयुक्तं सहस्राक्षं महाप्रभम्।
दिव्यायुधैः समायुक्तं दिव्यचन्दनभूषितम्॥१४॥
दृष्ट्वा तत्सहसा तस्याः पादयोः प्रपपात ह।
उवाच वचनं तं च देवी देवगणार्चिता॥१५॥

स्कन्द ने कहा

जब इन्द्र इस प्रकार उस मायास्वरूपा, परा भगवती की स्तुति कर रहे थे, उसी समय निराकार होते हुए भी देवी भगवती ने अपने रूप का दर्शन कराया।।११।।

उनका यह शरीर करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान था। चन्द्र और सूर्य तथा अग्नि उनके नेत्र थे। तेज से जलता हुआ सा प्रतीत हो रहा था। चन्द्र और अग्नि शिर के आभूषण के रूप में थे।।१२।।

उनका वह शरीर दिव्य सिंह पर आरूढ़ था, पीन और उन्नत पयोधरों से युक्त था। ग्रैवेयक मणि के हारों से परम ऐश्वर्ययुक्त शरीर भूषित हो रहा था।।१३।।

देवी का शरीर हजारों बाहुओं से संयुक्त था। हजार आँखों वाला उनका देह महती प्रभा से युक्त था। दिव्य आयुधों से युक्त उनका शरीर दिव्य चन्दन से विभूषित हो रहा था।।१४।।

इस प्रकार के देवी के विग्रह को देखकर इन्द्र उनके पैरों पर गिर पड़ा। देवताओं से अर्चित देवी ने उस इन्द्र से यह वचन कहा।।१५।।

श्रीदेव्युवाच

प्रसन्नाऽस्मि महाबाहो दुर्लभं न हि ते क्वचित्।
ध्रुवं प्राप्स्यसि स्वं राज्यं विक्रमान्नैव संशयः॥१६॥
अहं तान् मोहयिष्यामि नयिष्यामि कुमार्गकम्।
वीर्यक्षयश्च भविता तेषां शीघ्रं दुरात्मनाम्॥१७॥
इदं मे परमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
अत्र ये मां देवदेव भजिष्यन्ति महेश्वरीम्॥१८॥
अनेन स्तवराजेन त्वत्प्रोक्तेन सुरेश्वर।
कृतकृत्यो विधानाद्धि तस्य सर्वं ददाम्यहम्॥१९॥
धूपदीपैश्च नैवेद्यैर्बलिभिर्मेषवर्करैः।
माहिषैश्च महाभाग सुरया च द्विजेतरः॥२०॥
पूजयिष्यति यो मर्त्त्यो राज्यं दास्यामि तस्य वै।
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्॥२१॥

देवी ने कहा

हे महाबाहु इन्द्र! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम्हारे लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अपने राज्य को पराक्रम से ही अवश्य प्राप्त करोगे, इसमें संशय नहीं है।।१६।।

मैं उन लोगों को मोहित कर दूँगी, उनको कुमार्ग पर ले जाऊँगी। उन दुरात्माओं के पराक्रम का नाश शीघ्र ही हो जायेगा।।१७।।

यह मेरा परम श्रेष्ठ पीठ शीघ्र ही ज्ञान उत्पन्न करने वाला होगा। हे देवराज! यहाँ जो लोग मुझ महेश्वरी का भजन करेंगे।।१८।।

अर्थात् हे सुरेश्वर! आपके द्वारा कीर्तन किये गये इस श्रेष्ठ स्तोत्र से जो व्यक्ति हमारी स्तुति करेगा, वह कृतकृत्य हो जायेगा और उसे मैं सब कुछ प्रदान करूँगी।।१९।।

हे महाभाग! धूप, दीप, नैवेद्य से तो ब्राह्मण मेरी पूजा करें तथा ब्राह्मण के अतिरिक्त जन बलि, मेष, बकरे और भैंसे तथा सुरा से भी मेरी पूजा कर सकते हैं।।२०।।

इस प्रकार जो मनुष्य पूजा करेंगे, उन्हें मैं उनके राज्य को प्रदान करूँगी। पुत्रहीन मनुष्य पुत्र को प्राप्त कर लेंगे तथा धन चाहने वाले लोग धन प्राप्त कर लेंगे।।२१।।

कन्यार्थी लभते कन्यां स्वर्गार्थी स्वर्गमाप्नुयात्।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं सर्वो धन्यतरो भवेत्॥२२॥
त्वं च शीघ्रं तथा देव लभिष्यसि स्वकं पदम्।
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ निष्कण्टकं राज्यमाप्नुहि॥२३॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा तं देवराजं तत्रैवान्तरधीयत।
सोऽपि वृत्रहरो देवो देवसैन्येन संवृतः॥२४॥
मायया मोहिताँस्तूर्णं कुमार्गनिरताँस्तथा।
जघान रजिपुत्राँश्च वज्रेण द्विजपुङ्गव॥२५॥
प्राप स्वं परमं स्थानं सुरेश्वर्याः प्रसादतः।
इति ते कथितं दिव्यं सुरेश्वर्याः प्रभावकम्॥२६॥
यच्छ्रुत्वाऽपि महाभाग सकलां सिद्धिमाप्नुयात्।
इदं परमकं पीठं सुगोप्यं दुष्टजन्तुषु॥२७॥

कन्या चाहने वाले कन्या को प्राप्त करते हैं, स्वर्ग की इच्छा वाले लोग स्वर्ग प्राप्त करते हैं। मोक्ष चाहने वाले जन मोक्ष का लाभ करते हैं। इस प्रकार सभी धन्य हो जाते हैं।।२२।।

हे देव! तुम भी शीघ्र ही अपने राज्य को प्राप्त कर लोगे। हे सुरश्रेष्ठ! जाओ, निष्कण्टक राज्य को प्राप्त करो।।२३।।

स्कन्द ने कहा

वह भगवती देवराज इन्द्र से इस प्रकार कहकर वहीं अन्तर्धान हो गयी। उधर वह. वृत्रासुरसंहर्ता इन्द्र भी देवसेना से युक्त हो गया।।२४।।

हे द्विजश्रेष्ठ! माया से मोहित, कुमार्ग में निरत रजि के पुत्रों को इन्द्र ने वज्र से शीघ्र ही मार गिराया।।२५।।

तदनन्तर सुरेश्वरी के प्रसाद से इन्द्र ने अपने श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार हमने आपसे सुरेश्वरी के दिव्य प्रभाव का कथन किया है।।२६।।

देवी के इस प्रभाव को सुनकर मनुष्य सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। हे महाभाग! यह परमश्रेष्ठ पीठ दुष्ट जनों से अत्यन्त गोपनीय है।।२७।।

भ्रष्टराज्यो नृपस्तत्र[१] लभते स्वं पदं महत्।
यद्यदिच्छति वै कामं तत्तत्प्राप्नोत्यसंशयम्।।२८।।

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे श्रीसुरेश्वरीमाहात्म्ये इन्द्रस्वस्थानप्राप्तिवर्णनं नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय: ।।१३६ ।।

राज्य से भ्रष्ट हुआ राजा यहाँ जाकर अपने महान् पद को प्राप्त कर लेता है। मनुष्य जिन-जिन वस्तुओं की इच्छा करता है, उनको वह प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।२८।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में एक सौ छत्तीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१३६।।

[श्लोकसंख्या पूर्वागत-१५७५+२८=१६०३]



---

१. नरस्तत्र इति ख.।

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मकूटगिरौ हैमवतीब्रह्मपुत्रीनदीसङ्गमे सुन्दर्यभिधदेवीपीठकथनम्

स्कन्द उवाच

अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि पीठं परमदुर्लभम्।
ब्रह्मकूटगिरौ विप्र पश्चिमोत्तरयोर्दिशि॥१॥

सुन्दरीति च विख्याता देवदानवसेविता।
तत्र ब्रह्मपुरी दिव्या यत्राऽऽस्ते भगवानजः॥२॥

आराधयामास यत्र देवीं त्रैलोक्यसुन्दरीम्।
रहस्यं परमं पीठं सद्यः प्रत्ययकारकम्॥३॥

सृष्टिकर्तृत्वसामर्थ्यं यत्र प्राप प्रजापतिः।
तत्र सन्निहिता नित्यमिन्द्राद्यास्त्रिदिवौकसः॥४॥

ब्रह्मकूट पर्वत पर हैमवती और ब्रह्मपुत्री नदी के सङ्गम पर सुन्दरी देवी के पीठ का कथन

स्कन्द ने कहा

अब मैं तुम्हारे प्रति एक अन्य परम दुर्लभ पीठ का वर्णन कर रहा हूँ। हे विप्र! ब्रह्मकूट पर्वत पर पश्चिम और उत्तर में देवता एवं दानवों से सेवित एक सुन्दरी देवी विख्यात हैं। वहाँ एक दिव्य ब्रह्मपुरी है, वहाँ भगवान् अजन्मा ब्रह्मा जी रहते हैं।।१-२।।

उन्होंने वहीं पर त्रैलोक्यसुन्दरी देवी की आराधना की थी। यह पीठ अतिशय गोपनीय एवं शीघ्र ही विश्वास दिलाने वाला है।।३।।

इसी स्थान पर प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि के निर्माण करने का सामर्थ्य प्राप्त किया था। वहाँ पर स्वर्ग में निवास करने वाले इन्द्र आदि देवता नित्य विद्यमान रहते हैं।।४।।

नमस्कारान् प्रकुर्वन्तः सृष्टिसंहारकारिणीम्।
महादेवमुखात्प्रीत्या श्रुतमेतन्महामुने॥५॥
तत्प्रोक्तं ते मया गुह्यं यत्र नित्यं स्थिता शिवा।
यस्या दर्शनमात्रेण नश्यन्ते पापकोटयः॥६॥
पूजनाद् बलिभिर्धूपैः सुरया च विशेषतः।
सन्तुष्टा सा भवेद्देवी सर्वकामप्रदायिनी॥७॥
यस्या दर्शनमात्रेण लभते परमं पदम्।
एतत्पीठसमं पीठं त्रैलौक्ये दुर्लभं परम्॥८॥
ब्रह्मपुत्री नदी तत्र सर्वसौभाग्यदायिनी।
तस्यां स्नात्वा नरो याति ब्रह्मलोकं महामते॥९॥

सुन्दरीशशिवलिङ्गस्य वर्णनम्

सुन्दरीपूजनाद्ध्यानाल्लभते परमं पदम्।
तत्रैव शिवलिङ्गं वै सुन्दरीशमिति स्मृतम्॥१०॥

वे लोग सृष्टि का संहार करने वाली देवी को नमस्कार करते रहते हैं। हे महामुनि! मैंने इस वृत्तान्त को महादेव भगवान् शिव के मुख से श्रवण किया है।।५।।

वही गुप्त रहस्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है। यहाँ कल्याण की मूर्तिमती शिवा देवी नित्य उपस्थित रहती हैं। उनके केवल दर्शन मात्र से करोड़ों पापों का नाश हो जाता है।।६।।

धूप-दीप, बलि एवं विशेषकर सुरा से देवी की पूजा करने से वे देवी सन्तुष्ट होकर सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाली हो जाती हैं।।७।।

जिस देवी के दर्शन करने मात्र से मनुष्य परमपद (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। इस पीठ के समान अन्य पीठ त्रिलोकी में परम दुर्लभ है।।८।।

वहाँ पर ब्रह्मपुत्री नाम की नदी है, जो समस्त सौभाग्य को प्रदान करने वाली है। हे महामतिमान्! उस नदी में स्नान कर मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है।।९।।

सुन्दरीश शिवलिङ्ग का वर्णन

उस सुन्दरी देवी के पूजन करने से एवं उनका ध्यान करने से परमपद का लाभ होता है। वहाँ पर एक शिवलिङ्ग भी है, जो सुन्दरीश नाम से विख्यात है।।१०।।

तस्य दर्शनमात्रेण सदाशिवगणो भवेत्।
यस्त्रिरात्रं व्रती भूत्वा जपते परमाक्षरम्॥११॥
असाध्यमपि भूतेशीप्रसादात्साधयेन्नरः।
यश्चार्पयति विप्रेश महिषं बलिरूपिणम्॥१२॥
स याति परमं स्थानं यत्र देवी महेश्वरी।
छागं वापि नरो दद्यात्स्वकार्यपरिपूर्तये॥१३॥
यो नरं बलिरूपेण सुन्दर्यै वै प्रयच्छति।
प्राप्नोति पृथिवीं सर्वां सशैलवनकाननाम्॥१४॥
अधीते यो नरो धीमान् देवीसूक्तं त्र्यहं शतम्।
साधयेत्सर्वकार्याणि किमन्यैर्बहुभाषितैः॥१५॥
सुन्दरीनिलये यो वै देवीसाम पठेत्सुधीः।
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः॥१६॥

उस लिङ्ग के केवल दर्शन करने से मनुष्य सदाशिव का गण हो जाता है। यदि वहाँ व्रतधारणपूर्वक तीन रात्रिपर्यन्त परमाक्षर मन्त्र का जप किया जाय, तो भूतेश्वरी के अनुग्रह से मनुष्य असाध्य कार्य को भी सिद्ध कर लेता है। हे विप्रश्रेष्ठ! जो मनुष्य वहाँ पर बलि के रूप में महिष अर्पण करता है॥११-१२॥

वह मनुष्य उस परम स्थान को चला जाता है, जहाँ महेश्वरी देवी साक्षात् निवास करती हैं। अपने कार्य की सिद्धि के लिए मनुष्य को छागबलि भी अर्पित करनी चाहिए॥१३॥

जो मनुष्य बलि के रूप में नर की बलि सुन्दरी देवी को अर्पित करता है, वह वन, पर्वत और जङ्गल सहित समस्त पृथिवी को प्राप्त कर लेता है॥१४॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य तीन दिनपर्यन्त देवीसूक्त का सौ आवृत्तिपूर्वक पाठ करता है, विशेष कहने से क्या लाभ, वह सभी कार्यों को सिद्ध कर लेता है॥१५॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य देवी के मन्दिर में देवी-साम का पाठ करता है, निःसन्देह उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं॥१६॥

इत्युक्तं सुन्दरीपीठं ब्रह्मकूटे गिरौ स्मृता।
नदी हैमवती चैव ब्रह्मपुत्री तथैव च॥१७॥
एतयोः सङ्गमे स्नात्वा ब्रह्मलोके महीयते।
सुन्दरीपीठमाहात्म्यं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते॥१८॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सुन्दरीपीठमहिमवर्णनं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३७।।

इस प्रकार हमने ब्रह्मकूट पर्वत पर अवस्थित सुन्दरीपीठ एवं हैमवती तथा ब्रह्मपुत्री नदी का माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया है।।१७।।

हैमवती तथा ब्रह्मपुत्री नदी के सङ्गम में स्नान कर मनुष्य ब्रह्मलोक में महान् ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेता है। सुन्दरीपीठ के माहात्म्य को सुनकर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।।१८।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में सुन्दरीपीठ का महिमा-वर्णन नामक एक सौ सैंतीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१३७।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१६०३+१८=१६२१]



अथाष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शिवकूटगिरौ हैमवतीतटस्थितभगवदीश्वरशिवलिङ्गमाहात्म्य वर्णनम्

स्कन्द उवाच

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि पीठं परमकं मुने।
तस्य दक्षिणतो विप्र शिवो[१] भगवदीश्वरः॥१॥
शिवकूटगिरिर्यत्र हैमवत्यास्तटे शुभे।
तत्र पूर्वं महादेवः संस्तुतो हरिणा यतः॥२॥
ततोऽयं शंसितो विप्र नाम्ना भगवदीश्वरः।
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्जायते शुभम्॥३॥
तत्रास्ति बिल्ववृक्षो वै मुक्ताफलफलोपमः।
ततोऽधो दक्षिणे भागे पीतवर्णं जलं शुभम्॥४॥
तस्मिन्नेव प्रदेशे तु शिवो भगवदीश्वरः।
तस्य दर्शनमात्रेण लभते परमं पदम्॥५॥

भगवदीश्वर नामक शिवलिङ्ग के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा

हे मुनि! अब मैं एक अन्य पीठ का वर्णन कर रहा हूँ। उस सुन्दरीपीठ के दक्षिण भाग में भगवदीश्वर नामक शिव का पीठ है।।१।।

हैमवती नदी के शुभ तट पर जहाँ शिवकूट नाम का पर्वत भी विद्यमान है। पूर्व काल में वहाँ पर भगवान् हरि ने भगवान् महादेव की स्तुति की थी।।२।।

हे विप्र! इसी कारण ये भगवदीश नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। अब मैं उनके चिह्न का वर्णन कर रहा हूँ, जिससे उन शुभकारक भगवान् शिव का ज्ञान सम्यक् रूप से हो जाय।।३।।

वहाँ पर एक बिल्व का वृक्ष है, जिसके फल मुक्ताफल के समान होते हैं। उसके नीचे दक्षिण भाग में पीले रंग का शुभ जल है।।४।।

उसी प्रदेश में भगवदीश्वर नामक शिव का स्थान है, जिनके दर्शन करने मात्र से मनुष्य परमपद मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।।५।।

१. नाम्नेति क.।

पञ्चशिखधारायाः स्थितेर्माहात्म्यस्य च वर्णनम्

ततः पश्चिमतो विप्र धारा पञ्चशिखा मता।
तस्यां स्नात्वा नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥६॥

सम्पूज्य भगवदीशं स्नात्वा हैमवतीतटे।
शिवसायुज्यमाप्नोति सत्यमेव महामुने॥७॥

शिवतीर्थाज्जलं गृह्य गच्छेद् भगवदीश्वरम्।
स्नापयेद्रुद्रजाप्येन सर्वाभीष्टं लभेन्नरः॥८॥
इति ते भगवदीशमाहात्म्यं शुभदायकम्।
श्रुत्वाऽपि परमं स्थानं लभते नात्र संशयः॥९॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भगवदीशमाहात्म्यवर्णनं
नामाष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।

पञ्चशिखा धारा की स्थिति एवं माहात्म्य

हे विप्र! उस स्थान से पश्चिम की ओर पञ्चशिखा नाम की धारा है, उसमें भक्तिपूर्वक स्नान कर मनुष्य शिव के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है।।६।।

हे महामुनि! हैमवती के तट पर स्नान करने के पश्चात् भगवदीश्वर का पूजन कर मनुष्य शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है, यह सत्य है।।७।।

शिवतीर्थ से जल लेकर भगवदीश्वर के समीप जाकर रुद्राभिषेक की विधि से उन्हें स्नान कराने से मनुष्य अपने सम्पूर्ण अभीष्ट फल को प्राप्त कर लेता है।।८।।

इस प्रकार हमने तुम्हारे प्रति भगवदीश्वर का शुभदायक माहात्म्य वर्णन किया है। इस माहात्म्य को सुनकर भी मनुष्य परम स्थान को प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संशय नहीं है।।९।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में भगवदीश्वर-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ अड़तीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१३८।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१६२१+९=१६३०]



अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गाहैमवतीसङ्गमे भूतीश्वराभिधशिवसन्निधौ शिवतीर्थकथनम्

नारद उवाच

शिवतीर्थं वद प्राज्ञ श्रवणेच्छा प्रवर्त्तते।
कुत्र तद्विद्यते क्षेत्रं शिवलोकप्रदायकम्॥१॥

स्कन्द उवाच

शृणु क्षेत्रं महाभाग सर्वपापक्षयावहम्।
यस्य दर्शनमात्रेण कोटिजन्मसमुद्भवैः॥२॥
पापैः प्रमुच्यते देही नात्र कार्या विचारणा।
गङ्गाहैमवतीसङ्गे सर्वपापक्षयावहे॥३॥
शिवतीर्थमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम्।
ब्रह्मघ्नो वा सुरापो वा स्वर्णचौरोऽथवा भवेत्॥४॥

गङ्गा और हैमवती के सङ्गम पर भूतीश्वर शिव के समीप शिवतीर्थ का वर्णन

नारद ने कहा

हे प्राज्ञ! शिवतीर्थ के श्रवण करने की मेरी इच्छा हो रही है, अतः उसका वर्णन करें। शिवलोक को प्रदान करने वाला वह क्षेत्र कहाँ है?।।१।।

स्कन्द ने कहा

हे महाभाग! समस्त पापों के भय को दूर करने वाले शिवक्षेत्र का श्रवण करो, जिसके दर्शन करने मात्र से प्राणी करोड़ों जन्म के पातकों से मुक्त हो जाता है। इसमें कोई विचार नहीं करना है। सभी प्रकार के पापों को नष्ट करने वाला गङ्गा और हैमवती का एक सङ्गम क्षेत्र है।।२-३।।

वहाँ पर शिवलोक को प्रदान करने वाला शिवतीर्थ प्रसिद्ध है। हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्मघाती, मद्यपान करने वाला अथवा सुवर्ण को चुराने वाला भी

सोऽपि शुद्धो मुनिश्रेष्ठ शिवतीर्थनिमज्जनात्।
अस्मिन् कृतं महाभाग वज्रलेपाय कर्मकृत्॥५॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तस्मिन् पापं न सञ्चरेत्।
केदाराद्वै शतगुणं शिवतीर्थनिमज्जनम्॥६॥
यस्तत्र मुञ्चते प्राणान् पञ्चरात्रोषितो नरः।
शिवसायुज्यमाप्नोति सत्यमेव शिवोदितम्॥७॥
गङ्गाहैमवतीसङ्गे स्नातः शिवपुरे वसेत्।
यद्यत्कामयते कामं तत्तत्साधयतेऽत्र वै॥८॥
धन्यानामत्र मरणं जायते मुनिवन्दित।
प्रसङ्गाद्वा बलात्कारादायात्यत्र शिवस्थले॥९॥
कोटिजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।
तत्र भूतीश्वरो देवो दर्शनाद् गतिदो महान्॥१०॥

मनुष्य यदि शिवतीर्थ में स्नान करता है, तो वह शुद्ध हो जाता है। हे महाभाग! इस क्षेत्र में किया गया कर्म वज्रलेप के समान हो जाता है।।४-५।।

इसलिए यहाँ पूर्ण प्रयत्न के साथ कोई पाप नहीं करना चाहिए। केदारक्षेत्र की यात्रा की अपेक्षा शिवतीर्थ में स्नान शतगुण पुण्य अधिक देने वाला है।।६।।

जो मनुष्य पाँच रात्रिपर्यन्त उपवास धारण कर वहाँ अपने प्राणों का परित्याग करता है, उसे शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है। यह स्वयं भगवान् शिव का कथन है।।७।।

गङ्गा और हैमवती के सङ्गम में जो व्यक्ति स्नान करता है, वह शिव के पुर कैलास में निवास प्राप्त करता है। यहाँ पर जो जो कामना की जाती है, उन सभी कामनाओं की सिद्धि हो जाती है।।८।।

हे मुनीश्वर नारद! जिनके अहोभाग्य हैं, उन्हीं का यहाँ मरण होता है। जो व्यक्ति किसी प्रसङ्ग से बलात्कार से भी यहाँ शिवक्षेत्र में आता है।।९।।

वह मनुष्य कोटि जन्म के अर्जित पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है। वहाँ भूतीश्वर महादेव हैं, उनके केवल दर्शन करने से प्रभूत ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।।१०।।

बृहद्रथन्तराभ्यां यः पूजयेत्तं महेश्वरम्।
स वै शिवपुरे कल्पं नानाभोगे वसेदरम्॥११॥
शतकृत्वस्तु यो मर्त्यो रुद्रसाम जपेदिह।
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्॥१२॥
तत्फलं प्राप्नुयाद्देव रुद्रनाम्ना तथार्चनात्।
बृहतश्च तथा साम्नः शतकृत्वो महामुने॥१३॥
पठेद्वा पाठयेच्चापि तत्कर्मकृतमक्षयम्।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः॥१४॥
य इच्छेद्विपुलान् भोगानिह चैव परत्र च।
पाठयेच्च पठेच्चापि बृहच्चैव रथन्तरम्॥१५॥
महारुद्रं जपन् यस्तु स्नापयेद् गाङ्गवारिणा।
भूतीश्वरं महादेवं सर्वभूतीर्लभेन्नरः॥१६॥

जो व्यक्ति बृहत् और रथन्तर सूक्तों से भगवान् महेश्वर की पूजा करता है, वह शीघ्र ही शिवपुर में निवास प्राप्त कर प्रलयपर्यन्त नाना भोगों का उपभोग करता है।।११।।

यहाँ पर जो मनुष्य सौ बार रुद्र-साम का जप करता है, इस प्रकार भगवान् शिव की पूजा और जप करने से उसे उस फल की प्राप्ति होती है, जो फल सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा और सभी यज्ञों के करने से उपलब्ध होता है। हे महामुनि! जो मनुष्य बृहत् और साम मन्त्र का सौ बार पाठ करता है।।१२-१३।।

वह उन मन्त्रों का पाठ स्वयं करता है या किसी अन्य से पाठ करवाता है, उसका किया हुआ कर्म अक्षय हो जाता है। वह मनुष्य जो-जो कामना करता है, उसको प्राप्त कर लेता है।।१४।।

जो पुरुष इहलोक और परलोक में विपुल भोगों की कामना करता हो, उसे बृहत् और रथन्तर सूक्तों का पाठ स्वयं करना चाहिए या ब्राह्मणों से करवाना चाहिए।।१५।।

जो मनुष्य महारुद्र का जप करता हुआ गङ्गाजल के द्वारा भूतीश्वर महादेव को स्नान कराता है, उसे समस्त ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है।।१६।।

शिवरात्रिदिने यस्तु स्नात्यत्र भगवत्प्रिय:।
संसारबन्धनं तस्य छिनत्ति जगदीश्वर:॥१७॥
चतुर्दश्यां तु कस्याञ्चिद्दर्शनं प्रकरोति य:।
तस्य पुण्यफलं विप्र हयमेधादिकं भवेत्॥१८॥
सोमवारे शुक्रवारे नक्षत्रे रौद्रसंज्ञिते।
यत्कर्म कुरुते ह्यत्र तत्सर्वं स्यादनन्तकम्॥१९॥
शिवतीर्थं परं तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
यस्य वै दर्शनासक्ता: शक्राद्यास्त्रिदिवौकस:॥२०॥

इन्द्रकुण्डस्य चक्रतीर्थस्य च स्थितिवर्णनम्

सङ्गमात्पूर्वभागे तु दण्डषट्के परं मुने।
इन्द्रकुण्डमिति ख्यातं इन्द्रलोकप्रदायकम्॥२१॥
तस्य वै दक्षिणे भागे चक्रतीर्थमुदाहृतम्।
तत्र वै स्नानमात्रेण विष्णुलोके महीयते॥२२॥

हे भगवत्प्रिय! जो मनुष्य शिवरात्रि के दिन यहाँ स्वयं स्नान करता है, जगदीश्वर भगवान् शिव उसके सांसारिक बन्धन का उच्छेदन कर देते हैं।।१७।।

हे विप्र! जो मनुष्य किसी चतुर्दशी को इनका दर्शन करता है, उसे अश्वमेध आदि यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है।।१८।।

सोमवार अथवा शुक्रवार या रौद्रसंज्ञक नक्षत्रों में यहाँ जो कुछ कर्म किया जाता है, वह सब अनन्त फलदायक हो जाता है।।१९।।

यह शिवतीर्थ परम तीर्थ है, भोग और मोक्ष को देने वाला है, अत एव इन्द्र आदि देवतागण भी उसका दर्शन करने के लिए आसक्त रहते हैं।।२०।।

इन्द्रकुण्ड एवं चक्रतीर्थ की स्थिति का वर्णन

हे मुनि! सङ्गम से पूर्वभाग में छ: दण्ड की दूरी पर इन्द्रलोक को प्राप्ति कराने वाला इन्द्रकुण्ड है।।२१।।

उसके दक्षिण भाग में चक्रतीर्थ है, उसमें केवल स्नानमात्र करने से विष्णुलोक में ऐश्वर्य का उपभोग करने को मिलता है।।२२।।

रुद्रधारायास्त्रिशूलतीर्थस्य च स्थितिवर्णनम्

तत ईशानदिग्भागे रुद्रधारेति विश्रुता।
सकृदाचम्य सलिलं रुद्रलोके वसेच्चिरम्।।२३।।

ततः पूर्वं महाभाग गङ्गातीरे महामते।
त्रिशूलतीर्थमाख्यातं सर्वपापक्षयङ्करम्।।२४।।

तत ऊर्ध्वं गिरौ विप्र त्रिशूलाङ्कितभूमिका।
पूर्वं संरोप्य शूलं वै गङ्गातीरे शिवो ययौ।।२५।।

इत्येतद्वै समाख्यातं शिवतीर्थमाहात्म्यकम्।
एतच्छ्रुत्वाऽपि पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।।२६।।

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे शिवतीर्थमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१३९।।

रुद्रधारा एवं त्रिशूलतीर्थ की स्थिति का वर्णन

वहाँ से ईशानकोण की ओर रुद्रधारा विख्यात है, उसके जल का एक बार भी आचमन कर लेने से मनुष्य चिरकाल तक शिवलोक में निवास करता है।।२३।।

हे मतिमान् महाभाग! वहाँ से पूर्व की ओर गङ्गा के तट पर समस्त पापों का क्षय करने वाला एक त्रिशूल तीर्थ विख्यात है।।२४।।

हे विप्र! वहाँ से ऊपर की ओर भूमि त्रिशूल के चिह्न से अङ्कित है। प्राचीनकाल में भगवान् शिव गङ्गा के तट पर त्रिशूल को रखकर चले गये थे।।२५।।

इस प्रकार हमने शिवलोक का माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया है। इसका श्रवण करने से भी मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।।२६।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में शिवतीर्थमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ उनचालीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१३९।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१६३०+२६=१६५६]



अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुमारिकापीठकथनम्

स्कन्द उवाच

तस्मात्पश्चिमदिग्भागे श्रृणु दिव्यं शुभप्रदम्।
महत्कुमारिकापीठं सद्यः प्रत्ययकारकम्।।१।।

तत्र सर्वे देवगणा निवसन्ति तदर्चकाः।
इदं कुमारिकास्थानं न त्यजन्ति महामुने।।२।।

श्रृणु चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत्।
तत्रास्ति दिव्यं सलिलं शैलोदमिति विश्रुतम्।।३।।

लौहाद्या धातवो येन स्वर्णतां यान्ति साधनात्।
यदत्र पतते विप्र सर्वं ग्रावसमं भवेत्।।४।।

कुमारिकापीठ का वर्णन

स्कन्द ने कहा

हे नारद! सुनो, वहाँ से पश्चिम दिशा की ओर महत्कुमारिकापीठ है, वह दिव्य और शुभकारक है और वह शीघ्र ही विश्वास भी दिला देता है।।१।।

उसकी पूजा करने के लिए सभी देवतागण वहाँ उपस्थित रहते हैं। हे महामुनि! इस कुमारिकाक्षेत्र को वे लोग कभी नहीं छोड़ते हैं।।२।।

हे नारद! सुनो, अब मैं उसका चिह्न बतलाता हूँ, जिससे तुम्हें विश्वास हो जायेगा। वहाँ पर शैलोद नामक दिव्य जल प्रसिद्ध है।।३।।

उस जल के द्वारा साधन करने से लोह आदि धातुएँ सुवर्ण हो जाती हैं। हे विप्र! इस जल में जो कुछ भी वस्तु गिरता है, वह पत्थर के समान हो जाता है।।४।।

इयं कुमारिका देवी भवमुक्तिप्रदायिनी।
यस्या दर्शनमात्रेण शिवं च लभते परम्॥५॥
धन्याः सुकृतिनो लोके कुमारीपूजका मुने।
तेषां वै दर्शनादेव पापं वर्षकृतं दहेत्॥६॥

शैलेश्वरशिवलिङ्गस्य वर्णनम्

तत्र शैलेश्वरो[1] देवो महादेवः सदा स्थितः।
पश्यन्ति ये सुकृतिनस्तं न तेषां पराभवः॥७॥
भूमिं गां च तथा रत्नं यश्चार्पयति भक्तितः।
तेन दत्तं हि सकलं भूतलं रत्नपूरितम्॥८॥
यस्तत्र स्नापयेद्देवं शैलेशं तीर्थवारिभिः।
स याति परमाँल्लोकान् पुनर्नावर्त्तते यतः॥९॥
शिवस्तोत्रं पठेदत्र पाठयेद्वापि नारद।
पुरुषत्वं लभेत्सत्यं सौन्दर्यञ्च विशेषतः॥१०॥

यह कुमारिका देवी संसार के जन्म-मरण से मुक्त करने वाली हैं, जिनका दर्शन करने मात्र से मनुष्य परम कल्याण को प्राप्त कर लेता है।।५।।

हे मुनि! कुमारिका देवी के पूजन करने वाले व्यक्ति भी धन्य हैं, वे पुण्यात्मा हैं, उन पुरुषों के दर्शन करने मात्र से वर्षभर में किये हुए पापों का विनाश हो जाता है।।६।।

शैलेश्वर शिवलिङ्ग का वर्णन

वहाँ पर शैलेश्वर नामक महादेव सदैव स्थित रहते हैं। जिन पुण्यवानों को उनके दर्शन होते हैं, उनका पुनः कभी पराभव नहीं होता है।।७।।

जो व्यक्ति वहाँ पर भक्तिभावपूर्वक भूमि, गौ और रत्न प्रदान करता है, उसने मानों रत्नों से पूर्ण सम्पूर्ण पृथिवी का दान कर दिया है।।८।।

जो मनुष्य तीर्थों के जल से शैलेश्वर महादेव को स्नान कराता है, उसे उन परम लोकों की प्राप्ति होती है, जहाँ से पुनः लौटना नहीं होता है।।९।।

हे नारद! जो मनुष्य वहाँ शिवस्तोत्र का पाठ स्वयं करता है अथवा दूसरों से करवाता है, उसे विशेष रूप से सुन्दरता और पौरुष की प्राप्ति होती है।।१०।।

---

१. शैले वरः इति ख.।

पाठकेभ्यो ददेत्तत्र गोभूरत्नादिकं वसु।
ब्राह्मणान् भोजयेच्चैव पायसेन घृतेन च॥११॥
एवं यः कुरुते विप्र सोऽमरत्वं लभेन्मुने।
इह लोके चैव वरान् भोगानाप्नोति दुर्लभान्॥१२॥

बालवतीनद्याः स्थितिकथनम्

नदी बालवती तत्र स्पर्शनात्पापनाशिनी।
तस्यां या[1] कुरुते माघे स्नानं नियमपूर्वकम्॥१३॥
वन्ध्याऽपि लभते पुत्रं विख्यातं कुलदीपकम्।
भर्तृहीना तु या कन्या पत्यर्थं स्नानमाचरेत्॥१४॥
पतिं वै लभते तूर्णं सुन्दरं सुकुलं प्रियम्।
विवाहार्थमपि मुने विवाह्यः स्नानमाचरेत्॥१५॥

वहाँ शिवस्तोत्र का पाठ करने वाले लोगों को गौ, भूमि और रत्न आदि द्रव्यों को देना चाहिए। वहाँ ब्राह्मणों को पायस (खीर) और घृत से बने भोज्य पदार्थों का भोजन कराना चाहिए।।११।।

हे विप्र! जो मनुष्य इस प्रकार करता है, वह अमरत्व को प्राप्त कर लेता है और हे मुनि! इस लोक में उसे दुर्लभ शुभ भोगों की प्राप्ति होती है।।१२।।

बालवती नदी की स्थिति का कथन

वहाँ बालवती नाम की नदी है, उसके जल का केवल स्पर्श करने मात्र से पापों का विनाश हो जाता है। उस नदी में जो स्त्री माघ मास में नियमपूर्वक स्नान करती है।।१३।।

उसमें स्नान करने से वन्ध्या स्त्री भी कुलदीपक पुत्र को प्राप्त करती है। जिस कन्या को पति की प्राप्ति न होती हो, यदि वह पति की कामना से स्नान करती है।।१४।।

उसे सुन्दर रूपवान् कुलीन और प्रिय पति की प्राप्ति हो जाती है। हे मुनि! विवाह की इच्छा रखने वाले को विवाह की कामना से इसमें स्नान करना चाहिए।।१५।।

---

१. य इति ग.।

स्त्रियं वै लभते हृद्यां कुलीनां प्रियवादिनीम्।
मूढोऽपि लभते विद्यां बृहस्पतिसमो भवेत्॥१६॥
गत्वा कुमारिकापीठं जपेन्मन्त्रं षडर्णकम्।
निराहारो जितात्मा च लभते परमं पदम्॥१७॥
तथा रोगग्रहग्रस्तो रिपुभिश्च पराजितः।
सप्तरात्रं वसेदत्र जपेत्पञ्चाक्षरं मनुम्॥१८॥
मुच्यते सहसा दुःखाच्छत्रूञ्जयति सत्वरम्।

कुञ्जकूटपवने बालादेव्याः स्थितिर्माहात्म्यञ्च

तस्मादुत्तरभागे हि कुञ्जकूट इति स्मृतः॥१९॥
तत्र वै संस्थिता बाला सर्वसिद्धिप्रदायिनी।
धन्यानां गोचरा सा स्यान्माणिक्याभा महेश्वरी॥२०॥

ऐसा करने से वह मनोहर, कुलीन प्रियवादिनी स्त्री को प्राप्त कर लेता है। मूर्ख व्यक्ति भी विद्या को प्राप्त कर लेता है, वह बृहस्पति के समान हो जाता है।।१६।।

कुमारिका पीठ में जाकर षडक्षर मन्त्र का जप करना चाहिए। निराहार रहकर आत्मसंयमपूर्वक जप करने से परमपद को प्राप्त कर लेता है।।१७।।

जो व्यक्ति रोग अथवा ग्रहों से पीड़ित है या शत्रुओं के द्वारा पराजित हो गया है, उसे सात रात्रिपर्यन्त निवास करते हुए पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिए।।१८।।

ऐसा करने से वह मनुष्य शीघ्र ही दुःख से मुक्त हो जाता है और तत्काल ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है।

कुञ्जकूट पर्वत पर बाला देवी की स्थिति और माहात्म्य

वहाँ से उत्तर की ओर कुञ्जकूट नामक पर्वत स्थान है।।१९।।

वहाँ समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली बाला देवी की स्थिति है। उस माहेश्वरी की आभा माणिक्य के सदृश है, जिनके अहोभाग्य होते हैं, उन्हीं को उस भगवती के दर्शनों का लाभ होता है।।२०।।

तत्र यस्त्रिदिनं बालामन्त्रराजं जपेन्नरः।
प्राप्नोति परमां सिद्धिं महादेव्याः प्रसादतः॥२१॥

तित्तिरपर्णीमणिपर्णीनद्याश्च स्थितिः

ततो वायव्यके कोणे नाम्ना तित्तिरपर्णिका।
मणिपर्णी च तत्रैव सङ्गमः पुण्यदस्तयोः॥२२॥
स्नानं करोति यस्तत्र स्वर्गलोके वसेच्चिरम्।
कर्मक्षयादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः॥२३॥
सम्भुज्य पृथ्वीमेनां तदन्ते मोक्षमाप्नुयात्।
ततो वै दक्षिणे भागे स्वर्णधारा परा स्मृता॥२४॥
तदम्भःस्पर्शमात्रेण ब्रह्मलोके महीयते।
तत उत्तरदिग्भागे वेगवर्णाभिधा नदी॥२५॥
तत्सङ्गमे नरः स्नात्वा नाकपृष्ठे वसेच्चिरम्।

वहाँ जो मनुष्य तीन दिनपर्यन्त बाला के मन्त्रराज का जप करता है, वह महादेवी की कृपा से परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।।२१।।

तित्तिरपर्णी और मणिपर्णी नदी की स्थिति

वहाँ से वायव्यकोण में तित्तिरपर्णिका और मणिपर्णी इन दोनों नदियों का सङ्गम अत्यन्त पुण्य को प्रदान करने वाला है।।२२।।

जो व्यक्ति उस सङ्गम में स्नान करता है, वह चिरकाल तक स्वर्गलोक में निवास करता है। तत्पश्चात् पुण्यों के क्षीण होने पर इस संसार में आकर वह धार्मिक राजा होता है।।२३।।

इस भू-मण्डल के राज्यसुख का उपभोग कर अन्त समय में मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। उसके दक्षिणभाग में श्रेष्ठ स्वर्णधारा है।।२४।।

उसके जल का स्पर्श करने मात्र से ब्रह्मलोक में ऐश्वर्य का उपभोग प्राप्त होता है। वहाँ से उत्तर दिशा की ओर वेगवर्णा नाम की नदी है।।२५।।

उन दोनों के सङ्गम में स्नान करने से मनुष्य चिरकालपर्यन्त स्वर्गलोक में निवास प्राप्त करता है।

देवलेश्वरमहादेवस्य माहात्म्यम्

ततः पश्चिमदिग्भागे नाम्ना देवलपर्वते॥२६॥
नदी देवलकी नाम गङ्गास्नानफलप्रदा।
तत उत्तरदिग्भागे शिवो वै देवलेश्वरः॥२७॥
तस्य सन्दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते।
ततश्च पूर्वदिग्भागे दुग्धधाराभिधा मता॥२८॥
तज्जलस्पर्शनादेव श्वेतद्वीपेश्वरो भवेत्।
इति तत्परमं क्षेत्रं कथितं ते मयाऽनघ॥२९॥
श्रुत्वाऽपीदं महाभाग तत्तत्स्नानफलं लभेत्।
इह लोके वरान् भोगान् प्राप्य चान्ते शिवं लभेत्॥३०॥

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे केदारखण्डे कुमारीपीठमाहात्म्यवर्णनं नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४०।।

देवल पर्वत पर देवलकी नदी एवं देवलेश्वर महादेव का माहात्म्य

वहाँ से पश्चिम की ओर देवल पर्वत पर देवलकी नाम की नदी है, उसमें स्नान करने से गङ्गास्नान के फल की प्राप्ति होती है। उसके उत्तर दिशा में देवलेश्वर नामक भगवान् शिव विराजमान हैं।।२६-२७।।

उस देवलेश्वर के दर्शन करने से समस्त पापों से छुटकारा मिल जाता है। वहाँ से पूर्व दिशा की ओर दुग्धधारा विद्यमान है।।२८।।

उसके जल का स्पर्शमात्र करने से मनुष्य को श्वेतद्वीप से अधिपतित्व का लाभ होता है। हे निष्पाप नारद! हमने तुम्हारे प्रति उक्त परमश्रेष्ठ क्षेत्र का माहात्म्य वर्णन किया है।।२९।।

हे महाभाग! इस क्षेत्र के माहात्म्य का श्रवण करने से उन-उन धाराओं में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है। साथ ही इस लोक में श्रेष्ठ भोगों का उपभोग करके अन्त समय में शिवलोक में निवास प्राप्त होता है।।३०।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में कुमारीपीठ-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चालीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१४०।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१६५६+३०=१६८६]



अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय:

गङ्गापूर्वभागे चन्द्रकूटगिरौ भुवनेश्वरीपीठकथनम्

स्कन्द ने कहा

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि पीठं सिद्धिप्रदायकम्।
नाम्ना वै भौवनं ख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम्॥१॥
गङ्गायाः पूर्वभागे हि चन्द्रकूटो गिरिः स्मृतः।
तस्याऽपि दर्शनादेव मुच्यते जन्मपातकात्॥२॥
नृत्यन्त्यप्सरसो यत्र गायन्ते चैव किन्नराः।
भुवनेशी यत्र देवी ख्याता शङ्करवल्लभा॥३॥
यत्र वै भैरवो देवो द्वाःस्थले चाऽभिरक्षितः।
अतितुङ्गतमे स्थाने संस्थितां परमेश्वरीम्॥४॥
नमस्कारं प्रकुर्वन्ति न च तेषां पराभवः।
अत्र पूर्वं महारुद्रो रुरोद विरहातुरः॥५॥

चन्द्रकूट पर्वत पर भुवनेश्वरी पीठ का वर्णन

स्कन्द ने कहा

अब हम सिद्धि-प्रदान करने वाले एक दूसरे तीर्थ का वर्णन तुम्हारे प्रति कर रहे हैं। वह भौवन नाम से प्रसिद्ध है और शीघ्र ही प्रत्यय कराने वाला है।।१।।

गङ्गा के पूर्वभाग में चन्द्रकूट नाम का एक पर्वत है। उसके भी दर्शन करने मात्र से जन्म भर के पापों से छुटकारा मिल जाता है।।२।।

वहाँ पर अप्सराएँ नृत्य करती रहती हैं और किन्नर सदा गान करते रहते हैं। वहाँ पर भुवनेश्वरी देवी विद्यमान हैं, जो भगवान् शङ्कर की प्रिया वल्लभा हैं।।३।।

उसके द्वार पर भैरव जी सदा उपस्थित रहते हैं, वह परमेश्वरी अत्यन्त उन्नत स्थान पर स्थित हैं।।४।।

जो मनुष्य उस परमेश्वरी को नमस्कार करते हैं, उनका कभी पराभव नहीं होता है। प्राचीनकाल में भगवान् महारुद्र विरह से दुःखित होकर यहाँ रुदन किये थे।।५।।

देव्युपाख्यानकथनपूर्वकं माहात्म्यवर्णनम्

देव्याः कलेवरोत्सर्गे स्मृत्वा तन्मुखचन्द्रकम्।
विरहाक्रान्तहृदयो लोकं तदनुवर्त्तयत्॥६॥
नित्यामपि महामायां शुशोच भृशदुःखितः।
ततो मुने जगत्सर्वं सन्तप्ते जगदीश्वरे॥७॥
सन्तप्तं चाभवत्सर्वं तथा स्थावरजङ्गमम्।
सन्तप्ताश्चाभवन् देवा ब्रह्माद्या मुनिसत्तम॥८॥
आजग्मुर्यत्र कैलासे रुद्रो रोदनसंस्थितः।
तुष्टुवुः स्मारयन्तो वै परं भावं महेशितुः॥९॥
सम्बद्धाञ्जलयः सर्वे नमस्कारानतकन्धराः।
मुनयश्चापि सिद्धाश्च गन्धर्वाः किन्नरास्तथा॥१०॥

देवा ऊचुः

प्रकृत्यै ते नमस्तेऽस्तु भिन्नायै पुरुषान्नमः।
सृष्टिकर्त्र्यै सृष्टिहर्त्र्यै देव्यै तस्यै नमो नमः॥११॥

देवी के उपाख्यान-कथनपूर्वक माहात्म्य-वर्णन

देवी के शरीर के त्याग हो जाने पर उनके चन्द्रवदन का स्मरण कर विरह से आक्रान्त हृदय वाले शिवलोक धर्म का अनुवर्तन करते हैं।।६।।

महामाया देवी के नित्य अविनाशी होने पर भी वे अत्यन्त दुःखित होकर रोया करते थे। हे मुनि! उस समय जगदीश्वर के इस प्रकार दुःख से सन्तप्त होने पर जगत् के सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जीव दुःखित हो गये थे। उनके रुदन से ब्रह्मा आदि देवता भी सन्तप्त हो गये।।७-८।।

हे मुनिसत्तम! वे लोग वहाँ आये, जहाँ कैलास पर रुद्र रोदन करते हुए स्थित थे। वे लोग महेश्वर के श्रेष्ठ भावों का स्मरण दिलाकर स्तुति करने लगे।।९।।

उस समय वे लोग नमस्कारपूर्वक अपने कन्धों को नम्र कर हाथ जोड़े हुए थे। उस समय वहाँ ऋषि, मुनि, गन्धर्व और किन्नर भी उपस्थित होकर स्तुति कर रहे थे।।१०।।

देवताओं ने कहा

प्रकृतिरूप देवी को नमस्कार है, पुरुष से भिन्न देवी को नमस्कार है। सृष्टि की रचना करने वाली एवं सृष्टि का संहार करने वाली उस देवी को बार-बार नमस्कार है।।११।।

अनादिनिधनो देवो यया मोहं प्रवेशितः।
किमुत प्राकृता देव्यै नारायण्यै नमो नमः॥१२॥
येन[1] सृष्टं जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सन्निधिर्यया।
विमोहितः प्राकृतवत्तस्यै देव्यै नमो नमः॥१३॥
यया[2] संसारिवद्देवो मुग्धो प्राकृतवद्धरः।
निर्ममोऽपि परानन्दो तस्यै देव्यै नमो नमः॥१४॥
विष्णुर्यया महादेव्या सङ्क्षिप्तो योनिसङ्कटे।
अनेकविषयासक्तस्तस्यै देव्यै नमो नमः॥१५॥
यया ब्रह्मा त्रिजगतां कर्त्ता वेदनिधिः पुरा।
आत्मजासक्तहृदयः कृतस्तस्यै नमो नमः॥१६॥
द्विजराजो यया[3] देव्या मोहितो गुरुकामिनीम्।
अन्वगच्छत्तु[4] कामान्धस्तस्यै देव्यै नमो नमः॥१७॥

आदि और अन्त से रहित देव भी जिस देवी के द्वारा मोह में डाल दिये जाते हैं, तो सामान्य मनुष्य का तो कहना ही क्या है, उस नारायणी देवी को नमस्कार है।।१२।।

जिस देवी की सन्निधि को प्राप्त करके जिस देव ने तीनों लोकों के सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की है, जिस देवी के द्वारा सामान्य जन के समान मोहित कर दिये गये, उस देवी को नमस्कार है।।१३।।

ममता से रहित, परमानन्द स्वरूप हर भगवान् शिव जिस देवी के द्वारा सांसारिक मनुष्यों के समान मोह में डाल दिये गये, उस देवी को नमस्कार है।।१४।।

जिस महादेवी ने अनेक विषयों में आसक्त विष्णु को भी योनि के सङ्कट (गर्भावस्था) में डाल दिया था, उस देवी को नमस्कार है।।१५।।

जिस देवी ने तीनों लोकों की रचना करने वाले एवं वेदों के निधि ब्रह्मा को भी अपनी पुत्री के प्रति आसक्त हृदय वाला बना दिया था, उस देवी को नमस्कार है।।१६।।

जिस देवी के द्वारा द्विजराज चन्द्रमा भी गुरु की पत्नी के प्रति मोहित कर दिये गये, जिससे वह काम की आसक्ति से अन्धे होकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे, उस देवी को नमस्कार है।।१७।।

---

१. ये इति ख.। २. यथेति ख.।
३. ययाविति क.। ४. अनुगच्छतीति क.।

इन्द्रो यया मोहितस्तु गौतमस्य प्रियां शुभाम्।
अधर्षयन्नगणयन् पापं तस्यै देव्यै नमो नमः॥१८॥
यन्मोहितं जगत्सर्वं कुरुते कर्म दुष्कृतम्।
सुकृतं वाऽपि सकलं तस्यै देव्यै नमो नमः॥१९॥
यया सम्मोहितो जन्तुः पुत्रान् दारान् बिभर्ति हि।
जानन्नप्यप्रतीकारं तस्यै देव्यै नमो नमः॥२०॥
यया सम्मोहितो जन्तुर्ममेदं च वदत्यहो।
गच्छन्नपि प्रेतभावं तस्यै देव्यै नमो नमः॥२१॥
यया सम्मोहितः प्राणी पुत्रदारधनादिकम्।
अनित्यमपि नित्यं हि मन्यते ते नमो नमः॥२२॥
मृताँश्च म्रियमाणाँश्च मर्तुं चैव समुद्यतान्।
दृष्ट्वाऽपि जीवितुं काङ्क्षँस्तस्यै देव्यै नमो नमः॥२३॥

पाप की भावना की गणना न करते हुए एवं उसको न दबाते हुए इन्द्र को भी गौतम की पत्नी के प्रति जिस देवी ने मोहित कर दिया, उस देवी को नमस्कार है।।१८।।

जिस देवी से मोहित होकर सारा संसार अनेक प्रकार के दुष्कर्मों अथवा सुकर्मों को करता है, उस देवी के लिए नमस्कार है।।१९।।

यह जानते हुए भी कि इसका कोई प्रतीकार नहीं है, जिससे मोहित होकर प्राणी अपने पुत्रों और स्त्रियों का पालन-पोषण करता है, उस देवी को नमस्कार है।।२०।।

जिस देवी से सम्मोहित होकर जीव मरते हुए भी यह कहता है कि यह वस्तु मेरी है, उस देवी को नमस्कार है।।२१।।

जिस देवी से मोहित होकर संसारी जीव अनित्य भी पुत्र, स्त्री, धन आदि को नित्य की तरह मानता है, उस देवी को नमस्कार है।।२२।।

जिस देवी के मोह से ग्रस्त प्राणी मृतकों को, मरने के लिए उद्यत एवं मरने वालों को देखकर भी जीवित रहने की आकांक्षा करता है, उस देवी को नमस्कार है।।२३।।

अनित्यां धनसम्पत्तिं दृष्ट्वाऽपि च तथाविधाम्।
न खादति न वै दत्ते यया तस्यै नमो नमः॥२४॥

स्कन्द उवाच

हराग्रे संस्तुता देवी महादेवविमोहिनी।
दर्शयामास स्वं रूपं सर्वैर्देवैरगोचरम्॥२५॥
सिन्दूरपूररक्ताङ्गीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम्।
स्थितशोभापरिक्रान्तपीयूषां भक्तवत्सलाम्॥२६॥
चषकं चैकहस्तेन बिभ्रतीं कमलं[1] परे।
पीनस्तनस्फुरद्रत्नहारावलिविराजिताम्॥२७॥
दृष्ट्वा तां चन्द्रवदनां[2] विश्वानन्दनतत्पराम्।
रत्नपूरघटस्थां च कोटिबालार्कसन्निभाम्॥२८॥

जिस देवी की माया से मोहित हुआ मनुष्य उस प्रकार की अनित्य धन-सम्पत्ति को देखकर भी न उसका उपभोग करता है और न किसी को दान ही करता है, उस देवी को नमस्कार है।।२४।।

स्कन्द जी ने कहा

भगवान् हर के समक्ष स्तुति की गयी देवी, जो महादेव को भी विमोहित करने वाली थी, जो सम्पूर्ण देवता के द्वारा दृष्टिगोचर नहीं हो सकती, उसी देवी ने अपने रूप को देवताओं के लिए दिखलाया।।२५।।

उस देवी का अङ्ग प्रभूत सिन्दूर से रक्तवर्ण का हो रहा था, उनके तीन नेत्र थे और मस्तक पर चन्द्रमा था, स्थायी सौन्दर्य ने अमृत को भी पराजित कर दिया था, वे भगवती भक्तवत्सल थीं।।२६।।

जिस देवी ने अपने एक हाथ से चषक (पानपात्र), दूसरे से कमल धारण कर रखा था, उनके पुष्ट उरोजों पर चञ्चल रत्न की हारावली विराजमान हो रही थी।।२७।।

चन्द्रमा के समान आह्लादक मुख वाली, विश्व को आनन्दित करने में तत्पर, रत्नों से भरे हुए घट पर स्थित रहने वाली एवं करोड़ों बाल सूर्य के समान प्रभावशाली उस देवी को देवताओं ने देखा।।२८।।

---

१. कमले इति क.। २. वदनीमिति क.।

मोहं तत्याज भगवान् स्वस्थश्चैवाऽभवत्क्षणात्।
श्रुत्वा मायावैभवं च किमहो किमहो वदन्॥२९॥
देवाश्च तां परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः।
ययुर्यथागतं विप्र तथाऽन्ये मुनिसत्तमाः॥३०॥
तदादीदं परं पीठं महादेवश्च संस्थितः।
यदन्यत्र त्रिभिर्वर्षैस्तदत्र दिनरात्रितः॥३१॥
सिद्ध्यते नात्र सन्देहो मया शिवमुखाच्छ्रुतम्।
त्रिरात्रं यो महाभाग फलमूलकृताशनः॥३२॥
निवसेच्च जपेद्देवीं साधयेत्सिद्धिमुत्तमाम्।
यदत्र दीयते दानं तत्सर्वं कोटिसङ्ख्यकम्॥३३॥
नास्मात्परतरं पीठं त्रैलोक्ये मुनिवन्दित।
दुर्भावं यः समाश्रित्य गच्छतेऽस्मिंस्थले शुभे॥३४॥

इस प्रकार की देवी को देखकर भगवान् शिव ने मोह का परित्याग कर तत्काल ही स्वस्थ हो गये। तदनन्तर देवी की माया के वैभव को सुनकर चकित होते हुए बोले कि यह क्या हुआ? यह क्या हुआ।।२९।।

तदनन्तर देवता और अन्य मुनिगण भी उस देवी की परिक्रमा करके बार-बार प्रणाम कर जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार लौट गये।।३०।।

उसी दिन से इस महापीठ में भगवान् महादेव विराजमान रहते हैं। जो पुरश्चरण आदि अन्यत्र तीन वर्ष में सिद्ध हो सकता है, वह यहाँ एक दिन-रात में ही सम्पन्न हो जाता है।।३१।।

मैंने भगवान् शिव के मुख से सुना है कि इसकी सिद्धि में कोई सन्देह नहीं है। हे महाभाग! जो व्यक्ति तीन रात्रिपर्यन्त कन्दमूल-फलों का आहार करता हुआ यहाँ निवास करके देवी का जप करता है, उसे उत्तम सिद्धियों का लाभ हो जाता है। यहाँ जो कुछ भी दान दिया जाता है, उसका फल करोड़ गुणा अधिक हो जाता है।।३२-३३।।

हे मुनिपूज्य! इससे बढ़कर त्रिलोकी में अन्य कोई पीठ नहीं है। जो व्यक्ति दुष्ट भावना से युक्त होकर इस शुभ स्थल की यात्रा करता है।।३४।।

स हन्यतेतरां विप्र वज्रपातैर्न संशयः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न दुष्टं भावमाश्रयेत्॥३५॥
देवीसूक्तेन यस्तत्र संस्तौति जगदीश्वरीम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते॥३६॥
इदं क्षेत्रं परं स्थानं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
यद्दर्शनादपि नरो देवीलोके महीयते॥३७॥

भास्करक्षेत्रस्य स्थितिवर्णनम्

आभद्रसेनं वसति तथा लगुडसानु वै।
यत्रोत्तरगतिर्गङ्गा पञ्चयोजनसम्मितम्॥३८॥
पीठं परमकं ख्यातं तथा भास्करक्षेत्रकम्।
यस्तत्र वसते मर्त्यो देवलोकपरिच्युतः॥३९॥
गन्ताग्रे मुक्तिभवनं ज्ञेयोऽसौ ब्रह्मनन्दन।
स्थावराः पक्षिकीटाद्यास्तत्तद्रूपसमाश्रिताः॥४०॥

हे विप्र! वह वज्रपात से विनष्ट हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसलिए पूर्ण प्रयत्न के साथ यहाँ किसी दुष्ट भाव का आश्रय नहीं करना चाहिए।।३५।।

जो मनुष्य देवीसूक्त से इस स्थान में परमेश्वरी की स्तुति करता है, उसे सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति हो जाती है और वह प्राणी मृत्यु के अनन्तर ब्रह्म में लीन हो जाता है।।३६।।

यह क्षेत्र परम दिव्य स्थान है, इसके अवलोकन से तत्काल ही प्रत्यय हो जाता है। इस स्थान के दर्शन करने से ही मनुष्य देवी के लोक में जाकर ऐश्वर्य का उपभोग करता है।।३७।।

भास्कर क्षेत्र की स्थिति का वर्णन

भद्रसेन के स्थान से लगुडसानु क्षेत्र तक जहाँ गङ्गा उत्तरवाहिनी हैं। यह क्षेत्र पाँच योजन विस्तृत है।।३८।।

यह परमश्रेष्ठ भास्करक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। जो जीव देवलोक से निपतित होता है, उसी को वहाँ पर निवास प्राप्त होता है।।३९।।

हे ब्रह्मनन्दन! आगे भी वह मनुष्य मुक्ति के भवन में जायेगा, यह जानना चाहिए। यहाँ स्थावर, पक्षी, कीट आदि जो भी उन-उन रूपों में स्थित हैं।।४०।।

इमे देवा परिच्छन्ना वसन्ते मुनिवन्दित।
अत्र दिव्यानि पीठानि देवतायतनानि च॥४१॥
सद्यः प्रत्ययकारीणि तथा चैव सरित्तमाः।
श्रुत्वाऽप्येतानि पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥४२॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भुवनेश्वरीपीठमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४१।।

इन सभी रूपों में गुप्त रूप से देवता लोग ही निवास करते हैं। तत्काल विश्वास करा देने वाले अनेक पीठ, दिव्य देवमन्दिर और श्रेष्ठ नदियाँ यहाँ विद्यमान हैं, इनके केवल श्रवणमात्र से ही मनुष्य सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।।४१-४२।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में भुवनेश्वरीपीठमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ इकतालीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१४१।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१६८६+४२=१७२८]



अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोगवतीनदीतीरे दुष्करतपोनिष्ठैर्नागैः स्थापितस्य नागेश्वराख्यशिवलिङ्गस्य माहात्म्यकथनम्

नारद उवाच

अत्र चान्यानि तीर्थानि तथा च सरिदुत्तमाः।
शिवालयाँश्च विविधान् वद स्कन्द सविस्तरात्॥१॥

स्कन्द उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि [1]पुण्यान्यायतनानि च।
येषां श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२॥

तस्मादेव महापीठाद्दक्षिणस्यां समीपतः।
नागेश्वरो महादेवः सर्वसम्पत्तिवर्द्धनः॥३॥

तत्र नागाः पुरा विप्र तपस्तेपुः सुदुष्करम्।
महादेवपरा दान्ताः परमं तप आस्थिताः॥४॥

भोगवती नदी के तट पर नागेश्वर शिवलिङ्ग के माहात्म्य का वर्णन

नारद ने कहा

हे स्कन्द जी! यहाँ जितने अन्य तीर्थ, उत्तम नदियाँ और विविध शिव-मन्दिर हैं, उन सभी का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।।१।।

स्कन्द ने कहा

हे विप्र! सुनो, अब मैं पवित्र स्थानों का वर्णन कर रहा हूँ, जिनके केवल श्रवण करने मात्र से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।।२।।

उस भुवनेश्वरी नामक महापीठ से दक्षिण दिशा में समीप में ही समस्त सम्पत्तियों की वृद्धि करने वाले नागेश्वर नामक महादेव हैं।।३।।

हे विप्र! प्राचीनकाल में वहाँ पर नागों ने दुष्कर तप का आचरण किया था। अर्थात् महादेव की आराधना में दत्तचित्त हो नागगण दुष्कर तप करने में प्रवृत्त हुए थे।।४।।

---

१. पुण्यानामिति क.।

प्रापुः परमिकां सिद्धिमत्र पीठे सदाशिवम्।
दृष्टवन्तो महात्मानस्तस्मान्नागेश्वरो मतः॥५॥
यत्र सन्ति महात्मानो मुनयः सिद्धचारणाः।
देवाश्च शक्तिसहितास्तत्र पीठे शुभप्रदे॥६॥
यस्तत्र रुद्रमन्त्रैस्तु समाधिस्थो जितेन्द्रियः।
सम्पूजयति नागेशं तस्य पुण्यफलं शृणु॥७॥
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं हयमेधादिषु द्विज।
यत्तीर्थगमनैः शश्वत्तथाम्बुधिनिमज्जनैः॥८॥
तत्पुण्यं कोटिगुणितं भवेदत्र न संशयः।
यथाशक्त्या रुद्रसंख्यां करोतीशाभिषेचनम्॥९॥
तथा कारयतेऽन्यस्मात्सोऽपि सोऽपि महामते।
सर्वरोगैः परित्यक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः॥१०॥

जिससे उन्हें इस शुभदायक परम पीठ में उत्तम सिद्धियों का लाभ हुआ था, उन लोगों ने सदाशिव का दर्शन किया था, इसलिए ये नागेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए।।५।।

जहाँ पर महात्मा, मुनि, सिद्ध और चारण रहते हैं, उस शुभप्रद पीठ में अपनी शक्तियों के साथ देवता भी निवास करते हैं।।६।।

यहाँ पर जो मनुष्य इन्द्रियनिग्रहपूर्वक समाधि में स्थित होकर रुद्रसूक्त के मन्त्रों से भगवान् नागेश्वर की पूजा करता है, उसके पुण्यजनित फल का श्रवण करो।।७।।

हे विप्र! अश्वमेध आदि समस्त यज्ञों का अनुष्ठान करने से जो पुण्य होता है तथा तीर्थों में गमन करने से एवं समुद्र में स्नान करने से जो फल मिलता है।।८।।

निःसन्देह उससे भी करोड़ गुना अधिक फल यहाँ उपलब्ध होता है। जो व्यक्ति यहाँ यथाशक्ति ग्यारह संख्या में नागेश्वर महादेव का अभिषेक करता है।।९।।

अथवा अन्य के हाथ से रुद्राभिषेक करवाता है, हे महामति! वह भी समस्त रोगों से मुक्त होकर सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है।।१०।।

पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तो भवेत्सुचिरजीवनः।
सम्भुज्य भोगान् विविधानन्ते शिवलयं व्रजेत्॥११॥
तत्र भोगवती नाम धारा परमपावनी।
तत्पयः पानमात्रेण लभते परमं पदम्॥१२॥
संस्तौति यो रुद्रमन्त्रै रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्।
स याति परमं स्थानं यत्र देवः सदाशिवः॥१३॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भुवनेशीपीठमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४२।।

वह पुरुष पुत्र, पौत्र आदि से युक्त होकर चिर जीवन व्यतीत करने वाला होता है। वह इस संसार में विविध भोगों का उपभोग कर अन्त में शिवलोक में निवास करता है।।११।।

वहाँ पर भोगवती नाम की परमपवित्र धारा है, उसके जल का केवल पान मात्र करने से परमपद मोक्ष का लाभ होता है।।१२।।

जो व्यक्ति त्रिभुवनेश्वर रुद्रदेव का स्तवन रुद्रसूक्त से करता है, वह उस परम श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ सदाशिव देव विद्यमान हैं।।१३।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में भुवनेश्वरीपीठमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ बयालीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१४२।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१७२८+१३=१७४१]



अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

निखिलविद्याप्राप्तये तपस्यत आङ्गिरसस्य शिववद्वागीशत्वलाभः

स्कन्द उवाच

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तस्य वै पश्चिमोत्तरे।
नाम्ना वागीश्वरः ख्यातः सर्वसिद्धिप्रदायकः॥१॥
यस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्यादिकोटयः।
नश्यन्ते नात्र सन्देहो सत्यं च शिवभाषितम्॥२॥
पुरा यत्र महादेवोऽङ्गिरापुत्रेण नारद।
संस्तुतो भगवान् देवो विद्यापारगकामतः॥३॥
शतं सोग्रं[1] तपस्तेपे जिताहारो जितेन्द्रियः।
ततः कतिपयैर्वर्षैस्तपतोऽङ्गिरसो मुने॥४॥

आङ्गिरस ऋषि को शिव के समान वागीशत्व की प्राप्ति

स्कन्द ने कहा

अब मैं अन्य पीठों के माहात्म्य का कथन करता हूँ। वहाँ से पश्चिमोत्तर की ओर समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाले वागीश्वर महादेव प्रसिद्ध हैं।।१।।

जिनके दर्शन करने मात्र से करोड़ों ब्रह्महत्या आदि पापों का निःसन्देह नाश हो जाता है, यह भगवान् का कथन सत्य है।।२।।

हे नारद! प्राचीनकाल में यहाँ अङ्गिरा ऋषि के पुत्र आङ्गिरस ऋषि ने सम्पूर्ण विद्याओं में पारङ्गत होने की कामना से भगवान् महादेव की स्तुति की थी।।३।।

नियमित आहार लेते हुए जितेन्द्रिय हो उन्होंने सौ वर्षपर्यन्त उग्र तप किया। हे मुनि! जब अङ्गिरा को तप करते-करते कुछ समय और व्यतीत हो गया।।४।।

---

१. साग्रमिति ख.।

प्रसन्नो भगवान् रुद्रो वागीशत्वं ददौ मुने।
स्वयं चैवात्र सन्तस्थौ वागीशेत्यभिधानकः[१]॥५॥
तस्य वै दर्शनाद्याति शिवलोकं न संशयः।
पुनः पृथिव्यां विप्रेशो जायते सर्वशास्त्रगः॥६॥
पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यनिधिस्तथा।
भवान्ते शिवसादृश्यं लभते नात्र संशयः॥७॥
इदं परमकं स्थानं न वदेद्यस्य कस्यचित्।
अत्र गङ्गा च यमुना द्वे धारे सिद्धिदायके॥८॥
सान्निध्यं सेवितुं शम्भोरागते सर्वभावतः।
तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत्॥९॥
यदा[२] गङ्गा च यमुना कलुषे स्तः शिवप्रदे।
तदेमेऽपि शुभे धारे स्यातां कलुषके मुने॥१०॥

हे मुने! तब भगवान् रुद्र ने प्रसन्न होकर उन्हें वागीशत्व प्रदान किया और स्वयं वागीशेश्वर नाम से यहाँ विद्यमान हो गये।।५।।

उनके दर्शन करने मात्र से ही शिवलोक की प्राप्ति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है और पुनः पृथिवी पर ब्राह्मणश्रेष्ठ होकर समस्त शास्त्र का जानकार होता है।।६।।

वह पुत्र-पौत्र से संयुक्त होकर अधिक धन-धान्य से सम्पन्न होता है। तदनन्तर इस लोक में प्राप्त सुख भोगने के बाद शिवसादृश्य को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है।।७।।

इस श्रेष्ठ स्थान का वर्णन जिस किसी के समक्ष नहीं करना चाहिए। यहाँ गङ्गा और यमुना की दो धाराएँ सिद्धि प्रदान करने वाली हैं।।८।।

वे सर्वतोभाव से भगवान् शिव की आराधना करने के लिए यहाँ उपस्थित हुई हैं। अब मैं वहाँ के चिह्न का वर्णन करता हूँ, उसे जानकर तुम्हें विश्वास हो जायेगा।।९।।

हे मुनि! गङ्गा और यमुना नाम की नदियाँ जब कलुषित हो जाती हैं, तब वे दोनों धाराएँ भी कलुषित हो जाती हैं।।१०।।

---

१. भिधानतः इति ग.। २. तदेति ख.।

तयोः स्नानान्नरो याति गङ्गायमुनयोः फलम्।
तयोर्वै दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते॥११॥

नाक्षत्रीपञ्चवराधारयोः स्थितिः

ततः पश्चिमदिशि च नदी परमपावनी।
नाक्षत्री वै समाख्याता सर्वपापविशोधिनी॥१२॥
ततः पश्चिमदिग्भागे धारा पञ्चवराऽभिधा।
तत्पयः पानमात्रेण पापं वर्षकृतं दहेत्॥१३॥

चामरेश्वरमहादेवस्य चामरादोलिन्या धारायाः स्थितिः माहात्म्यञ्च

ततश्चोत्तरदिग्भागे चामरेश्वरसंज्ञितः।
चामरादोलिनी धारा तत्र पापप्रणाशिनी॥१४॥
नद्यां चामरदोलिन्यां स्नात्वा वै चामरेश्वरम्।
सम्पूज्य विधिवद् भक्त्या शिवलोके महीयते॥१५॥

इन दोनों धाराओं में स्नान करने से मनुष्य गङ्गा और यमुना में स्नान करने का फल प्राप्त कर लेता है। इन दोनों धाराओं के दर्शन करने से मनुष्य सभी प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाता है।।११।।

नाक्षत्री और पञ्चवरा धाराओं की स्थिति

वहाँ से पश्चिम की ओर परम पवित्र अत एव समस्त पापों का संशोधन करने वाली नाक्षत्री नाम की नदी प्रसिद्ध है।।१२।।

वहाँ से पश्चिम दिशा में पञ्चवरा नाम की धारा है, उसका जलपान करने से वर्षों के किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं।।१३।।

चामरेश्वर महादेव एवं चामरादोलिनी नामक धारा की स्थिति और माहात्म्य

वहाँ से उत्तर दिशा की ओर चामरेश्वर नाम के शिव हैं और वहीं पर पापों का नाश करने वाली चामरादोलिनी नाम की धारा भी उपस्थित है।।१४।।

वहाँ चामरादोलिनी धारा में स्नान करने से और चामरेश्वर महादेव का भक्तिभावपूर्वक विधिवत् पूजन कर मनुष्य शिवलोक में ऐश्वर्यों का उपभोग प्राप्त करता है।।१५।।

गर्दभासुरपर्वते कालिकादेव्याः स्थितिः

उत्तरे च ततः शैले गर्दभासुरसञ्ज्ञिते।
तत्र गर्दभनामा वै निहतो दानवो मुने॥१६॥

तस्य देहोऽयमाख्यातो गर्दभासुरसञ्ज्ञितः।
तन्मूर्ध्नि कालिकादेवी गर्दभोत्खरनादिनी॥१७॥

सा वै वरा प्रपूज्या वै गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
धनधान्यादिवृद्धिः स्यात्तस्य वै सफला कृषिः॥१८॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भुवनेशीपीठमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४३।।

गर्दभासुर नामक पर्वतशिखर पर कालिका देवी की स्थिति

हे मुनीश्वर! वहाँ से उत्तर की ओर गर्दभासुर नामक पर्वत के ऊपर भगवान् शिव ने गर्दभासुर का वध किया।।१६।।

उस दानव का शरीर ही गर्दभासुर पर्वत के नाम से विख्यात हुआ। गर्दभ के समान उत्कट नाद करने वाली देवी उस पर्वत के शिखर पर विराजमान हैं।।१७।।

गन्ध, पुष्प और अक्षत आदि के द्वारा उस श्रेष्ठ देवी की पूजा करनी चाहिए, ऐसा करने से धन-धान्य की वृद्धि और कृषि सफल होती है।।१८।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में भुवनेश्वरीपीठ-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ तैंतालिस अध्याय पूर्ण हुआ।।१४३।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१७४१+१८=१७५९]



अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गोत्तरकूले ब्रह्माश्रमे कोटीश्वराभिधस्य शिवलिङ्गस्य माहात्म्यकथनम्

स्कन्द उवाच

ततः पश्चिमदिग्भागे गङ्गा चोत्तरवाहिनी।
ब्रह्माश्रमस्तत्र पुण्यो गङ्गायास्तट उत्तमे॥१॥

तत्र ब्रह्मा तपश्चक्रे ततः पुण्यमभूत्परम्।
गङ्गाया उत्तरे तीरे गङ्गा यत्रोत्तराश्रिता॥२॥

तत्र कोटीश्वरं लिङ्गं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
तत्र मुक्ताः पुरा विप्र कोटिशो ब्रह्मराक्षसाः॥३॥

ततः कोटीश्वरं लिङ्गमभूत्तदवधि[1] स्फुटम्।
तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति॥४॥

त्रिरात्रं तत्र पीठे यो निवसेन्नियतेन्द्रियः।
स पश्येत्कौतुकं तत्र नानाविधमनुत्तमम्॥५॥

ब्रह्माश्रम में कोटीश्वर नामक शिवलिङ्ग का माहात्म्य-वर्णन

स्कन्द ने कहा

वहाँ से पश्चिम दिशा की ओर गङ्गा उत्तरवाहिनी है। वहाँ पर ही गङ्गा के उत्तम तट पर ब्रह्मा जी का पवित्र आश्रम है।।१।।

ब्रह्मा जी ने वहाँ पर तप किया था, इसलिए वह स्थान अतिशय पवित्र हो गया। गङ्गा जी के उत्तरी तीर पर जहाँ गङ्गा उत्तरवाहिनी हैं।।२।।

हे विप्र! प्राचीनकाल में वहाँ करोड़ों ब्रह्मराक्षस मुक्ति को प्राप्त किये थे, इसलिए वहाँ भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाले भगवान् शिव का कोटीश्वर नामक लिङ्ग विद्यमान है।।३।।

करोड़ों ब्रह्मराक्षसों के मुक्ति प्रदान करने के कारण उसी समय से वह कोटीश्वर लिङ्ग विख्यात हुआ। उसके दर्शन करने से ही ब्रह्महत्या का पाप नष्ट हो जाता है।।४।।

जो मनुष्य इन्द्रियों को वश में करके तीन रात्रिपर्यन्त उस पीठ में निवास करता है, वह वहाँ अनेक प्रकार के उत्तम कौतुकों का दर्शन करता है।।५।।

---

१. तद्दिन उत्तरमिति क.।

विद्यार्थी सप्तरात्रं च तत्र शैवमनुं जपेत्।
तस्य स्वयं महादेवो जिह्वायां निवसेदलम्॥६॥
वाचस्पतिरिवात्यर्थं स भवेत्पुरुषोत्तमः।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम्॥७॥
शिवकुण्डे नरः स्नात्वा तदधः स्नानमाचरेत्।
प्राप्नोति विपुलां सिद्धिं प्रेत्य शैवं लभेत्पदम्॥८॥

तत्रैव ब्रह्मकुण्डस्य शूलकुण्डस्य च स्थितिः

ततो वामप्रदेशे हि माने शरचतुष्टये।
ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातं ब्रह्मलोकप्रदायकम्॥९॥
तस्य दक्षे महापुण्यं शूलकुण्डमिति स्मृतम्।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या सर्वशत्रुक्षयं लभेत्॥१०॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भुवनेशीमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४४।।

यदि कोई विद्यार्थी सात रात्रिपर्यन्त वहाँ शिव के मन्त्र का जप करता है, तो उसकी जिह्वा पर स्वयं भगवान् शङ्कर निवास करने लगते हैं।।६।।

वह पुरुषश्रेष्ठ वाचस्पति के समान विद्वान् हो जाता है। वह जिन वस्तुओं की कामना करता है, निःसन्देह उसे उन वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है।।७।।

जो मनुष्य शिवकुण्ड में स्नान करने के बाद उसके नीचे भी स्नान करता है, वह विपुल सिद्धि को प्राप्त कर अन्त में शिव के पद को प्राप्त कर लेता है।।८।।

वहीं पर ब्रह्मकुण्ड और शूलकुण्ड की स्थिति

वहाँ से वामभाग में चार बाण की दूरी पर ब्रह्मा के लोक को प्रदान करने वाला प्रसिद्ध ब्रह्मकुण्ड है।।९।।

ब्रह्मकुण्ड से दक्षिण की ओर महान् पुण्यशाली शूलकुण्ड है। उसमें भक्तिभाव से स्नान करने से मनुष्य के समस्त शत्रुओं का विनाश हो जाता है।।१०।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में भुवनेश्वरी-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चौवालीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१४४।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१७५९+१०=१७६९]



अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भद्रसेनेश्वरशिवस्य माहात्म्यवर्णनम्

स्कन्द उवाच

अथान्यत्ते प्रवक्ष्यामि भद्रसेनेश्वरं शुभम्।
यस्य सन्दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१॥
अत ईशानदिग्भागे भद्रसेनाश्रमः शुभः।
यत्र तेपे तपः पूर्वं भद्रसेनो महीपतिः॥२॥
आरराध शिवं यत्र भक्त्या परमया युतः।
वीरभद्रो गणो जातः स एव पृथिवीपतिः॥३॥

कामालव्याधस्याख्यानम्

तत्र कामालनामा वै व्याधोऽपि निवसंश्चिरम्।
सैकदा मृगयासक्तो गतोऽरण्ये भयानके॥४॥
दृष्टस्तत्र वृषस्तेन क्व गच्छसीति लुब्धक।
तेनोक्तं मृगयार्थेऽहं गच्छामि मृगहेतवे॥५॥

भद्रसेनेश्वर महादेव का माहात्म्य-वर्णन

स्कन्द ने कहा

अब मैं भद्रसेनेश्वर नामक शिव के माहात्म्य का वर्णन करता हूँ, जिनके दर्शन करने मात्र से ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।१।।

उस शूलकुण्ड से ईशानकोण की ओर भद्रसेन का शुभ आश्रम है, जहाँ पर प्राचीनकाल में भद्रसेन नामक राजा ने तप का आचरण किया था।।२।।

वहाँ पर उस राजा ने परम भक्ति के साथ भगवान् शिव की आराधना की थी, जिससे वही राजा वीरभद्र नामक शिव का गण हुआ।।३।।

कामाल नामक व्याध का आख्यान

वहाँ पर चिरकाल से कामाल नामक एक व्याध निवास करता था। वह एक बार शिकार में आसक्त होकर भयानक वन में चला गया।।४।।

वहाँ उसने एक बैल को देखा। तब उस बैल ने पूछा—हे व्याध! तुम कहाँ जा रहे हो? उसने उत्तर दिया कि मैं मृगों का शिकार करने के लिए जा रहा हूँ।।५।।

वृषश्चोवाच रे पाप किं करोषि हि किल्विषम्।
भद्रसेनाश्रमेऽप्यस्मिन् पापं मा कुरु लुब्धक॥६॥
शिवं भजस्व रे धूर्त्त पापकर्म परित्यज।
इत्युक्तः सहसा व्याधः पूर्वजन्मार्जितैश्शुभैः॥७॥
सन्त्यज्य खड्गचर्माणि प्रययौ शिवमन्दिरम्।
सप्तरात्रं तथा तत्र निराहारो जितेन्द्रियः॥८॥
सन्त्यज्याऽष्टमदिवसे प्राणाँस्त्यक्त्वा शिवं ययौ।
इति ते कथितं दिव्यं भौवनं मुनिसेवितम्॥९॥
माहात्म्यं शृणुयादस्य पठेदपि समाहितः।
स लभेत्परमं स्थानं यत्र ब्रह्मादयः सुराः॥१०॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भुवनेश्वरीपीठमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४५।।

तदनन्तर उस वृषभ ने कहा—रे पापी! तुम क्यों पाप कर रहे हो। अरे लोभी! तुम इस भद्रसेन के आश्रम में पाप मत करो।।६।।

रे धूर्त! तुम पापकर्म का परित्याग करो और भगवान् शिव का भजन करो। वृषभ के द्वारा ऐसा कहने पर उस व्याध को पूर्वजन्म के अर्जित शुभ कर्मों के कारण शुभ भावना का उदय हो गया।।७।।

वह ढाल और तलवार का त्याग कर शिव के मन्दिर में चला गया। वहाँ वह सात रात्रिपर्यन्त जितेन्द्रिय होकर निराहार रहकर निवास किया।।८।।

आठवें दिन प्राणों का परित्याग कर वह बहेलिया शिवलोक को चला गया। इस प्रकार हमने आपके प्रति मुनियों के द्वारा सेवित दिव्य भुवनेश्वरीपीठ का माहात्म्य वर्णन किया है।।९।।

जो मनुष्य इस पीठ के माहात्म्य का श्रवण करता है या समाहित होकर पढ़ता है, वह उस परम श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त कर लेता है, जहाँ ब्रह्मा आदि देवता निवास करते हैं।।१०।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में भुवनेश्वरीपीठ-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ पैंतालीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१४५।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१७६९+१०=१७७९]



अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भिल्लाङ्गनाख्यसरित्तटात् पूर्वोत्तरभागे सत्येश्वर-शिवलिङ्गमाहात्म्यकथनम्

स्कन्द उवाच

ततः पूर्वोत्तरे भागे भिल्लाङ्गनसरित्तटात्।
पञ्चाशद्दण्डप्रमिते शिवलिङ्गं सुपुण्यदम्॥१॥
नाम्ना सत्येश्वरं ख्यातं दर्शनादिष्टदायकम्।
घोरे कलियुगे विप्र सद्यः प्रत्ययकारकम्॥२॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां सोमवारेऽथवा मुने।
रुद्राध्यायेनाभिषेकं यः करोति तदात्मनि॥३॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा तदन्ते शिवमाप्नुयात्।
यस्य दर्शनतो विप्र पातकं विलयं व्रजेत्॥४॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे शिवलिङ्गमहिमवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४६।।

भिल्लाङ्गना नदी एवं सत्येश्वर शिवलिङ्ग का माहात्म्य कथन

स्कन्द जी ने कहा

वहाँ से पूर्व और उत्तर के बीच में भिल्लाङ्गना नदी के तट से पचास दण्ड की दूरी पर पुण्यदायक एक शिवलिङ्ग है।।१।।

वह सत्येश्वर नाम से प्रसिद्ध है। उसके दर्शन करने से ही अभीष्ट सिद्धि होती है। हे विप्र! घोर कलियुग में भी वह लिङ्ग विश्वास दिलाने वाला है।।२।।

हे मुनि! अष्टमी अथवा चतुर्दशी या सोमवार के दिन रुद्राध्याय से जो व्यक्ति अभिषेक करता है।।३।।

वह अपनी आत्मा में प्रत्यय करता हुआ इस लोक में सुख भोग कर अन्त में शिव में लय हो जाता है। हे विप्र! उस शिवलिङ्ग के दर्शन करने मात्र से सभी प्रकार के पापों का विनाश हो जाता है।।४।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में शिवलिङ्गमहिमा-वर्णन नामक एक सौ छियालीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१४६।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१७७९+४=१७८३]



अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गाणेश्वराख्यशिवलिङ्गमाहात्म्यकथनम्

स्कन्द उवाच

अथान्यदपि सुक्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम्।
गणेशेन पुरा यत्र पूजितो वृषभध्वजः॥१॥
भिल्लाङ्गणोद्भवा यत्र धारा गङ्गाङ्गसम्भवा।
गङ्गायाः सङ्गमे देव तत्र तीर्थं तु तत्स्मृतम्॥२॥
गाणेश्वरी शिला तत्र रक्तवर्णा सुपुण्यदा।
तत्र वै रक्तवर्णं च जलमस्त्रसमं परम्॥३॥
तत्र गाणेश्वरं लिङ्गं शिवभक्तिप्रदायकम्।
दर्शनादेव वै यस्य गणः सद्यो भवेन्नरः॥४॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नाति भक्त्याऽभक्त्यापि वा द्विज[1]।
इह लोके वरान् भोगान् प्राप्य चान्ते शिवं लभेत्॥५॥

गाणेश्वर महादेव का माहात्म्य-कथन

स्कन्द जी ने कहा

अब हम एक अन्य सुन्दर क्षेत्र का वर्णन कर रहे हैं, वह समस्त पापों का नाश करने वाला है। प्राचीन समय में गणेश ने वृषभध्वज भगवान् का पूजन किया था।।१।।

जहाँ पर गङ्गा के अङ्ग से उद्भूत भिल्लाङ्गना नदी से उत्पन्न एक धारा है। उसी गङ्गा के सङ्गम पर यह गाणेश्वर तीर्थ प्रसिद्ध है।।२।।

वहाँ पर एक गाणेश्वरीशिला है, जो रक्तवर्ण की है, वह अत्यन्त पुण्यदायिनी है। वहाँ का जल भी लाल रङ्ग का रक्त के समान प्रतीत होता है।।३।।

वहीं पर शिव में भक्ति प्रदान करने वाला गाणेश्वर लिङ्ग है, उस लिङ्ग के दर्शन करने से ही मनुष्य शिव का गण हो जाता है।।४।।

हे द्विज! उस तीर्थ में जो व्यक्ति भक्ति अथवा बिना भक्ति के भी स्नान करता है, वह इस लोक में उत्तमोत्तम भोगों का उपभोग करके अन्त समय में महादेव में लय हो जाता है।।५।।

१. द्विज इति प्रथमान्तप्रयोगः ख.।

धनुस्तीर्थस्य स्थितिर्माहात्म्यञ्च

धनुस्तीर्थं च तत्रैव वामभागे महाफलम्।
धनुराकृति ब्रह्मात्र शतयज्ञफलं लभेत्॥६॥

शेषतीर्थस्य माहात्म्यम्

ततो वै दक्षिणे भागे शेषतीर्थं शुभप्रदम्।
तत्र स्नात्वा नरो याति विष्णुलोकमनामयम्॥७॥

माल्यवत्या आख्यानम्

गङ्गाया उत्तरे तीरे माल्यवत्यास्तथाऽऽश्रमः।
यत्र सङ्गमनादेव शिवलोके महीयते॥८॥

नारद उवाच

का सा माल्यवती ख्याता यस्याश्चायं शुभाश्रमः।
कस्य कन्या तु सा ख्याता केनेदं समनुष्ठितम्॥९॥

धनुस्तीर्थ की स्थिति और माहात्म्य

उसी के वामभाग में धनुष के आकार का धनुषतीर्थ है, उसका भी महान् फल है। वहाँ ब्रह्मा की मूर्ति धनुष के आकार की है। उनका दर्शन करने से सौ यज्ञ करने का फल प्राप्त हो जाता है।।६।।

शेषतीर्थ का माहात्म्य

वहाँ से दक्षिण भाग में शुभदायक शेषतीर्थ है, उसमें स्नान कर मनुष्य रोगरहित होकर विष्णुलोक को प्राप्त कर लेता है।।७।।

माल्यवती का आख्यान

गङ्गा के उत्तरी तट पर माल्यवती का आश्रम है। वहाँ की केवल यात्रा करने से मनुष्य शिवलोक में ऐश्वर्य का उपभोग करता है।।८।।

नारद ने कहा

यह माल्यवती कौन है? जिसका यह शुभ आश्रम है। वह किसकी कन्या थी? तथा किसने यह अनुष्ठान किया।।९।।

स्कन्द उवाच

शृणु विप्र कथामेतां पापघ्नीं सर्वकामदाम्।
यस्माच्छुभाश्रमो जातः शिवस्थानं सुदुर्लभम्।।१०।।
पुरा राजा वीरसेनः सूर्यवंशविवर्द्धनः।
तस्य कन्या च सञ्जाता रूपयौवनशालिनी।।११।।
नाम्ना वसुमती ख्याता तथा सौन्दर्यशेवधिः[१]।
सैकदा मुनिशार्दूल गतारण्यं मदालसा।।१२।।
सखिभिः सङ्गता चैव नक्षत्रेष्विव रोहिणी।
माल्यं च बिभ्रती पात्रं पीनोन्नतपयोधरा।।१३।।
तस्मिन्नेव महाकाले द्वौ सखायौ समागतौ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन ब्रह्मक्षत्रवरात्मजौ।।१४।।
सुशीलसुभगौ विप्र कन्दर्पाविव रूपिणौ।
साऽपि तत्र वनोद्देशे नानामुनिजनाश्रिते।।१५।।

स्कन्द ने कहा

हे विप्र! पापों का नाश करने वाली एवं समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली इस कथा को सुनो, जिस प्रकार यह शुभ आश्रम महादेव शिव का अत्यन्त दुर्लभ स्थान बन गया।।१०।।

प्राचीनकाल में सूर्यवंश की वृद्धि करने वाला वीरसेन नाम का एक राजा था। रूप एवं यौवन से सम्पन्न उसकी एक कन्या थी।।११।।

उस रूपनिधि कन्या का माल्यवती/वसुमती नाम था। हे मुनिश्रेष्ठ! एक समय वह मद से अलसायी हुई जङ्गल में गयी।।१२।।

उस समय वह सखियों के साथ इस प्रकार मिली हुई थी, जिस प्रकार नक्षत्रों के बीच में रोहिणी मिली हुई रहती है। उस समय वह माला और पात्र धारण की हुई थी, उसके उरोज पुष्ट और उन्नत थे।।१३।।

उसी समय तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में दो मित्र भी वहाँ आ गये, जो क्रमशः ब्राह्मण और क्षत्रिय के पुत्र थे।।१४।।

हे विप्र! वे दोनों अत्यन्त सुशील और सुन्दर थे तथा कामदेव के समान रूपवान् थे। उसी समय वह कन्या भी नाना मुनियों से आकीर्ण वन-प्रदेश में भ्रमण कर रही थी।।१५।।

१. शालिनीति क.।

चचार चेरतुस्तौ च तीर्थयात्राविधानतः।
ददर्शतुर्मुनिवरौ राजकन्यां शुचिस्मिताम्॥१६॥
राजपुत्रो वशं यातः कामदेवस्य सत्वरम्।
दृष्ट्वा माल्यवतीं तां च कामबाणप्रपीडितः॥१७॥
यदा न दृष्टा विपिने राजपुत्री यशस्विनी।
अपृच्छद् ब्राह्मणं मुग्धः का सा माल्यवती शुभा॥१८॥
एवं सङ्केतनामास्याश्चक्रतुस्तौ परस्परम्।
साऽपि नित्यं समायाति स्नातुं वै तत्र तीर्थके॥१९॥
काममोहवशं प्राप्तः सुभगो राजपुत्रकः।
राजपुत्री माल्यवती कथं मे स्याद्वशातिगा॥२०॥
महादेवस्य पूजां वै करिष्यामि तदाप्तये।
इति निश्चित्य सहसा राजपुत्रो महामते॥२१॥
उवास गङ्गानिकटे कृत्वा बालुकलिङ्गकम्।
पूजयामास विधिवन्महादेवमुमापतिम्॥२२॥

वे दोनों मित्र भी तीर्थयात्रा की विधि से भ्रमण कर रहे थे। उन मुनीश्वरों ने पवित्र मुस्कान वाली उस राजकन्या को देखा।।१६।।

उन दोनों में जो राजपुत्र था, वह शीघ्र ही कामदेव के वशीभूत हो गया। राजकुमार माल्यवती को देखकर कामदेव के बाण से व्यथित हो गया।।१७।।

तदनन्तर जब उसे वन में यशस्विनी राजपुत्री दृष्टिगत न हुई, तब वह मोहित होकर ब्राह्मणकुमार से पूछने लगा कि वह माल्यवती शुभ लक्षण वाली कौन थी।।१८।।

इस प्रकार उन दोनों ने उस कन्या का साङ्केतिक नाम माल्यवती रख लिया। वह राजकन्या नित्यप्रति उस तीर्थ में स्नान करने के लिए आती थी।।१९।।

इधर वह राजपुत्र कामासक्त होकर यही विचार करता रहता था कि राजपुत्री माल्यवती मेरे वश में किस प्रकार होगी।।२०।।

मैं उसको प्राप्त करने के लिए भगवान् शिव की पूजा करूँगा। हे महामतिमान्! इस प्रकार राजपुत्र ने सहसा निश्चय कर लिया।।२१।।

अब वह गङ्गा के निकट निवास करने लगा और बालू का शिवलिङ्ग बनाकर उमापति महादेव की विधिवत् पूजा करने लगा।।२२।।

एवं स सप्तरात्रं तु निराहारो जितश्रमः।
पूजयामास नैवेद्यैरुपचारैरनेकधा॥२३॥
ततः स्वप्ने ददर्शाऽथ विप्ररूपमुमापतिम्।
अश्रृणोच्च ततो वाक्यं गच्छ रे राजपुत्रक॥२४॥
भविष्यति शुभा भार्या यदर्थं पूजितः शिवः।
इदमेव शिवस्थानं हिमवद्दक्षिणस्थले॥२५॥
देवदेवस्य संस्थानं वर्त्ततेऽदः पुरातनम्।
अत्र त्वयाऽऽराधितोऽसौ तुष्टः स्यान्न कथं विभुः॥२६॥
प्रादुर्बभूव लिङ्गं तज्ज्योतीरूपं दुरासदम्।
स्वर्णाभं द्युमणीरूपं प्रबुद्धो वै ददर्श ह॥२७॥
दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यं राजपुत्रो महामतिः।
पूजयामास तल्लिङ्गमुपचारैरनेकधा॥२८॥
प्रचक्रे नाम तस्यापि पुण्यं माल्यवतीकृते।
प्रादुर्बभूव यस्माद्वै तस्मान्माल्यवतीश्वरः॥२९॥

इस प्रकार वह सात रात्रिपर्यन्त निराहार रहकर थकावट का अनुभव न करता हुआ, नैवेद्य आदि विविध उपचारों से महादेव की पूजा कर रहा था।।२३।।

इसके बाद कभी वह स्वप्न में विप्र का रूप धारण किये हुए उमापति शिव को देखा। उसने उनसे यह वाक्य सुना कि हे राजपुत्र! तुम जाओ।।२४।।

जिस निमित्त से तुमने भगवान् शिव का पूजन किया है, वह तुम्हारी शुभ पत्नी होगी। भगवान् शङ्कर का यह स्थान हिमालय के दक्षिण भाग में है।।२५।।

प्राचीनकाल से ही यहाँ देवाधिदेव महादेव विराजमान हैं। तुमने जब यहाँ आराधना की है, तब भगवान् कैसे सन्तुष्ट नहीं होंगे।।२६।।

तदनन्तर वहाँ ज्योतिस्वरूप लिङ्ग प्रादुर्भूत हुआ, उसकी प्रभा सुवर्ण के समान एवं रूप सूर्य के समान था। प्रबुद्ध होकर राजकुमार ने ऐसे ही स्वरूप का दर्शन किया।।२७।।

जब उस महामतिमान् राजपुत्र ने यह अद्भुत आश्चर्य देखा, तब वह अनेक उपचारों से उस लिङ्ग की पूजा करने लगा।।२८।।

चूँकि वहाँ माल्यवती के लिए उसका पुण्य कर्म हुआ था, उसी के कारण भगवान् प्रादुर्भूत हुए थे। इसलिए उनका नाम माल्यवतीश्वर हुआ।।२९।।

एतस्मिन्नन्तरे सापि राजपुत्री यशस्विनी।
आजगाम तथा स्नातुं ददर्श ज्योतिरुत्तमम्॥३०॥
तं च तत्र ददर्शाऽथ राजपुत्रं महाबलम्।
साऽपि तं चकमे बाला रुक्मिणीव जनार्दनम्॥३१॥
गान्धर्वविधिना तत्रोपयेमे राजपुत्रिकाम्।
समादाय ततस्तां च स्वगृहं हि समाययौ॥३२॥
इति लिङ्गस्य चोत्पत्तिः कथिता तव नारद।
आयुर्बलकरी पुण्या यशस्या सर्वकामदा॥३३॥
इदं माल्यवतीस्थानं ततोऽभूद् भुक्तिमुक्तिदम्।
यत्र देवः पुरा दृष्टो ब्रह्मणा ह्यष्टमूर्त्तिमान्॥३४॥
पृथिव्याद्यष्टमूर्त्तीनां मुदा यत्रेश्वरे परे।
दृष्टे ततः सुरज्येष्ठो नाम चक्रेऽष्टमूर्त्तिकम्[1]॥३५॥

इसी बीच वह यशस्विनी राजपुत्री भी स्नान करने के लिए वहाँ आयी, तब उसने भी उत्तम ज्योति का दर्शन किया।।३०।।

इसके बाद वहाँ पर उसने उस महान् बलशाली राजपुत्र को भी देखा। जिस प्रकार रुक्मिणी ने भगवान् जनार्दन का वरण किया था, उसी प्रकार उस बाला ने उस राजकुमार को वरण कर लिया।।३१।।

इस प्रकार उस राजकुमार ने गान्धर्व विवाह की विधि से राजपुत्री के साथ विवाह कर लिया और उसे साथ लेकर अपने घर को चला गया।।३२।।

हे नारद! इस प्रकार हमने माल्यवतीश्वर नामक लिङ्ग की उत्पत्ति का वर्णन तुम्हारे प्रति किया है। यह उत्पत्ति का वृत्तान्त आयु, बल और यश की वृद्धि करने वाला, पवित्र एवं समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।।३३।।

उसी समय से माल्यवती का यह स्थान भोग, ऐश्वर्य एवं मोक्ष को प्रदान करने वाला विख्यात है। यहाँ पर ही प्राचीनकाल में ब्रह्मा ने महादेव की अष्ट मूर्तियों का दर्शन किया था।।३४।।

ब्रह्मा ने वहाँ परमेश्वर में पृथिवी आदि अष्टमूर्तियों को हर्ष से देखा, इसलिये ब्रह्मा ने अष्टमूर्ति नामकरण किया।।३५।।

---

१. पृथिवीसलिलं तेजो वायुराकाशमेव च।
सूर्याचन्द्रमसौ याजिरष्टौ शङ्करमूर्तयः।। (इति यादवः)

अष्टमूर्त्तीश्वरस्तत्र शिवः संस्थापितो भुवि।
ततः पश्चिमदिग्भागे कूटाद्रिनिकटे परा॥३६॥
शिला रौद्री समाख्याता सर्वमङ्गलदायिनी।
ततो वै दक्षिणे भागे यक्षराजतपःस्थलम्॥३७॥
मणिभद्रः पुरा यक्षः शिवमाराधयन्मुदा।
यक्ष्या जपतपःस्थानं वर्त्तते शुभदायकम्॥३८॥
तत्रैकं सलिलं दिव्यमतिशीतं तपर्त्तुके।
उष्णं चैव तु हेमन्ते सर्वपापप्रणाशनम्॥३९॥
ततः पश्चिमदिग्भागे तथा पर्वतशेखरे।
नाम्ना पर्णवनं ख्यातं तत्र पादावुमापतेः॥४०॥
तत्र वै क्रीडितं देव्याऽपर्णया मुनिवन्दित।
ततः पर्णवनं ख्यातं दिव्यभोगप्रदायकम्॥४१॥

तब से पृथिवी पर भगवान् शिव की अष्टमूर्तियों की स्थापना हुई। अत एव उनका नाम अष्टमूर्तीश्वर शिव विख्यात हुआ। वहाँ से पश्चिम दिशा में कूटाद्रि के निकट समस्त मङ्गल को प्रदान करने वाली रौद्री शिला विद्यमान है। उससे दक्षिण भाग में यक्षराज की तपस्थली है।।३६-३७।।

प्राचीनकाल में मणिभद्र नामक यक्ष ने यहाँ पर प्रसन्नतापूर्वक भगवान् महादेव की आराधना की थी। यही स्थान यक्षिणी के जप और तप करने का भी है।।३८।।

वहाँ दिव्य जल है, जो ग्रीष्म ऋतु में अत्यन्त शीतल रहता है और हेमन्त ऋतु में वह अत्यन्त उष्ण हो जाता है। वह सभी प्रकार के पापों का नाश करने वाला है।।३९।।

वहाँ से पश्चिम की ओर पर्वत के शिखर पर एक पर्णवन है, जहाँ पर उमापति भगवान् शिव का चरण विद्यमान है।।४०।।

हे मुनिवन्दित! वहीं पर देवी अपर्णा पार्वती ने क्रीड़ा की थी। उसी समय से वह पर्णवन नाम से विख्यात हो गया। वह वन दिव्य भोगों को प्रदान करने वाला है।।४१।।

विरागिण्याः शूलेश्वरीदेव्याश्च स्थितिः

तत उत्तरदिग्भागे विरागिण्यास्तपःस्थलम्।
काचिदपि कुलोत्पन्ना ब्राह्मणी धर्मतत्परा॥
विरागिणीति विख्याता तया तप्तं तपः पुरा॥४२॥
तत ऊर्ध्वं पर्वतके देवी शूलेश्वरी मता।
तस्याः दर्शनमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥४३॥

गोवर्द्धनपर्वतस्य स्थितिः

ततश्चाप्युत्तरे देशे नाम्ना गोवर्द्धनो गिरिः।
तत्र गोवर्द्धनेशो वै शिवः सर्वनमस्कृतः॥४४॥
तस्य वै पूजनान्मर्त्त्यो रुद्रलोके महीयते।
इति सर्वं समाख्यातं[१] पवित्रं पापनाशनम्॥४५॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे माल्यवतीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४७।।

विरागिणी और शूलेश्वरी देवी की स्थिति

वहाँ से उत्तर दिशा की ओर विरागिणी के तप करने का स्थान है। किसी ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुई विरागिणी नाम वाली धार्मिक स्वभाव वाली किसी स्त्री ने यहाँ प्राचीनकाल में तप किया था।।४२।।

वहाँ से ऊर्ध्वभाग में पर्वत के ऊपर शूलेश्वरी देवी विद्यमान हैं, उनका दर्शन करने मात्र से मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियों का अधीश्वर हो जाता है।।४३।।

गोवर्द्धन पर्वत की स्थिति

वहाँ से उत्तर की ओर गोवर्द्धन नामक पर्वत है। वहाँ सबके द्वारा नमस्कृत गोवर्द्धनेश्वर नामक शिव विराजमान हैं।।४४।।

उनका पूजन करने से मनुष्य रुद्रलोक में ऐश्वर्यों का उपभोग करता है। इस प्रकार हमने पवित्र एवं समस्त पापों का विनाश करने वाला यह आख्यान तुम्हारे प्रति वर्णन किया है।।४५।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में माल्यवतीश्वरमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ सैंतालिस अध्याय पूर्ण हुआ।।१४७।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१७८३+४५=१८२८]



अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भास्करक्षेत्रस्थितभास्करेश्वरमाहात्म्यकथनम्

स्कन्द उवाच

अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि भास्करं क्षेत्रमुत्तमम्।
ततो वै दक्षिणे भागे गव्यूतिपरिनिष्ठितम्।।१।।
पुरा तत्र महादेवः संस्तुतः परमेश्वरः।
भास्करेण महाभाग दिव्यवर्षसहस्रकम्।।२।।
सन्तुष्टश्च तदा तस्मै ददौ नेत्रस्थितिं मुने।
गङ्गायाः पश्चिमे तीरे तीर्थं पापप्रणाशनम्।।३।।
तत्रैव भास्करं कुण्डं यत्र वै स्नानमात्रतः।
रविलोकं मुने गत्वा ततः शिवपुरे वसेत्।।४।।
इदं वै भास्करं क्षेत्रं शिवस्थानं स्मृतं परम्।
नाम्ना तत्र महादेवो विप्रर्षे भास्करेश्वरः।।५।।

भास्कर-क्षेत्र में भास्करेश्वर के माहात्म्य का वर्णन

स्कन्द ने कहा

अब मैं भास्कर नामक उत्तम क्षेत्र का वर्णन कर रहा हूँ। यह क्षेत्र गणेशक्षेत्र से दो कोस की दूरी पर स्थित है।।१।।

हे महाभाग! प्राचीनकाल में उसी स्थान पर भास्कर (सूर्य) ने दिव्य सहस्रवर्ष पर्यन्त परमेश्वर महादेव की स्तुति की थी।।२।।

तब महेश्वर ने सन्तुष्ट होकर उन्हें अपने नेत्र में निवास प्रदान किया। यह तीर्थ गङ्गा के पश्चिमी तट पर स्थित है, यह पापों का विनाश करने वाला क्षेत्र है।।३।।

हे मुनि! वहाँ पर ही भास्कर कुण्ड है। उसमें स्नान करने मात्र से मनुष्य रविलोक में जाने के पश्चात् शिवलोक में निवास प्राप्त करता है।।४।।

यह भास्करक्षेत्र भगवान् शिव का परम श्रेष्ठ स्थान कहा गया है। हे विप्रर्षि! यहाँ पर भास्करेश्वर नामक भगवान् शिव विराजमान हैं।।५।।

पूजयित्वा विधानेन शतरुद्रियकेन वै।
प्राप्नोति परमं स्थानं महाराजस्ततो भवेत्॥६॥

विष्णुकुण्ड-ब्रह्मकुण्डयोः स्थितिः

ततो वै दक्षिणे भागे विष्णुकुण्डमिति स्मृतम्।
तत्र स्नानान्नरो याति वैकुण्ठं स्थानमच्युतम्॥७॥
तत्रैव दण्डषट्के वै ब्रह्मकुण्डमिति स्मृतम्।
स्नानमात्रेण तत्रापि ब्रह्मलोके महीयते॥८॥

नवलानद्याः स्थितिः

ततो दक्षिणके भागे नवला च नदी स्मृता।
सूर्यलोकमवाप्नोति तस्यां यः स्नानमाचरेत्॥९॥
इदं परमसंस्थानं महादेवस्य नारद।
एतन्न त्यजते विप्र चरमेऽपि युगे शिवः॥१०॥

जो मनुष्य शतरुद्री की विधि से भगवान् शङ्कर की पूजा करता है, वह प्रथम तो परमस्थान को प्राप्त करता है, पुनः जन्मग्रहण करने पर वह महान् राजा होता है।।६।।

विष्णुकुण्ड एवं ब्रह्मकुण्ड की स्थिति

भास्करकुण्ड से दक्षिण दिशा में विष्णुकुण्ड स्थित है। उसमें स्नान करने से मनुष्य अविनाशी वैकुण्ठलोक में चला जाता है।।७।।

वहाँ से छः दण्ड की दूरी पर ब्रह्मकुण्ड की स्थिति बतायी गयी है। उसमें भी स्नान करने मात्र से ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।।८।।

नवला नामक नदी की स्थिति

वहाँ से दक्षिण भाग में नवला (नयी नदी, जो व्यासघाट में गङ्गा में मिलती है) नदी की स्थिति है, इस नदी में जो व्यक्ति स्नान करता है, वह सूर्यलोक को प्राप्त कर लेता है।।९।।

हे नारद! यह भगवान् महादेव का परम श्रेष्ठ स्थान है। हे विप्र! हे नारद! यह भगवान् महादेव का परम श्रेष्ठ स्थान है। हे विप्र! चरम युग (कलियुग) में भी भगवान् शिव इस स्थान का परित्याग नहीं करते हैं।।१०।।

अत्र स्नानात्तथा दानात्तथा मन्त्रजपान्मुने।
अधिकं पुण्यमाप्नोति क्षेत्राद्देवप्रयागतः॥११॥

गङ्गाया गोमुखान्निःसरणम्

ततो वै पूर्वदिग्भागे महादेव्याश्च दक्षिणे।
महातपा मुनिस्तत्र गङ्गामाराधयत्पुरा॥१२॥
तपस्तेपे दुराधर्षं दुर्गम्यं प्राकृतैर्जनैः।
ततः कतिपयैर्वर्षैस्सन्तुष्टा जाह्नवी परा॥१३॥
गोमुखान्निस्सृता गङ्गा सर्वपापप्रणाशिनी।
ऋषीणां पश्यतां तत्र जातमद्भुतकं महत्॥१४॥
इति तत्परमाश्चर्यं दृष्ट्वा विस्मयमाययुः।
क्षेत्रनाम च सञ्चक्रुर्यस्माद् गोमुखतो गता॥१५॥
तस्माद्गोमुखकं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम्॥१६॥

हे मुनि! यहाँ स्नान, दान और मन्त्र का जप करने से देवप्रयाग की अपेक्षा अधिक पुण्य की प्राप्ति होती है।।११।।

महातपा मुनि की तपस्या से प्रसन्न गङ्गा का गोमुख से प्रादुर्भाव

वहाँ से पूर्व दिशा की ओर महादेवी से दक्षिण दिशा में महातपा नामक मुनि ने प्राचीनकाल में भगवती गङ्गा की आराधना की थी।।१२।।

उन्होंने ऐसा तप किया, जो प्राकृत मनुष्यों के लिए अति दुर्गम एवं अत्यन्त कठोर था। ऐसा तप करने पर कुछ काल के पश्चात् उनसे गङ्गा प्रसन्न हुईं।।१३।।

तदनन्तर गङ्गा जी गोमुख से प्रकट हुईं, जो समस्त पाप-राशि का विनाश करने वाली हैं। ऋषियों के देखते-देखते वहाँ यह एक परम अद्भुत कार्य हुआ।।१४।।

तब इस परम आश्चर्य का अवलोकन कर महर्षिगण विस्मित हो गये। तब से उस क्षेत्र का नाम गोमुख क्षेत्र हुआ; क्योंकि गोमुख से ही गङ्गा जी निकली थीं। इसलिए यह गोमुख नामक क्षेत्र सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है।।१५-१६।।

नारद उवाच

अस्ति किञ्चित्परं स्थानं नाम्ना देवप्रयागकम्।
यत्त्वया कथितं पुण्यमत्र स्नानात्ततोऽधिकम्॥१७॥
कुत्र तद्विद्यते क्षेत्रं महादेवस्य सुप्रियम्।
कस्य स्थानं तदाख्यातं तन्मे वद सुविस्तरात्॥१८॥

स्कन्द उवाच

इदं परमकं क्षेत्रं गुह्यं नैव प्रकाशितम्।
यत्र तप्त्वा बलिः पूर्वं प्राप चैन्द्रं[1] पदं महत्॥१९॥
यत्र ब्रह्मादयो देवाः सङ्गता मुक्तिलालसाः।
शिवतीर्थमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥२०॥
यत्र दर्शनमात्रेण नश्यन्ते पापराशयः।
किं पुनः सेवनात्तस्य क्षेत्रराजस्य नारद॥२१॥

नारद ने कहा

देवप्रयाग नाम का भी कोई परम श्रेष्ठ स्थान हैं, जिसके लिये आपने कहा है कि नवला नदी में स्नान करने से देवप्रयाग से भी अधिक पुण्य होता है।।१७।।

भगवान् महादेव जी का परम प्रिय वह क्षेत्र कहाँ है। वह किसका क्षेत्र है, यह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक हमारे प्रति वर्णन करने की कृपा करें।।१८।।

स्कन्द ने कहा

यह परम गोपनीय स्थान है, इसलिये अब तक इसको प्रकट नहीं किया था। प्राचीनकाल में उसी स्थान पर तप करके बलि ने इन्द्र का महान् पद प्राप्त किया था।।१९।।

वहाँ मुक्ति की अभिलाषा से ब्रह्मा आदि देवता एकत्रित रहते हैं। यह शिवतीर्थ कहा गया है, यह सम्पूर्ण तीर्थों में उत्तमोत्तम तीर्थ है।।२०।।

जहाँ पर दर्शन करने मात्र से समस्त पापराशियाँ नष्ट हो जाती हैं। हे नारद! उस क्षेत्र के सेवन करने का फल तो कहना ही क्या है।।२१।।

१. चन्द्रमिति ख.।

सीता भगवती साक्षात्तथा नारायणः स्वयम्।
यत्रास्ते सर्वदेवानां पूजिताङ्घ्रिसरोरुहः॥२२॥
अन्यैश्च भ्रातृभिः सार्द्धं तथा हनुमता द्विज।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवा इह स्थिताः॥२३॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भास्करक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४८ ।।

साक्षात् भगवती सीता और स्वयं नारायण श्रीराम वहाँ विद्यमान हैं, जिनके चरण-कमलों की पूजा समस्त देवता करते हैं।।२२।।

हे द्विज! यहाँ पर श्रीराम अन्य भाइयों एवं हनुमान् के साथ विद्यमान हैं। यहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीनों देवता भी रहते हैं।।२३।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में भास्करक्षेत्र माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ अड़तालीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१४८।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१८२८+२३=१८५१]



अथैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

भास्करक्षेत्रस्य पश्चिमभागे घण्टाकर्णभैरव-स्थानस्य कथनम्

स्कन्द उवाच

ततो वै पश्चिमे भागे घण्टाकर्ण इति स्मृतः।
भैरवो भीषणाकारः सर्वसत्त्वभयङ्करः॥१॥
तस्य पूजनमात्रेण सर्वसम्पन्मयो भवेत्।
पूर्वभागेऽपि तस्यापि पर्वताधो व्यवस्थिता॥२॥

कन्दुमतीदेव्या ब्राह्मीशिलायाश्च स्थितिः

नाम्ना कन्दुमती ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी।
तत्रैका च महाभाग[1] शिला ब्राह्मी परा मता॥३॥
तस्या दर्शनमात्रेण ब्रह्मलोके महीयते।
ततो वै पश्चिमे याम्ये नदी मोक्षवती परा॥४॥

घण्टाकर्ण नामक भैरव के स्थान का कथन

स्कन्द ने कहा

उस देवप्रयाग क्षेत्र से पश्चिम की ओर घण्टाकर्ण नामक भैरव विद्यमान हैं, जो भयानक आकृति वाले हैं, इसलिये सबके लिये भयोत्पादक हैं।।१।।

उनके पूजन करने मात्र से मनुष्य समस्त सम्पत्तियों को प्राप्त कर लेता है।

कन्दुमती देवी एवं ब्राह्मी शिला की स्थिति

उस पर्वत के नीचे की ओर पूर्वभाग में सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाली कन्दुमती देवी विद्यमान हैं। (कुछ लोगों ने इन्हें नदी माना है।) हे महाभाग! वहीं पर एक परम श्रेष्ठ ब्राह्मी शिला है।।२-३।।

उसके दर्शन करने मात्र से ब्रह्मलोक में ऐश्वर्य का उपभोग प्राप्त होता है। वहाँ से दक्षिण और पश्चिम के मध्य में मोक्षवती नाम की नदी है, वह

---

१. 'महाभागा' इति ख.।

गङ्गायां सङ्गमे यत्र मोक्षतीर्थं तु तत्स्मृतम्।
तत्र स्नानान्नरो याति परब्रह्मणि लीनताम्॥५॥
तत्र मोक्षेश्वरं लिङ्गं भक्तमोक्षप्रदायकम्।
तस्य दर्शनमात्रेण नरो ब्रह्मत्वमाप्नुयात्॥६॥

सूत उवाच

श्रुत्वा धर्म्माश्च माहात्म्यं तीर्थानां मुनिसत्तमाः।
स्कन्दं वै पार्वतीपुत्रं पुनः पप्रच्छ नारदः॥७॥

नारद उवाच

श्रुतास्त्वयोदिता धर्म्मा माहात्म्यानि श्रुतानि वै।
शंस मे देवशार्दूल यत्पृच्छामि भवापहम्॥८॥
प्रश्नवाक्यं महाभाग पुनाति च जगत्त्रयम्।
वक्तारं पृच्छकं वाऽपि श्रोतारं भगवत्प्रिय॥९॥

जिस स्थान पर गङ्गा में सङ्गत हुई है, उसको मोक्षतीर्थ कहते हैं। उसमें स्नान करने से मनुष्य परब्रह्म में लीन हो जाता है।।४-५।।

वहाँ पर ही भक्तों को मुक्ति प्रदान करने वाला मोक्षेश्वर लिङ्ग है। उस लिङ्ग के केवल दर्शन से ही मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति होती है।।६।।

सूत जी ने कहा

हे मुनिसत्तमों! धर्मों और तीर्थों के माहात्म्य को सुनकर पार्वतीनन्दन स्कन्द से नारद ने पुनः पूछा।।७।।

नारद ने कहा

आपके द्वारा वर्णन किये गये धर्मों को हमने सुना, इसके साथ ही अनेक तीर्थों के माहात्म्य को भी हमने सुना। हे देवश्रेष्ठ! अब संसार से मुक्ति दिलाने वाले जिन आख्यानों को पूछता हूँ, उनका वर्णन आप करें।।८।।

हे भगवत्प्रिय, महाभाग! प्रश्न का वाक्य तीनों लोकों को पवित्र करता है। यह कहने वाले, सुनने वाले और पूछने वाले इन तीनों को ही पवित्र कर देता है।।९।।

स्वल्पाद्वै दर्शनाद्यस्य नरो याति परां गतिम्।
अपि पातकयुक्तो हि जायते भगवद्गतिः॥१०॥
यत्र नित्यं दाशरथिर्वसते सीतया सह।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा भरतेन हनूमता॥११॥
शत्रुघ्नेन च सर्वैश्च भक्तैर्मुनिगणैस्तथा।
स्थले वै देवशार्दूल रामो नारायणः स्वयम्॥१२॥
तद्वदस्व महाभाग तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।
यस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ति दुरितानि वै॥१३॥
तीर्थानां पुण्यमाहात्म्यं वक्ता नान्योऽस्ति कुत्रचित्।
शिष्योऽहं तव हे स्कन्द दयां कुरु गणेश्वर॥१४॥

स्कन्द उवाच

धन्योऽसि मुनिशार्दूल भक्तो नान्यो भवादृशः।
यस्येयं नैष्ठिकी बुद्धिर्जाता वै तीर्थसेवने॥१५॥

जिसके किञ्चिन्मात्र ही दर्शन करने से मनुष्य को परम गति का लाभ होता है, वह चाहे जितना बड़ा पापी क्यों न हो, उसे सद्गति की प्राप्ति हो जाती है।।१०।।

जहाँ पर दशरथ के पुत्र श्रीराम सीता के साथ नित्य निवास करते हैं। वे जहाँ भाई भरत और लक्ष्मण तथा हनुमान् के साथ निवास करते हैं।।११।।

हे देवश्रेष्ठ! जिस स्थान पर स्वयं नारायण श्रीराम शत्रुघ्न एवं समस्त भक्तों तथा मुनिगण के साथ निवास करते हैं।।१२।।

हे महाभाग! तीर्थों में उत्तम उस तीर्थ का वर्णन करें, जिसके दर्शन करने मात्र से ही सभी प्रकार के पाप विनष्ट हो जाते हैं।।१३।।

हे गणेश्वर स्कन्द जी! आपके समान तीर्थों के पुण्य एवं माहात्म्य का वर्णन करने वाला अन्य कोई नहीं है। मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये मेरे ऊपर दया करें।।१४।।

स्कन्द जी ने कहा

हे मुनिशार्दूल! तुम धन्य हो, तुम्हारे समान अन्य कोई भक्त नहीं है, क्योंकि तीर्थों के सेवन करने में तुम्हारी इस प्रकार की नैष्ठिकी बुद्धि है।।१५।।

यत्र सन्निहितो रामस्तद्वदामि महामुने।
नानारूपेण भगवान् मायया बहुरूपया॥१६॥
अयोध्या मथुरा काशी द्वारका सेतुबन्धकः।
काञ्ची गया कुरुक्षेत्रं बदर्याश्रम एव च॥१७॥
गङ्गाद्वारं प्रयागश्च मायाक्षेत्रं तथैव च।
देवप्रयागतीर्थं च तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्॥१८॥
एवमादीनि तीर्थानि वर्त्तन्ते मुनिसत्तम।
हरेर्वासस्थलान्येव कथितानि मयाऽनघ॥१९॥

नारद उवाच

त्वत्तः श्रुतानि देवेश माहात्म्यानि बहूनि च।
तीर्थानां पार्वतीपुत्र कष्टदानां महामते॥२०॥
विनाऽऽयासेन देवेश नरो याति परां गतिम्।
यत्र देवो जगन्नाथो नित्यं सन्निहितो भवेत्॥२१॥
कथयस्व प्रसादेन यदि भक्तेषु ते दया।
शृण्वन् वै तीर्थमाहात्म्यं तृप्तिर्मे जायते न हि॥२२॥

हे महामुनि! जहाँ भगवान् रामचन्द्र बहुरूपिणी माया के साथ विविध रूप धारण करके निवास करते हैं, मैं अब उसी तीर्थस्थान का वर्णन कर रहा हूँ।।१६।।

अयोध्या, मथुरा, काशी, द्वारकापुरी, सेतुबन्ध, काञ्ची, गया, कुरुक्षेत्र, बदरिकाश्रम, गङ्गाद्वार, प्रयाग, मायाक्षेत्र तथा समस्त तीर्थों में उत्तम देवप्रयाग तीर्थ है।।१७-१८।।

हे मुनिसत्तम! इसी प्रकार अनेक तीर्थों का वर्णन हमने किया है, जिनमें भगवान् हरि का निवास रहता है।।१९।।

नारद ने कहा

हे मतिमान्, पार्वतीनन्दन, देवेश! आपने कष्ट से प्राप्त होने वाले अनेक तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन किया है, जिसे हमने आपसे ग्रहण किया है।।२०।।

हे देवेश! जहाँ बिना प्रयास के ही मनुष्य परमगति को प्राप्त होता है। जहाँ जगन्नाथ श्रीरामचन्द्र स्वयं नित्य निवास करते हैं।।२१।।

यदि भक्तों के ऊपर आपकी दया है, तो उसी क्षेत्र का वर्णन करें; क्योंकि तीर्थों के माहात्म्य के सुनने से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।।२२।।

गङ्गाद्वारपूर्वतोऽलकनन्दागङ्गासङ्गमे च देवप्रयागमाहात्म्यकथनम्

स्कन्द उवाच

श्रृणु विप्र प्रवक्ष्यामि तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।
यस्य दर्शनमात्रेण हरौ भक्तिः प्रजायते॥२३॥
गङ्गाद्वारात्पूर्वभागे श्रीगङ्गाऽलकनन्दयोः।
सङ्गमो यत्र देशे तु देवप्रयागसञ्ज्ञकः॥२४॥
वदन्ति मुनयः सर्वे हरिभक्तिपरायणाः।
यस्य दर्शनमात्रेण स्मरणादपि नारद॥२५॥
पातकानि प्रणश्यन्ति ब्रह्महत्यासमानि वै।
सूर्योदयादन्धकारं यथाग्नेस्तूलराशयः॥२६॥
यथा नदीनां गङ्गा हि पर्वतानां हिमालयः।
अरण्यानां तथाऽरण्यं नैमिषारण्यमुच्यते॥२७॥

गङ्गाद्वार से पूर्व अलकनन्दा और गङ्गा के सङ्गम में देवप्रयाग के माहात्म्य का कथन

स्कन्द ने कहा

हे विप्र! अब मैं समस्त तीर्थों में उत्तम तीर्थ का वर्णन कर रहा हूँ, उसे श्रवण करो। उस तीर्थ के दर्शन करने से ही नारायण में भक्ति हो जाती है।।२३।।

गङ्गाद्वार से पूर्वभाग में श्रीगङ्गा और अलकनन्दा का जहाँ सङ्गम हुआ है, वही क्षेत्र देवप्रयाग कहा गया है।।२४।।

हरिभक्ति में परायण सभी मुनिजन इस बात का कथन करते हैं, हे नारद! उसके दर्शन अथवा स्मरण मात्र से ब्रह्महत्या के समान बड़े-बड़े पाप भी इस प्रकार विनष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार अथवा अग्नि से तूल (रूई) का नाश हो जाता है।।२५-२६।।

जिस प्रकार नदियों में गङ्गा, पर्वतों में हिमालय, अरण्यों में नैमिषारण्य उत्तम कहे गये हैं।।२७।।

शिलानां च यथा विप्र शालिग्रामशिला किल।
देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां यथा भवान्॥२८॥
तपतां तु यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी।
चतुष्पदां यथा गावो नराणां ब्राह्मणः स्मृतः॥२९॥
तथा वै सर्वतीर्थानां देवतीर्थं प्रशस्यते।
अहो भाग्यमहो भाग्यं वसतां देवतीर्थके॥३०॥
अस्मिंस्तीर्थे महाभाग कृतं तत्सर्वमक्षयम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नास्मिन् पापं समाचरेत्॥३१॥
यैः कृतं पिण्डदानं हि तीर्थे देवप्रयागके।
पितृकार्यं मुनिश्रेष्ठ कर्तव्यं न हि विद्यते॥३२॥
चातुर्मास्यं तु यैः स्नातं तीर्थेऽस्मिन् प्रवरे मुने।
ते वै रघुवरश्रेष्ठा भाग्यवन्तो भवन्ति हि॥३३॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं शतमुखैरपि।
क्षमो न हि त्रिलोकेऽस्मिन् विद्यते मुनिसत्तम॥३४॥

हे विप्र! शिलाओं में जिस प्रकार शालिग्राम शिला, देवताओं में विष्णु और वैष्णवभक्तों में जैसे आप (नारद) सर्वश्रेष्ठ हैं।।२८।।

तपने वालों में जैसे सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्रमा, चतुष्पदों में गौ और मनुष्यों में जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ कहे गये हैं।।२९।।

इसी प्रकार सब तीर्थों में देवतीर्थ का उत्तम तीर्थ के रूप में कीर्तन किया गया है। जो व्यक्ति इस देवतीर्थ में निवास करते हैं, उनके अहोभाग्य हैं।।३०।।

हे महाभाग! इस क्षेत्र में जो कुछ भी किया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। इसलिये पूर्णरूप से यह यत्न करना चाहिये कि वहाँ किसी प्रकार के पाप का आचरण न हो जाय।।३१।।

हे मुनिश्रेष्ठ! जिन व्यक्तियों ने देवप्रयाग में पिण्डदान किया है। उन्हें पितरों का कोई भी कार्य शेष नहीं रह गया है।।३२।।

हे मुनि! जो व्यक्ति चातुर्मास्य में इस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करते हैं, वे भगवान् रघुवर श्रीराम के श्रेष्ठ भक्त हैं और वे अवश्य ही भाग्यशाली होते हैं।।३३।।

हे मुनिश्रेष्ठ! संसार में कोई भी ऐसा नहीं है, जो सौ मुख से भी इस तीर्थ का माहात्म्य वर्णन करके पार पा सके।।३४।।

यत्र वै जाह्नवी साक्षादलकनन्दासमन्विता।
यत्र रामः स्वयं साक्षात्ससीतश्च सलक्ष्मणः॥३५॥
तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं को वा क्षमो भवेत्।
सममनेन तीर्थेन न भूतो न भविष्यति॥३६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलावेतदुपाश्रयेत्।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि स्नानमात्रेण नारद॥३७॥
शुद्ध्यन्ति पापिनः सर्वे हन्तारोऽपि तपस्विनाम्।
मासमात्रेण[१] य कश्चिद्रामं ज्ञात्वा हृदीश्वरम्॥३८॥
स्नानं करोति गङ्गायां नरो नाके महीयते।
तत्र धन्यं महाभाग भारतं वर्षमीरितम्॥३९॥
तत्र धन्यो महाभाग हिमवद्देशसञ्ज्ञकः।
तत्रापि धन्या ते देशा यत्र गङ्गा सरिद्वरा॥४०॥
हरेः सान्निध्यकं स्थानं तत्रापि हि मुनीश्वर।
एतत्सर्वं महाभाग देवतीर्थे हि विद्यते॥४१॥

जहाँ पर श्रीगङ्गा स्वयं अलकनन्दा में सङ्गत हुई हैं। जहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्र स्वयं निवास करते हैं।।३५।।

उस तीर्थ का माहात्म्य वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है। इस तीर्थ की बराबरी करने वाला कोई तीर्थ न हुआ है और न ही होगा।।३६।।

इसलिये कलियुग में इसका आश्रय लेना परम कर्तव्य है। हे नारद! इसमें ज्ञान से अथवा अज्ञान से चाहे जिस प्रकार हो, स्नानमात्र करणीय है।।३७।।

ऐसा करने से तपस्वियों की हत्या करने वाले पापी भी शुद्ध हो जाते हैं। भगवान् श्रीराम को ईश्वर मानकर एक मास पर्यन्त जो व्यक्ति गङ्गा में स्नान करता है, वह स्वर्गलोक में ऐश्वर्य का उपभोग करता है। हे महाभाग! सम्पूर्ण देशों में भारतवर्ष को श्रेष्ठ कहा गया है।।३८-३९।।

उस भारतवर्ष में ही हिमालय प्रान्त के देशों को धन्य कहा गया है। उसमें भी वे स्थान धन्य हैं, जहाँ श्रेष्ठ नदी गङ्गा है।।४०।।

उनमें भी वे स्थान विशेष धन्यवाद के योग्य हैं, जिनमें भगवान् नारायण की सन्निधि रहती है। हे महाभाग! इस देवतीर्थ में ये सभी कुछ विद्यमान हैं, इसलिये इसको सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।।४१।।

१. मात्रे त्विति क.।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तीर्थमेतदुपाश्रयेत्।
ब्रह्मकुण्डे नरः स्नात्वा जायते न च जन्मने॥४२॥
यत्र ब्रह्मा महाभाग तपः कृत्वा सुदारुणम्।
नाम चक्रेऽस्य तीर्थस्य ब्रह्मकुण्डेति विश्रुतम्॥४३॥

शिवतीर्थस्य स्थितिवर्णनम्

शिवं तीर्थं मुने ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे।
सङ्गमाच्छरविक्षेपमात्रं तद्विद्यते बुध॥४४॥
तन्मज्जनान्मुनिश्रेष्ठ कीटोऽपि शिवतां व्रजेत्।
यत्र साक्षान्महादेवो नित्यं वसति पापहा॥४५॥
गङ्गाया मध्यदेशे तु शतहस्तप्रमाणतः।
स्वयम्भूः शिवलिङ्गं वै दृश्यते पुण्यकर्तृभिः[१]॥४६॥
उदग्देशे तु गङ्गायाः शिला वैतालिकी स्मृता।
शिवतीर्थात् क्रोशखण्डप्रमाणे हि निगद्यते॥४७॥

इसलिये पूर्ण प्रयत्न के साथ इस तीर्थ का आश्रय लेना चाहिये। ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने से मनुष्य पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता॥४२॥

हे महाभाग! यहाँ ब्रह्मा जी ने दारुण तप करके इस कुण्ड का नामकरण किया था, इसलिये यह ब्रह्मकुण्ड के नाम से विख्यात हुआ॥४३॥

शिवतीर्थ की स्थिति का वर्णन

हे मुनि! गङ्गा के उत्तरी तट पर शिवतीर्थ विद्यमान है। हे बुध! गङ्गा और अलकनन्दा के सङ्गम से एक बाण की दूरी पर यह तीर्थ स्थित है॥४४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उसमें स्नान करने से कीट भी शिवरूप हो जाता है; क्योंकि वहाँ पापों का विनाश करने वाले साक्षात् भगवान् महादेव नित्य निवास करते हैं॥४५॥

गङ्गा के मध्य में सौ हाथ की दूरी पर स्वयं प्रादुर्भूत हुआ शिवलिङ्ग दिखाई पड़ता है। किन्तु पुण्यकर्ता व्यक्ति ही उस लिङ्ग का दर्शन कर सकते हैं॥४६॥

गङ्गा के मध्य में ही एक वैतालिकी शिला है, वह शिला शिवतीर्थ से एक कोश की दूरी पर बतलायी जाती है॥४७॥

१. कर्मभिरिति ग.।

दर्शनात्स्पर्शनात्तस्या महापातकवानपि।
सद्यः शुद्धिं प्रयात्येव सलिलाद् वसनानि वै॥४८॥
तत्रैवाऽऽस्ते महाभाग कुण्डं वेतालसञ्ज्ञकम्।
तत्र स्नात्वा दिनानां तु पञ्चकं शुद्धिमाप्नुयात्॥४९॥

सूर्यकुण्डस्य स्थितिस्तन्माहात्म्यवर्णनञ्च

तस्मात्पृषत्कमात्रं[१] तु सूर्यकुण्डमिति स्मृतम्।
यत्र मेधातिथिर्नाम ब्राह्मणो मुनिसत्तमः॥५०॥
चकार सुतपस्तीव्रं ध्यायन् वै मनसा रविम्।
सन्तुष्टो भास्करः प्रादाद् वरं त्रैलोक्यदुर्लभम्॥५१॥
सूर्यकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
एतत्ते सर्वमाख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे॥५२॥
तीर्थानि प्रवराण्येव कथितानि मया मुने।
अथ दक्षिणदिग्भागे गङ्गाया मुनिसत्तम॥५३॥

उस शिला का दर्शन और स्पर्श करने से महाप्रतापी व्यक्ति भी शीघ्र ही शुद्धि को प्राप्त हो जाता है।।४८।।

हे महाभाग! वहीं पर वेतालकुण्ड नाम का एक कुण्ड है। उसमें पाँच दिन स्नान करने से शुद्धि का लाभ होता है।।४९।।

सूर्यकुण्ड की स्थिति और माहात्म्य-वर्णन

वहाँ से एक बाण की दूरी पर सूर्यकुण्ड है, वहाँ मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मर्षि मेधातिथि मुनियों में श्रेष्ठ हैं।।५०।।

उन्होंने वहाँ पर मन से सूर्य का ध्यान करते हुए कठोर तप का आचरण किया था। तब सूर्यनारायण ने सन्तुष्ट होकर उन्हें त्रिलोकी में दुर्लभ वर प्रदान किया।।५१।।

इस सूर्यकुण्ड में स्नान करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। हे मुनि! गङ्गा के उत्तरी तट पर जितने उत्तमोत्तम तीर्थ हैं, उनका माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है। हे मुनिश्रेष्ठ! अब गङ्गा के दक्षिणी तट का वर्णन कर रहा हूँ।।५२-५३।।

---

१. मात्रे इति क.।

वासिष्ठवाराहतीर्थयोर्वर्णनम्

ब्रह्मकुण्डादूर्ध्वभागे चतुर्हस्तप्रमाणतः।
वासिष्ठं तीर्थमाख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने॥५४॥
वासिष्ठतीर्थादुपरि वाराहमिति विश्रुतम्।
विंशतिर्गुणिना वेदे[1] तावद्धस्तप्रमाणके॥५५॥
गङ्गामध्ये तु वाराही शिला स्पर्शाद्विमुक्तिदा।
तां दृष्ट्वाऽपि नरो भक्त्या लोकानाप्नोति शाश्वतान्॥५६॥
सूर्यकुण्डमिति ख्यातं तस्माद्दण्डचतुष्टये।
यत्र सूर्यः स्वयं ब्रह्मन् वसतीति श्रुतं मया॥५७॥
यत्र स्नात्वा महाभाग मुक्तिं प्राप द्विजाधमः।
चाण्डाल्या सह भो ब्रह्मन् कृतपरिग्रहोऽपि सन्॥५८॥

पौष्यमालतीर्थस्य वर्णनम्

ततोऽपि मुनिशार्दूल शरविक्षेपमात्रके।
पौष्यमालमिति ख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्॥५९॥

वासिष्ठ तीर्थ एवं वाराह तीर्थ का वर्णन

हे मुनि! ब्रह्मकुण्ड से ऊर्ध्व प्रदेश में चार हाथ की दूरी पर भोग और मोक्ष को देने वाला वासिष्ठ तीर्थ है।।५४।।

वासिष्ठ तीर्थ से ऊपर की ओर बीस धनुष और चार हाथ की दूरी पर प्रसिद्ध वाराहतीर्थ है।।५५।।

वहाँ गङ्गा के मध्य में एक वाराही शिला है, उसका स्पर्श मात्र करने से मुक्ति का लाभ होता है। मनुष्य उसका भक्ति-भाव से दर्शन करके सनातन लोकों को प्राप्त कर लेता है।।५६।।

जो स्थान सूर्यकुण्ड के नाम से विख्यात है, उसके चार दण्ड के अन्तर पर साक्षात् सूर्यनारायण निवास करते हैं। हे ब्रह्मन्! ऐसा हमने श्रवण किया है।।५७।।

हे ब्रह्मन्! एक ब्राह्मणाधम ने चाण्डाली के साथ विवाह कर लिया था, इस सूर्यकुण्ड में स्नान करने से उस ब्राह्मण को भी मुक्ति की प्राप्ति हुई थी।।५८।।

पौष्यमाल तीर्थ की स्थिति का वर्णन

हे मुनिश्रेष्ठ! वहाँ से भी एक बाण विक्षेप की दूरी पर समस्त तीर्थों में उत्तम एक पौष्यमाल तीर्थ है।।५९।।

१. चेदमिति ग.।

पुष्पमालेति नाम्ना वै किन्नरी प्रमदोत्तमा।
प्राप मोक्षं तु वै धात्रा यत्र ब्राह्मणशापिता॥६०॥

इन्द्रद्युम्नतीर्थस्य स्थितिवर्णनम्

प्राप वै मज्जनासक्ता तद्विष्णोः परमं पदम्।
तदूर्ध्वं दण्डषट्के हि इन्द्रद्युम्नतपःस्थलम्॥६१॥
यत्र तप्त्वा मुनिश्रेष्ठस्तपः परमदारुणम्।
नाम चक्रेऽस्य तीर्थस्य इन्द्रद्युम्नमिति श्रुतम्॥६२॥
यन्मज्जनान्मुनिश्रेष्ठ पापानां च विनाशनम्।

बिल्वतीर्थस्य वर्णनम्

बिल्वतीर्थं मुने ख्यातं क्रोशार्द्धे शिवदायकम्॥६३॥
यत्र साक्षान्महादेवः स्वयं वसति सर्वदा।
शिवमन्त्रं जपन्विप्र स्नात्वा वै जाह्नवीजले॥६४॥

समस्त प्रमदाओं में उत्तम पुष्पमाला नाम वाली एक किन्नरी ने ब्राह्मण के शाप से वहाँ मुक्ति का लाभ किया था।।६०।।

उसी तीर्थ में स्नान करने से उसको भगवान् विष्णु के परमपद की प्राप्ति हुई थी।

इन्द्रद्युम्न तीर्थ की स्थिति का वर्णन

वहाँ से ऊपर की ओर छः दण्ड की दूरी पर इन्द्रद्युम्न का तप स्थान है।।६१।।

उस मुनिश्रेष्ठ ने वहाँ पर उग्र तप किया था, इसलिये उन्हीं के नाम से यह तीर्थ इन्द्रद्युम्न नाम से विख्यात हुआ।।६२।।

हे मुनिराज! उसमें स्नान करने से पापों का विनाश हो जाता है।

बिल्व तीर्थ का वर्णन

हे मुनि! वहाँ से आधे कोश की दूरी पर कल्याण को प्रदान करने वाला बिल्व तीर्थ प्रसिद्ध है।।६३।।

जहाँ पर साक्षात् भगवान् शिव स्वयं सर्वदा निवास करते हैं। हे विप्र! भगवान् शङ्कर के मन्त्र का जप करते हुए वहाँ गङ्गा के जल में स्नान करना चाहिए।।६४।।

दशरात्रेण लभते सिद्धिं नारद दुर्लभाम्।
इति ते कथिताऽन्यत्र गङ्गोर्ध्वे[१] तीर्थकानि हि॥६५॥
अधोभागे तु सङ्गम्य तीर्थानि प्रवराणि च।
सङ्गमाद् गव्यूतिमात्रं त्वधोभागो निगद्यते॥६६॥
देवप्रयागके क्षेत्रमूर्ध्वभागं तथा स्मृतम्।
एतत्पुण्यतमं स्थानमेवमाह सदाशिवः॥६७॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा विररामाथ कार्त्तिकेयो महाद्युतिः।
पुनः पप्रच्छ वैधात्रो विस्तरेण तपोधनाः॥६८॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम
एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१४९।।

हे नारद! इस विधि से दश रात्रि पर्यन्त स्नान करने से मनुष्य दुर्लभ सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार हमने तुम्हारे प्रति गङ्गा के ऊर्ध्वभाग के तीर्थों का वर्णन किया है।।६५।।

गङ्गा और अलकनन्दा के नीचे के भाग में भी श्रेष्ठ तीर्थ हैं। उनके सङ्गम के दो कोश की दूरी तक का भाग अधोभाग कहलाता है।।६६।।

देवप्रयाग के क्षेत्र को ऊर्ध्वभाग कहा गया है। इस उत्तम पुण्यदायक स्थान को भगवान् सदाशिव ने श्रेष्ठ माना है।।६७।।

सूत जी ने कहा

हे तपोधन! महातेजस्वी स्वामी कार्तिकेय इस प्रकार सम्भाषण कर जब मौन हो गये, तब ब्रह्मपुत्र नारद ने पुनः पूछा।।६८।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयाग-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ उनचालीस अध्याय पूर्ण हुआ।।१४९।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१८५१+६८=१९१९]



१. गङ्गार्द्धे इति ख.।

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय:

देवप्रयागनामकरणे देवशर्मब्राह्मणस्याख्यानम्

नारद उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।
देवप्रयाग इति यद् भवता परिकीर्त्तितम्॥१॥
माहात्म्यं क्षेत्रराजस्य तस्योत्पत्तिं च मे वद।
तृप्तिर्न जायते स्वामिन् पायं पायं वचोऽमृतम्॥२॥

स्कन्द उवाच

साधु साधु महाबाहो भक्तोऽसि मम सुव्रत।
लोकानां हितकामाय श्रीरामचरणाप्तये॥३॥
यत्त्वया परिपृष्टोऽहं विस्तरेण वदामि ते।
एकान्तस्थितयोः पित्रोर्मुखाद्यद्वै परिश्रुतम्॥४॥

देवप्रयाग के नामकरण में देवशर्मा नामक ब्राह्मण का आख्यान

नारद ने कहा

हे भगवन्! आपने देवप्रयाग नाम से जिस तीर्थ का कीर्तन किया है, मैं तीर्थों में उत्तम उस तीर्थ का माहात्म्य श्रवण करना चाहता हूँ।।१।।

इसलिये उस क्षेत्रराज का माहात्म्य एवं उसकी उत्पत्ति का वृत्तान्त मेरे प्रति वर्णन करें, क्योंकि आपके वचनरूप अमृत का पान करने से मेरी तृप्ति नहीं हो रही है।।२।।

स्कन्द ने कहा

हे महाबाहु! तुम धन्य हो, धन्य हो। हे सुव्रत! तुम हमारे भक्त हो! संसार के कल्याण की कामना से और श्रीरामचन्द्र के चरणों की प्राप्ति के लिये तुमने जो जिज्ञासा की है, उसी का उत्तर मैं विस्तार से वर्णन कर रहा हूँ। जिसे मैंने एकान्त में स्थित अपने माता-पिता के मुख से श्रवण किया है।।३-४।।

तच्छृणुष्व महाप्राज्ञ स्थिरं कृत्वा मनो मुने।
कैलासशिखरासीनं देवं पृच्छति पार्वती॥५॥

देव्युवाच

देव देव जगन्नाथ सुरासुरनिषेवित।
अनेकविधतीर्थानां क्षेत्राणां च मया प्रभो॥६॥
श्रुतानि त्वन्मुखादेव माहात्म्यानि सदाशिव।
श्रुतं वासिष्ठकं तीर्थं धर्मक्षेत्रं तथैव च॥७॥
नद्यश्च पर्वताश्चैव शिवो वर्णी मया प्रभो।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्षेत्रराजं महेश्वर॥८॥
देवप्रयाग इति वै श्रूयते क्षेत्रमुत्तमम्।
तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं शिव विस्तरतो वद॥९॥
कथं तस्याभिधेयं वै देवप्रयाग उच्यते।
प्रशंसन्ति कथं सर्वे रामभक्तिपरायणाः॥१०॥

हे महाप्राज्ञ, मुनि! अपने चित्त को एकाग्र कर उसी वृत्तान्त को तुम भी श्रवण करो। कैलास पर्वत के शिखर पर बैठे हुए भगवान् महादेव से पार्वती जिज्ञासा करती हैं।।५।।

देवी पार्वती ने कहा

हे देवाधिदेव! आप जगत् के स्वामी हैं, समस्त देवता और असुर आपकी सेवा करते हैं। हे प्रभो! आप सर्वदा कल्याण करने वाले हैं। मैंने आपके मुख से अनेक प्रकार के तीर्थों एवं क्षेत्रों के माहात्म्य का श्रवण किया है। मैंने आप से वासिष्ठ तीर्थ तथा धर्मक्षेत्र का श्रवण किया है।।६-७।।

हे प्रभो! आपसे नदियों एवं पर्वतों के साथ ब्रह्मचर्य व्रतधारी शिव का वर्णन भी मैंने सुना है। हे महेश्वर! इस समय मैं क्षेत्रराज के विषय में श्रवण करना चाहती हूँ।।८।।

क्योंकि सुना जाता है कि देवप्रयाग उत्तम क्षेत्र है। इसलिये हे शिव! देवप्रयाग की उत्पत्ति एवं उसके माहात्म्य का कथन विस्तारपूर्वक करें।।९।।

उसके नाम को देवप्रयाग क्यों कहते हैं? राम की भक्ति में तत्पर रहने वाले सभी लोग उसकी प्रशंसा क्यों करते हैं?।।१०।।

यथा सन्निहितो रामस्तत्र वै केन हेतुना।
इति मे संशयं छिन्धि यदि चेन्मयि ते दया॥११॥

ईश्वर उवाच

देवप्रयागसञ्ज्ञस्य माहात्म्यं शृणु सुव्रते।
देवदेवि महाभागे धन्याऽसि त्वं हि शैलजे॥१२॥
परोपकरणे जातं यदीयं मानसं शिवे।
देवप्रयागसञ्ज्ञस्य देवस्य वरवर्णिनि॥१३॥
दर्शनात्स्मरणाद्ध्यानात्तथा नामप्रकीर्तनात्।
पापानि प्रशमं यान्ति नराणां पापकर्मणाम्॥१४॥
अपि पापैः समायुक्तो ब्रह्महत्यामुखैः किल।
तत्क्षेत्रं तु नरः स्पृष्ट्वा सद्यः शुद्धिमवाप्नुयात्॥१५॥
विरिञ्चिप्रमुखा देवा नित्यमायान्ति तत्र वै।
सेवनाय ससीतं वै रामं लक्ष्मणपूर्वजम्॥१६॥

रामचन्द्र ने वहाँ किस हेतु से निवास किया था? यदि मेरे ऊपर आपकी दया है, तो मेरे संशय को दूर करें।।११।।

ईश्वर ने कहा

हे देवाधिदेवी! तुम शैलपुत्री हो, महाभाग्यशालिनी हो, तुम धन्य हो। इसलिये सदाचारिणी भी हो। तुम देवप्रयाग नामक तीर्थ के माहात्म्य का श्रवण करो।।१२।।

तुम कल्याणकारिणी हो, इसलिये तुम्हारा मन परोपकार करने में लग रहा है। हे वरवर्णिनी! देवप्रयाग नाम का तीर्थ देवताओं का स्थान है।।१३।।

उसके दर्शन, स्मरण, ध्यान तथा नाम के कीर्तन करने से पापकर्म करने वाले मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं।।१४।।

उस क्षेत्र का स्पर्श करने से ब्रह्महत्या आदि महापातकों से युक्त मनुष्य शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है।।१५।।

सुग्रीव आदि महान् भक्तों से युक्त, मुनिगणों के साथ लक्ष्मण एवं सीता के सहित विराजमान श्रीरामचन्द्र की सेवा करने के लिये ब्रह्मा आदि प्रमुख देवता

सुग्रीवादिमहाभक्तैर्युतं मुनिगणैस्तथा।
अथ रामनिवासस्य कारणं तत्र वच्म्यहम्॥१७॥
श्रृणु पार्वति भक्त्या वै मनः कृत्वा सुनिश्चलम्।
पुरा कृतयुगे देवी बभूव मुनिसत्तमः॥१८॥
देवशर्मेति विख्यातः सुहृत्सज्जनवत्सलः।
दयासत्यतपश्शीलो ज्ञानवान् धर्मसंयुतः॥१९॥
देवप्रयागके तीर्थे तीर्थानामुत्तमोत्तमे।
स चकार तपस्तीव्रं देवैरपि सुदुश्चरम्॥२०॥
गच्छञ्जपंस्तथा भुञ्जंश्चिन्तयन् मनसा हरिम्।
केवलं वैष्णवी भक्तिर्जाता तस्य महात्मनः॥२१॥
नारायण दयासिन्धो गोविन्देति वदेत्तदा।
पुष्पैर्धूपैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैर्विविधैः शुभैः॥२२॥
स्तुतिभिर्नतिभिश्चैव तोषयामास वै हरिम्।
एवं द्वादशवर्षेषु कृतवान् स महामतिः॥२३॥

वहाँ नित्य ही आते हैं। अब मैं रामचन्द्र के वहाँ निवास करने के कारण का वर्णन कर रहा हूँ।।१६-१७।।

हे पार्वती! तुम भक्ति-भावपूर्वक मन को एकाग्र करके श्रवण करो। हे देवी! प्राचीनकाल में कृतयुग (सतयुग) के आने पर एक मुनिश्रेष्ठ हुए थे।।१८।।

वे अपने मित्रवर्ग तथा सज्जनों के ऊपर दया करने वाले देवशर्मा नाम से विख्यात थे। वे दया, सत्य, तप, शील, ज्ञान तथा धर्म आदि गुणों से सम्पन्न थे।।१९।।

उन्होंने तीर्थों में उत्तमोत्तम देवप्रयाग नामक तीर्थ में कठोर तप किया, जो देवताओं के लिये भी कठिन था।।२०।।

चलते, सोते अथवा भोजन करते समय भी वे नारायण का ही स्मरण करते थे, उस महात्मा की केवल भगवान् विष्णु में ही भक्ति थी।।२१।।

वे सर्वदा हे नारायण! हे दयासिन्धो, हे गोविन्द! यही उच्चारण करते रहते थे, विशेष क्या, उन्होंने पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि विविध प्रकार की शुभ स्तुतियों एवं प्रणामों से भगवान् नारायण हरि को सन्तुष्ट किया। उस महामतिमान् ने इस विधि से बारह वर्ष पर्यन्त भक्ति की।।२२-२३।।

ततो दशसहस्राणि वर्षाणां सुरवन्दिते।
पर्णाशनोऽभवद्योगी यमैः सनियमैर्युतः॥२४॥
सहस्रमेकं वर्षाणां पादेन कृतवाँस्तपः।
ततो ददर्श गोविन्दं शङ्खचक्रगदाधरम्॥२५॥
पद्मेन पद्मालयया दीप्यमानं महाद्युतिम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम्॥२६॥
श्रीवत्साङ्कं महाबाहुं कोटिसूर्यसमप्रभम्।
पीताम्बरं त्रिलोकेशं गरुडोपरि संस्थितम्॥२७॥
सनकादिमुनीन्द्रैश्च सेव्यमानं सुरासुरैः।
लोकानां सृष्टिकर्त्तारं त्रयीरूपं गुणात्मकम्॥२८॥
दृष्ट्वा तं स्तुतिमारेभे देवशर्मा द्विजोत्तमः॥२९॥

हे सुरवन्दिते पार्वती! इसके बाद वे योगी दस हजार वर्ष पर्यन्त विशेष नियम एवं संयम से सम्पन्न रहते हुए केवल पत्तों का भोजन करते रहे।।२४।।

इसके अनन्तर उन्होंने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त एक पैर पर खड़े होकर तप किया। इसके बाद उन्हें शङ्ख, चक्र, गदा धारण करने वाले भगवान् गोविन्द का दर्शन हुआ।।२५।।

कमल पर निवास करने वाली लक्ष्मी के साथ कमल को धारण करने के कारण महाद्युतिमान् भगवान् की विशेष कान्ति हो रही थी, वे मुकुट, कुण्डल और वनमाला से विभूषित हो रहे थे।।२६।।

महाबाहु भगवान् विष्णु के हृदय पर वत्स का चिह्न अङ्कित था, उनकी कान्ति करोड़ों सूर्य के समान थी, तीनों लोकों के स्वामी पीताम्बर धारण किये हुए गरुड के ऊपर विराजमान थे।।२७।।

सनकादि महर्षिगण, देवता और दानव उनकी सेवा कर रहे थे, उस समय लोकों की सृष्टि करने वाले भगवान् का गुणात्मक रूप तीनों वेदों के रूप में विद्यमान था।।२८।।

इस प्रकार भगवान् नारायण का दर्शन कर द्विजश्रेष्ठ देवशर्मा ने उनकी स्तुति प्रारम्भ की।।२९।।

देवशर्मोवाच

नमस्ते ब्रह्मरूपाय सृष्टिकर्त्रे गुणात्मने।
नानारूपाय जगतो हन्त्रे पालयते नमः॥३०॥
नमो वेदान्तवेद्याय निर्गुणाय महात्मने।
विभवे ज्ञानरूपाय मत्स्यरूपाय ते नमः॥३१॥
शङ्खासुरनिहन्त्रे च वेदोद्धरणहेतवे।
कूर्मरूपेण पृथिवीं धारयित्रे नमो नमः॥३२॥
नेदिष्ठाय नमस्तेऽस्तु क्षोदिष्ठाय नमो नमः।
कोलरूपाय वै तुभ्यं हिरण्याक्षविमर्दिने॥३३॥
नृसिंहाय नमस्तेऽस्तु भीमनादाय ते नमः।
शराग्रैर्नखराग्रैर्हि भित्वा वक्षःस्थलं दृढम्॥३४॥

देवशर्मा ने कहा

ब्रह्मा के स्वरूप में सृष्टि करने वाले त्रिगुणात्मक आपको नमस्कार है। विविध रूप धारण करने वाले, संसार के पालन करने वाले एवं संहार करने वाले आपको नमस्कार है।।३०।।

वेद के अन्तिम भाग उपनिषदों से जानने योग्य, निर्गुण, महान् आत्मा-रूप आपको नमस्कार है, ऐश्वर्यसम्पन्न, ज्ञानस्वरूप एवं मत्स्य का अवतार धारण करने वाले आपको नमस्कार है।।३१।।

वेदों का उद्धार करने के लिये शंख नामक असुर का वध करने वाले आपको नमस्कार है। कूर्म का अवतार धारण कर पृथिवी को धारण करने वाले तुमको नमस्कार है।।३२।।

सर्वदा भक्तों के समीप रहने वाले आपको नमस्कार है, अभक्तों से दूर रहने वाले आपको नमस्कार है, वराह का रूप धारण करके हिरण्याक्ष नामक असुर का वध करने वाले आपको नमस्कार है।।३३।।

नृसिंह का रूप धारण करने वाले एवं भयङ्कर नाद करने वाले तुम्हें नमस्कार है। तीक्ष्ण अग्रभाग वाले नाखून के अग्रभाग से कठोर वक्षःस्थल का आपने भेदन कर दिया था।।३४।।

हिरण्यकशिपोरन्त्रमालिने परमात्मने।
नमः प्रह्लादगुरवे सुराऽसुरगणैः स्तुतः॥३५॥
नारायण नमस्तेऽस्तु वामनाय नमो नमः।
त्रिविक्रमाय बलिने बलिं छलयते नमः॥३६॥
जामदग्न्य नमस्तेऽस्तु नमः क्षत्रियमर्दिने।
रावणादिनिहन्त्रे च सीतायाः पतये नमः॥३७॥
नमो लक्ष्मणरूपाय नमो दशरथात्मज।
नमस्ते रेवतीकान्त नमो लाङ्गलधारिणे।३८॥
नमस्ते वासुदेवाय यमुनाकर्षकाय ते।
नीलाम्बराय कृष्णाय वनमालाधराय च॥३९॥
कंसहर्त्रे नमस्तेऽस्तु देवकीनन्दनाय ते।
गोपनाथाय देवाय गोपीनां पतये नमः॥४०॥

हिरण्यकशिपु की अँतड़ियों की माला धारण करने वाले परमात्मास्वरूप प्रह्लाद के गुरु आपको नमस्कार है, आप सर्वदा देवता एवं दानव के समुदाय से स्तुति किये जाते हैं।।३५।।

आप जल में निवास करते हैं, आपको नमस्कार है। वामनस्वरूप आपको नमस्कार है। तीन विक्रम (युगों) में लोकों को नाम देने वाले, बलशाली एवं बलि को छलने वाले आपको नमस्कार है।।३६।।

क्षत्रियों का मर्दन करने के लिये जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुरामस्वरूप आपको नमस्कार है। रावण आदि राक्षसों का वध करने वाले सीता के पति आपको नमस्कार है।।३७।।

लक्ष्मण के रूप में आपको नमस्कार है, आप दशरथ के पुत्र हैं, उस रूप में आपको नमस्कार है। हल को धारण करने वाले, रेवती के स्वामी बलराम के रूप में आपको नमस्कार है।।३८।।

यमुना का आकर्षण करने वाले एवं वसुदेव के पुत्र रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है, बलराम के रूप में नील वस्त्र धारण करने वाले, वनमाला को धारण करने वाले कृष्ण को नमस्कार है।।३९।।

कंस का संहार करने वाले तुम्हें नमस्कार है, देवकी को आनन्द प्रदान करने वाले आपको नमस्कार है। गोपवंश के स्वामी एवं गोपियों के प्राणवल्लभ आपको नमस्कार है।।४०।।

सद्वंशिने केशिहन्त्रे मयूरपिच्छधारिणे।
बौद्धरूप नमस्तेऽस्तु सुकृपाय दयानिधे॥४१॥
शान्ताय ज्ञानरूपाय नित्यं योगरताय ते।
म्लेच्छहन्त्रे नमस्तेऽस्तु नमस्ते कल्किरूपिणे॥४२॥
त्वमेव जगतां पाता स्थितिकर्त्ता त्वमेव हि।
लयरूपस्त्वमेवासि दाता भोक्ता त्वमेव हि॥४३॥
सूक्ष्मरूपं तु ते ब्रह्मन् विचिन्वन्तो मुनीश्वराः।
न विदुस्तेऽपि भगवन् मनुष्याणां तु का कथा॥४४॥
वैराजं तव रूपं तु भावयामि सदा हृदि।
पातालं ते पादमूलं पार्ष्णिस्ते सुतलं स्मृतम्॥४५॥
जङ्घे ते वितलं प्रोक्तं जानुनी ते तलातलम्।
कटिस्ते पृथिवी प्रोक्ता नाभिस्ते गगनं स्मृतम्॥४६॥

सद् वंश की रक्षा करने वाले, केशि नामक असुर के हन्ता एवं मयूर के पंख को धारण करने वाले आपको नमस्कार है। आप दया के निधान हैं, बुद्ध के रूप को धारण करने वाले आपको नमस्कार है, आप सज्जनों पर कृपा करते हैं, आपको नमस्कार है।।४१।।

शान्तस्वरूप, ज्ञानरूप, सर्वदा योग में रत रहने वाले आपको नमस्कार है। कल्कि का अवतार धारण कर म्लेच्छों का विनाश करने वाले आपको भूयो-भूयः नमस्कार है।।४२।।

आप ही जगत् के पालन करने वाले हैं, आप ही उसकी स्थिति करने वाले हैं। आप ही प्रलयरूप भी हैं, दाता एवं भोक्ता भी आप ही हैं।।४३।।

हे ब्रह्मन्! हे भगवन्! आपके सूक्ष्म रूप का चिन्तन करते हुए महान् मुनिजन भी आपके स्वरूप को न जान सके, इस स्थिति में मनुष्यों की क्या गणना है।।४४।।

हे भगवन्! आपके विराट् रूप का विभावन सदा अपने हृदय में करता रहता हूँ। आपके पैरों का मूल ही पाताललोक है तथा आपका पार्ष्णि पैर का ऊपरी भाग सुतल लोक है।।४५।।

आपकी दोनों जङ्घायें ही वितल लोक कहा गया है, आपकी जानु (घुटना) तलातल है। आपका कटि पृथिवी कहा गया है। आपकी नाभि आकाश के रूप में स्मृत है।।४६।।

वदन्ति तव मूर्द्धानं द्यां वै तत्त्वविदो जनाः।
सूर्याचन्द्रमसौ प्रोक्ते तव नेत्रे परात्पर॥४७॥
श्रुती ते ककुभः प्रोक्ते मुखं वैश्वानरः स्मृतम्।
निमिषोन्मेषणे रात्रिवासरौ ते दयानिधे॥४८॥
नाथ त्वद्व्यतिरिक्तं वै नास्त्यन्यद्वस्तु केशव।
दृश्यते श्रूयते यच्च भुज्यते तत्त्वमेव हि॥४९॥
तवैवावयवाः सर्वे देवा मर्त्त्याः सुरद्विषः।
भूता यक्षाश्च पशवस्तथाऽन्ये जीवजन्तवः॥५०॥
वेदान्तादिषु शास्त्रेषु त्वमेव प्रतिपद्यसे।
किं बहूक्तेन हे देव त्वमेव सकलं हरे॥५१॥

श्रीईश्वर उवाच

इति स्तुतो महाभागे प्रसन्नोऽभूज्जनार्दनः।
उवाच देवशर्माणं प्रीत्या मधुरया गिरा॥५२॥

तत्त्व के जानकार मनीषी जन आपके मूर्धा को द्युलोक कहते हैं। हे परात्पर! सूर्य और चन्द्रमा ही आपके दोनों नेत्र हैं।।४७।।

दशों दिशायें ही आपके दोनों कान कही गयी हैं। अग्नि आपके मुख हैं। हे दयानिधि! आँखों का खुलना और बन्द होना ही दिन और रात है।।४८।।

जल में शयन करने वाले हे नाथ! आपके अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं है, जो कुछ भी दिखाई देता है, सुना जाता है तथा जो कुछ भोग किया जाता है, वह सब कुछ आप ही हैं।।४९।।

जो भी देव, मनुष्य या देवों से द्वेष रखने वाले दानव हैं, वे सभी आपके ही अवयव हैं। इनके अतिरिक्त भूत, यक्ष, पशु आदि जितने जीव-जन्तु हैं, वे भी आपके अङ्ग ही हैं।।५०।।

वेदान्त आदि शास्त्रों में भी आप ही प्रतिपादित हैं। हे हरि! अधिक कहने से क्या लाभ। हे देव! आप ही सब कुछ हैं।।५१।।

श्री ईश्वर महादेव ने कहा

हे महाभागे! विष्णुशर्मा के द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् विष्णु प्रसन्न हो गये। उन्होंने देवशर्मा के प्रति प्रीतिपूर्वक मधुर वचन से कहा।।५२।।

श्रीभगवानुवाच

त्वदुक्तस्तवराजेन प्रसन्नोऽहं महाशय।
वरं वरयं हे विप्र यत्ते मनसि वर्त्तते॥५३॥
अदेयमपि दास्यामि वरं त्रैलोक्यदुर्लभम्।
अनेन तपसा जातं तव रूपं सुनिर्मलम्॥५४॥

देवशर्मोवाच

देवदेव विभो विष्णो गोविन्द करुणानिधे।
आत्मीयचरणाम्भोजनिवासं देहि देहि मे॥५५॥
इदं पुण्यतमं क्षेत्रं तीर्थानामुत्तमोत्तमम्।
भविष्ये तु कलौ देव सर्वाघवनदाहकम्॥५६॥
भक्तिर्मे सततं विष्णो त्वय्येवास्तु जनार्दन।
अस्मिन्नेव महाक्षेत्रे निवासं कुरु सर्वदा॥५७॥
अस्मिन् क्षेत्रे तु ये मर्त्या विष्णुपूजनकारकाः।
सङ्गमे स्नानकर्त्तारस्तेऽपि यान्तु परां गतिम्॥५८॥

श्रीभगवान् विष्णु ने कहा

हे महाशय! तुम्हारे द्वारा कही गयी श्रेष्ठ स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ। हे विप्र! तुम्हारे मन में जो कुछ इच्छा हो, उसे वर के रूप में मुझसे माँग लो।।५३।।

तीनों लोकों में दुष्प्राप्य अत एव अदेय वर भी मैं तुम्हें प्रदान करूँगा; क्योंकि इस प्रकार के तप करने से तुम्हारा रूप अत्यन्त निर्मल हो गया है।।५४।।

देवशर्मा ने कहा

हे देवाधिदेव सर्वव्यापक! हे विष्णु! हे करुणानिधान गोविन्द! मुझे अपने चरणकमल में निवास प्रदान कीजिये।।५५।।

यह अत्यन्त पवित्र क्षेत्र तीर्थों में उत्तमोत्तम माना जाय। हे देव! आने वाले कलियुग में यह क्षेत्र समस्त पापरूपी वन को भस्म कर देने वाला हो।।५६।।

हे विष्णु! हे जनार्दन! आप में मेरी भक्ति हमेशा बनी रहे। इस महान् क्षेत्र में आप सर्वदा निवास करते रहें।।५७।।

हे नाथ! इस क्षेत्र में जो मनुष्य विष्णु की पूजा करने वाले हों तथा इस सङ्गम में स्नान करने वाले हों, वे भी परम गति का लाभ प्राप्त करें।।५८।।

श्रीईश्वर उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवदेवः सनातनः।
भूयोऽपि देवशर्माणं प्रोवाच सुरपूजितः॥५९॥

श्रीभगवानुवाच

देवशर्मन् द्विजश्रेष्ठ त्वया निगदितं हि यत्।
तत्तथैव करिष्यामि लोकानां हितकाम्यया॥६०॥
त्रेतायुगे दाशरथी रामो भूत्वा महामते।
रावणादीन् महादैत्यान् कुम्भकर्णमुखाँस्तथा॥६१॥
वधिष्यामि द्विजश्रेष्ठ धर्मसंरक्षणाय वै।
अयोध्यायां कियत्कालं स्थास्यामि नरपुङ्गव॥६२॥
तत्रैव च करिष्यामि राज्यभोगं सुदुर्लभम्।
लोकानां व्यवहारार्थं भुक्त्वा भोगानशाश्वतान्॥६३॥
आयास्यामि च क्षेत्रेऽस्मिंस्तावत् त्वं तिष्ठ सुव्रत।
पुनर्मे दर्शनं प्राप्य गमिष्यसि परां गतिम्॥६४॥

श्री ईश्वर शिव ने कहा

देवपूजित देवाधिदेव सनातन श्रीनारायण ने देवशर्मा के इस प्रकार के वचन को सुनकर कहा।।५९।।

श्रीभगवान् विष्णु ने कहा

हे द्विजश्रेष्ठ! देवशर्मा! तुमने जो कुछ भी कहा है, संसार के कल्याण की कामना से कहा है। वह सब उसी प्रकार करूँगा।।६०।।

हे महामतिमान्! मैं त्रेतायुग में दशरथनन्दन श्रीराम बनकर धर्म की रक्षा के लिये रावण, कुम्भकर्ण आदि महान् दैत्यों का वध करूँगा। हे नरपुङ्गव! इसके बाद कुछ समय तक अयोध्या में निवास करूँगा।।६१-६२।।

वहाँ पर दुर्लभ राजभोगों का उपभोग करूँगा। लौकिक व्यवहार के निमित्त अशाश्वत भोगों का उपभोग करूँगा।।६३।।

हे सुव्रत! इसके बाद मैं इस क्षेत्र में आऊँगा। तब तक तुम इसी क्षेत्र में निवास करो। पुनः मेरा दर्शन प्राप्त कर तुम परमगति मोक्ष को प्राप्त कर लोगे।।६४।।

ततो देवप्रयागेति त्वन्नामलक्षणान्वितम्।
ख्यातिमेतन्महत्तीर्थं गमिष्यति द्विजोत्तम॥६५॥
यस्मात् त्वया तपस्तप्तमस्मिन् क्षेत्रे महामते।
तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं भविष्यति निरन्तरम्॥६६॥
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं को वा वक्तुं क्षमो भवेत्।
अमुं तीर्थं सकृद् दृष्ट्वा नरो याति परां गतिम्॥६७॥
अत्र दत्तं तपस्तप्तं सर्वं भवति चाक्षयम्।
नमो नारायणायेति मन्त्रं प्रणवपूर्वकम्॥६८॥
अस्मिन् क्षेत्रे तु यो मर्त्त्यो जपेन्मासचतुष्टयम्।
हविष्यभुग् ब्रह्मचारी नरो याति परां गतिम्॥६९॥
अस्मिन् क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपाय जायते।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं नैवात्र सञ्चरेत्॥७०॥
उपानद्गूढपादस्तु व्रजेद्यस्तु ममाऽऽलयम्।
ममाऽपराधी मर्त्त्यः स नरके परिपच्यते॥७१॥

हे द्विजश्रेष्ठ! तब सर्वलक्षणसम्पन्न यह महान् तीर्थ तुम्हारे नाम से समन्वित होकर 'देवप्रयाग' इस नाम की ख्याति को प्राप्त करेगा।।६५।।

हे महामतिमान्! इस क्षेत्र में तुमने तप का आचरण किया है, इसलिये यह तीर्थ निरन्तर अतिशय पवित्र माना जायेगा।।६६।।

इस तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन करने में कौन व्यक्ति समर्थ हो सकता है। इस तीर्थ का एक बार भी दर्शन करने से मनुष्य परम गति को प्राप्त कर सकता है।।६७।।

इस क्षेत्र में जो कुछ दान अथवा तप किया जाता है, वह सब कुछ अक्षय हो जाता है। इस क्षेत्र में जो मनुष्य प्रणवपूर्वक 'नमो नारायणाय' अर्थात् 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्र का जप चार मास पर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण करते हुए हविष्यान्न का भोजन करते हुए करता है, उसे परम गति की प्राप्ति होती है।।६८-६९।।

इस क्षेत्र में किया गया पाप वज्र के लेप के समान हो जाता है। इसलिये यहाँ पूर्ण प्रयत्न के साथ किसी प्रकार का पापकर्म नहीं करना चाहिये।।७०।।

जो मनुष्य हमारे इस स्थान में जूता पहन कर जाता है, वह हमारा अपराधी बनकर नरक में क्लेश को प्राप्त करता है।।७१।।

दन्तकाष्ठमखादित्वा यस्तु मामुपसर्पति।
सर्वकालकृतं कर्म तेन चैकेन नश्यति॥७२॥
पिण्याकं भक्षयित्वा तु यस्तु मामुपसर्पति।
स पतत्यन्धतामिस्त्रं दशवर्षाणि पञ्च च॥७३॥
यो नरो मैथुनं कृत्वाऽस्नातो मामुपसर्पति।
स खादेत्तु स्वमांसानि नरके प्रतिपद्यते॥७४॥
अस्मिन् क्षेत्रे महाभाग परदारान्न भाषयेत्।
तासु वै मैथुनं कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेत्॥७५॥
कोटिवर्षसहस्राणि कोटिवर्षशतानि च।
तप्तायःस्तम्भमध्ये तु वध्यते यमकिङ्करैः॥७६॥
ततः प्रजायते कीटः पुरीषस्थो न संशयः।
ततो जायेत वै विप्र श्वानशूकरयोनिषु॥७७॥

दन्तकाष्ठ (दतौन) बिना किये, जो मनुष्य हमारा दर्शन करता है, उसके इस एक ही कर्म से उसके पहले के किये सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। इसलिये यहाँ बिना मुख धोये गमन नहीं करना चाहिये।।७२।।

जो मनुष्य पिण्याक (तिलकुट या पिण्डालु) का भक्षण कर हमारे निकट आता है, वह पन्द्रह वर्ष पर्यन्त अन्धतामिस्र नरक में वास करता है।।७३।।

जो मनुष्य मैथुन करने के अनन्तर स्नान किये बिना ही हमारे निकट आता है, वह मनुष्य नरक में निपतित होकर स्वयं अपना मांस भक्षण करता है।।७४।।

हे महाभाग! इस क्षेत्र में दुष्टाशय से परायी स्त्री से सम्भाषण नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य परस्त्री से मैथुन करता है, वह तो रौरव नरक में ढकेला जाता है।।७५।।

इस प्रकार के व्यक्ति को यमराज के दूत सहस्र करोड़ वर्ष और सौ करोड़ वर्ष पर्यन्त तप्त लोहे के खम्भे में बाँध कर पीटते हैं।।७६।।

इसके अनन्तर परस्त्रीगामी मनुष्य विष्ठा में रहने वाले कीट की योनि में उत्पन्न होता है। हे विप्र! तदनन्तर वह कुत्ते, शूकर आदि अधम योनियों में जन्म लेता है। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।।७७।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गच्छेन्नैव परस्त्रियम्।
स्वीयामेव सदा गच्छेत्पत्नीं नान्यां कदाचन॥७८॥

अन्यान्यपि च पापानि सर्वथा सन्त्यजेद् बुधः।
अन्यक्षेत्रकृतं पापमस्मिन् क्षेत्रे विलीयते॥७९॥

ब्रह्महत्यादिपापाच्च तथा गोत्रजमारणात्।
नरो वै तीर्थराजस्य मुच्यते दर्शनादपि॥८०॥

चातुर्मास्यं व्रतं ये तु करिष्यन्ति नरोत्तमाः।
अस्मिन् क्षेत्रे महाभाग ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयुः॥८१॥

एकतः सर्वतीर्थानि चैकतस्तीर्थराजकम्।
एकतः सर्वदानानि चैकत्राभयदानकम्॥८२॥

ईश्वर उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुः सर्वव्यापी जनार्दनः।
देवशर्मा तु तत्रैव स्थितवांश्चिन्तयन् विभुम्॥८३॥

इसलिये मनुष्य का परम कर्तव्य है कि वह परायी स्त्री का गमन कदापि न करे। सदा अपनी भार्या के साथ ही सहवास करना चाहिये।।७८।।

इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि इसी प्रकार के अन्य पापों का भी परित्याग कर दे। अन्य क्षेत्र में किया गया पाप इस क्षेत्र में आने से नष्ट हो जाता है।।७९।।

ब्रह्महत्या तथा अपने वंशजों के वध करने के पाप से भी मनुष्य इस क्षेत्र के दर्शन से मुक्त हो जाता है।।८०।।

हे महाभाग! जो श्रेष्ठ मनुष्य इस क्षेत्र में चातुर्मास्य व्रत का आचरण करते हैं, उन्हें ब्रह्मसायुज्य की प्राप्ति होती है।।८१।।

जिस प्रकार एक ओर अन्य सभी प्रकार के दान हैं और दूसरी तरफ केवल एक अभयदान है, उसी प्रकार एक ओर सभी तीर्थ हैं और दूसरी ओर मात्र एक ही तीर्थराज देवप्रयाग माना गया है।।८२।।

ईश्वर शिव ने कहा

सर्वव्यापक जनार्दन भगवान् विष्णु इस प्रकार कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। देवशर्मा भी विभु भगवान् का ध्यान करते हुए वहीं पर स्थित हो गये।।८३।।

ततो नारायणः स्वीयां प्रतिज्ञां कृतवान् शिवे।
रामावतारं चक्रे वै भूत्वा दशरथात्मजः॥८४॥
कृतवांस्तत्तथा पूर्वं यदुक्तं देवशर्मणे।
पुनर्देवप्रयागे वै यत्राऽऽस्ते देवभूसुरः॥८५॥
आययौ भगवान् विष्णू रामरूपात्मकः स्वयम्।
देवशर्मा च तं देवं दृष्ट्वा वै भक्तितत्परः॥८६॥
ननाम शिरसा भूयो भूयोऽपि कृतवान् स्तुतिम्।
प्रसन्नो भगवान् विष्णुर्देवशर्माणमब्रवीत्॥८७॥

श्रीराम उवाच

भो भो द्विज मुनिश्रेष्ठ भक्तोऽसि मम सुव्रत।
त्वदीयतपसा बद्ध आगतोऽहं महामते॥८८॥
लोकानां हितकामाय ह्यत्रैव निवसाम्यहम्।
त्वमप्यत्रैव निवसन् सर्वदा मामनुस्मर॥८९॥

हे शिवे! तदनन्तर नारायण ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। उसके अनुसार उन्होंने राजा दशरथ के पुत्र के रूप में राम का अवतार ग्रहण किया।।८४।।

उन्होंने देवशर्मा से जो कुछ कहा था, उसे उन्होंने उसी प्रकार पूर्ण किया। पुनः वे देवप्रयाग में गये, जहाँ वह भूसुर देवशर्मा रह रहा था।।८५।।

रामरूप को धारण करने वाले भगवान् विष्णु स्वयं वहाँ आये। भक्ति में तत्पर देवशर्मा ने उस देव विष्णु को देखा।।८६।।

देवशर्मा ने उन्हें देखते ही पुनः पुनः शिर से प्रणाम किया तथा उसने पुनः भगवान् की स्तुति की। तदनन्तर भगवान् विष्णु ने प्रसन्न होकर देवशर्मा से कहा।।८७।।

श्रीराम ने कहा

हे द्विज! मुनिश्रेष्ठ! तुम सुव्रती हो, तुम मेरे भक्त हो। हे महामतिमान् तुम्हारी तपस्या से बँधकर मैं यहाँ आया हूँ।।८८।।

सांसारिक पुरुषों के कल्याण की कामना से मैं यहाँ पर निवास करूँगा और तुम यहाँ निवास करते हुए सर्वदा मेरा स्मरण करते रहोगे।।८९।।

इतः प्रभृति लोकेऽपि ख्यातं तीर्थं भविष्यति।
त्वन्नामाङ्कितमेतस्य कलौ नाम भविष्यति॥९०॥
देवशर्मन् मुनिश्रेष्ठ मम सायुज्यमेष्यसि।
त्वन्नामस्मरणादेव नरो याति परां गतिम्॥९१॥
किं पुनर्मम नाम्ना वै किन्न याति परां गतिम्।

ईश्वर उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् रामस्तस्थौ देवप्रयागके॥९२॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह पार्वति।
ततः सुरगणाः सर्वे अवतीर्णास्तु तत्र वै॥९३॥
केचिद्वै मृगरूपेण कपिरूपेण केचन।
सेवितुं वै दाशरथिं ससीतं हिमवत्सुते॥९४॥
गङ्गाया उत्तरे भागे दृश्यते यो महागिरिः।
तत्र राजा दशरथो नित्यं रामपरायणः॥९५॥
आयाति मृगयाव्याजाद्दर्शनाय रमापतेः।
तेनैवं तद्गिरेर्नाम दशरथाग इति स्मृतम्॥९६॥

आज से ही यह तीर्थ लोक में विख्यात हो जायेगा। तुम्हारे नाम से संयुक्त होकर यह तीर्थ कलियुग में देवप्रयाग नाम वाला हो जायेगा।।९०।।

हे देवशर्मा! मुनिश्रेष्ठ! तुम मेरी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त कर लोगे। तुम्हारे नाम का स्मरण कर ही मनुष्य परम गति को प्राप्त करेंगे।।९१।।

मेरे नाम का स्मरण करने से सद्गति की प्राप्ति होगी।

ईश्वर ने कहा

यह कहकर भगवान् राम वहीं देवप्रयाग में निवास करने लगे।।९२।।

हे पार्वती! उस समय से वहाँ भाई लक्ष्मण एवं सीता के साथ राम का निवास हुआ। इसके बाद वहाँ पर सभी देवताओं का गण भी अवतीर्ण हो गया।।९३।।

उस समय किसी देवता ने मृग का रूप धारण किया। किसी ने वानर का रूप ग्रहण किया। हे पार्वती! क्योंकि वे लोग सीता के साथ दशरथनन्दन श्रीराम की सेवा करना चाहते थे।।९४।।

गङ्गा के उत्तर भाग में जो महान् पर्वत दिखाई देता है, वहाँ राजा दशरथ रामचन्द्र के प्रेम के वशीभूत होकर आखेट के व्याज से नित्य आते हैं। इसी कारण उसका नाम दशरथाग पड़ गया है।।९५-९६।।

यो वै निष्कल्मषः शुद्धो निरीहो रामतत्परः।
स वै पश्यति राजानं नाम्ना[१] दशरथं प्रभुम्॥९७॥
तीर्थानां तु त्रयस्त्रिंशत् कोटिरत्र स्थिता बुधैः।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः॥
यत्र साक्षात्सदा रामो वसते करुणानिधिः॥९८॥

राज्ञश्चण्डवर्मणः आख्यानम्

अथेतिहासं वक्ष्यामि शृणु देवि पुरातनम्।
बभूव मध्यदेशे तु चण्डवर्मा नराधिपः॥९९॥
तस्य वै पट्टमहिषी मायादेवीति विश्रुता।
प्रजानां चण्डरूपो हि ब्राह्मणानां तथा स वै॥१००॥
तस्यापि सचिवाः सर्वे दयाहीनाश्च पापिनः।
अन्यायोपार्जितस्वेन कोशं संवर्द्धयन्ति ते॥१०१॥
पापकर्मा चण्डवर्मा सुतहीनो बभूव ह।
सदा दुरितकर्माणि करोति स महीपतिः॥१०२॥

जो मनुष्य निष्पाप, शुद्ध, चेष्टारहित और राम का भक्त होता है, उसी को समर्थशाली राजा दशरथ का दर्शन होता है।।९७।।

इस क्षेत्र में तैंतीस करोड़ तीर्थ स्थित हैं। इस तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है। जहाँ पर स्वयं साक्षात् करुणानिधि भगवान् श्रीराम निवास करते हैं।।९८।।

राजा चण्डवर्मा का आख्यान

हे देवी! मैं एक प्राचीन इतिहास का वर्णन कर रहा हूँ, उसे श्रवण करो। मध्यप्रदेश में प्राचीनकाल में एक चण्डवर्मा नाम के राजा हुए थे।९९।।

उनकी पटरानी मायादेवी के नाम से विख्यात थी। वह राजा अपनी प्रजा तथा ब्राह्मणों के लिये बड़ा उग्र था।।१००।।

उसके मन्त्रीगण भी दयाहीन और पापिष्ठ थे। अत एव वे लोग अन्याय द्वारा उपार्जित धन से अपने राजकोष को भर रहे थे।।१०१।।

वह चण्डवर्मा अत्यन्त पापी था, इसलिये उसे कोई पुत्र नहीं हुआ। फिर भी वह राजा नित्य पापकर्म का ही आचरण करता रहता था।।१०२।।

---

१. दशरथं मनोहरमिति क.।

बहवः शत्रवो जातास्तस्य पापस्य शैलजे।
तस्मिन् राष्ट्रे महादेवि पर्जन्यो न च वर्षति॥१०३॥
सर्वे क्रूराः शठाः पापाश्चौरास्तत्र वसन्ति हि।
चण्डवर्मा हि लोकेभ्यः सदा दुःखं ददाति हि॥१०४॥
एवं पापस्य बाहुल्यात्सञ्जातः कोशसङ्क्षयः।
ततः कोशे क्षयं याते सन्त्यक्तश्चैव मन्त्रिभिः॥१०५॥
अस्मिन्नवसरे प्राप्ते वृतो वै परिपन्थिभिः।
राज्यभ्रष्टश्च वै जातस्ततः कष्टतरं गतः॥१०६॥
वने जगाम दुःखार्त्तः पत्न्या च सह मायया।
खड्गचर्मधरः क्रूरो धनुर्बाणसमन्वितः॥१०७॥
महाघोरतरेऽरण्ये ऋक्षव्याघ्रादिसङ्कुले।
राक्षसानां भीमनादपूरितेऽतिभयङ्करे॥१०८॥
तथा कण्टकवृक्षैश्च संयुते भीमदर्शने।
वने तयोर्गच्छतोरग्रे राक्षसः प्रत्यदृश्यत॥१०९॥

हे शैलपुत्री! उस राजा के बहुत शत्रु हो गये। हे महादेवी! उसके राज्य में मेघ भी जल नहीं बरसाते थे।।१०३।।

उसके राज्य में सब दुष्ट, शठ, पापी और चोर ही बसते थे। इधर चण्डवर्मा भी सदा प्रजा को दुःख ही देता रहता था।।१०४।।

इस प्रकार पाप के बढ़ जाने से उसके कोष का क्षय होने लगा। उसके कोष के क्षीण हो जाने पर मन्त्रियों ने उसे छोड़ दिया।।१०५।।

उस समय वह राजा अपने शत्रु राजाओं से घिर गया। वह राज्य से भ्रष्ट हो गया और अत्यन्त कष्ट भोगने लगा।।१०६।।

वह क्रूर राजा अतिशय दुःखित होकर पत्नी के साथ वन में चला गया। उस समय वह खड्ग और चर्म (ढाल) तथा धनुष और बाण धारण कर रखा था।।१०७।।

वह वन भालू और व्याघ्र आदि से आकीर्ण, राक्षसों के अतिभयङ्कर निनाद से पूर्ण होने के कारण अत्यन्त भयानक था।।१०८।।

वह वन कँटीले वृक्षों से पूर्ण एवं देखने में ही अत्यन्त भयङ्कर था। ऐसे वन में जाते ही उन्हें एक राक्षस दिखाई पड़ा।।१०९।।

अत्युच्चो रक्तनयनः प्रकाशितरदस्तथा।
करालवदनो दीर्घकर्णश्चैव बृहच्छिराः॥११०॥
अनेकमानुषप्रोतशूलहस्तो नरान्तकः।
आयान्तं तं समालोक्य धनुः सज्जं चकार ह॥१११॥
आकर्णान्तं समाकृष्य बाणं तस्मिन्नियोज्य च।
स्वान्तं विदारयामास बाणेनास्य दुरात्मनः॥११२॥
गोविन्देति वदन् रक्षः प्राणान् वै मुमुचे शिवे।
पूर्वरूपं परित्यज्य जातो गन्धर्वराट् तदा॥११३॥
नाम्ना वै सुस्वरः ख्यातो विषमेषुरिवापरः।
सुन्दरः पद्मपत्राक्षो गीते च निपुणः सुधीः॥११४॥

ईश्वर उवाच

इति तस्यातिसौन्दर्यं दृष्ट्वा वै स महीपतिः।
प्राह तं विस्मयाविष्टो गन्धर्वं त्रिदिवौकसाम्॥११५॥

वह राक्षस देखने में बहुत बड़ा, लम्बा, लाल-लाल नेत्र वाला, चमकीले दाँतों वाला, भयानक मुख वाला, लम्बे कानों वाला तथा बड़े शिरवाला था।।११०।।

मनुष्यों का वध करने वाले उस राक्षस के हाथ में अनेक मनुष्यों को पिरोये हुए शूल था। उस राक्षस को आते हुए देखकर चण्डवर्मा ने धनुष पर डोरी चढ़ा ली।।१११।।

धनुष पर बाण चढ़ाकर उसे कान पर्यन्त खींचा और उसी बाण के द्वारा उस राक्षस के अन्तःकरण को विदीर्ण कर दिया।।११२।।

हे शिवा! उस समय उस राक्षस ने गोविन्द, गोविन्द कहते हुए प्राणों का परित्याग कर दिया। वह अपने इस रूप को त्याग कर पूर्व रूप में गन्धर्वराज हो गया।।११३।।

उसका नाम सुस्वर था, वह दूसरे कामदेव के समान सुन्दर था। उसके नेत्र कमल के समान सुन्दर थे, वह बुद्धिमान् गानविद्या में निपुण था।।११४।।

ईश्वर ने कहा

इस प्रकार वह राजा उसके सुन्दर रूप को देखकर अत्यन्त विस्मित हो गया। तदनन्तर देवताओं के गायक उस गन्धर्व से कहा।।११५।।

चण्डवर्मोवाच

अत्यद्भुतमिदं दृष्टं यत्त्वं गन्धर्वतां गतः।
केन वै कर्मणा पूर्वं राक्षसोऽभूद्विरूपधृक्॥११६॥
इदानीं केन पुण्येन सञ्जातोऽसि च गायकः।
देवानां हि महाभाग तन्मे विस्तरतो वद॥११७॥

गन्धर्व उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि स्वस्य वै पूर्वकर्मणः।
चेष्टितं राजशार्दूल समासाद् गदतो मम॥११८॥
पूर्वजन्मन्यभूवं हि ब्राह्मणो वेदपारगः।
शर्मदत्त इति ख्यातो नाम्ना वै राजसत्तम॥११९॥
अधीततर्कशास्त्रेण मयाऽहङ्कारतो द्विजाः।
पराजिताः कुतर्केण विद्यावन्तोऽतितापसाः॥१२०॥

चण्डवर्मा ने कहा

मैंने यह अत्यन्त अद्भुत बात देखी कि तुम गन्धर्व हो गये हो, तुम किस कर्म के कारण इस प्रकार कुरूप धारण करने वाले राक्षस हो गये थे।।११६।।

इस समय कौन सा पुण्य उदय हुआ, जिससे देवताओं के गायक हो गये हो। हे महाभाग! इस वृत्तान्त को विस्तारपूर्वक मुझसे कहो।।११७।।

गन्धर्व ने कहा

हे राजन्! सुनो, मैं अपने पूर्वकर्मों की चेष्टा का वर्णन संक्षेप में करता हूँ। हे राजशार्दूल! मेरे द्वारा संक्षेप में कहे गये वृत्तान्त को सुनें।।११८।।

हे नृपश्रेष्ठ! पूर्वजन्म में मैं वेद का पूर्ण ज्ञाता एक ब्राह्मण था। मैं शर्मदत्त नाम से विख्यात था।।११९।।

मैंने तर्कशास्त्र पढ़कर अहङ्कार से ब्राह्मणों को पराजित कर दिया, उसी प्रकार कुतर्क के बल पर विद्या के अहङ्कार से ग्रस्त होकर बड़े-बड़े तपस्वियों को भी पराजित किया।।१२०।।

ते सर्वे दुःखिता विप्रा[1] मामित्यूचुर्नराधिप।
यतस्त्वया वयं सर्वे कुतर्केण पराजिताः॥
ततस्त्वं हि महारण्ये राक्षसो वै भविष्यसि॥१२१॥
ततोऽहं दुःखसन्तप्तो ब्राह्मणाञ्छरणं ययौ।
ब्राह्मणानां च पादेषु पतितोऽहं नराधिप॥१२२॥
यूयं रक्षत मां विप्रा अपराधिनमेव च।
अतः परं हि भवतां दासोऽहं मुनिसत्तमाः॥१२३॥
घोरा वै रक्षसां योनिस्तस्या मां विनिवर्त्तय।
इत्युक्त्वाऽहं पुनस्तेषां पादेषु[2] पतितो नृप॥१२४॥

ईश्वर उवाच

इति वै शरणायातं दुःखार्त्तं विनये स्थितम्।
उचुर्वै ब्राह्मणाः सर्वे शापोऽस्माकं द्विजोत्तम॥१२५॥
ऊमोघोऽयं महाभाग भविष्यत्येव वै द्विज।
तथापि ते शापमोक्षो भविता द्रक्ष्यसे यदा॥१२६॥

हे राजन्! वे सब दुःखित होकर मुझसे इस प्रकार कहे—हे विप्र! तुमने कुतर्क करके हम सभी को पराजित किया है, इसलिये तुम महान् जङ्गल में राक्षस बनकर रहोगे।।१२१।।

इस प्रकार उनके वचन को सुनकर मैं दुःख से सन्तप्त होकर ब्राह्मणों की शरण में आया। हे राजन्! मैं ब्राह्मणों के चरणों पर गिर गया।।१२२।।

मैंने कहा—हे विप्रों! मुझ अपराधी की रक्षा आप लोग करें। हे मुनीश्वरों! इसके आगे मैं आप लोगों का दास बनकर रहूँगा।।१२३।।

राक्षसयोनि अत्यन्त भयङ्कर होती हैं, उससे मुझे आप लोग लौटा लें, हे राजन्! यह कहकर मैं पुनः उनके चरणों पर गिर गया।।१२४।।

ईश्वर ने कहा

इस प्रकार दुःख से व्याकुल, नम्रतापूर्वक शरण में आये हुए उस शर्मदत्त से सभी ब्राह्मणों ने कहा—हे द्विजोत्तम! यह हम लोगों का दिया हुआ शाप है।।१२५।।

हे महाभाग द्विज! यह शाप अवश्य ही अमोघ होगा, अर्थात् किसी प्रकार खाली जाने वाला नहीं है। तथापि तुम्हारा इस शाप से मोक्ष उस समय होगा,

१. विप्र इति ग.। २. चरणे इति ख.ग.।

इक्ष्वाकुवंशजं चण्डवर्माणं तीर्थसेवकम्।
तदा वै नरशार्दूल शापस्तेन गतः प्रभो॥१२७॥

स्कन्द उवाच

इति शिववचः श्रुत्वा विस्मिता शैलजाऽभवत्।
अनाथनाथं देवेशं पुनः पप्रच्छ नारद॥१२८॥

श्रीपार्वत्युवाच

अनाथनाथ सर्वज्ञ सर्वलोकहिते रत।
पापं नृपं कथं दृष्ट्वा भवेद्वै शापनाशनम्॥१२९॥

देवदासवैश्यस्याख्यानम्

ईश्वर उवाच

श्रृणु देवि पुरा वृत्तमस्य वै चण्डवर्मणः।
देवदास इति ख्यातो वैश्यो धनवतां वरः॥१३०॥
तस्य पुत्रो बभूवाथ पूर्वजन्मनि पार्वति।
धनदेति समाख्यातः चण्डवर्मा नराधिपः॥१३१॥

जब तुम इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न तीर्थ की सेवा करने वाले चण्डवर्मा को देखोगे। हे नरश्रेष्ठ! इसलिये उस शर्मदत्त के शाप का अन्त हो गया है।।१२६-१२७।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार शिव के वचन को सुनकर शैलपुत्री पार्वती अत्यन्त विस्मित हो गयीं। हे नारद! उन्होंने अनाथों के नाथ देवों के स्वामी भगवान् शिव से पुनः पूछा।।१२८।।

श्री पार्वती जी ने कहा

हे अनाथों के नाथ! आप सर्वज्ञ हैं तथा सम्पूर्ण लोक का हित करने में निरत रहते हैं। आप यह बतलायें कि पापी राजा को देखने से शाप का विनाश कैसे हो गया।।१२९।।

देवदास वैश्य का आख्यान

ईश्वर ने कहा

हे देवी! इस चण्डवर्मा के प्राचीन इतिहास को सुनो! प्राचीनकाल में धनवानों में श्रेष्ठ देवदास नाम का एक वैश्य प्रसिद्ध हुआ था।।१३०।।

हे पार्वती! पूर्वजन्म में यह राजा चण्डवर्मा उसका पुत्र धनद नाम से विख्यात हुआ।।१३१।।

राज्यार्थेऽसौ तपश्चक्रे वासिष्ठे तीर्थनायके।
केवलं राज्यलोभेन चिन्ताविष्टमनाः सदा॥१३२॥
पक्षमेकं तत्र गत्वा स्नानं च हरिपूजनम्।
ततस्तीर्थवरात्पुण्यादाजगाम गृहे स्वके॥१३३॥
तदागत्य गृहे वैश्यः स्थितवान् कतिचित्समाः।
कदाचिद्दैवयोगेन वने निर्गतवाञ्छिवे॥१३४॥
तत्र गत्वा महादेवि ददर्श मुनिसत्तमम्।
मेधाविनं महात्मानं तप्यमानं महत्तपः॥१३५॥
तं दृष्ट्वा कृशसर्वाङ्गमस्थिशेषं जहास सः।
शान्तं वै शान्ततपसं क्रोधं कारितवान् मदी॥१३६॥
वैश्यं दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठः शशाप कोपवान् मुनिः।
अपुत्रो भविताऽसि त्वं [१]क्रव्याद इव चापरः॥१३७॥

उस समय इसने राज्य की प्राप्ति के लिये सम्पूर्ण तीर्थों में श्रेष्ठ वासिष्ठ नामक तीर्थ में तप किया। इसका मन केवल राज्य के लोभ से चिन्तातुर रहता था।।१३२।।

इसलिये वहाँ जाकर एक पक्ष पर्यन्त इसने स्नान और हरि का पूजन किया। इसके बाद यह उस पुण्यप्रद तीर्थ से अपने घर लौट आया।।१२३।।

उस समय यह वैश्य वहाँ से आकर कुछ वर्षों तक घर में रहा। हे पार्वती! इसके अनन्तर दैवयोग से किसी समय वन में चला गया।।१३४।।

हे महादेवी! वहाँ जाकर इसने एक ऐसे श्रेष्ठ मुनि को देखा, जो मेधावी महात्मा महान् तप का आचरण कर रहे थे।।१३५।।

उनका शरीर कृश हो गया था, उनके शरीर में केवल अस्थिमात्र शेष था, वे शान्त थे और उनका तप भी शान्त था, तथापि इस उन्मत्त ने उन्हें क्रोधित कर दिया।।१३६।।

वैश्य को देखकर क्रोधित हो मुनिश्रेष्ठ ने शाप दे दिया कि तुम्हारा आचरण राक्षस के समान है, इसलिये तुम पुत्रहीन ही रहोगे।।१३७।।

१. राक्षस इति क.।

स्थानाद् भ्रष्टोऽपि पञ्चत्वं शीघ्रं वै प्राप्स्यते भवान्।
यत्त्वयोत्पादितं विघ्नं कृतं मे तपसस्ततः॥१३८॥

वैश्य उवाच

तव स्वरूपं न ज्ञातं मया पापिष्ठबुद्धिना।
तेन वै कर्मणा विप्र शप्तोऽस्मि दुष्टबुद्धिवान्[१]॥१३९॥
क्षमां कुरु मुनिश्रेष्ठ दयावन्तो भवादृशाः।
न मनन्त्यपकारं चोपकारं च तथैव च॥१४०॥
ते वै तपस्विनः शान्ताः समलोष्ठाश्मकाञ्चनाः।
दुष्टानामुपकर्त्तारः कुर्वन्ति नापकारकम्॥१४१॥

ईश्वर उवाच

इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं ननाम शिरसा ततः।
पुनः पुनः पपातासौ पादयोस्तस्य धीमतः॥१४२॥

क्योंकि तुमने हमारे तप में विघ्न उत्पन्न किया है, इसलिये तुम स्थान से भ्रष्ट होकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करोगे।।१३८।।

वैश्य ने कहा

पाप बुद्धि वाले मैंने आपके स्वरूप को नहीं पहचाना है। हे विप्र! इस प्रकार के कर्म करने के कारण ही दुष्ट बुद्धिवाला मैं आपके द्वारा शापित हुआ हूँ।।१३८।।

हे मुनिश्रेष्ठ! आप क्षमा करें; क्योंकि आप जैसे महात्मा जन दयालु होते हैं। वे किसी के अपकार अथवा उपकार को कुछ नहीं समझते हैं।।१३९।।

शान्त तपस्वीजन मृत्तिका एवं सुवर्ण दोनों को ही समान दृष्टि से देखते हैं। उपकारपरायण वे लोग दुष्टों का भी अपकार नहीं करते हैं।।१४०।।

तपस्वी लोग शान्त होते हैं, वे ढेले, पत्थर और सुवर्ण में समानभाव रखने वाले होते हैं। वे दुष्टों के उपकार करने वाले होते हैं, अपकार नहीं करते।।१४१।।

ईश्वर ने कहा

ऐसा कहकर उसने शिर से झुककर मुनिश्रेष्ठ को नमस्कार किया और उस बुद्धिमान् के चरणों पर बार-बार गिर कर क्षमा याचना की।।१४२।।

---

१. बुद्धिमानिति क.।

प्रसन्नोऽभून्मुनिश्रेष्ठस्तस्मै वैश्याय सुव्रते।
जगाद मधुरं वाक्यं हर्षयन्नूरुजं तथा॥१४३॥

ऋषिरुवाच

शापस्यान्तोऽपि भविता सुस्वरं द्रक्ष्यसे यदा।
तस्यापि शापमोक्षश्च भविता दर्शनात्तव॥१४४॥
गुरोराज्ञां ततः प्राप्य स्वगृहे वै ममार ह।
ऋषेश्चामोघशापाद्धि राजाऽसौ समजायत॥१४५॥
पापः पापसमाचारो जातो वै चण्डको नृपः।
राज्यभ्रष्टः श्रिया त्यक्तो बान्धवैश्च तथा शिवे॥१४६॥
पुत्रहीनोऽभवद्राजा दुःखशोकार्दितस्तदा।
ततोऽसौ चण्डवर्मा तु गुरुं वेदविदां वरम्॥१४७॥
ज्ञानवन्तं च गुणिनं निःस्पृहं द्रष्टुमागतः।
गुरुं दृष्ट्वा ननामाथ स्तुतवान् मुनिपुङ्गव[1]॥१४८॥

तदनन्तर उस सुव्रती वैश्य पर मुनिश्रेष्ठ प्रसन्न हो गये और ऊरु से जन्म लेने वाले उस वैश्य को हर्षित करते हुए मधुर वाक्य से बोले।।१४३।।

ऋषि ने कहा

जब तुम सुस्वर नाम गन्धर्व को देखोगे, उस समय तुम्हारे शाप का अन्त होगा। तुम्हारे दर्शन से उसकी भी शाप से मुक्ति हो जायेगी।।१४४।।

तदनन्तर वह गुरु की आज्ञा से अपने घर चला गया और समय पर मृत्यु को प्राप्त हुआ। महर्षि का शाप अमोघ होने के कारण मृत्यु के पश्चात् वह राजा हुआ।।१४५।।

वह पापी था, अतएव पाप का आचरण करने वाला चण्डवर्मा नाम का राजा हुआ। हे शिवे! इसलिये वह राज्य से भ्रष्ट हो गया और लक्ष्मी ने भी उसका परित्याग कर दिया तथा बन्धु-बन्धवों से भी वह परित्यक्त हो गया।।१४६।।

वह राजा पुत्र से हीन था, इसलिये वह दुःख और शोक से अत्यन्त पीड़ित रहता था। इसके बाद वह चण्डवर्मा वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ, ज्ञानवान्, गुणवान् एवं निस्पृह गुरु का दर्शन करने के लिये उनके समीप गया। हे मुनिश्रेष्ठ! उसने गुरु का दर्शन कर प्रणाम किया और स्तुति की।।१४७-१४८।।

१. मुनिपुङ्गवमिति ख.।

नमो नमस्ते गुरवे ज्ञानिने शिवरूपिणे।
त्वं ब्रह्मा त्वं हि गोविन्दस्त्वमेव हि सदाशिवः॥१४९॥
गुरोरन्यं न पश्यामि जगत्पालनकर्तृकम्।
प्रसीद नाथ भगवन् दयां कुरु कृपानिधे॥१५०॥

श्रीईश्वर उवाच

इति वै संस्तुतो विप्रो नाम्ना वै ब्रह्मदत्तकः।
प्रसन्नोऽभून्महाभागे तमुवाच नराधिपम्॥१५१॥

ब्रह्मदत्त उवाच

केन वै कारणेनात्र मदीयाश्रमके वरे।
आगतोऽसि महाराज दुःखार्त्त इव लक्ष्यसे॥१५२॥

चण्डवर्मोवाच

दुःखार्त्तोऽहं महाभाग राज्यभ्रष्टेन[१] वै द्विज।
बान्धवैर्मन्त्रिभिस्त्यक्तः पुत्रहीनस्तथाऽभवम्॥१५३॥

हे गुरुदेव! आप ज्ञानी और साक्षात् शिवरूप हैं। आप अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने वाले हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। ब्रह्मा, विष्णु और सदाशिव भी आप ही हैं। गुरु के अतिरिक्त जगत् का पालन करने वाले किसी अन्य को मैं नहीं देखता हूँ। हे नाथ! आप कृपानिधान हैं, हे भगवन्! आप मुझ पर प्रसन्न हों और मेरे ऊपर दया कीजिये।।१४९-१५०।।

श्री ईश्वर ने कहा

जब चण्डवर्मा नामक राजा ने ब्रह्मदत्त नामक गुरु की इस प्रकार स्तुति की। हे महाभागे पार्वती! तब वे प्रसन्न होकर राजा से बोले।।१५१।।

ब्रह्मदत्त ने कहा

हे महाराज! तुम किस कारण से हमारे इस श्रेष्ठ आश्रम में आये हो? तुम तो दुःखित के समान दिखायी पड़ रहे हो।।१५२।।

चण्डवर्मा ने कहा

हे महाभाग, द्विजश्रेष्ठ! राज्य से भ्रष्ट होने के कारण मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। बन्धु-बन्धवों और मन्त्रियों ने भी मेरा परित्याग कर दिया है और मैं पुत्रहीन भी हो गया हूँ।।१५३।।

१.

तत्कर्माऽऽचक्ष्व मे देव येन प्राप्स्यामि वै सुतम्।
राज्यं च विपुलं विप्र तथा सज्जनबान्धवान्॥१५४॥

गुरुरुवाच

गच्छ गच्छ हि राजंस्त्वं तीर्थे देवप्रयागके।
तत्र गत्वा मासमेकं पूजयस्व जनार्दनम्॥१५५॥
यथोक्तविधिना राजंस्तीर्थानामुत्तमोत्तमे।
प्राप्स्यसि त्वं महाराज पुत्रं राज्यं तथैव च॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गच्छ त्वं मा विलम्बं कुरु प्रभो॥१५६॥

ईश्वर उवाच

तत्तथैवाऽकरोद्राजा स्नानं देवप्रयागके।
प्राप्तं च तेन राज्यं वै पुत्रश्च गुणवानथ॥१५७॥
एतत्पुण्यतमाख्यानं श्रोष्यन्ति श्रावयन्ति ये।
तेषां जन्मजरामृत्युभयं नास्ति कदाचन॥१५८॥

हे देव! इसलिये मुझे ऐसा कर्म बतलाइये, जिससे मुझे पुत्र की प्राप्ति हो, साथ ही मुझे विपुल राज्य की प्राप्ति हो तथा सज्जन बन्धु-बन्धव भी मिलें।।१५४।।

गुरु ने कहा

हे राजन्! तुम देवप्रयाग नामक तीर्थ में जाओ, वहाँ जाकर तुम एक मास पर्यन्त भगवान् जनार्दन की पूजा करो।।१५५।।

हे राजन्! जब तुम यथोक्त विधि से उत्तम तीर्थ में नारायण की पूजा करोगे, तो तुम्हें पुत्र और राज्य की प्राप्ति हो जायेगी। हे राजन्! उठो तुम जाओ, हे प्रभु! विलम्ब मत करो।।५६।।

ईश्वर ने कहा

तदनन्तर राजा ने उसी विधि से देवप्रयाग में स्नान किया, ऐसा करने से उसे राज्य की प्राप्ति हो गयी और उसने गुणवान् पुत्र को भी प्राप्त कर लिया।।१५७।।

जो मनुष्य इस पवित्रतम आख्यान का श्रवण करेगा, अथवा दूसरों को सुनायेगा, उसे जन्म, बुढ़ापा या मृत्यु का भय कभी नहीं होगा।।१५८।।

स्कन्द उवाच

इति ते कथितं दिव्यं तीर्थानामुत्तमोत्तमम्।
देवप्रयागकं क्षेत्रं तस्योत्पत्तिश्च नारद॥१५९॥
ये नरा भुवि शृण्वन्ति चरित्रं देवशर्मणः।
ते वै देवप्रयागस्य निवासफलमाप्नुयुः॥१६०॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी धनमाप्नुयात्॥१६१॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा विररामाऽथ महादेवो महामतिः।
पुनः पप्रच्छ वै स्कन्दं नारदो मुनिसत्तमः॥१६२॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५०।।

स्कन्द ने कहा

हे नारद! इस प्रकार हमने दिव्य देवप्रयाग नामक तीर्थ का माहात्म्य और उसकी उत्पत्ति का वर्णन तुम्हारे प्रति किया है।।१५९।।

जो मनुष्य इस पृथ्वीतल पर देवशर्मा के चरित्र का श्रवण करेंगे, उन्हें निश्चित ही देवप्रयाग में निवास करने का फल प्राप्त होगा।।१६०।।

इस माहात्म्य के श्रवण करने से विद्यार्थी विद्या को प्राप्त करता है और धन को चाहने वाला धन प्राप्त कर लेता है।।१६१।।

सूत जी ने कहा

महामतिमान् महादेव जी जब यह कहकर मौन हो गये, तब मुनिसत्तम नारद जी ने पुनः स्कन्द जी से पूछा।।१६२।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयाग का माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ पचास अध्याय पूर्ण हुआ।।१५०।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-१९१९+१६२=२०८१]



अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मकुण्डस्य माहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातं जाह्नव्यलकनन्दयोः।
सङ्गमे देवशार्दूल महापुण्यतमं स्मृतम्॥१॥
केन वै कारणेनाभूद् ब्रह्मकुण्डं हि नामकम्।
एतन्मे शंस भगवन् कथं ब्रह्मा तपोऽकरोत्॥२॥

स्कन्द उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि ब्रह्मकुण्डस्य विस्तरम्।
यथा वै तीर्थराजस्य नामाऽभूत्सर्वपापहृत्॥३॥
पुरा नारद कल्पादौ जगत्यम्बुमये सति।
न रात्रिर्नैव दिवसो न च सन्ध्या न वै सुराः॥४॥

ब्रह्मकुण्ड के माहात्म्य का वर्णन

नारद ने कहा

हे देवश्रेष्ठ! जाह्नवी एवं अलकनन्दा के सङ्गम स्थल पर जो प्रसिद्ध ब्रह्मकुण्ड है, उसे आपने अत्यन्त पवित्र बतलाया है।।१।।

उसका ब्रह्मकुण्ड नामकरण किस कारण से हुआ, वहाँ पर ब्रह्मा जी ने क्यों तप किया? हे ब्रह्मन्! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझसे बतलाइये।।२।।

स्कन्द ने कहा

हे नारद! ब्रह्मकुण्ड के माहात्म्य को सुनो। जिस प्रकार से सम्पूर्ण पापों का हरण करने वाले उस तीर्थराज का यह नामकरण हुआ, उसे मैं बतला रहा हूँ।।३।।

हे नारद! प्राचीनकाल में कल्प के आरम्भ में जब समस्त संसार जल में मग्न हो गया था। उस समय न रात्रि थी न दिन, न सन्ध्या अथवा देवगण ये कुछ भी नहीं थे।।४।।

न वै सूर्यो न चन्द्रश्च मनुष्या न च राक्षसाः।
न पिशाचा न गन्धर्वाः किन्नरा न महामते॥५॥
आसन्नारद नो किञ्चिद् भगवानात्ममायया।
गुणातीतो गुणग्राही चिदानन्दो निरीश्वरः॥६॥
विभुः सर्वस्य कर्त्ता हि पालको नाशकस्तथा।
सृष्टिलीलां प्रकर्त्तुं हि चकारेच्छां गुणाकरः॥७॥
नाभिपङ्कजतो जातस्ततो वै जलशायिनः।
ब्रह्मा चतुर्मुखो दान्तश्चतुर्हस्तो महाद्युतिः॥८॥
दण्डपुस्तकधारी च तं जगाद गदाधरः।
सृष्टिं कुरु हि तेनोक्तोऽशक्तो वै सृष्टिकर्मणि॥९॥
तपः कर्त्तुं ययौ तत्र सृष्टिकर्मकशक्तये।
चकार सुतपस्तीव्रं युक्ताहारविहारकः॥१०॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
समाधिस्थो मुनिश्रेष्ठ ध्यायन्नारायणं विभुम्॥११॥

उस समय न सूर्य थे, न चन्द्रमा था, न मनुष्य थे, न राक्षस और पिशाच थे, गन्धर्व और किन्नर भी नहीं थे।।५।।

हे नारद! उस समय कुछ भी नहीं था, भगवान् अपनी माया से युक्त गुणातीत, गुणग्राहक चित् और आनन्द स्वरूप निरीश्वर रूप में वर्तमान थे।।६।।

भगवान् स्वयं व्यापक, सबके कर्ता, पालन और नाश करने वाले थे। गुणों के आकर भगवान् ने सृष्टिलीला करने की इच्छा की।।७।।

तदनन्तर जल में शयन करने वाले भगवान् के नाभिकमल से चार मुखवाले, चार भुजा धारण करने वाले, दमनशील महाकान्तिमान् ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए।।८।।

उस समय ब्रह्मा दण्ड और पुस्तक भी धारण कर रहे थे। उनसे गदाधर भगवान् ने कहा कि तुम सृष्टि करो। यह सुनकर ब्रह्मा ने कहा कि सृष्टि निर्माण कर्म में मैं समर्थ नहीं हूँ।।९।।

इसलिये ब्रह्मा सृष्टि निर्माण करने की शक्ति प्राप्त करने के लिये वहाँ गये और नियमित आहार-विहार से युक्त होकर उन्होंने तीव्र तप किया।।१०।।

हे मुनिश्रेष्ठ! दस हजार दस सौ वर्ष पर्यन्त समाधि में बैठकर ब्रह्मा सर्वव्यापक भगवान् नारायण का ध्यान करते रहे।।११।।

आविर्बभूव भगवान् विश्वात्मा सर्वनायकः।
प्राच्यां दिशि यथा सूर्यो विमानस्थो महीधरः॥१२॥
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितः।
पीताम्बरः किरीटी च कुसुमेषुरिवापरः॥१३॥
शतसूर्यप्रतीकाशः कौस्तुभान्वितवक्षकः।
चतुर्भिः पार्षदैर्युक्तः कोटिसूर्यसमप्रभः॥१४॥
ततो ददर्श भगवान् ब्रह्मा वै जनकं हरिम्।
स्रष्टा वै स्तोतुमारेभे भगवन्तं सनातनम्॥१५॥

ब्रह्मोवाच

नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः।
नमः कमलवासाय नमः कमलधारिणे॥१६॥
पित्रे कमलजातस्य नमः कमलधारिणे।
कमलानां विकाशित्रे नमस्ते कमलाङ्घ्रये॥१७॥

इसके बाद सबके स्वामी, विश्वात्मा भगवान् विष्णु इस प्रकार आविर्भूत हुए, जैसे पूर्व दिशा में महीधर सूर्य नारायण रथ में बैठकर उदित होते हैं।।१२।।

उस समय भगवान् शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए वनमाला से विभूषित थे। पीतवस्त्र और मुकुट धारण किये हुए भगवान् पुष्प का बाण धारण करने वाले दूसरे कामदेव के समान सुशोभित हो रहे थे।।१३।।

सैकड़ों सूर्य के समान प्रकाश था, उनका वक्षःस्थल कौस्तुभ मणि से विभूषित था, वे स्वयं चार पार्षदों सहित करोड़ों सूर्य के समान प्रभावान् थे।।१४।।

जब ब्रह्मा ने अपने उत्पन्न करने वाले भगवान् हरि का अवलोकन किया, तब वे अपनी सृष्टि करने वाले सनातन भगवान् की स्तुति करने लगे।।१५।।

ब्रह्मा ने कहा

जिनके नाभि में कमल है, उनको नमस्कार है, कमला लक्ष्मी के स्वामी आपको नमस्कार है। आपका वास कमल में ही है, आपको नमस्कार है।।१६।।

कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा के आप पिता हैं, आपको नमस्कार है। आप कमल को धारण करने वाले एवं कमलकुल के विकास करने वाले हैं। कमल के समान कोमल चरणकमल वाले आपको नमस्कार है।।१७।।

नमः कमलकिञ्जल्कवाससे कमलाकर[१]।
नमः कमलसेव्याय नमः कमलमालिने॥१८॥
जगतामादिभूतस्त्वं नारायण कलानिधे।
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवः सृष्टिप्रलयकारकः॥१९॥
नानारूपेण भगवन् मायया बहुरूपया।
सर्वं व्याप्य त्वमेवासि त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन॥२०॥
यथोदकघटे श्रीश सूर्यस्य प्रतिमा भवेत्।
नानारूपेण हि भगवंस्त्वं तथा तु प्रतीयसे॥२१॥
आपो भूत्वा भवान् विष्णो सर्वमाप्यायसे जगत्।
ओषधीनां रसोऽसि त्वं जगज्जीवनकारकः॥२२॥
सोमस्त्वमोषधीः सर्वाः पुष्णासि च करैः सदा।
सूर्यो भूत्वा सर्वरसान् भवान् गृह्णाति रश्मिभिः॥२३॥

हे कमलाकर! कमल केसर के समान पीत वस्त्र धारण करने वाले आपको नमस्कार है। कमलों से सेवा करने योग्य आपको नमस्कार है। कमल की माला धारण करने वाले आपको नमस्कार है।।१८।।

कला के निधान हे नारायण! आप लोकों के आदि कारण हैं। आप सृष्टि एवं प्रलय करने वाले ब्रह्मा तथा महादेव हैं।।१९।।

हे भगवान्! आप अपनी बहुत रूपों वाली माया से विविध रूपों से सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित हो। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।।२०।।

हे लक्ष्मी के स्वामी! जिस प्रकार जल से पूर्ण घड़े में सूर्य की मूर्ति सीमित दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार आप विविध रूपों में प्रतीत होते हैं।।२१।।

हे विष्णु! आप जलरूप होकर समस्त विश्व को आप्लावित करते हैं। आप औषधियों में जगत् के जीवन देने वाले रस भी हैं।।२२।।

आप सोमरूप होकर अपनी किरणों से समस्त औषधियों को पुष्ट करते हैं तथा सूर्यरूप होकर आप अपनी किरणों से सभी रसों को ग्रहण करते हैं।।२३।।

१. कमलाकरे इति ख.।

भवान् मेषो हि भगवन् ददाति च रसाञ्छुभान्।
त्वमग्निः सर्वलोकानामुदरस्थो हि पाचकः॥२४॥
वायुः सर्वगतोऽसि त्वं प्राणादिजीवनात्मकः।
त्वं पृथिव्यात्मको देवो धर्त्ता सर्वस्य माधव॥२५॥
त्वमिन्द्रस्त्वं यमः शेषस्त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन।
निराकारोऽपि साकारो दृश्यसे भक्तवत्सल॥२६॥

स्कन्द उवाच

इति स्तुतो हि भगवान् ब्रह्मणा सृष्टिहेतवे।
मेघगम्भीरया वाचा जगाद हरिरात्मजम्॥२७॥

श्रीभगवानुवाच

भो ब्रह्मन् वत्स वरदस्तवास्मि वद साम्प्रतम्।
तपसा तेऽस्मि सन्तुष्टः स्तुत्या च कृतया त्वया॥२८॥

हे भगवान्! आप मेघरूप होकर समस्त शुभ रसों को प्रदान करते हैं। आप अग्नि रूप से सबके उदर में स्थित होकर भोजन को पचाते हैं।।२४।।

आप प्राण, अपान आदि जीवनस्वरूप होकर सर्वव्यापक वायु हैं। हे माधव! आप पृथिवी रूप देव होकर सबको धारण करने वाले हैं।।२५।।

आप इन्द्र हैं, आप यम और शेष भी हैं। अधिक क्या कहा जाय। आप से भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है। हे भक्तवत्सल! आप निराकार होते हुए भी साकार रूप में दिखाई पड़ते हैं।।२६।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार ब्रह्मा ने सृष्टि निर्माण करने के लिये श्रीभगवान् की स्तुति की। तदनन्तर भगवान् विष्णु ने मेघ के सदृश गम्भीर वाणी से अपने पुत्र ब्रह्मा से कहा।।२७।।

श्रीभगवान् ने कहा

हे वत्स, ब्रह्मा! मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। सम्प्रति बतलाओ! क्योंकि तुम्हारी तपस्या एवं तुम्हारे द्वारा की गयी स्तुति से मैं सन्तुष्ट हूँ।।२८।।

ब्रह्मोवाच

आज्ञया यत्त्वया देवाऽहं तथा सृष्टिकर्म्मणि।
असमर्थः समर्थस्तु भवामि सुरवन्दित॥२९॥
इदं पुण्यतमं तीर्थं परोपकृतिहेतवे।
अल्पायासेन भवतु त्वत्प्रसादात्सुरोत्तम॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

कुरु सृष्टिं महाभाग तुष्टोऽस्मि तपसा तव।
मद्भक्तो वै यथा त्वं हि बभूव न कदाचन॥३१॥
इदं पुण्यतमं तीर्थं वर्तते भक्तनायक।
तथापि भविता पश्चादष्टविंशतिपर्यये॥३२॥
भगीरथो महाराजः सूर्यवंशविवर्द्धनः।
आनयिष्यति गङ्गां वै तपसा तोषिताच्छिवात्॥३३॥

ब्रह्मा ने कहा

हे देव! आपने सृष्टि की रचना करने के लिये मुझे आज्ञा दी थी, किन्तु मैं इस कार्य में असमर्थ हूँ। हे सुरपूजित! इसलिये इस कार्य में मैं कैसे समर्थ होऊँ, यह आप बतलायें।।२९।।

यह पवित्रतम तीर्थ परोपकार करने के लिये है। हे देवश्रेष्ठ! आपकी कृपा से थोड़े प्रयास से ही यह अत्यन्त पवित्र माना जाना चाहिये।।३०।।

श्रीभगवान् ने कहा

हे महाभाग! मैं तुम्हारे तप से सन्तुष्ट हूँ, अतएव तुम सृष्टि की रचना करो। तुम्हारे समान हमारा भक्त अन्य कोई नहीं हुआ है।।३१।।

हे भक्तशिरोमणि! यह तीर्थ अत्यन्त पवित्र है, तथापि अट्ठाइसवें युग में विशेष रूप से विख्यात होगा।।३२।।

क्योंकि सूर्यवंश की वृद्धि करने वाले महाराज भगीरथ अपनी तपस्या से भगवान् शिव को सन्तुष्ट कर गङ्गा को स्वर्ग से पृथिवी पर लायेंगे।।३३।।

पितॄणां मुक्तये ब्रह्मन् तदा यास्यसि कारणात्।
तदाऽस्य तीर्थराजस्य भविता नाम चोत्तमम्॥३४॥
ब्रह्मतीर्थमिति ख्यातिं यास्यति प्रवरां तथा।
इदं स्तोत्रं त्वयाऽऽख्यातं पठिष्यन्ति च ये नराः॥३५॥
न तेषां दुर्ल्लभं लोके भविष्यति न संशयः।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सृष्टिं कुरु महामते॥३६॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः पश्यतो ब्रह्मणोऽग्रतः।
ब्रह्माऽपि[१] तज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥३७॥
ससृजे यक्षरक्षांसि पिशाचान् गुह्यकान् वरान्।
तिर्यञ्चः स्थावराश्चैव यत्र तप्त्वा तपः परम्॥३८॥

नारद उवाच

किमर्थं भगवन् ब्रह्मा ययौ देवप्रयागके।
कारणं तत्र किं प्रोक्तं विष्णुना वरदात्मना॥३९॥

हे ब्रह्मन्! गङ्गा राजा भगीरथ के पितरों की मुक्ति का कारण होंगी और उसी समय यह तीर्थ भी उत्तम हो जायेगा।।३४।।

उसी समय यह तीर्थ उत्तम ब्रह्मतीर्थ नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त करेगा। तुम्हारे द्वारा कीर्तन किये गये इस स्तोत्र को जो मनुष्य पढ़ेंगे।।३५।।

संसार में उन्हें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहेगी। इसमें संशय नहीं है। हे महामतिमान्! उठो! उठो! और सृष्टि की रचना करो।।३६।।

स्कन्द ने कहा

यह कहकर ब्रह्मा जी के देखते-देखते उनके सामने से देव विष्णु अन्तर्धान हो गये। तब ब्रह्मा ने भी देवता, राक्षस और मनुष्यों सहित समस्त जगत् की एवं यक्ष, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, पशु-पक्षी आदि सहित स्थावर जीवों की रचना की।।३७-३८।।

नारद ने कहा

भगवान् ब्रह्मा देवप्रयाग में क्यों गये थे और वरदायक भगवान् विष्णु ने इसमें क्या कारण बतलाया था।।३९।।

१. ब्रह्मणापीति ख.।

जातिमात्रद्विजस्य महापातकिनो दण्डहस्तस्य तत्र मरणाद् ब्रह्मलोकप्राप्तिः

स्कन्द उवाच

पुरा कृतयुगे विप्र जातिमात्रेण वै द्विजः।
दण्डहस्त इति ख्यातो नित्यं दण्डधरो हि सः॥४०॥
परप्राणहरो दुष्टो लम्बकर्णोऽल्पदन्तकः।
ह्रस्वोऽल्पबाहुस्तेजस्वी श्यामवर्णोऽल्पनेत्रकः॥४१॥
भीमो बृहच्छिरा दुष्टः करालास्योऽतिहिंसकः।
निर्धनोऽतिमहामूर्खो मृगयासक्तमानसः॥४२॥
स दुष्टः कस्यचिद् भार्यां गृहीत्वा नारदोऽभ्यगात्।
कतिचित्त्वथ वर्षाणि वसति स्म च कुत्रचित्॥४३॥
पञ्च भार्या बभूवुश्च जाताश्चाण्डालवंशजाः।
दश पुत्राः पञ्च कन्या बभूवुश्च दुरात्मनः॥४४॥

जातिमात्र ब्राह्मण महापातकी दण्डहस्त की वहाँ मृत्यु होने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति

स्कन्द ने कहा

हे विप्र! पहले कृतयुग में केवल जातिमात्र से एक ब्राह्मण था, वह सर्वदा हाथ में दण्ड लिये रहता था, इसलिये वह दण्डहस्त नाम से प्रसिद्ध हो गया।।४०।।

अन्य जीवों के प्राण हरने वाले उस दुष्ट के लम्बे-लम्बे कान और छोटे-छोटे दाँत थे, उसका कद नाटा, छोटी भुजा, साँवला रंग और नेत्र भी छोटे-छोटे थे।।४१।।

उस दुष्ट का रूप भयङ्कर, शिर बड़ा, डरावना मुख और हिंसा करने की प्रकृति थी, उस महामूर्ख निर्धन का मन आखेट में आसक्त रहता था।।४२।।

हे नारद! एक समय वह दुष्ट किसी की पत्नी को लेकर भाग गया और कई वर्षों तक कहीं अन्यत्र रहा।।४३।।

चाण्डालवंश में उत्पन्न उसकी पाँच पत्नियाँ थीं। उसके दश पुत्र थे, उस दुष्टात्मा की पाँच कन्याएँ थीं।।४४।।

न तस्य च धनं गेहे क्षुधार्तो नित्यमेव हि।
आसन् वै दुःखिताः सर्वे कुटुम्बे तस्य नारद॥४५॥
तेभ्यः सदाऽपि च मृगान् मारयित्वा यतस्ततः।
मांसानां भक्षकश्चासौ वसति स्म वने सदा॥४६॥
ब्राह्मणान् मारयित्वा वै गृहीत्वा हि च तद्वसु।
कुटुम्बभरणासक्तो न्यवसद्विजने बने॥४७॥
न तस्य मित्रं कुत्रासीन्न भ्राता न च बान्धवाः।
अन्यायेन महाभाग ह्यर्जयति[१] हि वै वसु॥४८॥
चौरो भूत्वा दुराचारो गृहान् भञ्जयति स्म च।
कष्टेन पालयामास कुटुम्बं दुःखसंयुतः॥४९॥
एकदा मुनिशार्दूल मृगयायै गतस्तु सः।
तस्मिन् क्षेत्रे भाग्यवशाच्चचार विकटाकृतिः॥५०॥
धनुष्पाणिर्निषङ्गी च कटिविन्यस्तखड्गकः।
श्यामास्यः श्यामवस्त्रोऽसौ कृतान्त इव चापरः॥५१॥

हे नारद! उसके पास धन नहीं था, अत एव वह नित्य ही क्षुधा से पीड़ित रहता था। उसके परिवार में भी सभी लोग दुःखित थे॥४५॥

इसी कारण वह मृगों को मार-मार कर उनके मांस का भक्षण करता और वन में निवास करता था॥४६॥

वह ब्राह्मणों को मारकर उनका धन हरण कर अपने कुटम्ब का भरण-पोषण करता और निर्जन वन में निवास करता था॥४७॥

उसका न कोई मित्र था और न कोई भाई था, यहाँ तक कि उसका कोई बन्धु-बान्धव भी नहीं था। हे महाभाग! वह अन्याय से धन का अर्जन करता था॥४८॥

वह दुराचारी चोर बनकर दूसरे के घरों को भग्न करने लगा, इस तरह वह विशेष कष्ट से अपने कुटुम्ब का पालन करता था॥४९॥

हे मुनिशार्दूल! एक समय वह शिकार करने के लिये गया और भाग्यवश विकट आकृति वाला वह उसी क्षेत्र में विचरण करने लगा॥५०॥

उस समय वह हाथ में धनुष, कमर में खड्ग और तरकश धारण किया था। उसका मुख और वस्त्र दोनों ही काले थे, इसलिये वह दूसरे काल (यमराज) के समान प्रतीत हो रहा था॥५१॥

१. अर्जयति स्मेति क.।

तस्मिन् दिने महाभाग सर्वतो भ्रमता मृगाः।
हतास्तेन वराहाश्च[1] पान्थानां द्रव्यमेव च॥५२॥
तृप्तिस्तस्य न जाता वै मारयामास वै मृगान्।
एवं तस्य महाभाग वने रात्रिः प्रवर्तते॥५३॥
अथ पर्वतशृङ्गाद्वै आजगाम च शूकरः।
अत्युच्च ऊर्ध्वकेशो हि बृहद्दन्तो महाबलः॥५४॥
विदारयन् महीं पादैर्मुखेन च महामुने।
विद्रावयन् मृगगणान् पातयन् वै शिला गिरेः॥५५॥
ददर्श तं महाव्याधः समायान्तं महागिरेः।
सज्जं चकार बाणासं बाणान् वै सन्दधे ततः॥५६॥
तस्मिन् ससर्ज बाणौघं महाव्याधो हि मर्मसु।
पीडितः शूकरोऽध्यागात्सम्मुखं लुब्धकस्य च॥५७॥

हे महाभाग! उस दिन उस दुष्ट ने वन में विचरण करते हुए अनेकों मृग और शूकरों का वध किया। इसके बाद पथिकों के धन को भी लूटा।।५२।।

तथापि उसकी तृप्ति नहीं हुई, इसलिये वह अन्य मृगों को भी मारने लगा। हे महाभाग! इस प्रकार शिकार करते हुए उसे वन में ही रात हो गयी।।५३।।

इसी बीच पर्वत के शिखर से बहुत ऊँचा, अत्यन्त पराक्रमी और बड़े-बड़े दाँतों वाला एवं जिसके केश ऊपर उठ रहे थे, ऐसा एक वाराह आया।।५४।।

हे महामुनि! वह वाराह अपने मुख और पैरों से भूमि को खोदता, मृगों को भगाता और पर्वतों की चट्टानों को गिराता हुआ चल रहा था।।५५।।

उस पर्वत के ऊपर से वाराह को आता हुआ देखकर इस महाव्याघ ने बाण का असन (भोजन) करने वाले धनुष को सज्जित किया, इसके बाद उस पर बाणों का भी सन्धान कर लिया।।५६।।

इसके बाद इस शूकर के मर्म स्थानों में बाणों की वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया, तदनन्तर बाण से वेधित वह शूकर इस व्याध के समक्ष आ गया।।५७।।

---

१. वराहश्चेति ख.।

तं व्याधं पातयामास शिखराज्जाह्नवीतटे।
तेनोक्तं पतमानेन राम रामेति नारद॥५८॥
अङ्गानि तस्य लुब्धस्य जातान्येव पृथक् पृथक्।
मृतोऽसौ पतितो व्याधः शिरीषकुसुमं यथा॥५९॥
ततो वै मुनिशार्दूल गता यमभटास्तथा।
शूलाग्रग्रथितानेकमानुषा दण्डहस्तकाः॥६०॥
पापिनः शासतश्चैव मुशलैरायसैस्तथा।
अथागता मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मणोऽनुचरा गणाः॥६१॥
अप्सरोभिर्गायकैश्च गन्धर्वैः किन्नरैस्तथा।
विमानानि विचित्राणि गृहीत्वा दिव्यकानि च॥६२॥
परस्परं महाभाग ऊचुर्वै सविवादकम्।
आस्माकीनमिदं कस्त्वं युयुधुश्च परस्परम्॥६३॥
दण्डैः खड्गैश्च वृक्षैश्च पाषाणैः पर्वतैस्तथा।
बभूव तुमुलं युद्धं रोमहर्षणकारकम्॥६४॥

उस व्याध को मारकर पर्वत के शिखर से गङ्गा के तट पर गिरा दिया। हे नारद! पर्वत से गिरते समय उस व्याध ने 'हे राम, हे राम' ऐसा उच्चारण किया।।५८।।

उस बहेलिया के अङ्ग शिरीष के पुष्प के समान अलग-अलग बिखर गये। इस प्रकार गिर कर वह व्याध मर गया।।५९।।

हे मुनिशार्दूल! इसके बाद अनेक पापी मनुष्यों को शूल में गूँथे हुए और हाथ में दण्ड लिये हुए यमराज के दूत उसी समय वहाँ आ गये।।६०।।

यमराज के दूत उस समय पापी मनुष्यों को मुशलों और लौहदण्डों से दण्ड दे रहे थे। हे मुनिश्रेष्ठ! इसके अनन्तर ही ब्रह्मा के अनुचर गण भी वहाँ आ गये।।६१।।

ब्रह्मा के अनुचरों के साथ अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं, गन्धर्व और किन्नर गान कर रहे थे। वे लोग विचित्र विमानों को लेकर वहाँ उपस्थित हुए।।६२।।

हे महाभाग! उस समय यमराज के दूत और ब्रह्मा के अनुचर परस्पर विवाद करने लगे। यह हमारा भाग है, तुम कौन हो? यह कहते हुए परस्पर युद्ध करने लगे।।६३।।

उस समय उन दोनों दलों का युद्ध दण्ड, खड्ग, वृक्षों, पाषाणों और पर्वतों से हो रहा था, वह युद्ध रोमाञ्चित करने वाला था।।६४।।

ततस्ते देवदूतास्तु जिता यमभटैस्तथा।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरूचुर्यमभटैः कृतम्॥६५॥

देवदूता ऊचुः

भो भो ब्रह्मन् महाभाग नीयते यमकिङ्करैः।
देवप्रयागके क्षेत्रे मृतो ब्राह्मणसत्तमः॥६६॥
निराकृता वयं सर्वे दुष्टैस्तैर्यमकिङ्करैः।
युद्धं कृतं तु तैः सार्द्धमश्मभिर्मर्दिता वयम्॥६७॥

स्कन्द उवाच

इति श्रुत्वा निगदितं तेषां वै देवतात्मनाम्।
स्वयं जगाम भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः॥६८॥
यत्राऽसौ ब्राह्मणो लुब्धो वृतो वै यमकिङ्करैः।
मर्दयित्वा यमभटानारोप्य हतकिल्विषम्॥६९॥
प्रस्थितो ब्रह्मलोके हि विमाने सूर्यवर्चसि।
ते वै यमभटाः सर्वे रुरुदुश्च यमान्तिके॥७०॥

विशेष क्या कहें, उस समय यमराज के दूतों ने देवदूतों को जीत लिया। तदनन्तर वे लोग ब्रह्मा की शरण में गये और यमराज के दूतों के कर्तव्य को कह सुनाया।।६५।।

देवदूतों ने कहा

हे महाभाग ब्रह्मन्! देवप्रयाग क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त करने वाले एक श्रेष्ठ ब्राह्मण को यमराज के दूत लिये जा रहे हैं।।६६।।

दुष्ट यमराज के दूतों ने हमारा निरादर किया है। यद्यपि हम लोगों ने उनके साथ युद्ध किया, तथापि उन लोगों ने पत्थरों से हम लोगों का मर्दन किया है।।६७।।

स्कन्द ने कहा

उन देवदूतों के इस प्रकार के वचन को सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा स्वयं वहाँ गये।।६८।।

जहाँ पर उस लुब्धक ब्राह्मण को यमराज के किङ्करों ने घेर रखा था। वहाँ जाकर यमदूतों का मर्दन कर क्षेत्र के प्रभाव से निष्पाप ब्राह्मण को सूर्य के समान प्रकाशमान विमान में आरूढ़ कर ब्रह्मलोक में जाने के लिए प्रस्थान किये। तदनन्तर यमराज के दूत उनके समीप जाकर रोदन करने लगे।।६९-७०।।

यमदूता उचुः

वैवस्वत महाराज मृतोऽसि त्वं न संशयः।
यतो दुरितकर्त्तारो नीयन्ते ब्रह्मणा स्वयम्॥७१॥
एको द्विजाधमः कश्चिन्नित्यं पापरतोऽभवत्।
परदारपरद्रव्यहारको मुनिहिंसकः॥७२॥
मृतः कुत्रापि पापः स नीयते ब्राह्मणाधमः।
किमर्थं त्वं नियुक्तोऽसि पापानां शासने विभो॥७३॥

स्कन्द उवाच

इति तद् गदितं श्रुत्वा ययौ रक्तान्तलोचनः।
आययौ भगवान् यत्र ब्रह्मलोकपितामहः॥७४॥
पाशैः समुद्गरैः खड्गैर्युक्तो ब्रह्माणमब्रवीत्।
किमर्थं मां विभो ब्रह्मन् युक्तवान् क्रूरकर्मणि॥७५॥

यमदूतों ने कहा

सूर्य के पुत्र हे महाराज यम! आप निश्चित ही मृतप्राय हो गये हैं, क्योंकि पाप का आचरण करने वाले को भी स्वयं ब्रह्मा जी लिये जा रहे हैं।।७१।।

एक कोई नीच ब्राह्मण नित्य पाप का आचरण करता था, वह परायी स्त्री और दूसरे के धन का हरण करने वाला था तथा मुनियों की हिंसा भी करता था।।७२।।

वह पापी किसी स्थान में मृत्यु को प्राप्त हुआ, उस अधम ब्राह्मण को ब्रह्मा जी लिये जा रहे हैं। हे विभो! ऐसी स्थिति में पापियों के शासन करने के लिये आप क्यों नियुक्त हैं।।७३।।

स्कन्द ने कहा

दूतों के इस प्रकार के वचन को सुनकर यमराज के नेत्र लाल हो गये और वे तत्काल ही वहाँ आये, जहाँ लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा थे।।७४।।

उस समय यमराज पाश, मुद्गर और खड्ग नामक आयुधों को धारण किये थे। उन्होंने ब्रह्मा से कहा—हे विभो, ब्रह्मन्! आपने मुझे क्रूरकर्म करने के लिये क्यों नियुक्त किया है।।७५।।

भगवञ्छृणु मे वाक्यं पापानां पापचेतसाम्।
अहं निहन्ता भवता कृतोऽस्मि हि प्रजापते॥७६॥
त्वमेव कर्त्ता सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च।
निबन्धो यस्त्वया बद्धो मया सह सुरोत्तम॥७७॥
तदेव हि कृतं ब्रह्मन् मामकैः किङ्करैस्तथा।
अयं महापापरतः परदाररतः सदा॥७८॥
प्राणिनां निधनासक्तो ब्रह्मलोके कथं व्रजेत्।

ब्रह्मोवाच

भो भो यम महाभाग यद्वै निगदितं त्वया॥७९॥
तत्तथैव परं कालं शासिता त्वं हि पापिनाम्।
सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य दुरितस्य तथैव च॥८०॥
यथा दुष्टाम्बुसम्पूर्णे घटे गङ्गाकणान्विते।
तत्सर्वं जायते धर्मं मोक्षदं केशवप्रियम्॥८१॥

हे भगवन् प्रजापति! आप मेरे वाक्य को सुनें। जिन दुष्टों का चित्त पाप-कर्म करने में निरत है, उन पापियों को दण्ड देने के लिये ही आपने मुझे नियुक्त किया है।।७६।।

आप स्थावर एवं जङ्गम सभी प्राणियों के निर्माण करने वाले हैं। हे देवश्रेष्ठ! आपने हमारे लिये जैसा नियम बना दिया है।।७७।।

हे ब्रह्मन्! हमारे सेवकों ने उस नियम के अनुसार ही कार्य किया था। यह महापातकी जो सदा परस्त्रीगमन करता है।।७८।।

यह सर्वदा प्राणियों का वध करने में आसक्त रहता है, इसलिये यह ब्रह्मलोक में कैसे जा सकता है।

ब्रह्मा ने कहा

हे महाभाग, यमराज! आपने जो कुछ भी कहा, वह सब ठीक है।।७९।।

हे काल! आप पापियों के ही शासनकर्ता हैं, किन्तु धर्म और पाप की गति बड़ी सूक्ष्म है।।८०।।

जैसे अपवित्र जल से पूर्ण घट में गङ्गाजल की एक बूँद मिश्रित हो जाय, तो वह सम्पूर्ण जल भगवान् केशव को प्रिय एवं मुक्ति प्रदान करने वाला हो जाता है।।८१।।

एतत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं यत्रायं ब्राह्मणो मृतः।
केन वा शक्यते वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि॥८२॥
यत्र नारायणः साक्षाद्वर्त्तते रमया सह।
अश्रुत्वा देवतीर्थस्य माहात्म्यं खिद्यसे वृथा॥८३॥
अनेन दण्डहस्तेन पातकं यत्पुरा कृतम्।
तत्सर्वं रामनाम्ना वै नाशितं रविनन्दन॥८४॥
पुण्यतीर्थे हि मरणं जातमस्य महात्मनः।
कथं नरकगामी स्याद् वृथा त्वं खिद्यसे यम॥८५॥
एतत् क्षेत्रसमं किञ्चिन्न भूतं न भविष्यति।
यदुद्दिश्य महाभाग मृतोऽन्यत्रापि कुत्रचित्॥
सोऽपि गच्छति वै ब्रह्मलोकं हि सुरपूजितम्॥८६॥
किं पुनः क्षेत्रके पुण्येऽन्तर्गङ्गालकनन्दयोः।
तत्रापि मे तपःस्थाने मृतोऽसौ रामनामवान्॥८७॥

जिस क्षेत्र में यह ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हुआ है, इस क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन करने के लिये सौ करोड़ कल्पों में भी कोई समर्थ नहीं हो सकता है।।८२।।

इस क्षेत्र में लक्ष्मी के साथ श्रीमन्नारायण स्वयं निवास करते हैं। इस क्षेत्र के माहात्म्य का श्रवण किये बिना तुम वृथा खेद क्यों करते हो?।।८३।।

हे रविनन्दन! इसने हाथ में दण्ड धारण कर पहले जो कुछ भी पापाचरण किया था, वह सब राम नाम का कीर्तन करने से नष्ट हो गया है।।८४।।

इस महात्मा की मृत्यु पवित्र तीर्थ में हुई है, इसलिये यह नरक में कैसे जा सकता है। हे यम! फिर तुम वृथा खेद क्यों करते हो।।८५।।

इस क्षेत्र के समान पवित्र तीर्थ न कोई हुआ है, न होगा; क्योंकि इसकी प्राप्ति के लक्ष्य से अन्यत्र कहीं भी मनुष्य प्राणों का परित्याग करता है, तब भी वह देवपूजित ब्रह्मलोक को चला जाता है।।८६।।

पुनः उसके लिये क्या कहना? जिसकी मृत्यु गङ्गा और अलकनन्दा के मध्य इस पवित्र तीर्थ में हुई है। इससे भी बढ़कर राम नाम लेने वाले इस ब्राह्मण की मृत्यु तो हमारी तपःस्थली में हुई है।।८७।।

अतः परं धर्मराज[१] त्वया न यमकिङ्कराः।
प्रेषणीया हि गव्यूतिद्वयमात्रे सुपुण्यके॥८८॥
क्षेत्रेऽस्मिन्नायके तीर्थराजे नो सूर्यनन्दन।
चरतां नरमुख्यानां शासिता न यमो भवान्॥८९॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा धर्मराजं हि पुनः प्रोवाच पश्यताम्।
देवानां राक्षसानाञ्च किन्नराणां नृणामथ॥९०॥
ब्रह्म ब्रह्मविदां श्रेष्ठं चक्रे तीर्थस्य नामकम्।
शृणु नारद वक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा॥९१॥

ब्रह्मोवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सदेवासुरमानुषाः।
अस्य वै तीर्थराजस्य नामधेयं सुपुण्यदम्॥९२॥
ब्रह्मतीर्थमिति ख्यातिं यास्यति प्रकटं सुराः।
यूयं सर्वे महाभागा मया सह स्थिता हि वै॥९३॥

हे महाभाग! इसलिये इस पवित्र क्षेत्र में दो कोश पर्यन्त आपको अपना दूत कदापि नहीं भेजना चाहिए।।८८।।

हे सूर्यनन्दन, यम! इस सर्वोत्तम तीर्थराज में विचरण करने वाले मनुष्यों पर शासन करने वाले आप नहीं हैं।।८९।।

स्कन्द ने कहा

धर्मराज से इस प्रकार कहकर देवता, मनुष्य, राक्षस और किन्नरों के देखते हुए ही वे पुनः बोले।।९०।।

ब्रह्मा ने ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ के प्रति तीर्थ का नामकरण किया। हे नारद! प्राचीनकाल में ब्रह्मा ने जो कहा था, उसे श्रवण करो।।९१।।

ब्रह्मा ने कहा

देवता, मनुष्य, असुर और सभी मुनीश्वरों! आप लोग सुपुण्य को प्रदान करने वाले इस तीर्थराज के नाम को सुनें।।९२।।

यह ब्रह्मतीर्थ नाम से ख्याति को प्राप्त करेगा। यहाँ सभी देवता प्रकट होंगे। हे महाभागों! आप लोग भी हमारे साथ यहाँ निवास करेंगे।।९३।।

---

१. महाभागेति क.।

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा तं महाव्याधं दण्डहस्तं मुनीश्वरम्।
गृहीत्वा सह गन्धर्वदेवकिन्नरतापसैः॥९४॥
ययौ स्वभवनं ब्रह्मा सुरासुरनिषेवितम्।
दण्डहस्तोऽपि धर्मात्मा स्थितवान् ब्रह्मणः पुरे॥९५॥
यमोऽपि निजदूतैश्च जगाम भवनं स्वकम्।
आश्चर्यं परमं प्राप्य श्रुत्वा क्षेत्रस्य वैभवम्॥९६॥
इति ते कथितं ब्रह्मन् यत्पृष्टोऽहं त्वया मुने।
ब्रह्मतीर्थस्य चोत्पत्तिस्तपो वै ब्रह्मणः परम्॥९७॥
मध्याह्ने मुनिशार्दूल नूनमायान्ति नित्यशः।
सर्वे ऋषिगणा देवा स्नानं कर्तुं द्विजोत्तम॥९८॥
श्रूयते सामघोषो हि चातुर्मास्ये मुनीश्वर।
प्रातर्मध्ये तथा सायं रामभक्तैस्तु तैः कृतम्॥९९॥

स्कन्द ने कहा

यह कहकर दण्डहस्तधारी उस महाव्याध को लेकर देवता, गन्धर्व, किन्नर और तपस्वियों सहित ब्रह्मा जी देवता और दानवों से सेवित अपने लोक को चले गये। धर्मात्मा दण्डहस्त भी ब्रह्मा के लोक में रहने लगा।।९४-९५।।

यम देवता भी अपने दूतों के साथ अपने भवन को चले गये। इस क्षेत्र का माहात्म्य सुनने से उन्हें परम आश्चर्य की प्राप्ति हुई।।९६।।

हे ब्रह्मन्! मुनि! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, उसे हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया। ब्रह्मतीर्थ की उत्पत्ति और ब्रह्मा के तप का यही आख्यान है।।९७।।

हे मुनिश्रेष्ठ, द्विजोत्तम! मध्याह्न काल में यहाँ सभी ऋषि और देवता स्नान करने के लिये निश्चित नित्यप्रति आते हैं।।९८।।

हे मुनीश्वर! चातुर्मास्य में यहाँ सामवेद की ध्वनि श्रवणगोचर होती है, क्योंकि प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में राम के भक्तजन उसका निर्घोष किया करते हैं।।९९।।

यस्य श्रवणमात्रेण निर्धूताखिलकल्मषः।
मानवो स्वर्गलोकं वै गच्छेद्धि सुरपूजितम्।।१००।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलं नारदं भगवद्गतिम्।
विरराम महाभाग ज्ञानिनां प्रवरो मुनिः।।१०१।।

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५१।।

उसके श्रवण करने से मनुष्य के समस्त पातक विनष्ट हो जाते हैं और वह निश्चित रूप से सुरपूजित होता हुआ स्वर्गलोक में चला जाता है।।१००।।

सूत जी ने कहा

हे महाभाग! इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ नारद के प्रति भगवान् की गति के विषय में कहकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ मननशील स्कन्द जी मौन हो गये।।१०१।।

।। इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के केदारखण्ड में देवप्रयाग-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ इक्यावन अध्याय पूर्ण हुआ।।१५१।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत- २०८१+१०१=२१८२]



अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

देवप्रयागे वसिष्ठतीर्थकथनम्

नारद उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ कार्तिकेय महाबल।
यदुक्तं ब्रह्मतीर्थस्य वामभागे त्वया वरम्[१]।।१।।
वसिष्ठतीर्थं तीर्थानां प्रवरं भक्तमोक्षदम्।
कथयस्व प्रसादेन तस्योत्पत्तिं च विस्तरात्।।२।।
केन केन तपस्तप्तं किं किं प्राप्तं फलं विभो।
सर्वं वद महासेन समासेन हि तीर्थकम्।।३।।

स्कन्द उवाच

श्रृणु नारद वक्ष्यामि तीर्थराजस्य वैभवम्।
उत्पत्तिं विस्तरेणैव यत्पृष्टोऽहं त्वया मुने।।४।।

देवप्रयाग में वसिष्ठ-तीर्थ का कथन

नारद ने कहा

हे भगवन् कार्तिकेय जी! आप समस्त धर्मों के जानने वाले हैं और महान् बलशाली भी हैं। आपने जो ब्रह्मतीर्थ के वामभाग में भक्तों को मोक्ष देने वाले, समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ वसिष्ठ तीर्थ का वर्णन किया है, कृपा कर आप उसकी उत्पत्ति के वृत्तान्त का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।।१-२।।

हे विभो! यहाँ किन-किन लोगों ने तप किया है और उन लोगों ने किन-किन फलों को प्राप्त किया। हे महासेन! इस तीर्थ के समस्त आख्यान का आप संक्षेप में मेरे प्रति वर्णन करें।।३।।

स्कन्द ने कहा

हे नारद! सुनो, मैं तीर्थराज के वैभव एवं उसकी उत्पत्ति के वृत्तान्त को कह रहा हूँ, जिसे आपने मुझसे पूछा है।।४।।

---

१. वरेति क.।

श्रुत्वा ब्रह्ममुखोद्गीतं देवप्रयागवैभवम्।
ब्रह्मतीर्थस्य निकटे वासं चक्रे महामतिः॥५॥
वसिष्ठस्तपतां श्रेष्ठो नारायणसमीपतः।
मुनिभिस्सिद्धगन्धर्वैर्न्यवसद् ब्रह्मणोऽन्तिके॥६॥
इदं तीर्थं महाभाग स्वर्गमोक्षप्रदायकम्।
पुत्रीयं धनदं चैव रामभक्तिप्रदायकम्॥७॥
वारमेकं तु यः स्नायाद् भक्त्याऽभक्त्यापि वा द्विज।
म्रियते यत्र कुत्राऽपि सोऽपि ब्रह्मणि लीयते॥८॥
किं पुनर्मानवो भक्त्या रामं हृदि निधाय च।
करोति च हरेः पूजामस्मिंस्तीर्थे हि मज्जनम्॥९॥
एतत्तीर्थाम्बुनिर्माल्यं यस्याङ्गैः स्पृशते मुने।
सर्वरोगैस्तथा पापैर्मुक्तो भवति नारद॥१०॥
जितेन्द्रियः शान्तमनाः सदाचारेण संयुतः।
स्नानं करोति वासिष्ठे सो नरो वैष्णवः[१] स्मृतः॥११॥

ब्रह्मा के मुख से कहे गये देवप्रयाग के वैभव को सुनकर महामति वसिष्ठ ने ब्रह्मतीर्थ के निकट निवास किया।।५।।

मुनि, सिद्ध और गन्धर्वों सहित तपस्वियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ जी नारायण के समीप ब्रह्मा जी के निकट ही निवास करने लगे।।६।।

हे महाभाग! यह तीर्थ स्वर्ग, मोक्ष, पुत्र, धन और राम की भक्ति को भी प्रदान करने वाला है।।७।।

हे द्विज! जो मनुष्य एक बार भी भक्तिपूर्वक या बिना भक्ति के भी इस तीर्थ में स्नान करता है, वह चाहे जिस किसी भी स्थान में मरता है, मृत्यु के अनन्तर ब्रह्मा में लीन हो जाता है।।८।।

पुनः उसके लिये तो क्या कहना? जो मनुष्य भक्तिभावपूर्वक राम को हृदय में धारण कर इस तीर्थ में स्नान करके हरि की पूजा करता है।।९।।

हे नारद! इस तीर्थ के जल का निर्माल्य जिसके अङ्ग को स्पर्श करता है, वह मनुष्य समस्त रोगों और पापों से निर्मुक्त हो जाता है।।१०।।

जो मनुष्य इन्द्रियों को वश में करके सदाचरणपूर्वक शान्त मन से वसिष्ठतीर्थ में स्नान करते हैं, उन्हें वैष्णव या विष्णु का भक्त कहा गया है।।११।।

१. कुर्वन्ति वासिष्ठे ते नरा वैष्णवा इति ख.।

य: कश्चिन्मानवो भक्त्या श्रीरामकृतमानसः।
वसिष्ठतीर्थजां मृत्स्नां ललाटे प्रकरोति हि॥१२॥
तस्य सन्दर्शनादेव वत्सरे दुरितं कृतम्।
नाशमायाति विप्रेन्द्र सत्यं सत्यं न संशयः॥१३॥
पुत्रार्थी मासमेकं हि स्नानमस्मिन् करोति यः।
उक्तेन विधिना विप्र पुत्रमाप्नोति निश्चितम्॥१४॥
राज्यार्थी पक्षमेकं हि प्रातःकाले द्विजोत्तम।
करोति विधिवद् भक्त्या स्नानं गङ्गाजले शुभे॥१५॥

वाराणसीस्थितद्विजवरस्य घनानन्दस्य वसिष्ठतीर्थे श्रीरामाराधनेन विपदुद्धरणकथनम्

प्राप्नोति राज्यं विपुलं परत्र च परां गतिम्।
एतत्तीर्थस्य माहात्म्याद्दरिद्रो भूमिदेवकः॥१६॥
सम्प्राप सम्पदोऽकस्मात्सन्तानं चाऽपि नारद।
मुनीन्द्र शृणु वक्ष्यामि यथाऽसौ प्राप्तवान् द्विजः॥१७॥

जो मनुष्य भक्तिभाव से अपने मन में रामचन्द्र जी को धारण कर वसिष्ठतीर्थ की मृत्तिका को अपने मस्तक पर धारण करता है।।१२।।

हे विप्रश्रेष्ठ! उसके दर्शन करने से ही एक वर्ष का किया गया पाप नष्ट हो जाता है। यह सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१३।।

हे विप्र! पुत्र की कामना करने वाला मनुष्य इस तीर्थ में एक मास पर्यन्त यथोक्त विधि से स्नान करे, तो उसे निश्चय ही पुत्र की प्राप्ति हो जाती है।।१४।।

राज्य की इच्छा करने वाला मनुष्य एक पक्ष अर्थात् पन्द्रह दिन तक प्रातःकाल में यथोक्त विधि से भक्तिभावपूर्वक शुभ गङ्गाजल में स्नान करता है।।१५।।

वह मनुष्य इस लोक में विपुल राज्य और परलोक में श्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है।

वाराणसी में स्थित श्रेष्ठ ब्राह्मण घनानन्द के उद्धार का आख्यान

इस तीर्थ के माहात्म्य से एक दरिद्र ब्राह्मण ने अकस्मात् ही सम्पत्ति और सन्तान को प्राप्त किया था। हे मुनीन्द्र! सुनो, इस ब्राह्मण ने जिस प्रकार सब कुछ प्राप्त किया, उसे कह रहा हूँ।।१६-१७।।

वाराणस्यां बभूवाथ घनानन्दो हि भूसुरः।
तस्य पत्नी महाभाग कावेरी समजायत॥१८॥
चत्वारस्तस्य वै पुत्रा धनं धान्यं हि सङ्कुलम्।
रेमाते स्वगृहे विप्रदम्पती धनसेवकौ॥१९॥
पुत्रांश्च धनधान्यांश्च विद्यां चैव महामुने।
तस्यैवासन् यथा देवः शुशुभे स्वगृहे तु सः॥२०॥
वेदाध्ययनसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः।
षट्कर्मसंयुतः सोऽथ विष्णुपूजनतत्परः॥२१॥
कदाचित्तस्य विप्रेन्द्र धनं कर्मार्जितं मुने।
ननाश राजतो वाऽपि चौरेभ्यश्च तथैव च॥२२॥
दारिद्र्यं परमं प्राप दीनोऽभूद् द्विजसत्तमः।
अत एव महाभाग दैवस्य कुटिला गतिः॥२३॥
क्षणं ददाति विप्रेन्द्र क्षणं संहरते पुनः।
दारान् धनानि पुत्रांश्च मित्रवर्गांस्तथैव च॥२४॥

काशी में घनानन्द नाम का एक ब्राह्मण हुआ था। हे महाभाग! उसकी पत्नी का नाम कावेरी था।।१८।।

उसके चार पुत्र धन-धान्य से पूर्ण थे। वे दोनों ब्राह्मणदम्पती अपने घर में सुखपूर्वक रहते थे।।१९।।

हे महामुने! पुत्र, धन-धान्य और विद्या सब कुछ उसके पास था, इसलिये वह देवराज इन्द्र के समान सुशोभित हो रहा था।।२०।।

वह ब्राह्मण वेद के अध्ययन से सम्पन्न था। समस्त शास्त्रों में विशारद था, वह ब्राह्मण के छः कर्म (अध्ययन-अध्यापन, दान लेना और दान देना, यज्ञ करना और यज्ञ कराना) से संयुक्त था तथा वह सर्वदा विष्णु के पूजन में तत्पर रहता था।।२१।।

हे विप्रेन्द्र मुनि! किसी समय उस ब्राह्मण का कर्म से उपार्जित धन राजा और चोरों द्वारा अपहरण कर नष्ट कर दिया गया।।२२।।

वह श्रेष्ठ ब्राह्मण धनहीन होकर परम दरिद्रता को प्राप्त हुआ। हे महाभाग! इसीलिये कहा गया है कि **दैव (भाग्य) की बड़ी कुटिल गति होती है**।।२३।।

हे विप्रश्रेष्ठ! भाग्य क्षणमात्र में ही सब कुछ प्रदान कर देता है और क्षण मात्र में ही स्त्री, धन, पुत्र और मित्रवर्ण सब कुछ हरण भी कर लेता है।।२४।।

एते सर्वे महाभागाः स्वस्वसम्बन्धिनस्तथा।
सम्बन्धे तु क्षयं याते क्षयं यान्ति मुनीश्वर॥२५॥
स तु दुःखाभिसन्तप्तो घनानन्दो हि नारद।
सहपुत्रैश्च दारैश्च ययौ देशान्तरं द्विजः॥२६॥
कावेरी च घनानन्दश्चत्वारस्तस्य सूनवः।
त्यक्त्वा भृत्यैश्च मित्रैश्च दुःखार्ता हि वनं ययुः॥२७॥
घोरं सिंहादिभिर्युक्तं झिल्लीझङ्कारनादितम्।
वृक्षैराताम्रकैर्बिल्वैर्दारुकैर्देवदारुकैः॥२८॥
अक्षोटकैः कदम्बैश्च पलाशैः खदिरैस्तथा।
शालैस्तालैर्महाव्यालैर्युक्तं सर्वभयाकुलम्॥२९॥
राक्षसैर्घोरनादैश्च वानरैर्वनगोचरैः।
एतादृशं वनं दृष्ट्वा भयार्ता विपिनं ययुः॥३०॥
गच्छत्सु तेषु विप्रेषु वने तस्मिन् भयाकुले।
आजग्मू राक्षसा विप्र चत्वारो विकटाननाः॥३१॥

मुनीश्वर! यह सब और अपने-अपने सम्बन्धी सम्बन्ध के नष्ट होने पर नाश को प्राप्त करते हैं।।२५।।

हे नारद! वह घनानन्द नामक ब्राह्मण जब दुःख से सन्तप्त होने लगा, तब वह स्त्री और पुत्रों के साथ वहाँ दूसरे स्थान पर चला गया।।२६।।

कावेरी, घनानन्द और उसके चारों पुत्र सेवकों और मित्रों से परित्यक्त होकर दुःखी हो वन में चले गये।।२७।।

वह भयङ्कर वन सिंह आदि हिंसक जीवों से संयुक्त था, वह वन विविध भिल्लियों के झङ्कार से परिपूर्ण हो रहा था, वहाँ आम्रातक, बेल, दारुहल्दी और देवदारु के वृक्ष थे।।२८।।

वहाँ अखरोट, कदम्ब, ढ़ाक, खैर, ताल, शाल के वृक्ष थे। बड़े-बड़े साँपों से युक्त होने के कारण वह वन अतिभयङ्कर था।।२९।।

घोर नाद करने वाले राक्षसों एवं वन में भ्रमण करने वाले वानरों से युक्त ऐसे वन को देखकर वे लोग भयभीत होकर दूसरे वन में चले गये।।३०।।

हे विप्र! उस भयाकुल वन में वे लोग आगे बढ़ते चले जा रहे थे, उसी समय विकट मुख वाले चार राक्षस आ गये।।३१।।

तान् दृष्ट्वा भयसंविग्ना बभूवुर्मुनिसत्तम।
किं कुर्मो[1] क्व गच्छाम इत्यूचुश्च परस्परम्।।३२।।

अथ ते राक्षसा घोराः समादाय च पुत्रकान्।
तयोस्तु पश्यतोरेव जग्मुर्वै[2] मुनिपुङ्गव।।३३।।

दम्पती तौ रुरुदतुर्हृतान् दृष्ट्वा हि पुत्रकान्।
हा वां हतौ स्व इत्युक्त्वा तौ पृथिव्यां निपेततुः।।३४।।

मुहूर्ते तौ तु निश्चेष्टौ सम्बभूवतुराप्य हि।
कदाचित्त्वथ वै संज्ञां विलेपतुरुदश्रुकौ।।३५।।

हा पुत्रा इति पुत्रा वै क्व गच्छावोऽथ निर्धनौ।
अपुत्रौ मरणं नौ हि कथं स्याद्धतभाग्ययोः।।३६।।

स्कन्द उवाच

इत्येवं विलपन्तौ तौ महारण्ये प्रजग्मतुः।
अज्ञौ मार्गस्य विप्रेन्द्राहो सन्निःसरदश्रुकौ।।३७।।

हे मुनिश्रेष्ठ! उन राक्षसों को देखकर वे लोग भय से व्याकुल हो गये और परस्पर में विचार करने लगे कि अब क्या किया जाय, कहाँ जायें, इस प्रकार कहने लगे।।३२।।

हे मुनिपुङ्गव! इतने में ही वे भयङ्कर राक्षस उस दम्पति के देखते ही देखते उनके पुत्रों को लेकर चल दिये।।३३।।

अपने पुत्रों का अपहरण किया देखकर वे दम्पति रोदन करने लगे। हाय! हम मारे गये, यह कहकर वे दोनों पृथिवी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े।।३४।।

वे दोनों मुहूर्त्तमात्र तो निश्चेष्ट पड़े रहे। पुनः थोड़ी देर के बाद संज्ञा प्राप्त कर कुछ काल तक रोदन करते रहे।।३५।।

हाय पुत्रों! हाय पुत्रों! अब हम दोनों निर्धन कहाँ जायें? हम दोनों अभागे सन्तानरहित होकर किस प्रकार मरेंगे।।३६।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार विलाप करते हुए वे दम्पत्ति घोर जङ्गल में विचरण करने लगे। उन्हें मार्ग का कुछ भी ज्ञान नहीं था, हे विप्रेन्द्र! इसलिये वे दोनों आँसू बहा-बहा कर रोदन कर रहे थे।।३७।।

---

१. वै इत्यधिकः पाठः ख.।   २. जह्रुर्वै इति क., जह्रुर्वै इति ख.।

तयोर्नारद दम्पत्योर्वने रात्रिः प्रवर्तते।
भयशोकार्दितौ रात्रौ निद्रां नैव च जग्मतुः॥३८॥
ततस्तौ मुनिशार्दूल जगदुश्च परस्परम्।
किं कुर्वः क्व च गच्छावो मार्गो नैव प्रदृश्यते॥३९॥
पतिं जगाद कावेरी कुरु काष्ठस्य सङ्ग्रहम्।
प्रज्वाल्य च महावह्निं दग्ध्वा देहं यमालयम्॥४०॥
यत्र वै मम पुत्राश्च गता राक्षसभक्षिताः।
भक्षयन्त्वथवा वां हि राक्षसा विकटाननाः॥४१॥

ब्राह्मण उवाच

यदि तान् मृगशावाक्षि प्राप्स्यावो निजपुत्रकान्।
भविष्यति हि साफल्यं मरणस्याऽऽवयोः प्रिये॥४२॥
आवाभ्यामपि नः प्राप्ताश्चेत्सुता निधनेन च।
तदा वै चन्द्रवदने आत्महत्यैव केवलम्॥४३॥

हे नारद! इस प्रकार उन दम्पत्ति के विचरण करते रहने पर ही रात्रि हो गयी, इस प्रकार वे दोनों भय और शोक के मारे अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे, अत एव उन्हें रात्रि में निद्रा नहीं आयी।।३८।।

हे मुनिशार्दूल! तदनन्तर वे परस्पर कहने लगे कि हाय! अब हम क्या करें, कहाँ जाँय, कोई मार्ग नही दिखाई पड़ रहा है।।३९।।

तब कावेरी ने अपने पति से कहा—हे पतिदेव! आप काष्ठ का संग्रह करें और चिता बनाकर अग्नि प्रज्वलित कर अपने देह को भस्म करके मैं भी यमपुरी को चली जाऊँगी।।४०।।

राक्षसों के द्वारा भक्षण किये गये हमारे पुत्र जहाँ गये हैं, अथवा विकटमुख वाले राक्षस ही हम दोनों का भक्षण कर लें।।४१।।

ब्राह्मण ने कहा

हे मृगनयनी! यदि मर कर भी हम दोनों को अपने पुत्रों की प्राप्ति हो जाय, तो हे प्रिये! हम दोनों का मरण सफल हो सकता है।।४२।।

परन्तु मरने के पश्चात् भी पुत्रों की प्राप्ति नहीं हुई, हे चन्द्रमुखी! तब तो केवल वह आत्महत्या ही होगी।।४३।।

विपत्तौ महतां धार्यं धैर्यं शोकस्य नाशनम्।
अधैर्येण च कावेरि शरीरं नश्यति क्षणात्॥४४॥
शरीरं चेत्पुनः पुण्यं धनं दाराः सुताः पुनः।
नष्टे शरीरे कावेरि कुतः पुण्यं कुतः सुखम्॥४५॥
दुष्टेन मरणेनाऽथ दुर्गतिश्च भवेन्नृणाम्।
दुर्गतेस्तु महद्दुःखं जायते प्रेतदेहके॥४६॥

कावेर्युवाच

केन वै मरणेनाऽथ नराः संयान्ति दुर्गतिम्।
किं किं दुःखं तत्र देहे जायते च कथं विभो॥४७॥

ब्राह्मण उवाच

येन वै मरणेनेह दुर्गतिर्जायते नृणाम्।
शृणु कावेरि वक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥४८॥

इसलिये महान् पुरुषों को चाहिये कि विपत्ति के समय शोक का विनाश करने वाले धैर्य को धारण करें। हे कावेरी! धैर्य न धारण करने से शरीर क्षणमात्र में ही नष्ट हो जाता है।।४४।।

यदि शरीर सुरक्षित रहे, तो पुनः पुण्य, धन, स्त्री और पुत्रों की प्राप्ति हो जायेगी। हे कावेरी! धैर्य खोकर शरीर नष्ट कर देने पर पुण्य और सुख कहाँ से प्राप्त हो सकता है।।४५।।

इसके बाद भी आत्महत्या आदि से निन्दित मरण हो, तो मनुष्यों की दुर्गति ही होती है। पुनश्च दुर्गति होने से प्रेतदेह में प्रभूत दुःख की प्राप्ति होती है।।४६।।

कावेरी ने कहा

हे स्वामिन्! किस प्रकार मरने से मनुष्यों को दुर्गति की प्राप्ति होती है और उन-उन देहों में कौन-से दुःख की प्राप्ति होती है।।४७।।

ब्राह्मण ने कहा

जिस प्रकार के मरण से मनुष्य की दुर्गति होती है, इस विषय में जो तुमने पूछा है, हे कावेरी! सुनो, उसे मैं तुमसे वर्णन कर रहा हूँ।।४८।।

विषेण मरणं यस्य सर्पेण निहितोऽपि यः।
वृक्षादिभिश्च पतितो जलादौ पतनात्तथा॥४९॥

आत्मघाताद् वह्नितो वा सिंहादिभ्यस्तथैव च।
मरणं जायते यस्य स पिशाचो भवेन्नरः॥५०॥

जाते पिशाचदेहे तु नानादुःखं प्रजायते।
क्षुधया तृषया चैव पीड्यन्ते नित्यमेव हि॥५१॥

उदरं कूपसदृशं क्षुधा दावाग्निना समा।
गलद्वारं तु तेषां वै सूचीछिद्रसमं स्मृतम्॥५२॥

यत्र श्रीरघुनाथस्य कथा वै तु प्रगीयते।
तत्र ते हि न गच्छन्ति भवाविष्टास्सदैव हि॥५३॥

यत्र गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा विप्राणां यत्र पूजकाः।
विप्रा[1] वेदविदो यत्र[2] वेदाध्ययनमेव च॥५४॥

जिसका मरण विष भक्षण करने से हुआ हो, जिसे सर्प ने डँसा हो, जो वृक्ष आदि से गिर कर या जल में डूब कर मरा हो।।४९।।

आत्मघात करने अथवा अग्नि से जल कर या सिंह आदि के द्वारा जिसकी मृत्यु होती है, वह मनुष्य पिशाच हो जाता है।।५०।।

पिशाच योनि में उत्पन्न होने पर उसे अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं, वह भूख और प्यास से नित्य ही पीड़ित रहता है।।५१।।

उस पिशाच का उदर कूप के समान होता है, क्षुधा दावाग्नि के समान शान्त न होने वाली एवं कण्ठ सूई के रन्ध्र के समान होता है, ऐसा कहा गया है।।५२।।

जहाँ श्रीराम की कथा का गान होता है, सदा भयाकुल रहने के कारण वे लोग वहाँ नहीं जाते हैं।।५३।।

इसी प्रकार जहाँ नदीश्रेष्ठ गङ्गा हैं, जहाँ ब्राह्मणों की पूजा होती है, जहाँ वेदज्ञ ब्राह्मण रहते हैं और जहाँ वेदपाठ होता है।।५४।।

---

१. विप्र इति क.।   २. विप्र इति क.।

पुराणश्रवणं यत्र सदाशिवप्रपूजनम्।
गावो यत्र प्रपूज्यन्ते स्नातकाश्च मम प्रिये॥५५॥
तत्र तत्र न गच्छन्ति यत्र रामपरायणाः।
भुञ्जन्ति नो यत्र विप्रा परदाररतास्तथा॥५६॥
शिवस्य केशवस्यापि भेदबोधनतत्पराः[१]।
तेषां गृहं श्मशानं हि बोद्धव्यं प्रियवादिनि॥५७॥
तत्र भुञ्जन्ति वै प्रेता उच्छिष्टं यत्र वर्तते।
विप्राणां निन्दका यत्र यत्र पैशून्यकारकाः॥५८॥
यत्र रामकथा नास्ति विप्राणां न च पूजनम्।
अब्रह्मचारिणो यत्र रामभक्तिपराङ्मुखाः॥५९॥
येषां गृहे नातिथयः पूज्यन्ते गृहवासिनाम्।
गवां ग्रासो यत्र नास्ति तत्र भुञ्जन्ति नित्यशः॥६०॥
इति दुःखतरं तेषामात्मघातेन तत्पराः।
ये वै दुर्गतिसम्प्राप्ता नरके च वसन्ति ते॥६१॥

हे प्रिये! जहाँ पुराणों का श्रवण और सदाशिव का पूजन होता है, जहाँ पर गायों और वेदपाठियों की पूजा होती है।।५५।।

जहाँ पर राम के भक्त रहते हैं, वहाँ दुर्गति-प्राप्त पिशाच नहीं जाते हैं। जिन घरों में ब्राह्मणों को भोजन नहीं कराया जाता, जहाँ परस्त्रीगामी रहते हैं।।५६।।

जहाँ शिव और भगवान् विष्णु में भेद प्रतिपादन करने वाले व्यक्ति रहते हैं। हे प्रियवादिनि! ऐसे लोगों का घर श्मशानतुल्य समझना चाहिये।।५७।।

जहाँ उच्छिष्ट भोजन रहता है, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं, जहाँ ब्राह्मणों के निन्दक तथा जहाँ पिशुन लोग (चुगली करने वाले) रहते हैं।।५८।।

जहाँ राम की कथा तथा ब्राह्मणों का पूजन नहीं होता अथवा जहाँ राम की भक्ति से पराङ्मुख तथा ब्रह्मचर्यरहित पुरुष निवास करते हैं।।५९।।

जिन गृहस्थों के घर अतिथियों का पूजन नहीं होता तथा जिन घरों में गोग्रास नहीं निकाले जाते हैं, वहाँ पर नित्य प्रेत भोजन करते हैं।।६०।।

जो मनुष्य आत्मघात करने में तत्पर हैं, उन्हें ये ही अतिशय दुःख प्राप्त होते हैं, जो दुर्गति से मरते हैं, उन्हें इसी प्रकार नरक में निवास करना पड़ता है।।६१।।

१. भेदकान्धतत्परा इति क.।

तस्मात् सुन्दरि नो कार्य आत्मघातस्तथैव च।
न मृता आवयोः पुत्रा स्वसम्बन्धिन एव ते॥६२॥

स्कन्द उवाच

तयोरिति कथयतोः प्रातर्वै समजायत।
पुनस्तौ मुनिशार्दूल जग्मतुर्दिशमुत्तरम्॥६३॥
गच्छतस्त्वरया तस्य हन्तुर्बालस्य नारद।
पतितं भूषणं मार्गे ताभ्यां प्राप्तं मुनीश्वर॥६४॥
दारिद्र्याविष्टमनसौ क्षुधितौ तृषितौ च तौ।
तथैव ममताविष्टौ जह्रतुरिदमुत्तमम्॥६५॥
ततः कथञ्चिन्नगरं प्राप्तौ वै द्विजदम्पती।
तत्रापि तौ मुनिश्रेष्ठौ दशां [१]काष्ठामवापतुः॥६६॥

नारद उवाच

स वै विप्रो महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः।
विष्णोश्च पूजने सक्तो व्यसनं कथमाप्तवान्॥६७॥

हे सुन्दरि! इस कारण आत्मघात नहीं करना चाहिये, वे हमारे पुत्र नहीं मरे हैं, अपितु वे हमारे कोई सम्बन्धी थे।।६२।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार उन दोनों के बातचीत करते-करते ही प्रभात हो गया। हे मुनिशार्दूल! तब वे दोनों उत्तर दिशा की ओर चल दिये।।६३।।

हे मुनीश्वर नारद! जब वे शीघ्रतापूर्वक जा रहे थे, उसी समय उन्हें मार्ग में मारे गये किसी बालक का गिरा हुआ आभूषण प्राप्त हुआ।।६४।।

दरिद्रता के कारण वे अतिशय भूखे और प्यासे थे, इसलिये उन्हें ममता भी विशेष थी, अत एव उन्होंने उस उत्तम आभूषण का अपहरण कर लिया।।६५।।

तदनन्तर वे द्विजदम्पती जैसे-तैसे किसी नगर में आये, वहाँ पर उन्हें अधिक कष्ट ही प्राप्त होता रहा।।६६।।

नारद ने कहा

वह ब्राह्मण सर्वशास्त्रविशारद था, अत एव अतिशय बुद्धिमान् था तथा वह भगवान् विष्णु का पूजन करने में भी तत्पर था, तो फिर उसे क्लेश की प्राप्ति क्यों हुई।।६७।।

---

१. काष्टामिति ख.।

कथं वै पुत्रमरणं नष्टं चैव सुखं धनम्।
एतं मे संशयं स्कन्द यथावच्छेत्तुमर्हसि॥६८॥

घनानन्दब्राह्मणस्य पूर्वजन्मनो वृत्तान्तम्

स्कन्द उवाच

श्रृणु नारद वक्ष्यामि कृतं तेन तु यत्पुरा।
सोऽभवद्द्विजशार्दूल पुरा जन्मनि क्षत्रियः॥६९॥
उग्रदण्ड इति ख्यातो राजा शत्रुविमर्दनः।
कावेरी द्विजशुश्रूषा नाम्नाऽऽसीद् ब्रह्मनन्दन॥७०॥
तपस्वी ज्ञानिनां श्रेष्ठः शिवभक्तिपरायणः।
द्विजशुश्रूषा च तथा पतिभक्तिपरायणा॥७१॥
चक्रतुः कतिचिद्वर्षं तपो ब्राह्मणजन्मनि।
ताभ्यां च पूजिता विप्रा दानसम्मानभोजनैः॥७२॥
पालयामास सम्प्राप्य राज्यं पुत्रानिवौरसान्।
प्रजा वै कस्यचिद्विप्र नो वै दुःखमजानत॥७३॥

उसके पुत्र कैसे मरे, उसके सुख और धन का विनाश कैसे हो गया। हे स्कन्द! मेरे इस सन्देह को आप यथाविधि दूर करें।।६८।।

घनानन्द ब्राह्मण के पूर्वजन्म का वृत्तान्त

स्कन्द ने कहा

हे नारद! सुनो, उस ब्राह्मण ने पूर्वजन्म में जो कुछ किया था, उसका वर्णन करता हूँ। हे द्विजशार्दूल! वह ब्राह्मण पूर्वजन्म में क्षत्रिय था।।६९।।

वह शत्रुओं का विनाश करने वाला उग्रदण्ड नाम का राजा था। हे द्विजनन्दन! उस जन्म में कावेरी का नाम द्विजशुश्रूषा था।।७०।।

वह राजा तपस्वी, ज्ञानियों में श्रेष्ठ एवं शिव की भक्ति में तत्पर रहता था। इसी प्रकार द्विजशुश्रूषा भी पतिभक्ति में परायण रहती थी।।७१।।

इस प्रकार कुछ काल पर्यन्त उन्होंने सदाचरण किया, इसके अनन्तर ब्राह्मण जाति में उनका जन्म हुआ, उन दोनों ने दान, सम्मान एवं भोजन के द्वारा ब्राह्मणों को खूब सन्तुष्ट किया।।७२।।

राज्य प्राप्त कर भी वह औरस पुत्र के समान प्रजा का पालन करता था। हे विप्र! उस समय प्रजा में किसी को भी कोई दुःख नहीं था।।७३।।

एकदा मुनिशार्दूल दुर्वासा मुनिसत्तमः।
आगतो भोजनं कर्तुं तस्य गेहे हि नारद॥७४॥
भोजनं कर्तुमुद्युक्तो दुर्वासा मुनिराट् ततः।
तेनापि भोजनं दत्तं याचितं तेन यत्तथा॥७५॥
भोजनं कुर्वतस्तस्य भोज्ये केशो व्यदृश्यत।
तं केशं पतितं दृष्ट्वा शशाप मुनिसत्तमः॥७६॥
उन्मत्तेन त्वया राजन् यद्दत्तं केशदूषितम्।
भोजनं तेन भविता पुत्रशोकश्च निर्धनः॥७७॥

राजोवाच

भो भो मुनिगणश्रेष्ठ शापं वै दत्तवानसि।
मां चाऽपराधरहितं सहसा त्वं कथं मुने॥७८॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा तं मुनिं राजा ववन्दे चरणौ मुने।
तुतोष स्तुतिपाठैश्च नतिभिर्मुनिनायकम्[१]॥७९॥

हे मुनिशार्दूल नारद! एक समय मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा भोजन करने के लिये उनके घर आये।।७४।।

मुनिराज दुर्वासा भोजन करने के लिये तैयार हुए, उन्होंने जो कुछ माँगा, उसने उन्हें वही भोजन प्रदान किया।।७५।।

जब वे भोजन करने के लिये उद्यत हुए, उसी समय भोज्य पदार्थ में केश दृष्टिगोचर हो गया। भोज्य पदार्थ में उस केश को गिरा हुआ देखकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने उसे शाप दे दिया।।७६।।

हे राजन्! उन्मत्त होकर तुमने हमें केशदूषित भोजन दिया है, इस कारण तुम्हें पुत्रशोक होगा और तुम निर्धन हो जाओगे।।७७।।

राजा ने कहा

हे मुनिगणों में श्रेष्ठ! आपने जो मुझे शाप दिया है, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है, तो फिर आपने शाप देने में इतनी शीघ्रता क्यों की।।७८।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार मुनि के प्रति कहकर राजा ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया एवं स्तुतिपाठ तथा बार-बार प्रणाम आदि के द्वारा मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा को प्रसन्न किया।।७९।।

---

१. मुनिनायकः इति क.।

दुर्वासा उवाच

अज्ञात्वा ते मया दत्तः शापः परमकोपिना।
अमोघो मम शापोऽयं भविष्यत्यन्यजन्मनि॥८०॥
शापस्यान्तोऽपि भविता तत्रैव नरपुङ्गव।
इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठो जगाम भवनं स्वकम्॥८१॥

स्कन्द उवाच

सोऽपि राजोग्रदण्डश्च शापितश्च वराङ्गना।
कालेन निधनं प्राप्तौ ब्राह्मण्यमुपजग्मतुः॥८२॥
निर्धनत्वं हि ताभ्यां हि पुत्रशोकस्तथैव च।
अन्यच्च बहुशो दुःखं प्रापतुर्द्विजदम्पती॥८३॥
गत्वा वै तत्र नगरे सन्ध्याकालोऽभ्यजायत[१]।
ततो वै तत्र नगरे केनचिद्विप्रबालकः॥
हतो भूषणलोभेन समायाताश्च किङ्कराः॥८४॥

दुर्वासा ने कहा

अतिक्रोधी मैंने विना समझे ही तुम्हें शाप दे दिया है, किन्तु मेरा यह शाप अमोघ है, इसलिये यह दूसरे जन्म में फलीभूत होगा।।८०।।

हे नरपुङ्गव! उसी समय शाप का अन्त भी हो जायेगा, ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ अपने भवन को चले गये।।८१।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार शापित हुए राजा उग्रदण्ड और उसकी श्रेष्ठ रानी समय से मृत्यु को प्राप्त हुए और वे ब्राह्मणत्व को प्राप्त किये।।८२।।

इसी कारण उन दोनों को निर्धनता और पुत्रशोक की प्राप्ति हुई। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत दुःख भी उन दम्पति को प्राप्त हुए।।८३।।

एक समय चलते-चलते एक नगर में पहुँचने पर उन्हें सन्ध्या हो गयी, वहाँ उस नगर में किसी ने आभूषण के लोभ से एक बालक को मार डाला था, इतने में ही वहाँ राजा के सेवक आ गये।।८४।।

---

१. काले व्यजायत इति क.।

दुष्टं भाग्यं समायाति यदा वै मुनिपुङ्गव।
पुंसस्तदा सर्वगुणा विह्वलास्तु भवन्ति हि॥८५॥
राजाऽपि तस्य देशस्य मारयामास तौ न हि।
विप्रस्त्रीपातकभयात् क्षिप्तौ कारागृहे मुने॥८६॥
तत्राऽपि दुःखसम्भ्रान्तमानसौ द्विजदम्पती।
स्थितवन्तौ यथाकालं शापाद् दुर्वाससस्तु तौ॥८७॥
कथञ्चित्त्वथ काले तु निर्गते मुनिसत्तम।
पुत्रोऽभूत्तस्य देशस्य राज्ञस्तौ मुमुचे तदा॥८८॥
मुक्तौ तौ तेन राज्ञा वै जग्मतुर्देशमन्यकम्।
ततोऽपि च वनं प्राप्तौ मध्याह्ने मासि ज्येष्ठके॥८९॥
तृषाऽऽविष्टा बभूवाथ कावेरी तस्य चाङ्गना।
तस्यै जलं समादातुं जगाम गहनं वनम्॥९०॥
ययौ पश्चात्तु कावेरी भयार्ता मुनिसत्तम।
अन्ये देशे जगामाऽथ तस्य मार्गमजानती॥९१॥

हे मुनिपुङ्गव! जब भाग्य बिगड़ जाता है, तब सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति भी विह्वल हो जाते हैं।।८५।।

उस देश के राजा ने उन दोनों का वध तो नहीं किया, किन्तु ब्राह्मण और स्त्री के वध के पाप के भय से उन दोनों को कारागार में बन्द कर दिया।।८६।।

वहाँ भी उन द्विजदम्पति का चित्त दुःख के कारण बड़ा व्यग्र रहा, दुर्वासा के शाप के कारण वे दोनों कुछ काल तक वहाँ रहे।।८७।।

हे मुनिसत्तम! कुछ समय व्यतीत होने पर उस देश के राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ, तब राजा ने उन्हें छोड़ दिया।।८८।।

उस राजा से मुक्ति पाकर वे दोनों किसी अन्य देश को चले गये। वहाँ से भी ज्येष्ठ मास की दुपहरिया में वे दोनों वन में पहुँचे।।८९।।

उस समय ब्राह्मण की पत्नी कावेरी प्यास से व्याकुल हो गयी। उसके लिये जल लाने के लिये ब्राह्मण घनघोर वन में चला गया।।९०।।

हे मुनिसत्तम! कुछ देर बाद भयभीत हो कावेरी भी पीछे-पीछे वहाँ से चल पड़ी। किन्तु वहाँ के मार्ग को न जानकर दूसरी ओर चली गयी।।९१।।

पतिमन्वेषयन्त्यास्तु वने रात्रिः प्रवर्तते।
सञ्चचार वने रात्रौ कावेरी भयसङ्कुला॥९२॥
रुदती प्रपदं[१] सा तु पतिमार्गमजानती।
वने वने सञ्चरन्ती झिल्लीझङ्कारनादिते॥९३॥
हा नाथ नाथ नाथेति क्व गच्छामि त्वया विना।
शुशोच बहुशो विप्र कुररी कुररं यथा॥९४॥
अन्धकारे चरन्ती सा मार्गं चैवाविजानती।
पपात सहसा कूपे न ममार च कर्मतः॥९५॥
सोऽपि ब्राह्मणदीनश्च घनानन्दो हि भूसुरः।
जलं चानीय तत्रैवाऽऽगतो नैव ददर्श ताम्॥९६॥
हे प्रिये क्व गताऽसि त्वमित्युवाच पुनः पुनः।
बहुसंविग्नहृदयो घनानन्दो बभूव ह॥९७॥
विलप्य बहुशस्तत्र वने रात्रिः प्रवर्तते।
भयाविष्टमना भूत्वा लेभे नैव कदाचन॥९८॥

पति का अन्वेषण करते-करते ही रात्रि हो गयी। तब तो भयभीत हो कावेरी वन में रात्रि के समय विचरण करने लगी।।९२।।

पति के मार्ग को न जानती हुई कावेरी झिल्ली के झंकार से पूर्ण उस वन में भटक रही थी। वह कदम-कदम पर रो रही थी।।९३।।

हा नाथ, हा नाथ, मैं तुम्हारे बिना कहाँ जाऊँ? यह कह-कह कर बहुत विलाप करने लगी, जैसे कुररी कुरर पक्षी के बिना रोती है।।९४।।

चूँकि वह मार्ग तो जानती नहीं थी, इसलिये अन्धेरे में घूमती हुई कूप में गिर पड़ी। परन्तु कर्मवशात् मृत्यु नहीं हुई।।९५।।

ब्राह्मणों में दीन वह घनानन्द नाम का ब्राह्मण जब जल को लेकर पूर्व स्थान पर आया, तो वहाँ अपनी पत्नी को नहीं देखा।।९६।।

हे प्रिये! तुम कहाँ चली गयी, इस प्रकार वह बार-बार कह रहा था, इस तरह वह घनानन्द बहुत व्याकुल हृदय वाला हो गया।।९७।।

वन में बहुत रोते-रोते ही रात्रि हो गयी, मन में भयभीत होने के कारण उसे कुछ भी सुख न मिला।।९८।।

१. प्रतपन्ती सेति क.।

शनैः शनैराजगाम विवस्त्रक्षुधितोऽपि सन्।
देवप्रयागके क्षेत्रे पुण्ये मुनिगणान्विते॥९९॥
तत्र गत्वा स विप्रेन्द्रो रामं लक्ष्मणसंयुतम्।
पूजनं तस्य कृत्वा वै भक्त्या च परया युतः॥१००॥
जगाम ब्रह्मकुण्डे तु स्नानं कृत्वा यथाविधि।
वसिष्ठप्रवरे कुण्डे स्नातवान् द्विजसत्तमः॥१०१॥
मासमेकं तत्र कुण्डे गङ्गायां नित्यमेव हि।
स्नानं च विधिवच्चक्रे पूजनं माधवस्य हि॥१०२॥
समुद्धर गदाहस्त चक्रपाणे महेश्वर।
संसारार्णवतो मां हि तथा वै दुःखसागरात्॥१०३॥
इत्येवं कथयन्नेव चक्रे[१] माधवपूजनम्।
मासैकस्मिन् प्रजाते तु स वै ब्राह्मणसत्तमः॥१०४॥
यथाशक्त्या हि विप्रांश्च भोजयामास वै द्विजः।
रामस्य पूजनं कृत्वा जगाम स्वगृहं ततः॥१०५॥

वस्त्रहीन भूखा-प्यासा वह ब्राह्मण धीरे-धीरे मुनिगणसेवित पवित्र क्षेत्र देवप्रयाग में पहुँच गया॥९९॥

वहाँ पहुँचकर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण लक्ष्मण के साथ राम का दर्शन किया और परम भक्तिभावपूर्वक उनका पूजन किया॥१००॥

इसके बाद वहाँ से चलकर ब्रह्मकुण्ड को चला गया, वहाँ विधि के अनुसार ब्रह्मकुण्ड में स्नान कर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठकुण्ड में भी स्नान किया॥१०१॥

इस प्रकार एक मास पर्यन्त उस कुण्ड में एवं गङ्गा में नित्य स्नान करके उस ब्राह्मण ने भगवान् माधव का विधिवत् पूजन किया॥१०२॥

हे गदाधर! हे चक्रपाणि! हे महेश्वर! संसारसागररूपी दुःखसागर से मेरा उद्धार करें॥१०३॥

इस प्रकार कहते हुए उसने भगवान् माधव का पूजन किया, इस विधि से एक मास अतिक्रान्त हो जाने पर इस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराया। पुनः श्रीराम का पूजन कर वह ब्राह्मण अपने घर चला गया॥१०४-१०५॥

---

१. चक्रमाधवपूजनमिति क.।

तस्मिन् वने समायातो यत्राऽऽप च वियोगकम्।
शुश्राव वचनं तस्मात् स्त्रीकृतां[१] करुणध्वनिम्[२]॥१०६॥
ध्वनौ तु श्रूयमाणायां सञ्चचार वने तदा।
शब्दानुसारं हे ब्रह्मन् ययौ यत्र च वै ध्वनिः॥१०७॥
स तां ददर्शान्धकूपे पतितां स्त्रियमेकलाम्।
पप्रच्छ का त्वं सुभगे कथं त्वं पतिताऽत्र वै॥१०८॥
किमर्थं रोदसे भद्रे कुत्र ते नायको गतः।
यक्षी वा किन्नरी वा त्वं राक्षसी देवकन्यका॥१०९
किमर्थमागताऽसि त्वं वने राक्षससेविते।
सत्यं वद महाभागे यत्ते मनसि वर्तते॥११०॥

कावेर्युवाच

कस्त्वं पुरुषशार्दूल यो मां दुःखसमन्विताम्।
परिपृच्छसि मे दुःखं धन्योऽसि भुवने तथा॥१११॥

घर जाते समय वह पुनः उसी वन में पहुँचा, जहाँ उसका जल के लिये पत्नी का वियोग हुआ था। वहाँ उसने उस वन से आती हुई स्त्री की करुणापूरित ध्वनि श्रवण की।।१०६।।

ध्वनि सुनने के अनन्तर वह वन में चारों ओर विचरण करने लगा। हे ब्रह्मन्! पुनः शब्द के अनुसार वह ब्राह्मण वहाँ पहुँच गया, जहाँ से ध्वनि आ रही थी।।१०७।।

वहाँ पर उसने अन्धकूप में गिरी हुई एकाकी एक स्त्री को देखा। तब वह पूछने लगा। हे सुभगे! तुम कौन हो, तुम कूप में कैसे गिर गयी हो।।१०८।।

हे कल्याणी! तुम क्यों रो रही हो और तुम्हारा स्वामी कहाँ चला गया? तुम यक्षिणी हो, किन्नरी हो, राक्षसी हो या देवकन्या हो।।१०९।।

राक्षसों से व्याप्त इस वन में तुम कैसे चली आई? हे महाभागे! तुम्हारे मन में जो कुछ हो, उसे सत्य-सत्य कहो।।११०।।

कावेरी ने कहा

हे पुरुषशार्दूल! आप कौन हैं? जो मुझ दुखिया के दुःख को पूछ रहे हैं। आप त्रिभुवन में धन्य हैं।।१११।।

---

१. कृतमिति क.। २. करुणा इति क.।

अहं तु ब्राह्मणी जात्या कावेरी मम नामकम्।
भर्त्ता मम घनानन्दः सर्वशास्त्रविशारदः॥११२॥
धनैः पुत्रैस्तथा युक्तो वाराणस्यामभूत्किल।
ततः कालेन महता धनं सर्वं क्षयं गतम्॥११३॥
पुत्राश्च निधनं प्राप्ता वने राक्षसभक्षिताः।
आवां चैव तथा मिथ्याऽभिशापात्कष्टमागतौ॥११४॥
ततो द्वावागतावत्र कथञ्चिन्निर्जने वने।
अभाग्याऽहं तदाऽधन्याऽभूत्तृषार्त्ता तथा तदा॥११५॥
मम भर्त्ता महाभाग जलमानेतुमुद्यतः।
ततोऽग्रे तु घनानन्दो भयार्त्ताऽहं तदा किल॥११६॥
पृष्ठतोऽहं तथा लग्ना भर्तारं नैव पश्यती।
मार्गं त्यक्त्वा गताऽन्यत्र सोऽप्यन्यत्र गतः प्रभुः॥११७॥

मैं जाति से ब्राह्मणी हूँ और कावेरी मेरा नाम है तथा मेरे पति घनानन्द सर्वशास्त्रविशारद हैं।।११२।।

धन और पुत्र से सम्पन्न वे वाराणसी में रहते थे। कुछ काल व्यतीत होने पर उनका सब धन क्षय हो गया।।११३।।

वन में राक्षसों के भक्षण कर लिये जाने के कारण पुत्र भी मृत्यु को प्राप्त हो गये और हम दोनों भी झूठे अभिशाप के कारण दुःख भोगने लगे।।११४।।

इसके बाद हम दोनों पति-पत्नी किसी प्रकार इस निर्जन वन में आये। यहाँ अधन्या हतभागिनी मैं प्यास से पीड़ित हो गयी।।११५।।

हे महाभाग! तब हमारे पतिदेव घनानन्द जल लाने के लिये चले गये। उस समय पति के चले जाने पर मैं भय से व्याकुल हो गयी।।११६।।

कुछ देर बाद मैं भी पति के पीछे-पीछे चल दी। किन्तु हमारे प्राणपति हमारी दृष्टि के अगोचर हो गये। उस समय हमारे प्रभु अन्य मार्ग में चले गये और मैं भी अन्यत्र चली गयी।।११७।।

तदाऽहं सञ्चरन्त्या वै वने रात्रिः प्रपद्यत।
तदान्धकूपे पतिता अस्मिन् मार्गं न जानती॥११८॥
तदावधि महाभाग वसाम्यत्रैव दुःखकैः।
यो वृक्षो वर्तते चास्मिन् सर्वतो भ्रमराः स्थिताः॥११९॥
तेषां तु भ्रमराणां तु नित्यं पतितकूपके।
मधु भुक्त्वा तु जीवामि बद्धाहं पूर्वकर्मणा॥१२०॥
कुत्रचिद्वै त्वया दृष्टो घनानन्दो हि भूसुरः।
शीघ्रं वद महाभाग यदि जानासि जीवय॥१२१॥

ब्राह्मण उवाच

अहं हि तव भर्त्तास्मि घनानन्दो हि[१] भूसुरः।
त्वद्वियोगात्प्रिये कान्ते कष्टं जीवामि सुन्दरि॥१२२॥
त्वद्वियोगाद्धि सम्भ्रान्तो गतो देवप्रयागके।
तीर्थे तीर्थगणाधीशे रामं राजीवलोचनम्॥१२३॥

तब मुझे वन में विचरते हुए रात्रि हो गयी। चूँकि मैं मार्ग तो जानती नहीं थी, इसलिये अन्धकार के कारण इस अन्धकूप में गिर पड़ी।।११८।।

हे महाभाग! उसी दिन से मैं इस कूप में दुःख से निवास कर रही हूँ। यहाँ जो ये वृक्ष विद्यमान हैं, उन वृक्षों पर चारों ओर भ्रमर हैं।।११९।।

उन भ्रमरों का जो मधु इस कूप में गिरता है, उसी को भक्षण कर पूर्वकर्मानुसार मैं जीवित रहती हूँ।।१२०।।

हे महाभाग! आपने कहीं घनानन्द नामक ब्राह्मण को देखा है, तो शीघ्र बतलाइये, यदि आप जानते हैं, तो मुझे बतलाकर शीघ्र ही जीवनदान दीजिये।।१२१।।

ब्राह्मण ने कहा

हे प्रिये! तुम्हारा पति घनानन्द ब्राह्मण मैं ही हूँ। हे मनोज्ञे सुन्दरि! तुमसे वियुक्त होने के कारण मैं बड़े कष्ट से जीवन जी रहा हूँ।।१२२।।

तुम्हारे वियोग से उद्भ्रान्त होकर मैं देवप्रयाग में चला गया, उस तीर्थराज देवप्रयाग में मैंने कमललोचन श्रीरामचन्द्र का दर्शन किया।।१२३।।

---

१. धरासुरः इति क.।

दृष्टवानस्मि तत्रैव पूजयित्वा यथाविधि।
तपो वै कृतवान् कुण्डे देवि वासिष्ठसञ्ज्ञके॥१२४॥
मासमेकं व्रतं कृत्वा निराहारो जितेन्द्रियः।
ब्राह्मणान् भोजयित्वाऽहं यथाशक्त्याऽऽगतस्ततः॥१२५॥

स्कन्द उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा कावेरी विस्मिताऽभवत्।
पुनः पुनर्दृष्टवती मुखं तस्य महात्मनः॥१२६॥
रहस्यमात्मनश्चैव पृष्ट्वा बुद्ध्वा च तं पतिम्।
आत्मानं सततं विप्र ममन्ये विप्रसुन्दरी॥१२७॥
लताभिर्दृढबद्धाभिः कूपान्निष्कास्य यत्नतः।
जगाम नगरे तस्य[1] बभूव यत्र बन्धनम्॥१२८॥
तेनापि राज्ञा[2] प्राप्तो वै चौरो बालकघातकः।
तं चौरं मारयित्वा तु राजा खेदमकुर्वत॥१२९॥

मैंने दर्शन कर उनकी यथाविधि पूजा की। हे देवि! वहाँ वसिष्ठ नामक कुण्ड पर मैंने तप किया।।१२४।।

इस प्रकार मैंने निराहार और जितेन्द्रिय होकर एक मास पर्यन्त व्रत का आचरण कर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराया। इसके बाद मैं यहाँ आया हूँ।।१२५।।

स्कन्द ने कहा

उस ब्राह्मण के इस प्रकार के वचन को सुनकर कावेरी अत्यन्त विस्मित हो गयी और बारंबार उस महात्मा के मुख का अवलोकन करने लगी।।१२६।।

तदनन्तर अपनी गुप्त वार्ता को पूछ कर उससे उसने पहचान लिया कि ये ही मेरे पति हैं। हे विप्र! तब कावेरी को यह निश्चय हो गया कि मैं उसी ब्राह्मण की पत्नी हूँ।।१२७।।

इसके बाद उस ब्राह्मण ने दृढबन्धन वाली लताओं से उसे बाहर निकाला और वह उसे लेकर नगर में गया, जहाँ इन दोनों का बन्धन हुआ था।।१२८।।

उधर उस राजा ने भी बालघाती उस चोर को प्राप्त कर लिया था। राजा ने उस चोर को तो मार डाला, तदनन्तर बड़ा खेद कर रहा था।।१२९।।

---

१. तत्रेति क.; २. राजेति क.।

पापोऽहं पापकर्ताऽहमित्युवाच पुनः पुनः।
वृथा येन मया दत्तं दुःखं निरपराधिने॥१३०॥
ब्राह्मणाय सुशान्ताय मे गतिः का भविष्यति।
इति चिन्तयतस्तस्य अग्रे ब्राह्मण आगतः॥१३१॥
अग्रे तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा ज्ञातवान् सपदि प्रभुः।
तयोश्च द्विजदम्पत्योर्जग्राह चरणौ नृपः॥१३२॥
ननाम शिरसा भूमौ बारम्बारं तदग्रतः।
पप्रच्छ पूर्ववृत्तान्तं यद्यज्जातं तयोः पृथक्॥१३३॥
कथयामासतुर्विप्र स्ववृत्तान्तं यथाऽभवत्।
श्रुत्वा वृत्तान्तकं राजा यदुक्तं मुनिवन्दित॥१३४॥
खेदं प्राप्य ददौ ताभ्यां विविधानि धनानि च।
वासांसि तु विचित्राणि स्वर्णसूत्रमयानि च॥१३५॥

मैं पापकर्ता हूँ, अत एव स्वयं पापस्वरूप हूँ, बारंबार यह कहकर राजा पश्चात्ताप कर रहा था कि मैंने उस निरपराध ब्राह्मण को वृथा ही दुःख दिया।।१३०।।

सुशान्त ब्राह्मण को दुःख देने के कारण मेरी क्या गति होगी, इस प्रकार राजा के चिन्ता करते रहने पर किसी समय उनके सामने वह ब्राह्मण आ गया।।१३१।।

अपने समक्ष उस ब्राह्मण को देखकर राजा ने शीघ्र ही पहचान लिया और उसने उन द्विजदम्पति के चरणों को पकड़ लिया।।१३२।।

राजा ने बारंबार उनके सामने सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनका पृथक् पृथक् जो घटित वृत्तान्त था, राजा ने उनसे पूछा।।१३३।।

हे विप्र! इसके अनन्तर वे दोनों उस वृत्तान्त का वर्णन करने लगे, जैसा कि घटित हुआ था। हे महर्षिपूजित! राजा ने उनके कहे हुए वृत्तान्त को सुना।।१३४।।

उनके वृत्तान्तों को सुनकर राजा बहुत दुःखित हुआ, इसके बाद उसने उन दोनों को विविध प्रकार का धन दिया और स्वर्णसूत्र से जटित विचित्र वस्त्रों को भी प्रदान किया।।१३५।।

इन्द्रगेहसमं[1] गेहं गाश्चैव पर्यलङ्कृताः[2]।
तस्मिन्नेव तु नगरे वासं चक्रे महामतिः॥१३६॥
दम्पत्योर्वसतोस्तत्र बभूवुः पञ्चपुत्रकाः।
भृत्याश्च मित्रवर्गाश्च तथैवाऽऽसन् यथा पुरा॥१३७॥
जगाम नगरे विप्रः स्वके राज्ञाऽभिनन्दितः।
गत्वा वाराणसीपुर्यां ननन्दे देववन्मुने॥१३८॥
सोऽपि राजा विष्णुपुरे जगाम मुनिसत्तम।
घनानन्दस्य सङ्गत्या तस्थौ वै धनदानतः॥१३९॥

स्कन्द उवाच

इति वासिष्ठकुण्डस्य माहात्म्याद् द्विजसत्तमः।
भ्रष्टजातां तथा लक्ष्मीं पुत्रांश्च मुनिसत्तम॥१४०॥
घनानन्दस्य चरितं यः शृणोति सदा नरः।
पठेद्वा पाठयेद्वाऽपि सोऽपि विष्णुपुरे वसेत्॥१४१॥

इन्द्र के भवन के समान घर और विविध भाँति से अलंकृत गायें भी उन दोनों को राजा ने प्रदान किया। तदनन्तर वह मतिमान् उसी नगर में निवास करने लगा।।१३६।।

उस दम्पति के वहाँ कुछ दिन निवास करने पर पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उन्हें पहले के समान ही सेवक और मित्रवर्ग हो गये।।१३७।।

इसके अनन्तर राजा से अभिनन्दित होकर वह ब्राह्मण अपने नगर में गया। हे मुनि! वह ब्राह्मण वाराणसी पुरी में जाकर देवता के समान आनन्द भोगने लगा।।१३८।।

हे मुनिश्रेष्ठ! घनानन्द नामक ब्राह्मण की सङ्गति और उसे धन प्रदान करने के कारण उस राजा ने भी विष्णुलोक को प्राप्त किया।।१३९।।

स्कन्द ने कहा

हे मुनिसत्तम! वासिष्ठ कुण्ड के माहात्म्य से उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने नष्ट हुई लक्ष्मी और पुत्रों को पुनः प्राप्त कर लिया।।१४०।।

जो मनुष्य घनानन्द के चरित का श्रवण करता है या जो पढ़ता है अथवा पढ़ाता है, वह भी विष्णुपुर में निवास करता है।।१४१।।

---

१. इदं गेहसममिति ख.ग.। २. पयलङ्कृताः इति ख.ग.।

सूत उवाच

श्रुत्वा वासिष्ठतीर्थस्य माहात्म्यं शुभदायकम्।
आश्चर्यं परमं लेभे पुनः पप्रच्छ नारदः॥१४२॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५२।।

सूत जी ने कहा

इस प्रकार वासिष्ठ तीर्थ के शुभदायक माहात्म्य को सुनकर नारद जी को परम आश्चर्य हुआ और वे पुनः पूछने लगे।।१४२।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयागमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ बावन अध्याय पूर्ण हुआ।।१५२।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत- २१८२+१४२=२३२४]



अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दशरथाचलतो निर्गतायाः शान्तानद्या गङ्गासङ्गमे शिवतीर्थाभिधानम्

नारद उवाद

भगवन् पार्वतीपुत्र सर्वशास्त्रविशारद।
तृप्तिर्न जायते पायम्पायं तव वचोऽमृतम्॥१॥
श्रुतं वासिष्ठमाहात्म्यं ब्रह्मकुण्डं तथैव च।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि गङ्गाया उत्तरे तटे॥२॥
याम्ये चैव महाभाग तीर्थानि कथितानि हि।
तेषां विस्तरतो ब्रूह्युत्पत्तिं च भगवन् प्रभो॥३॥

स्कन्द उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ यत्पृष्टोऽस्मि त्वयाऽनघ।
तत्ते सम्प्रति वक्ष्यामि शृणुष्वैकमना मुने॥४॥

दशरथाचल से निकलने वाली शान्ता नदी का गङ्गा के साथ सङ्गम और वहाँ शिवतीर्थ का वर्णन

नारद ने कहा

हे भगवन् पार्वतीनन्दन! आप सर्वशास्त्रविशारद हैं। आपके वचनामृत का बार-बार पान करने पर भी तृप्ति नहीं हो रही है।।१।।

मैंने आपसे वासिष्ठकुण्ड और ब्रह्मकुण्ड के माहात्म्य का श्रवण किया। अब मैं गङ्गा के उत्तर तट के वृत्तान्त को सुनना चाहता हूँ।।२।।

हे महाभाग! आपने गङ्गा के दक्षिण तट पर स्थित तीर्थों का वर्णन किया है। हे भगवन्! आप सामर्थ्यशाली हैं, अब आप उन उत्तर तट के तीर्थों की उत्पत्ति का वर्णन विस्तारपूर्वक करें।।३।।

स्कन्द ने कहा

हे निष्पाप! मुनिश्रेष्ठ! आपको बारंबार धन्यवाद है। जो आपने ऐसी जिज्ञासा हमसे की है। अब मैं आपके प्रति वर्णन कर रहा हूँ, एकाग्र मन से उनका श्रवण करें।।४।।

शिवतीर्थं तु यत् ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे।
तस्योत्पत्तिं च माहात्म्यं प्रथमं शृणु वक्ष्यते॥५॥

दशरथाचलतो या वै आयाति सरिदुत्तमा।
शान्ता नाम्नी तु सा ज्ञेया सर्वकामफलप्रदा॥६॥

गङ्गायाः सङ्गमो यत्र तत्तीर्थं शिवनामकम्।
तस्मिंस्तीर्थे हि विप्रेन्द्र कृतं तत्सर्वमक्षयम्॥७॥

तस्मिंस्तीर्थे हि विप्रेन्द्र वसन्ति सर्वदेवताः।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः॥८॥

सङ्गमे मुनिशार्दूल शान्ताजह्नुजयोस्तथा।
शिवस्य पूजनं कृत्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥९॥

यत्र रामः शिवस्तत्र न भेदः शिवरामयोः।
भेदज्ञाता महाभाग रौरवं नरकं व्रजेत्॥१०॥

गङ्गा के उत्तर तट पर शिवतीर्थ नाम से जो तीर्थ प्रसिद्ध है, सर्वप्रथम उसी की उत्पत्ति और माहात्म्य का वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनें॥५॥

दशरथाचल के ऊपर से जो श्रेष्ठ नदी आ रही है, वह शान्ता नाम की नदी है, ऐसा समझना चाहिये। वह सभी मनोरथों को प्रदान करने वाली है॥६॥

जहाँ पर उस नदी का गङ्गा से सङ्गम हुआ है, उस तीर्थ को शिवतीर्थ नाम से जाना जाता है। हे विप्रश्रेष्ठ! उस तीर्थ में जो कुछ भी कृत्य किया जाता है, वह अक्षय हो जाता है॥७॥

हे विप्रेन्द्र! उस तीर्थ में सभी देवता निवास करते हैं, अत एव उस तीर्थ का माहात्म्य वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है॥८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जहाँ पर शान्ता और जह्नुजा (गङ्गा) का सङ्गम हुआ है, उस स्थान में महादेव की पूजा करने से समस्त कामनाओं का फल प्राप्त हो जाता है॥९॥

जहाँ राम हैं, वहीं शिव भी हैं, शिव और राम में कोई भेद नहीं है, हे महाभाग! इसलिये इन दोनों में भेद समझने वाला व्यक्ति रौरव नरक में जाता है॥१०॥

तस्मान्नारद नो भेदः कर्तव्यः शिवरामयोः।
शिवस्य पूजनं कृत्वा रामस्तुष्यति सानुजः॥११॥
रामस्य पूजनं कृत्वा शिवस्तुष्यति साम्बिकः।
तावुभौ परमौ भक्तौ ज्ञेयौ तौ च परस्परम्॥१२॥
तेषु कुण्डेषु सर्वेषु रामेणामिततेजसा।
शिवलिङ्गान्यनेकानि स्थापितानि हि नारद॥१३॥
अस्मिंस्तीर्थे महाभाग रामो ध्यायति वै शिवम्।
निरन्तरं मुनिश्रेष्ठ शिवतत्परमानसः॥१४॥
अस्मिंस्तीर्थे विशेषेण रामस्तिष्ठति नित्यशः।
अस्मिन् क्षेत्रे तु यो नित्यं शिवपूजनतत्परः॥१५॥
सोऽश्वमेधसहस्त्रस्य वाजपेयशतस्य च।
भूमिदानस्य यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्मुने॥१६॥
अत्र मज्जनमात्रेण नरो नारायणो भवेत्।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्॥१७॥

हे नारद! इसलिये शिव और राम में भेद नहीं समझना चाहिये। शिव का पूजन करने से अनुजसहित श्रीराम प्रसन्न होते हैं।।११।।

इसी प्रकार राम की पूजा करने से अम्बिका पार्वती सहित भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं। उन दोनों को परस्पर भक्त समझना चाहिये।।१२।।

हे नारद! अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्र ने उन कुण्डों के ऊपर अनेक शिवलिङ्गों की स्थापना की है।।१३।।

हे महाभाग! यहाँ श्रीरामचन्द्र जी भगवान् शिव में चित्त लगाकर निरन्तर शिव का ध्यान करते हैं।।१४।।

इस तीर्थ में विशेषरूप से श्रीरामचन्द्र जी नित्य निवास करते हैं। इसलिये इस क्षेत्र में जो शिव के पूजन में तत्पर होता है।।१५।।

हजार अश्वमेध यज्ञ का और सौ वाजपेय यज्ञ का एवं भूमिदान करने का जो फल है, उसे वह मनुष्य प्राप्त करता है।।१६।।

हे मुनि! इस तीर्थ में केवल स्नान करने मात्र से मनुष्य नारायण स्वरूप हो जाता है। वह जिन-जिन मनोरथों की कामना करता है, निश्चय ही उनको प्राप्त करता है।।१७।।

शान्ताजह्नुजयोर्यत्र सङ्गमोऽतीव पुण्यदः।
तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं वक्तुं को वा क्षमो भवेत्॥१८॥

शान्ताया नदीत्वप्राप्तौ हेतुः

नारद उवाच

वीतिहोत्रज देवेश पृच्छामि त्वां वद प्रभो।
का वा शान्ता कथं लेभे नदीत्वं शिवपुत्रक॥१९॥
कथं पुण्यतमा जाता कथं लोकेऽतिविश्रुता।
इति मे संशयं छिन्धि भगवन् भूतभावन॥२०॥

स्कन्द उवाच

साधु पृष्टं महाबाहो भक्तोऽसि मम नारद।
यत्पृष्टोऽहं त्वया विप्र तद्वक्ष्यामि तवाऽनघ॥२१॥
त्रेतायुगे दशरथो राजाऽभूज्ज्ञानवान् मुने।
तस्यात्मजा तु शान्ताऽऽसीत्पितृभक्तिरता सदा॥२२॥

शान्ता और जह्नुजा गङ्गा का जहाँ सङ्गम हुआ है, वह क्षेत्र अत्यन्त पुण्यदायी है। उस तीर्थ के महात्माओं का कौन वर्णन करने में समर्थ हो सकता है।।१८।।

शान्ता के नदीरूप प्राप्ति में हेतु

नारद ने कहा

हे अग्निकुमार, देवेश! मैं आपसे जो पूछता हूँ, उसे मुझे बतलाइये। यह शान्ता कौन थी और इसको नदीत्व की प्राप्ति कैसे हुई थी?।।१९।।

हे शिवकुमार! यह इतना पुण्यदायी कैसे हो गयी और लोक में इतनी प्रसिद्धि कैसे हुई? हे भगवन्, भूतभावन आप मेरे इन सन्देहों को दूर करने की कृपा करें।।२०।।

स्कन्द ने कहा

हे महाबाहु! तुमने अच्छा प्रश्न किया है। हे नारद! तुम मेरे भक्त हो। हे निष्पाप, विप्र! तुमने जो प्रश्न किया है, उसे मैं तुमसे अवश्य कहूँगा।।२१।।

हे मुनि! त्रेतायुग में ज्ञानवान् दशरथ नाम के राजा हुए थे। उन्हीं की पुत्री शान्ता थी, जो सदा पिता की भक्ति में तत्पर रहती थी।।२२।।

एकदा मुनिशार्दूल लोमपादो मुनीश्वरः।
तत्राऽऽगतो ददर्शाऽथ शान्तां तस्यात्मजां शुभाम्॥२३॥
तां दृष्ट्वा स मुनिः प्राह राजानं मधुरं[१] वचः।
विज्ञापयामि देवेश यदि चेन्मयि ते दया॥२४॥
इमां त्वदात्मजां देव कन्यात्त्वेनैव देहि मे।
पालनं च करिष्यामि सुतायास्ते नराधिप॥२५॥

स्कन्द उवाच

इति वै लोमपादस्य वचः श्रुत्वा नराधिपः।
उवाच लोमपादं वै द्विजपूजनतत्परः॥२६॥

दशरथ उवाच

यदुक्तं भगवन् ब्रह्मंस्तद्वदामि तवाऽनघ।
शान्तानाम्नीमिमां कन्यां पालयस्व यथासुखम्॥२७॥
राज्यं धनं गृहं दाराः सर्वं वै तव सुव्रत।
यतो द्विजप्रसादेन सर्वं प्राप्तं मया मुने॥२८॥

हे मुनीश्वर! एक समय लोमपाद नामक श्रेष्ठ मुनि वहाँ आये और उन्होंने उसको देखकर राजा दशरथ से मधुर वचन कहा। यदि आप मेरे ऊपर दयालु हैं, तो मैं आपसे सूचित करता हूँ।।२३।।

उसको देखकर उस मुनि ने राजा दशरथ से मधुर वचन कहा। यदि आप मेरे ऊपर दयालु हैं, तो मैं आपसे सूचित करता हूँ।।२४।।

हे राजन्! अपनी इस कन्या को मुझे कन्या के रूप में प्रदान करें। हे नराधिप! आपकी इस कन्या का पालन मैं करूँगा।।२५।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार के लोमपाद के वचन को सुनकर ब्राह्मणों के पूजन में तत्पर रहने वाले राजा दशरथ ने उन मुनि से कहा।।२६।।

दशरथ ने कहा

हे निष्पाप, ब्रह्मन्! आपसे मैं कह रहा हूँ, उसे श्रवण करें। हे भगवन्! आप मेरी इस कन्या शान्ता को सुखपूर्वक ले जाँय।।२७।।

हे सुव्रत! मेरा यह राज्य, धन, भवन और स्त्री सब कुछ आपका ही है। हे मुनि! यह सब कुछ मैंने ब्राह्मणों की कृपा से ही प्राप्त किया है।।२८।।

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ कन्यां सुन्दराङ्गीं शुभाननाम्।
तां सुशान्तां गृहीत्वा वै तोषयन्नाशिषा नृपम्।।२९।।
आगतः स्वाश्रमे विप्रः पालयामास वै सुताम्।
ततः सा चन्द्रलेखेव वर्द्धते वै दिने दिने।।३०।।
वर्द्धमानां तु तां दृष्ट्वा चिन्ताविष्टो बभूव ह।
कस्मै सुता प्रदेयेयं को वाऽस्याः सदृशो भवेत्।।३१।।
इति चिन्तयतस्तस्य ब्रह्माऽग्रे समदृश्यत।
दृष्ट्वा प्रजापतिं तस्य जग्राह चरणौ मुनिः।।३२।।
दण्डवत्प्रणिपत्याह विधिं लोकपितामहम्।

मुनिरुवाच

हंसवाहन देवेश ब्रूहि मे पृच्छतो विधे।।३३।।

स्कन्द ने कहा

यह कहकर राजा दशरथ ने शुभ अङ्गों वाली और सुन्दर मुख वाली अपनी कन्या को मुनि को प्रदान कर दिया। उस सुशान्त स्वभाव वाली शान्ता को ग्रहणकर मुनि ने राजा को आशीर्वाद देकर सन्तुष्ट किया।।२९।।

इसके अनन्तर विप्र लोमपाद अपने आश्रम में चले आये और पुत्री का पालन करने लगे। वहाँ वह चन्द्रमा की कला के समान प्रतिदिन बढ़ने लगी।।३०।।

इस प्रकार उसको बढ़ता हुआ देखकर वे मुनि चिन्ता से आविष्ट हो गये कि इसके सदृश कौन वर है? जिसे इस कन्या को दान करके दें।।३१।।

ऋषि जिस समय ऐसी चिन्ता कर ही रहे थे, उसी समय उन्हें अपने सामने ब्रह्मा जी का दर्शन हुआ। ब्रह्मा जी को देखकर महर्षि ने उनके चरण पकड़ लिये।।३२।।

लोकपितामह विधाता को दण्डवत् प्रणाम कर बोले।

मुनि ने कहा

हे देवेश, विधाता! आप हंस के वाहन वाले हैं। मैं आप से पूछ रहा हूँ, इसका उत्तर मुझे बतलायें।।३३।।

इयं वै मम कन्याऽस्ति शान्तानाम्नी सुमध्यमा।
अस्याः पतिस्तु भवता को वा सृष्टोऽस्ति भूतले॥३४॥
अभिधानं तु किं तस्य कीदृशैस्तु गुणैर्युतः।
किं शीलं कीदृशो वंश इति शंस महामते॥३५॥

ब्रह्मोवाच

लोमपाद शृणु प्राज्ञ वक्ष्यामि शृणु साम्प्रतम्।
इयं या तव कन्याऽस्ति शान्तानाम्नी द्विजोत्तम॥३६॥
तस्याः पतिर्यथा सृष्टो ऋष्यशृङ्गो महामतिः।
विभाण्डकसुतः श्रीमान् ख्यातो ब्रह्मविदां वरः॥३७॥
तस्मै देया त्वियं कन्या नान्योऽस्याः सदृशः पुमान्।

स्कन्द उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य लोमपाद उवाच ह॥३८॥

यह शान्ता नाम की सुमध्यमा हमारी कन्या है। आपने इस पृथिवी पर इसके पति के रूप में किसकी सृष्टि की है।।३४।।

हे महामति! उस महानुभाव का क्या नाम है, वह किस प्रकार के गुणों से युक्त हैं। उनका चरित्र कैसा है, उनका वंश कैसा है, आप मुझे बतलायें।।३५।।

ब्रह्मा ने कहा

हे प्राज्ञ, लोमपाद! सुनें, मैं सम्प्रति वर्णन करता हूँ। हे द्विजोत्तम! यह जो शान्ता नाम की आपकी कन्या है।।३६।।

मैंने इसके पति के लिये महामति ऋष्यशृङ्ग का निर्माण किया है। वे विभाण्डक मुनि के पुत्र हैं, वे ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ ज्ञाता होने के कारण प्रसिद्ध हैं।।३७।।

उन्हीं को यह कन्या देनी चाहिये; क्योंकि इस कन्या के सदृश अन्य कोई नहीं है।

स्कन्द जी ने कहा

ब्रह्मा के इस प्रकार के वचन को सुनकर महर्षि लोमपाद ने कहा।।३८।।

ब्रह्माणं नतिभिर्युक्तः शान्तया वाचया मुनिः।

दशरथसुतायाः शान्ताया ब्राह्मणत्वावाप्तये ब्रह्मवचनाल्लोमपादस्य शिवतीर्थगमनम्

लोमपाद उवाच

भगवन् यत्त्वया प्रोक्तं तन्मृषा न भवेत् क्वचित्॥३९॥
परं मे संशयो जातस्तं छेत्तुं त्वमिहार्हसि।
क्षत्रियान्वयसम्भूता शान्ता मे दत्तपुत्रका॥४०॥
ऋष्यशृङ्गस्तु मुनिराट् वेदवेदाङ्गपारगः।
अनयोः कथमुद्वाहो भिन्नजात्योर्भविष्यति॥४१॥

ब्रह्मोवाच

शृणु प्राज्ञ द्विजश्रेष्ठ यदुक्तं भवता वचः।
तत्तथैव कथं विप्र इति केचिज्जगुर्वचः॥४२॥

उस समय मुनि लोमपाद ब्रह्मा के प्रति नतमस्तक होकर शान्त वाणी से बोले।

दशरथपुत्री शान्ता के ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिये लोमपाद का शिवतीर्थ-गमन

लोमपाद ने कहा

हे भगवन्! आपने जो कुछ कहा है, वह कदापि मृषा नहीं होगा।।३९।।

किन्तु मुझे सन्देह हो गया है, उसे दूर करने की कृपा करें। यह शान्ता मेरी दत्तक पुत्री है तथा क्षत्रिय कुल में उत्पन्न है।।४०।।

मुनिराज ऋष्यशृङ्ग वेदवेदाङ्ग के ज्ञाता ब्राह्मण हैं। ये दोनों भिन्न जाति के हैं, इसलिये इन दोनों का विवाह परस्पर कैसे हो सकता है।।४१।।

ब्रह्मा ने कहा

हे प्राज्ञ, द्विजश्रेष्ठ! जो आपने वचन कहा है। हे विप्र! कुछ लोग इस सम्बन्ध में ऐसा ही प्रतिपादन करते हैं।।४२।।

तिस्रो भार्या ब्राह्मणस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु।
एका वैश्यस्य भार्या स्यात्तथा शूद्रस्य सुन्दरी॥४३॥
यद्यप्येवं तथा विप्र शृणु कर्म सुशोभनम्।
येनेयं भविता शान्ता ब्राह्मणी चाऽतिसुन्दरी॥४४॥
देवप्रयागकं क्षेत्रं यत्ख्यातं भुवनत्रये।
तत्र वै शिवतीर्थं तु गङ्गाया उत्तरे तटे॥४५॥
प्रातःस्नायी जिताहारो जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
तस्मिंस्तीर्थेऽपि शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वमवाप्नुयात्॥४६॥
विश्वामित्रोऽपि तत्रैव ब्राह्मणत्वमुपेयिवान्।
इन्द्राद्या लोकपालास्तु तत्तत्सिद्धिं ययुः पुरा॥४७॥
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र स्वां कन्यां तत्र प्रेषय।
यथाविध्युक्तमार्गेण शिवकुण्डे शिवालये॥४८॥

किन्तु ब्राह्मण की तीन वर्ण की पत्नी हो सकती है, उसी प्रकार क्षत्रिय की दो जाति की पत्नियाँ हो सकती हैं। वैश्य की एक वर्ण की, शूद्र की भी एक ही वर्ण की सुन्दर पत्नी होती है।।४३।।

हे विप्र! यद्यपि यह उचित नियम है, तथापि यह शान्ता जिस प्रकार अतिसुन्दरी ब्राह्मणी हो जायेगी, उस उचित सुन्दर कर्म को बतला रहा हूँ, उसे सुनें।।४४।।

देवप्रयाग नामक एक क्षेत्र है, जो त्रिलोकी में विख्यात है, वहाँ पर गङ्गा के उत्तर तट पर शिवतीर्थ है।।४५।।

उस तीर्थ में प्रात: स्नान करने वाला, भोजन की इच्छा पर विजय प्राप्त करने वाला, क्रोध को जीतने वाला और इन्द्रियों को वश में करने वाला शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है।।४६।।

उसी तीर्थ में विश्वामित्र ने भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया था। प्राचीन-काल में इन्द्र आदि समस्त दिक्पालों ने भी वहाँ पर अपने मनोनुकूल सिद्धियों की प्राप्ति की थी।।४७।।

हे विप्रश्रेष्ठ! इसलिये आप भी अपनी पुत्री को वहाँ पर भेजिये। आप वह विधि के द्वारा बताये गये मार्ग के अनुसार शिवालय और शिवकुण्ड में स्नान व्रत

स्नानव्रतादिकं चैव कारय त्वं दृढव्रत।
ततो वै भविता शान्ता ब्राह्मणी सुमनोहरा॥४९॥
ऋष्यशृङ्गोऽपि शान्तायै गङ्गादक्षिणकूलके।
करिष्यति तपस्तीव्रं देवैरपि सुदुश्चरम्॥५०॥
सूर्यतीर्थादूदूर्ध्वभागे शरविक्षेपमात्रके।
ऋष्यशृङ्गाभिधं तीर्थं भविष्यति सुपुण्यदम्॥५१॥
ऋष्यशृङ्गाभिधे तीर्थे ये स्नास्यन्ति नरोत्तमाः।
कुलानां तु सहस्त्रं तैस्तारितं स्यान्न संशयः॥५२॥
तत्र स्नातं तपस्तप्तं हुतं जप्तं तथैव च।
सर्वं शिवप्रीतिकरमक्षयं तु भवेद् द्विज॥५३॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे ब्रह्मा तत्रैव च पितामहः।
लोमपादोऽपि तच्चक्रे यदुक्तं विष्णुसूनुना॥५४॥

आदि का आचरण उसके द्वारा सम्पन्न करवाइये। हे दृढ़व्रती! ऐसा आचरण करने से आपकी पुत्री शान्ता सुमनोहरा ब्राह्मणी बन जायेगी।।४८-४९।।

ऋष्यशृङ्ग भी शान्ता की प्राप्ति के लिये गङ्गा के दक्षिणी तट पर ऐसा उग्र तप करेंगे, जो देवताओं के लिये भी कठिन है।।५०।।

सूर्यक्षेत्र से ऊपर की ओर एक बाण की दूरी पर शुभ पुण्य को देने वाला ऋष्यशृङ्ग नामक तीर्थ होगा।।५१।।

उस ऋष्यशृङ्ग नामक तीर्थ में जो श्रेष्ठ मनुष्य स्नान करेंगे, निस्सन्देह उनके सहस्त्र कुलों का उद्धार हो जायेगा।।५२।।

हे द्विज! वहाँ स्नान, तप, होम, जप जो कुछ भी किया जाता है, वह सब अक्षय होकर भगवान् शङ्कर को प्रीति सम्पादन करने का साधन होता है।।५३।।

स्कन्द ने कहा

यह कहकर ब्रह्मा उनके देखते ही देखते तत्काल अन्तर्धान हो गये। इसके अनन्तर मुनि लोमपाद ने भी उसी प्रकार किया, जैसा कि विष्णुपुत्र ब्रह्मा ने बतलाया था।।५४।।

प्रेषयामास तां कन्यां शिवकुण्डे सुदुर्लभे।
साऽपि तत्र तपश्चक्रे ध्यायन्ती शिवमव्ययम्॥५५॥
व्याघ्रचर्मपरीधानं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
जटाजूटधरं देवं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम्॥५६॥
ब्रह्मविष्णुस्तुतं भीमं सेव्यमानं सुरासुरैः।
शिवकुण्डे महाभाग सस्नौ प्रातः सदा हि सा॥५७॥
एवं षणमासपर्यन्तं तपः कृतवती मुने।
आविर्बभूव भगवान् महादेवः सहोमया॥५८॥
दृष्ट्वा सदाशिवं शान्ता देवं स्तोतुम्प्रचक्रमे॥५९॥

शान्तोवाच

नमः शिवाय शम्भवे कपालमालधारिणे।
नमोऽस्तु पार्वतीपते जटाकलापधारिणे॥६०॥

उन्होंने अपनी उस कन्या शान्ता को अत्यन्त दुर्लभ शिवकुण्ड पर भेजा। वहाँ जाकर वह अविनाशी भगवान् शङ्कर का ध्यान करती हुई तप करने लगी।।५५।।

भगवान् शङ्कर व्याघ्रचर्म का परिधान धारण करते हैं, उनकी कान्ति शुद्ध स्फटिक के समान है, जटाजूट को धारण करने वाले देव तीन नेत्र वाले और वृषभध्वज हैं।।५६।।

ब्रह्मा, विष्णु सभी उनकी स्तुति करते हैं, सुर और असुर सब उनकी सेवा करते हैं, ऐसे शिव का ध्यान करती हुई शान्ता शिवकुण्ड में प्रातः समय ही नित्य स्नान करती थी।।५७।।

हे मुनि नारद! इस प्रकार छः मास पर्यन्त उसने तप का आचरण किया। तदनन्तर भगवान् महादेव उमा के साथ वहाँ प्रकट हुए।।५८।।

तब भगवान् सदाशिव को देखकर देवी शान्ता ने उस देवता की स्तुति करनी प्रारम्भ की।।५९।।

शान्ता ने कहा

कपाल की माला धारण करने वाले कल्याणमूर्ति श्री शम्भु को नमस्कार है। आप जटाओं के समूह को धारण करते हैं एवं पार्वती के स्वामी हैं, आपको नमस्कार है।।६०।।

समस्तनिर्जरस्तुत क्षितिस्वरूप ते नमः।
नमस्त्रिनेत्रशालिने समस्तदैत्यहारिणे॥६१॥

शिवस्त्वं हि परं ब्रह्म चित्स्वरूपस्त्वमेव हि।
युगान्ते लयकर्त्ता त्वं सृष्टिस्त्वं कुरुषे शिव॥६२॥

स्थितिकर्त्ता त्वमेवाऽसि योगिभिस्त्वं हि चिन्त्यसे।
गुणात्मा निर्गुणस्त्वं हि त्रयीरूपस्त्रयीमयः॥६३॥

स्कन्द उवाच

इति स्तुत्वा महेशानं शान्ता शङ्करतत्परा।
प्रसन्नो भगवानूचे शान्तां वै भक्तितत्पराम्॥६४॥

शिव उवाच

देवि[१] शान्ते महाभागे भक्ताऽसि मम सुव्रते।
वरं वरय शीघ्रं त्वं यत्त्वन्मनसि वर्तते॥६५॥

आपकी स्तुति सम्पूर्ण देवता करते हैं, पृथिवीस्वरूप आप ही हैं, आपको नमस्कार है। आप तीन नेत्रों से सुशोभित होते हैं तथा आप समस्त दैत्यों का संहार करने वाले हैं, आपको नमस्कार है।।६१।।

हे शिव! आप ही ब्रह्मस्वरूप हैं, चैतन्य रूप भी आप ही हैं। आप ही सृष्टि को रचते हैं और प्रलयकाल में सृष्टि का संहार भी आप ही करते हैं।।६२।।

सृष्टि की स्थिति (पालन) करने वाले भी आप ही हैं, योगीजन भी आपका ही चिन्तन करते हैं, निर्गुण होकर भी आप गुणात्मक हैं, आप त्रयीरूप भी हैं और वेदत्रयी के बनाने वाले भी हैं।।६३।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार स्तुति कर शान्ता ने अपने चित्त को महेश्वर में संलग्न कर दिया। तदनन्तर भगवान् प्रसन्न होकर भक्ति में तत्पर शान्ता से इस प्रकार बोले।।६४।।

शिव ने कहा

हे देवी! शान्त स्वभाव वाली तुम भाग्यशाली और सुन्दर व्रत का आचरण करने वाली हो। तुम हमारी भक्त हो। जो तुम्हारे मन में है, उसे तुम शीघ्र मुझसे वर के रूप में माँग लो।।६५।।

१. देवी इति ख.।

शान्तोवाच

देवदेव प्रसन्नोऽसि यदि चेन्मयि शङ्कर।
क्षत्रियाऽहं महादेव ब्राह्मणी स्यां तथा कुरु॥६६॥
ऋष्यशृङ्गो मुनिश्रेष्ठो भर्त्ता स्यान्मम शङ्कर।
भुक्त्वा भोगानशेषांस्तु त्वत्संसर्गमवाप्नुयाम्॥६७॥

शिव उवाच

यदुक्तं वचनं देवि तत्तथैव भविष्यति।
ऋष्यशृङ्गं पतिं श्रेष्ठं प्राप्स्यसि त्वं दृढव्रते॥६८॥
तेन सार्द्धं महाभोगान् भुक्त्वा काममवाप्य च।
नदीरूपेण पश्चात्ते मत्कुण्डे सङ्गमो भवेत्॥६९॥
ततो लोकेषु विख्याता शान्तानाम्नी नदी शुभा।
भविष्यसि महापुण्या स्वर्गमोक्षप्रदायिनी॥७०॥

शान्ता ने कहा

हे देवदेव, शङ्कर! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मैं क्षत्रिय हूँ। हे महादेव! जिस प्रकार मैं ब्राह्मणी बन जाऊँ, वैसा कार्य करें।।६६।।

हे शङ्कर! ऋष्यशृङ्ग नामक श्रेष्ठ मुनि हमारे पति हों, मुझे समस्त भोगों का उपभोग प्राप्त हो, अन्त में मैं आपकी सङ्गति को प्राप्त कर जाऊँ।।६७।।

शिव ने कहा

हे देवी! जैसा तुमने वचन कहा है, वह सब वैसा ही होगा। हे दृढ़व्रतशालिनी! तुम ऋष्यशृङ्ग को श्रेष्ठ पति के रूप में प्राप्त करोगी।।६८।।

उनके साथ महान् भोगों का उपभोग कर सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करने के अनन्तर नदी के रूप में तुम्हारा मेरे कुण्ड में सङ्गम होगा।।६९।।

इसके अनन्तर तीनों लोकों में शान्ता नाम की नदी के नाम से विख्यात होओगी। तुम महापुण्य प्रदान करने वाली एवं स्वर्ग तथा मोक्ष को देने वाली हो जाओगी।।७०।।

ऋष्यशृङ्गेण सह शान्तायाः विवाहः, सुखभोगानन्तरं नदीत्वावाप्तिकथनम्

स्कन्द उवाच

इत्युक्तवान् महादेवः शान्तायै मुनिपुङ्गव।
तत्रैवाऽन्तर्दधे देवो नीलकण्ठः स्वयं मुने॥७१॥
ततः शिवप्रसादेन ब्राह्मणी समजायत।
ऋष्यशृङ्गेण मुनिना सहोद्वाहोऽप्यजायत॥७२॥
सैव शान्ता नदी जाता दशरथाचलसङ्गिनी।
शिवतीर्थे तु तस्यां वै सङ्गमोऽभून्महामुने॥७३॥
ततः प्रभृति विख्याता[1] नदी हि भुवनत्रये।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥७४॥
शिवतीर्थे मासमात्रं नरः शिवपरायणः।
अस्मिंस्तीर्थे भूमिदेवो योऽथर्वशिरसं परम्॥७५॥

ऋष्यशृङ्ग के साथ शान्ता का विवाह, सुखोपभोग के अनन्तर नदीत्व-प्राप्ति का कथन

स्कन्द ने कहा

हे मुनिश्रेष्ठ! भगवान् शङ्कर ने शान्ता के लिये इस प्रकार का वचन कहा। हे मुनि! इसके बाद नीलकण्ठ भगवान् शिव वहीं पर अन्तर्धान हो गये।।७१।।

इसके बाद शिव की कृपा से शान्ता ब्राह्मणी बन गयी और ऋष्यशृङ्ग मुनि के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ।।७२।।

वही दशरथ नामक पर्वत से निकलने वाली शान्ता नाम की नदी बन गयी। हे महामुनि! उसी का शिवतीर्थ में गङ्गा के साथ सङ्गम हुआ है।।७३।।

उसी समय से वह नदी त्रिलोकी में विख्यात हो गयी है। उस नदी में भक्तिपूर्वक स्नान कर मनुष्य शिवसायुज्य को प्राप्त करता है।।७४।।

इस तीर्थ में एक मास पर्यन्त मनुष्य को शिव की भक्ति में तत्पर होकर रहना चाहिये। इस तीर्थ में जो ब्राह्मण अथर्ववेदान्तर्गत नीलरुद्रोपनिषद् तथा

१. ख्यातेति ख.।

नीलरुद्रोपनिषदं रुद्राध्यायं तथैव च।
रुद्रसाम्नाऽपि च तथा यः पठेत्प्रयतो नरः॥७६॥
स रुद्रलोकमातिष्ठेद्यावदाभूतसम्प्लवम्।
इति ते कथितं दिव्यं शैवतीर्थमनुत्तमम्॥७७॥
यस्याऽऽख्यानस्य पठनाच्छ्रवणादपि नारद।
शिवलोकं समासाद्य शिवेन सह मोदते॥७८॥

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५३।।

रुद्राध्याय का अथवा रुद्रसाम का नियमपूर्वक पाठ करता है, वह मनुष्य प्रलयपर्यन्त शिवलोक में निवास करता है। इस प्रकार मैंने सर्वोत्तम शिवतीर्थ का वर्णन आपके प्रति किया है।।७५-७७।।

हे नारद! इस आख्यान के पाठ करने से तथा श्रवण करने से मनुष्य शिवलोक को प्राप्त कर शिव के साथ आनन्द का उपभोग करता है।।७८।।

।। इस प्रकार स्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयाग-माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ तिरपन अध्याय पूर्ण हुआ।।१५३।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-२३२४+७८=२४०२]



अथ चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दुराचाररतस्य उद्दालकद्विजवरस्य वेश्योपदेशतो देवप्रयागे समागतस्य पञ्चशतवेतालैः सह समागमः

स्कन्द उवाच

अथ वेतालकुण्डस्य माहात्म्यं शृणु नारद।
यथावत् कथयिष्यामि विस्तरेण तवाऽनघ॥१॥
शिवकुण्डादूर्ध्वभागे तत्कुण्डं विद्यते किल।
यत्रैवाऽऽस्ते महाभाग शिला वेतालसञ्ज्ञिका॥२॥
वेतालकुण्डे यः स्नात्वा शिलास्पर्शं करोति हि।
ध्यायन्नारायणं देवं तस्य पुण्यफलं शृणु॥३॥
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।
सर्वदानेषु यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्नरः॥४॥

वेश्या के उपदेश से दुराचाररत उद्दालक नामक ब्राह्मण का देवप्रयाग में वेतालों के साथ समागम

स्कन्द ने कहा

हे नारद! सम्प्रति तुम वेतालकुण्ड के माहात्म्य का श्रवण करो। हे निष्पाप! अब मैं विस्तारपूर्वक यथावत् वर्णन कर रहा हूँ।।१।।

विष्णुकुण्ड से ऊपरी भाग में वह कुण्ड है। हे महाभाग! वहाँ पर ही वेताल नामक शिला है।।२।।

जो मनुष्य वेतालकुण्ड में स्नान कर उस शिला का स्पर्श करता है और भगवान् नारायण का ध्यान करता है, उसके पुण्य के फल का श्रवण करो।।३।।

समस्त यज्ञों का जो पुण्य है, सभी तीर्थों का जो फल है, सभी प्रकार के दान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सब पुण्य यहाँ नारायण का ध्यान और शिला के स्पर्श से प्राप्त हो जाता है।।४।।

वेतालकुण्डजां मृत्स्नां सर्वाङ्गे लेपयेत्तु यः।
तस्य तत्कालिकं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥५॥
मासमात्रं तु यः स्नाति कुण्डेऽस्मिन् मुनिपुङ्गव।
कोटिकल्पसहस्राणि स वै विष्णुपुरे वसेत्॥६॥
कर्मक्षयादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः।
भुक्त्वा भोगानशेषांस्तु पुनर्विष्णुपुरे व्रजेत्॥७॥
अस्य कुण्डस्य माहात्म्याद्यथा प्रापुः परां गतिम्।
वेताला बहवो विप्र तच्छृणुष्व महामुने॥८॥

उद्दालकब्राह्मणस्याख्यानम्

बभूवोद्दालकः कश्चिद् ब्राह्मणो ब्राह्मणाधमः।
चौरकर्मरतो नित्यं गृहं भङ्क्त्वा नृशंसकः॥९॥
एका वाराङ्गना काचिन्नाम्ना रूपवती स्मृता।
तस्यामुद्दालको रक्तस्तामेव संस्मरन् सदा॥१०॥

जो व्यक्ति वेतालकुण्ड की मृत्तिका को अपने सम्पूर्ण अङ्ग में लेप करता है, उसका तत्काल का किया गया पाप उसी समय विनष्ट हो जाता है।।५।।

हे मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्य एक मास पर्यन्त इस कुण्ड में स्नान करता है, वह सहस्र करोड़ कल्प पर्यन्त विष्णुलोक में निवास करता है।।६।।

जब उसके पुण्य-कर्म का क्षय हो जाता है, तब वह यहाँ मर्त्यलोक में आकर धार्मिक राजा होता है। यहाँ समस्त भोगों का उपभोग करने के अनन्तर पुनः विष्णुपुर में निवास करता है।।७।।

हे महामुनि! इस कुण्ड के माहात्म्य से जिस प्रकार बहुत से वेतालों को परम गति का लाभ हुआ, उसी का आख्यान श्रवण करो।।८।।

उद्दालक नामक ब्राह्मण का आख्यान

प्राचीनकाल में उद्दालक नामक एक नीच कर्म करने वाला ब्राह्मण था। वह निर्दय था तथा घर को तोड़-फोड़कर नित्य ही चोरी किया करता था।।९।।

एक रूपवती नाम की कोई वराङ्गना थी, उद्दालक उसमें आसक्त हो नित्य उसी का स्मरण किया करता था।।१०।।

अर्जयित्वा धनं चौरकर्मणा विपुलं मुने।
तस्यै ददाति विप्रोऽसौ काममोहविमोहितः॥११॥
कदाचित्पथिकानां हि धनं हृत्वा ददाति सः।
ब्राह्मणान् मारयित्वा च तेभ्यो हृत्वा धनं बहु॥१२॥
स्वगृहस्थं धनं चैव रूपवत्यै प्रयच्छति।
साऽपि वेश्या प्रसन्नाऽभूद्धनं दृष्ट्वा सुपुष्कलम्॥१३॥
उवाचोद्दालकं प्रीत्या स्वधर्मनिरता सदा।

वेश्योवाच

भो भो द्विज कुतो लब्धमीदृशं विपुलं धनम्॥१४॥
तद् ब्रूहि मम हे कान्त त्वदन्यो नास्ति मे पतिः।
यो ददाति धनं नित्यं स्वर्णमुक्ताफलादिकम्॥१५॥

उद्दालक उवाच

किं पृच्छसि हि मे कान्ते गृहद्रव्यं यथासुखम्।
चौरोऽहं मुनिहन्ताऽहं परद्रव्यापहारकः॥१६॥

हे मुनि! काम से मोहित वह उद्दालक ब्राह्मण चौर कर्म करके बहुत धन लाकर उसको प्रदान करता था।।११।।

वह कभी पथिकों को मारकर उनका प्रभूत धन हरण कर, कभी ब्राह्मणों को मारकर उनका धन लाकर उस वेश्या को देता था।।१२।।

कभी अपने ही घर का प्रभूत धन लाकर उसको देता था। वह वेश्या भी पुष्कल धन प्राप्त कर बहुत प्रसन्न होती थी।।१३।।

किसी समय सर्वदा अपने धर्म में निरत रहने वाली वेश्या ने उद्दालक से प्रेमपूर्वक कहा।

वेश्या ने कहा

हे द्विज! तुम्हें इतना प्रभूत धन कहाँ से प्राप्त होता है।।१४।।

हे कान्त! आप इसे बतलायें। हे कान्त! तुम्हारे अतिरिक्त मेरा अन्य कोई पति नहीं है, क्योंकि आप सुवर्ण, मुक्ताफल आदि लाकर मुझे प्रदान किया करते हैं।।१५।।

उद्दालक ने कहा

हे कान्ते! क्या पूछती हो? मेरे घर में यथेष्ट धन है, फिर मैंने चोर बनकर मुनियों को मारकर पराये द्रव्य का अपहरण किया है।।१६।।

त्वत्सङ्गार्थमिदं कर्म कृतं कान्ते मयाऽशुभम्।
ब्राह्मणा मानुषाश्चैव पथिका निहता मया॥१७॥

वेश्योवाच

हन्त हन्त हरे ब्रह्मन् पापीयानसि पापकृत्।
एवं मा कुरु पापं हि ब्रह्महत्यादिकं द्विज॥१८॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्दुर्गतिस्ते भविष्यति।
शृणु विप्र नराणां हि चेष्टितं पूर्वजन्मजम्॥१९॥
ये वै परस्वहरणे तत्परा ब्रह्मघातकाः।
परदारेषु संसक्तास्ते वै निरयगामिनः॥२०॥
परनिन्दारता[1] ये वै परद्रोहकराः सदा।
वेश्यायां निरता ये वै तेऽपि दुर्गतिगामिनः॥२१॥

हे कान्ते! तुम्हारे मिलन की कामना से मैंने इस प्रकार के अशुभ कर्म को भी किया है। मैंने इसके लिये ब्राह्मणों, पथिकों और कितने अन्य मनुष्यों का वध किया है।।१७।।

वेश्या ने कहा

खेद है, महान् खेद है। हे ब्राह्मण! तुम बहुत बड़े पापी हो। अरे पापी द्विज! तुम इस प्रकार के ब्रह्महत्या आदि पाप का आचरण मत करो।।१८।।

इस प्रकार के ब्रह्महत्या आदि पापकर्म करने से तुम्हारी दुर्गति होगी। हे विप्र! मनुष्यों के पूर्वजन्म के अर्जित कर्मों का श्रवण करो।।१९।।

जो मनुष्य पराये द्रव्य का अपहरण करने में तत्पर रहता है, जो ब्राह्मणों का वध करता है तथा जो मनुष्य दूसरे की स्त्री में आसक्त रहता है, ऐसे मनुष्य नरक में गमन करते हैं।।२०।।

जो दूसरे की निन्दा करने में रत रहते हैं तथा जो सर्वदा दूसरे से द्रोह करते हैं, जो वेश्या में ही आसक्त रहते हैं, ऐसे लोग भी निश्चित रूप से नरकगामी होते हैं।।२१।।

---

१. परनिन्दारतः इति ख.।

तस्मात्त्वं त्यज दुर्बुद्धे पापकर्म शुभं कुरु।
भगवन्तं दयासिन्धुं भज विप्र निरन्तरम्॥२२॥
ततस्ते सर्वपापानि नाशं यास्यन्ति दुर्मते।
मा विलम्बं कुरु प्राज्ञ गच्छ विष्णवालयं शुभम्॥२३॥

स्कन्द उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽभवत्।
वेश्यां रूपवतीं प्राहोद्दालको ब्राह्मणाधमः॥२४॥

उद्दालक उवाच

वराङ्गने रूपवति त्वं माताऽसि ममाऽनघे।
त्वं गुरुर्मे त्वमेवाऽसि शास्त्री सुन्दरि सुव्रते॥२५॥
उपदेशं कुरु प्राज्ञे यथा स्यां विष्णुलोकभाक्।
मम सर्वाणि पापानि यथा नश्यन्ति तद्वद॥२६॥

इसलिये हे दुर्बुद्धि! तुम ऐसे पापकर्म का त्याग करो और शुभ कर्म का आचरण करो। हे विप्र! भगवान् दया के सागर हैं, तुम उनका निरन्तर स्मरण करो।।२२।।

हे दुर्मति! ऐसा करने से तुम्हारे सभी पाप नष्ट हो जायेंगे। हे प्राज्ञ! इसलिये तुम विलम्ब मत करो, शीघ्र ही शुभफलदायक भगवान् विष्णु के धाम में जाओ।।२३।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार उस वेश्या के वचन को सुनकर वह ब्राह्मण उद्दालक अति विस्मित हुआ। तदनन्तर उस नीच ब्राह्मण उद्दालक ने उस रूपवती वेश्या से कहा।।२४।।

उद्दालक ने कहा

हे श्रेष्ठ रूपवती स्त्री! तुम अत्यन्त निष्पाप हो, तुम मेरी माता हो। तुम मेरी गुरु हो। हे सुन्दरि, तुम श्रेष्ठ व्रत का पालन करने वाली हो, तुम शास्त्र की जानकार हो।।२५।।

हे बुद्धिमति! तुम मुझे इस प्रकार का उपदेश दो, जिससे मैं विष्णुलोक को प्राप्त करने का भागी बन सकूँ। मेरे सभी पाप जिस प्रकार नष्ट हों, ऐसे उपाय को तुम बतलाओ।।२६।।

वेश्योवाच

श्रृणु विप्र महाभाग धन्योऽसि त्वं हि सुव्रत।
यस्येयमीदृशी बुद्धिर्जाता वै विष्णुसेवने॥२७॥
देवप्रयागकं क्षेत्रं श्रूयते यद् भुवि द्विज।
तत्र भागीरथीतीरे कुण्डं परमदुर्लभम्॥२८॥
शिवतीर्थादूर्ध्वभागे क्रोशखण्डप्रमाणकम्[१]।
तत्र गच्छ हरिं ध्यायन् स्नानं कुरु यथाविधि॥२९॥
दिनानां पञ्चके विप्र गमिष्यसि परां गतिम्।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुक्तिस्ते भविता द्विज॥३०॥

स्कन्द उवाच

इति तस्या वचो धृत्वा हृदि विप्रो ययौ ततः।
देवप्रयागके क्षेत्रे यत्र वैतालिकी शिला॥३१॥

वेश्या ने कहा

हे महाभाग विप्र! सुनो, तुम उत्तम व्रत का आचरण करने वाले हो, इसलिये तुम धन्य हो। भगवान् विष्णु की सेवा करने में तुम्हारी इस प्रकार की बुद्धि हुई है।।२७।।

हे द्विज! इस भूमण्डल पर देवप्रयाग नामक जो तीर्थ विख्यात है, वहाँ गङ्गा जी के तट पर परम दुर्लभ एक कुण्ड है।।२८।।

शिवतीर्थ से ऊपर की ओर एक कोस की दूरी पर यह तीर्थ है, वहाँ जाओ और भगवान् नारायण का स्मरण करते हुए विधि के अनुसार स्नान करो।।२९।।

हे विप्र! पाँच ही दिन में तुम्हें सद्गति की प्राप्ति होगी। हे द्विज! ब्रह्महत्या आदि पापों से भी तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी।।३०।।

स्कन्द जी ने कहा

इसके बाद वेश्या के ऐसे वाक्यों को अपने हृदय में धारण कर वह ब्राह्मण देवप्रयाग क्षेत्र में गया, जहाँ पर वैतालिकी शिला है।।३१।।

---

१. प्रमाणके इति क.।

स्नाता तीर्थवरे पुण्ये दृष्ट्वान् प्रेतदेहकान्।
सङ्ख्यया वै पञ्चशतं वेतालान् विकटाननान्॥३२॥
स्रवन्मूत्रपुरीषांश्च पूयशोणितसम्प्लुतान्।
वर्तुलाक्षान् बृहद्दन्तान् क्षुत्तृष्णापरिपीडितान्॥३३॥
निर्मांसानस्थिशेषांश्च हाहाकाररवांस्तथा।
तान् दृष्ट्वोद्दालकः प्राह विस्मयाविष्टमानसः॥३४॥

उद्दालक उवाच

भो भो भयानका यूयं के वै भवथ निर्भयाः।
किमर्थं वै स्थिता ह्यत्र तीर्थानां प्रवरे शुभे॥३५॥

वेताला उचुः

शृणु प्राज्ञ महाभाग यद्वै वृत्तं दुरात्मनाम्।
अस्माकं तत्तथा ब्रूमो दयावानसि दुःखितान्॥३६॥

पवित्र उस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान किया, तब उस ब्राह्मण ने विकट मुखवाले तथा प्रेतदेह धारण करने वाले पाँच सौ वेतालों का अवलोकन किया।।३२।।

उनके शरीर से मूत्र और पुरीष निकल रहा था, पीब और खून से लथपथ शरीर वाले, गोले-गोले नेत्र वाले, बड़े-बड़े दाँत वाले तथा वे सब भूख और प्यास से पीड़ित हो रहे थे।।३३।।

उनके देह में मांस तो बिल्कुल नहीं था, केवल अस्थियाँ शेष रह गयी थीं, वे सब हाहाकार कर रहे थे, उन्हें देखकर उद्दालक का मन बड़ा विस्मित हुआ, तदनन्तर उसने वेतालों से कहा।।३४।।

उद्दालक ने कहा

अरे भयानक रूप धारण करने वाले! तुम लोग कौन हो? जो यहाँ निर्भय रह रहे हो। इस शुभ श्रेष्ठ तीर्थ में तुम लोग किसलिये रह रहे हो।।३५।।

वेतालों ने कहा

हे बुद्धिमान् महाभाग! हम दुष्टों का जो वृत्तान्त है, उसे आप श्रवण करें, क्योंकि हम दुखियों के ऊपर आपको दया आयी है, इसलिये हम सब कुछ वर्णन करते हैं।।३६।।

पुरा वयं तु गन्धर्वा अभूम द्विजसत्तम।
इन्द्रस्याग्रे वर्तमाना गायन्तो गानमुत्तमम्॥३७॥
कदाचिद्दैवयोगेन गता वै हिमवर्तते।
विहर्तुं यौवनोन्मत्ता रूपलावण्यगर्विताः॥३८॥
अष्टावक्रं दृष्टवन्तस्तप्यमानं महत्तपः।
कृशं वै सर्वतो वक्रमस्थिशेषं जटान्वितम्॥३९॥
तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलं हासं चक्रम पापिनः।
अस्मान् दृष्ट्वा मुनिस्तत्र शशापेदमुदीरयन्॥४०॥
रे रे रूपमदोन्मत्ता मां दृष्ट्वा हसिता यतः।
अतो यूयं दुराचारा वेतालत्वं गमिष्यथ॥४१॥
इति शप्त्वा मुनिवरो विरराम महामतिः।
शापात्त्रस्ता मुनेर्विप्र वयमूचिम तं मुनिम्॥४२॥
अष्टावक्र मुनिश्रेष्ठ शिवभक्तिपरायण।
अस्मादृशां त्वमेवाऽसि त्राता पापात्मनां मुने॥४३॥

हे द्विजश्रेष्ठ! प्राचीनकाल में हम सब गन्धर्व थे और इन्द्र के समक्ष रहकर हम लोग उत्तमोत्तम गान किया करते थे।।३७।।

किसी समय दैवयोग से हम लोग हिमालय पर विहार करने के लिये गये, उस समय हम लोग यौवन से उन्मत्त और अपने रूपसौन्दर्य से गर्वयुक्त थे।।३८।।

वहाँ हमने उग्र तप करते हुए कृश शरीर वाले अष्टावक्र जी को देखा, उनके शरीर में अस्थि ही अस्थि शेष रह गयी थी, उनका देह अत्यन्त कृश और सभी ओर से टेढ़ा-मेढ़ा था और वे जटाजूट धारण कर रहे थे।।३९।।

उस मुनिश्रेष्ठ को देखकर हम पापियों ने उनका उपहास कर दिया। तब यह कहते हुए मुनि ने हम लोगों को शाप दे दिया।।४०।।

अरे सुन्दर रूप का अभिमान करने वालों! तुम लोग मुझे देखकर हँसे हो। इसलिये हे दुराचारियों! तुम लोग वेताल हो जाओ।।४१।।

इस प्रकार शाप देकर मतिमान् मुनीश्वर मौन हो गये। हे विप्र! मुनि के शाप से भयभीत होकर हम लोगों ने उस मुनि से कहा।।४२।।

हे अष्टावक्र! आप श्रेष्ठ मुनि हैं। आप शिव की भक्ति में परायण रहने वाले हैं। हे मुनि! हमारे जैसे पापियों की रक्षा करने वाले आप ही हैं।।४३।।

त्वत्तो नास्ति गतिः काचिदस्माकं मुनिसत्तम।
रक्ष रक्ष दह्यमानान् शापाग्नेस्तव सुव्रत॥४४॥
क्षमां कुरु महाभाग क्षमासारा हि साधवः।
भवादृशा नापराधं मन्यन्ते हि दुरात्मनाम्॥४५॥
इति विज्ञापितोऽस्माभिरष्टावक्रो मुनीश्वरः।
उवाच वचनं प्रीत्या स्तुत्या संहृष्टमानसः॥४६॥

अष्टावक्र उवाच

अमोघो मामकः शापो भविष्यत्येव गायकाः।
गच्छत प्रेतदेहेन कियत्कालं सुतीर्थके॥४७॥
क्षेत्रे क्षेत्रगणाधीशे प्रयागे देवपूर्वके।
वासं कुरुत दुर्वृत्ता यावदुद्दालको मुनिः॥४८॥
रूपवत्या वेश्यया वै प्रेषितश्चाऽऽगमिष्यति।
भवतां तेन संवादो भविष्यति यदा तदा॥४९॥

हे मुनिसत्तम! आपके अतिरिक्त हम लोगों के लिये अन्यत्र कोई गति नहीं है। हे सुव्रत! आपके शापरूपी अग्नि से जल रहे हम लोगों की आप ही रक्षा करें, रक्षा करें।।४४।।

हे महाभाग! आप क्षमा करें, क्योंकि साधु पुरुष क्षमाशील होते हैं। आप जैसे लोग दुष्टों के अपराधों पर ध्यान नहीं देते हैं।।४५।।

जब मुनिराज अष्टावक्र जी की हम लोगों ने इस प्रकार स्तुति की, तब वे प्रीतिपूर्वक हम लोगों से बोले; क्योंकि हमारी स्तुति से उनका मन प्रसन्न हो गया था।।४६।।

अष्टावक्र ने कहा

हे गन्धर्वों! हमारा शाप तो अवश्य फलीभूत होगा। इसलिये तुम लोग प्रेत शरीर धारण कर उस तीर्थ में जाओ।।४७।।

वह देवप्रयाग तीर्थ समस्त क्षेत्रों का अधीश्वर है, जब तक उद्दालक मुनि वहाँ नहीं आते हैं, तब तक तुम लोग वहाँ निवास करो।।४८।।

वे मुनि रूपवती नामक वेश्या के द्वारा प्रेरित होकर वहाँ आयेंगे। जब तुम लोगों का उनके साथ संवाद होगा।।४९।।

पुनः स्वकं परं रूपं प्राप्य वै विहरिष्यथ।

वेताला ऊचुः

इत्युक्त्वाऽस्मान् वक्रगात्रो गतस्तप्तुं हिमालये॥५०॥
वयं चाऽत्रैव सम्प्राप्ता ध्यायन्तस्त्वां[१] द्विजोत्तमम्।
सम्प्राप्तस्त्वं भाग्यवशादिदानीं पुरुषर्षभ॥५१॥
पश्य रूपं तु यत्पूर्वं बभूव प्रवरं हि नः।
साम्प्रतं त्वत्प्रसादेन जातो वै शापमोक्षकः॥५२॥

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा तं तु वेताला बभूवुर्विमलाननाः।
जग्मुस्ते देवमार्गेण विहर्त्तुं वै यथेच्छया॥५३॥
तान् दृष्ट्वा विस्मितो विप्रो गन्धर्वांस्त्रिदिवौकसः।
आश्चर्यं परमं लेभे हृष्टरोमा बभूव ह॥५४॥

तब तुम लोग पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त कर विहार करोगे।

वेतालों ने कहा

हम लोगों से यह कहकर वे अष्टावक्र मुनि तपस्या करने के लिये हिमालय पर चले गये।।५०।।

उस द्विजराज का स्मरण करते हुए हम लोग यहाँ चले आये। हे पुरुषोत्तम! सौभाग्यवशात् इस समय आप भी हम लोगो से मिल गये।।५१।।

अब आप देखें। हम लोगों का पूर्व का श्रेष्ठ रूप प्राप्त हो गया है। सम्प्रति आपकी कृपा से ही हम लोगों को शाप से मुक्ति प्राप्त हुई है।।५२।।

स्कन्द ने कहा

उद्दालक से यह कहते-कहते ही उन वेतालों के मुख निर्मल हो गये और वे सब अपनी इच्छानुसार विहार करने के लिये देवमार्ग द्वारा चले गये।।५३।।

इसके बाद स्वर्ग में रहने वाले उन गन्धर्वों को देखकर वह ब्राह्मण अत्यधिक विस्मित हुआ एवं अतिशय आश्चर्यचकित होने के कारण रोमाञ्चित हो गया।।५४।।

---

१. तमिति क.।

शिलायाश्चैव कुण्डस्य वेताललक्षणान्वितम्।
एतदौद्दालकं तीर्थं पुण्यं तदवधि स्मृतम्॥५५॥
पूर्वभागे तथा पश्चादुत्तरे दक्षिणे तथा।
शरविक्षेपमात्रं तु अतिपुण्यतमं स्मृतम्॥५६॥
अत्र जप्तं हुतं तप्तं दत्तं कोटिगुणं भवेत्॥५७॥
अस्मिन् कुण्डे तथा विप्र शिलायां पितृतर्पणम्।
पिण्डदानं कृतं येन तारितं सकलं कुलम्॥५८॥
गङ्गायां पिण्डदानस्य यत्पुण्यं भवति द्विज।
तत्पुण्यं कोटिगुणितं भवेदत्र न संशयः॥५९॥
अस्यावज्ञा कृता वै तु गच्छेदन्यत्र यो नरः।
स याति नरके घोरे पितृभिः सह नारद॥६०॥
पितरोऽपि सदा विप्र काङ्क्षन्ति निजके कुले।
गमिष्यति यदा कश्चिदस्मान् वै तारयिष्यति॥६१॥

वह शिला और कुण्ड वेतालचिह्न से चिह्नित है, उसी दिन से वह उद्दालक तीर्थ के नाम से लोक में प्रसिद्ध हो गया।।५५।।

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर वह स्थान एक-एक बाण प्रमाण तक अत्यधिक पवित्रतम कहा गया है।।५६।।

यहाँ जप, होम, तप अथवा दान जो कुछ भी पुण्य कर्म किया जाता है, वह सब करोड़ गुना अधिक फलदायक होता है।।५७।।

हे विप्र! इस कुण्ड में वेतालशिला के ऊपर जिसने पितृतर्पण किया है, उसने अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर दिया है।।५८।।

हे द्विज! गङ्गा जी में पिण्डदान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, निस्सन्देह उसका करोड़ गुना फल यहाँ उपलब्ध होता है।।५९।।

इस तीर्थ का अनादर कर जो मनुष्य अन्यत्र जाता है। हे नारद! वह मनुष्य अपने पितरों सहित घोर नरक में जाता है।।६०।।

हे विप्र! पितर भी यह आकांक्षा करते हैं कि हमारे कुल में कोई भाग्यवान् हो, जो वहाँ जाकर हम लोगों का उद्धार करे।।६१।।

धन्याः कलियुगे घोरे नराः पुण्याधिका वराः।
गच्छन्ति पितृकार्यार्थं वैताले तीर्थनायके॥६२॥

अस्मिन् कुण्डे तु यः स्नाति शिलास्पर्शं करोति हि।
दर्शनं पूजनं चैव तस्य पुण्यफलं शृणु॥६३॥

स्नातं वै सर्वतीर्थेषु दत्ता वै सकला मही।
निखिलाः प्रतिमा दृष्टा विष्णोरमिततेजसः॥६४॥

नारद उवाच

सेनापते विभो स्कन्द हृदि मे संशयो महान्।
कथं वै तीर्थराजस्य माहात्म्यमभवत्प्रभो॥६५॥

स्कन्द उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ यत्पृष्टोऽहं त्वया मुने।
उद्दालकस्य वृत्तं तु तद्वक्ष्यामि तवाऽनघ[1]॥६६॥

घोर कलियुग में भी वे ही पुण्यात्मा मनुष्य धन्य हैं, जो अपने पितरों का उद्धार करने के निमित्त तीर्थराज वेतालतीर्थ की यात्रा करते हैं।।६२।।

जो मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करते हैं, शिला का स्पर्श, दर्शन और पूजन करते हैं, उनके पुण्यफल का श्रवण करो।।६३।।

उस मनुष्य ने समस्त तीर्थों में स्नान कर लिया, उसने समस्त भूमिदान कर लिया और अमिततेजस्वी भगवान् विष्णु की समस्त प्रतिमाओं के दर्शन का फल प्राप्त कर लिया है।।६४।।

नारद ने कहा

हे सर्वव्यापक, सेनापति स्कन्द जी! मेरे हृदय में एक बहुत बड़ा सन्देह है। हे प्रभो! उस तीर्थराज का ऐसा माहात्म्य कैसे हुआ।।६५।।

स्कन्द जी ने कहा

हे महाप्राज्ञ! तुम धन्य हो! हे मुने! तुमने जो कुछ हमसे पूछा है, वह सब उद्दालक का आख्यान अब हम तुम्हारे समक्ष वर्णन करते हैं।।६६।।

---

१. तवाग्रतः इति ख.।

उद्दालकस्तु धर्मात्मा दृष्ट्वा गन्धर्वतां गतान्।
वेतालान् सपदि प्राज्ञः शिलायां स्थितवाँस्तदा॥६७॥
तत्र स्थित्वा तपश्चक्रे देवैरपि सुदुष्करम्।
पञ्चवर्षसहस्राणि एकपादेन तस्थिवान्॥६८॥
निराहारो निरीहश्च निर्ममो निरहङ्कृतिः।
ततः प्रसन्नो भगवान् बभूव दृष्टिगोचरः॥६९॥
तं दृष्ट्वोद्दालको विप्रः शङ्खचक्रगदाधरम्।
द्योतयन्तं दिशः कान्त्या कौस्तुभान्वितवक्षसम्॥७०॥
नारायणं दयासिन्धुं भक्तानां वशवर्तिनम्।
स्तोतुं प्रचक्रमे विप्रो भक्त्या गद्गदया गिरा॥७१॥

उद्दालक उवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते करुणानिधे।
गुणत्रयविभागाय त्रयीरूपाय ते नमः॥७२॥

जब धर्मात्मा उद्दालक ने वेतालों को गन्धर्व बनते हुए देखा, तब वे बुद्धिमान् उसी शिला पर बैठ गये।।६७।।

वहाँ पर बैठकर वे पाँच हजार वर्ष पर्यन्त एक पैर पर खड़े होकर ऐसा उग्र तप किये, जो देवताओं के द्वारा भी कठिनता से आचरण करने योग्य था।।६८।।

उस समय उन्होंने समस्त इच्छाओं, ममत्व और अहङ्कार का परित्याग कर दिया तथा भोजन का भी परित्याग कर दिया। तब प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु दृष्टिगोचर हुए।।६९।।

ब्राह्मण उद्दालक ने शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले विष्णु को देखा, उनके वक्षःस्थल पर कौस्तुभमणि प्रकाशित हो रही था, जिससे दशों दिशाएँ प्रदीप्त हो रही थीं।।७०।।

दया के सागर, भक्तों के वश में रहने वाले श्रीनारायण को देखकर द्विजश्रेष्ठ उद्दालक भक्तिभावपूर्ण गद्गद वाणी से स्तुति करने के लिये उद्यत हुए।।७१।।

उद्दालक ने कहा

हे देवाधिदेव! आप करुणानिधान हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं। आपने ही तीन प्रकार के गुणों का विभाग किया है, वेदत्रयीरूप भी आप ही हैं। आपको नमस्कार है।।७२।।

त्वमिन्द्रस्त्वं यमः श्रेष्ठः कालः कलयतां वरः।
कुबेरस्त्वं धनाध्यक्षो गणाधीशस्त्वमेव हि॥७३॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः।
सूर्यस्त्वं हि तमोहन्ता नक्षत्राणां पतिस्तथा॥७४॥
यत्किञ्चिद् दृश्यते लोके यद्वै स्थावरजङ्गमम्।
तत्सर्वं तु त्वमेवासि त्वत्तो नान्योऽस्ति कश्चन[1]॥७५॥

स्कन्द उवाच

इति स्तुतो हि भगवान् प्रसन्नोऽभूद् द्विजातये।
मेघगम्भीरया वाचा उवाच पुरुषोत्तमः॥७६॥

श्रीभगवान् उवाच

वत्स वत्स वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते।
तत्ते सम्प्रति दास्यामि अपि त्रैलोक्यदुर्लभम्॥७७॥

इन्द्र, यम और सब का सङ्कलन करने वाले कालस्वरूप भी आप ही हैं। आप ही धन के अध्यक्ष कुबेर भी हैं और गणों के अधीश्वर भी आप ही हैं।।७३।।

आप शिव भी हैं, विष्णु और प्रजापति ब्रह्मा भी आप ही हैं। अन्धकार का विनाश करने वाले सूर्य भी आप ही हैं तथा आप नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा भी हैं।।७४।।

संसार में स्थावर या जङ्गम जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वह सब आप ही हैं, आपके अतिरिक्त इस संसार में कुछ भी नहीं है।।७५।।

स्कन्द ने कहा

उस ब्राह्मण के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् विष्णु उस पर प्रसन्न हो गये और मेघ के समान गम्भीर वाणी से पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने कहा।।७६।।

श्रीभगवान् ने कहा

हे वत्स! तुम्हारे मन में जो कुछ इच्छा हो, वह माँगो। वह चाहे, तीनों लोकों में भी दुर्लभ हो, उसे मैं तुम्हें प्रदान करूँगा।।७७।।

---

१. किञ्चनेति क.।

उद्दालकतीर्थमाहात्म्यकथनम्

उद्दालक उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं त्वत्प्रसादाज्जगत्प्रभो।
त्वद्दर्शनं हि लोकेषु दुर्लभं मांसचक्षुषाम्॥७८॥
त्वद्दर्शनं मया प्राप्तमन्यत्किं वृणुयाम्यहम्।
वरमेकं तु मे देहि यदि चेन्मयि ते दया॥७९॥
अस्मिन् कुण्डे शिलायां च करिष्यन्ति नरोत्तमाः।
स्नानं दानं पिण्डदानं भूयात्तत्कोटिसंख्यकम्॥८०॥
इदं स्तोत्रं मयाऽऽख्यातं पठिष्यन्ति हि मानवाः।
तेऽपि तत्र स्नानफलं प्राप्नुयुः पुरुषोत्तमाः॥८१॥

श्रीभगवानुवाच

यत्त्वया याचितं विप्र तत्तथैव भविष्यति।
आगच्छ त्वं महाभाग मद्देहे निर्गुणे शिवे॥८२॥

उद्दालक के माहात्म्य का कथन

उद्दालक ने कहा

हे जगत् के स्वामी! मैं आपका कृपाप्रसाद प्राप्त कर धन्य हो गया हूँ, कृतकृत्य हो गया हूँ। इस संसार में स्थूल नेत्र वाले मनुष्य के लिये आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है।।७८।।

ऐसे दुर्लभ दर्शन को आज हम प्राप्त कर लिये हैं, इससे अधिक मैं क्या माँग सकता हूँ। यदि मेरे ऊपर आपकी दया है, तो एक वर मुझे प्रदान करें।।७९।।

इस कुण्ड में और इस शिला पर जो श्रेष्ठ मनुष्य स्नान, दान अथवा पिण्डदान करें, वह सब करोड़ गुना अधिक फल देने वाला हो जाय।।८०।।

जो मनुष्य हमारे द्वारा पढ़े गये स्तोत्र का पाठ करेगा, वे भी श्रेष्ठ मनुष्य वहाँ स्नान करने का फल प्राप्त कर लें।।८१।।

श्रीभगवान् ने कहा

हे विप्र! तुमने जैसा वर माँगा है, वह वैसा ही फल देने वाला होगा। हे महाभाग! तुम मेरे निर्गुण कल्याणकारी शरीर में आकर लीन हो जाओ।।८२।।

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुरुद्दालसहितो ययौ।
वैकुण्ठं योगिनां गम्यं विष्णुभक्तिपरात्मनाम्॥८३॥
इति ते कथितं विप्र वैतालं तीर्थमुत्तमम्।
एतदाख्यानकं श्रुत्वा पठित्वा भक्तितत्परः॥८४॥
सोऽपि विष्णुपुरं याति श्लोकमात्रेण नारद।
श्लोकार्द्धेनापि पादेन पठितेन द्विजोत्तम॥८५॥

॥ इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५४॥

स्कन्द जी ने कहा

श्रीभगवान् विष्णु इस प्रकार कहकर उद्दालक को साथ लेकर उस वैकुण्ठ-लोक को चले गये, जहाँ भगवान् विष्णु की भक्ति में परायण रहने वाले योगीजन जाते हैं॥८३॥

हे विप्र! हमने इस प्रकार वेतालतीर्थ का माहात्म्य तुम्हारे प्रति वर्णन किया है। जो मनुष्य भक्ति से तत्पर होकर इस आख्यान को पढ़ते हैं या श्रवण करते हैं॥८४॥

हे नारद! वे लोग भी विष्णुपुर को चले जाते हैं, चाहे वे एक श्लोक का पाठ करते हों या आधे श्लोक अथवा एक पाद के पाठ करने वाले भी विष्णुलोक को प्राप्त कर लेते हैं॥८५॥

॥ इस प्रकार स्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयागमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चौवन अध्याय पूर्ण हुआ॥१५४॥

[श्लोक-संख्या पूर्वागत-२४०२+८५=२४८७]



अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

मेधातिथेः सूर्यकुण्डे तपस्यतो रविप्रसादात् सूर्यलोकावाप्तिः

स्कन्द उवाच

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सूर्यकुण्डस्य विस्तरम्।
माहात्म्यं मुनिशार्दूल श्रृणुष्वैकमनाः प्रिय॥१॥
वेतालतीर्थादुपरि शरविक्षेपमात्रके।
तदस्ति पुण्यदं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्॥२॥
तत्रावगाहनान्मर्त्यः कुष्ठरोगात्प्रमुच्यते।
सर्वान् कामानवाप्नोति स्नानाद्वै मनसेप्सितान्॥३॥
तस्योत्पत्तिं श्रृणु प्राज्ञ क्षेत्रराजस्य पुण्यदाम्।
पुरा मेधातिथिर्नाम बभूव द्विजसत्तमः॥४॥

सूर्य देवता के प्रभाव से मेधातिथि को सूर्यलोक की प्राप्ति

स्कन्द ने कहा

हे मुनिशार्दूल! इसके बाद अब मैं सूर्यकुण्ड के माहात्म्य का विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ। हे प्रिय! तुम मन को एकाग्र करके श्रवण करो।।१।।

वेतालतीर्थ से ऊपर की ओर एक बाण की दूरी पर समस्त पापों का विनाश करने वाला एवं पुण्य को प्रदान करने वाला वह तीर्थ है।।२।।

उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य कुष्ठरोग से मुक्त हो जाता है। उसमें स्नान करने से मनुष्य मन के अभिलषित समस्त मनोरथों को प्राप्त कर लेता है।।३।।

हे प्राज्ञ! उस तीर्थ की उत्पत्ति का वृत्तान्त श्रवण करो, जो पुण्य को देना वाला है। प्राचीनकाल में मेधातिथि नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण हुए थे।।४।।

सूर्यभक्तिरतो नित्यं सूर्यमेवाऽभजत्सदा।
सदैव सौरमन्त्रं वै जपंस्तस्थौ तु स्वे गृहे॥५॥
एकदा मुनिशार्दूल गतो मेधातिथिर्मुनिः।
देवप्रयागके क्षेत्रे तीर्थानामुत्तमोत्तमे॥६॥
सौरकुण्डे महातीर्थे तीर्थानां प्रवरे शुभे।
तत्र गत्वा मुनिश्रेष्ठ तपश्चक्रे महामतिः॥७॥
निराहारो यतात्मा वै निर्ममो निःस्पृहः सुधीः।
सूर्यमेव सदा ध्यायन् सौरमन्त्रमनुस्मरन्॥८॥
एवं वर्षसहस्रे तु व्यतीते द्विजवल्लभ।
प्रसन्नोऽभूज्जगच्चक्षुः प्रत्यक्षमनुदृष्टवान्॥९॥
मेधातिथिः सुधर्मात्मा भासमानो यथा रविः।
तपसा शुद्धदेहो वै चकार स्तुतिमुत्तमाम्॥१०॥

वे सर्वदा सूर्य की भक्ति में रत रहते हुए सूर्य का ही भजन करते थे। सर्वदा सूर्य के मन्त्र का जप करते हुए अपने घर में रहते थे।।५।।

हे मुनिशार्दूल! एक समय मेधातिथि मुनि तीर्थों में श्रेष्ठ देवप्रयाग क्षेत्र में गये।।६।।

हे मुनिश्रेष्ठ! तीर्थों में श्रेष्ठ शुभ सूर्यकुण्ड में जाकर वहाँ महामतिमान् मेधातिथि ने तप करना प्रारम्भ किया।।७।।

उस समय उन्होंने आहार को त्याग कर, आत्मनिग्रहपूर्वक ममत्व और स्पृहा को भी त्याग दिया था। अत एव वे बुद्धिमान् मुनि सर्वदा सूर्य के मन्त्र का अनुस्मरण करते हुए सूर्य देवता का ही ध्यान करते थे।।८।।

हे ब्राह्मणप्रिय! इस प्रकार एक हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर संसार के नेत्रस्वरूप भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर उस मुनि को प्रत्यक्ष दर्शन दिये।।९।।

उस समय मेधातिथि धर्मात्मा सूर्य के समान प्रदीप्त हो रहे थे; क्योंकि तपस्या करने से उनका शरीर शुद्ध हो गया था। इसके बाद वे सूर्यनारायण की उत्तम स्तुति करने लगे।।१०।।

मेधातिथिरुवाच

निखिलनिगमबोधप्रमोदप्रयुक्त
प्रभक्तप्रहर्षप्रसेव्यप्रपाद।
प्रकरनिकरविनष्टान्धकारप्रकाश
प्रहर्षप्रयुक्तत्रिलोकप्रभो भोः॥११॥
भवजलधितरणप्रपोताङ्घ्रिपद्म
प्रनष्टं भवापारवारांनिधौ त्राहि माम्।
सकलसुरगणस्तूयमानः प्रमुक्त्यै
नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते॥१२॥

स्कन्द उवाच

इति स्तुतो हि भगवान् दण्डकेन[१] वरेण वै।
उवाच वचनं पुण्यं सर्वलोकहितावहम्॥१३॥

श्रीसूर्य उवाच

वत्स मेधातिथे विप्र वृणीष्व त्वं वरं मुने।
दास्यामि ते महाभाग अप्यदेयं वरं परम्॥१४॥

मेधातिथि ने कहा

सम्पूर्ण वेदों से जिनका ज्ञान प्राप्त होता है, आनन्द से पूर्ण श्रेष्ठ भक्तों द्वारा जिनके चरणों की प्रसन्नता से सेवा की जाती है। जो प्रकाश से प्रसन्नता को प्रदान करते हैं। ये तीनों लोकों के प्रभु हैं।।११।।

हे प्रभो! आप संसाररूपी समुद्र को तैरने के लिये जहाजरूपी चरणकमल वाले हैं। इसलिये संसाररूपी सागर में डूबते हुए मेरी रक्षा करें। सभी देवता आपकी स्तुति करते हैं। मुक्ति को प्राप्त करने के लिये आपको नमस्कार हैं, पुनः पुनः आपको नमस्कार है।।१२।।

स्कन्द जी ने कहा

जब उक्त ब्राह्मण ने श्रेष्ठ दण्डक पद्य द्वारा भगवान् सूर्य की इस प्रकार स्तुति की। तब उन्होंने समस्त लोकों का हित करने वाले पवित्र वचन कहे।।१३।।

श्री सूर्य ने कहा

हे वत्स, मुनि मेधातिथि! तुम वर माँगो। जो किसी अन्य के लिये अदेय हो, ऐसा वर भी मैं तुम्हें प्रदान करूँगा।।१४।।

---

१. स्तोत्रकेणेति ग.।

मेधातिथिरुवाच

विभो विभास्कर प्राज्ञ सप्ताश्वरथवाहन।
त्वदीयचरणाम्भोजे भक्तिर्भवतु सर्वदा॥१५॥
सदैव तव पूजां तु कुर्यां वै भक्तितत्पर:।
वरमन्यं च मे देहि यदि मां मन्यसे रवे॥१६॥
त्वया सदाऽत्र स्थातव्यं मया सह महामते।
अस्य कुण्डस्य माहात्म्यं भूयात्पुण्यतमं वरम्॥१७॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातमेतत्तीर्थं भवेद्विभो॥१८॥

स्कन्द उवाच

तत्तथाऽऽस्तामिति विभुरुक्त्वा स्वर्गं जगाम वै।
तत: ख्यातं बभूवेदं कुण्डं क्रतुफलप्रदम्॥१९॥
अस्मिन् सौरे महाकुण्डे यदि प्राप्येत सप्तमी।
माघमासस्य शुक्ला वै तत्र स्नातु: फलं शृणु॥२०॥

मेधातिथि ने कहा

हे सर्वव्यापक, बुद्धिमान् सूर्यदेव! सात अश्वों से युक्त रथ आपका वाहन है। आपके चरणकमल में मेरी भक्ति हो।।१५।।

मैं भक्तिभाव में तत्पर रहकर सदा आपकी पूजा करता रहूँ। हे सूर्य! यदि आप मुझे अपना भक्त मानते हैं, तो दूसरा वर मुझे दीजिये।।१६।।

हे महामतिमान्! मेरे साथ आप सदैव यहाँ निवास करें और इस कुण्ड का पवित्र माहात्म्य संसार में विख्यात हो।।१७।।

हे विभो! विशेष क्या कहूँ, यह तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात हो जाय।।१८।।

स्कन्द ने कहा

जो तुमने कहा है, वह सब उसी प्रकार से होगा, यह कहकर सूर्य नारायण स्वर्गलोक को चले गये। उसी समय से यह कुण्ड यज्ञ के फल को देने वाला विख्यात हो गया।।१९।।

यदि माघ मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि को कोई व्यक्ति सूर्य के इस कुण्ड में स्नान करता है, तो उसके फल का श्रवण करो।।२०।।

अर्बुदार्बुदवर्षाणि तथाऽर्बुदशतानि च।
सूर्यलोके वसेन्मर्त्यस्ततो वै जायते द्विजः॥२१॥
वेदवेदाङ्गवक्ता वै सुन्दराङ्गः सुबुद्धिमान्।
सर्वलोकेषु विख्यातः सर्वशास्त्रार्थपारगः॥२२॥
सूर्यस्य प्रीतये दद्याद्यो मर्त्यो भक्तितत्परः।
गृहवस्त्रान्नगेहानि सूर्यलोके वसेत्तु सः॥२३॥
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि यथा ते प्रत्ययो भवेत्।
श‍ृणु नारद तत्त्वेन मत्तो मुनिगणर्षभ॥२४॥

शूद्रकुलजस्य देवदासेतिहासपूर्वकं सूर्यकुण्डमाहात्म्यकथनम्

कश्चिच्छूद्रो मुनिश्रेष्ठ बभूव द्विजसेवकः।
देवदास इति ख्यातो नाम्ना वै मुनिसत्तम॥२५॥
सर्वेषां द्विजवर्याणां परिचर्यां करोति सः।
द्विजाज्ञयैव सर्वं हि व्यवहारं करोति च॥२६॥

वह मनुष्य अर्बुद गुणित अर्बुद वर्ष पर्यन्त सूर्यलोक में निवास करता है, तदनन्तर ब्राह्मणकुल में जन्म लेता है।।२१।।

वह वहाँ वेदवेदाङ्ग का वक्ता, सुन्दर अङ्गों वाला, सुन्दर और बुद्धिमान् होता है। वह समस्त शास्त्रों के अर्थ को पूर्ण रूप से जानने वाला तथा सम्पूर्ण लोक में विख्यात हो जाता है।।२२।।

जो मनुष्य भगवान् सूर्य की प्रसन्नता के लिये घर, वस्त्र और अन्न प्रदान करता है, वह मनुष्य सूर्यलोक में निवास करता है।।२३।।

हे मुनिगणोत्तम नारद! अन्य वृत्तान्त भी मैं वर्णन करता हूँ, जिसके सुनने से तुम्हें विश्वास हो जायेगा। उसको तुम तत्त्व रूप से सुनो।।२४।।

शूद्र कुल में उत्पन्न देवदास के इतिहास के साथ सूर्यकुण्ड का माहात्म्य-कथन

हे मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मणों का सेवक कोई शूद्र था, उसका नाम देवदास था। इसी नाम से वह विख्यात था।।२५।।

वह ब्राह्मणों की परिचर्या सेवा किया करता था। वह ब्राह्मणों की आज्ञा से ही अपने सभी व्यावहारिक कार्य किया करता था।।२६।।

गायने तस्य वै प्रीतिः सदाऽभूद् द्विजपुङ्गव।
कथं मे गायनज्ञानं भविष्यति च चिन्तयन्॥२७॥
कस्मिंश्चित्त्वथ काले तु देवदासो गृहं ययौ।
मार्गे व्रजन् ददर्शाऽथ मुनिपुञ्जं सुनिर्मलम्॥२८॥
दृष्ट्वा मुनिगणं नत्वा चरणौ जगृहे तदा।
तेषां वै मुनिवर्याणां देवदासो महामतिः॥२९॥
उवाच मुनिपुञ्जं वै विनयाविष्टमानसः॥३०॥

देवदास उवाच

भो भो मुनिगणाः सर्वे दयां कुरुत सुव्रताः।
भवतां दासभूतोऽहं शूद्रो विज्ञापयाम्यहम्॥३१॥
यथा सुगायकोऽहं स्यां वासवस्य शचीपतेः।
सदा स्वर्गे च मे वासो भवतान्मुनिसत्तमाः॥३२॥

ऋषय उचुः

देवदास श्रृणु त्वं हि वक्ष्यामस्ते वयं वचः।
येन वै कर्मणा शूद्र यास्यसि त्वं त्रिविष्टपम्॥३३॥

हे द्विजपुङ्गव! गायन में उसकी सदैव प्रीति रहती थी। वह सदैव यही चिन्ता करता रहता था कि मुझे गानविद्या का ज्ञान कैसे होगा।।२७।।

किसी समय वह देवदास कहीं से अपने घर जा रहा था, उसी समय मार्ग में जाते हुए सुनिर्मल मुनियों के समुदाय को देखा।।२८।।

महर्षियों के मण्डल को देखकर प्रणाम कर उसने उनके चरणों को पकड़ लिया। तदनन्तर वह मतिमान् देवदास उन मुनिश्रेष्ठों के समक्ष विनय से युक्त मन से बोला।।२९-३०।।

देवदास ने कहा

हे मुनिगण! आप लोग सुन्दर व्रत करने वाले हैं। आप सभी लोग मुझ पर दया करें। आप लोगों का दासभूत मैं शूद्र हूँ, आप लोगों से मैं निवेदन करता हूँ।।३१।।

हे मुनीश्वरों! आप लोग ऐसा उपाय बतलायें, जिससे मैं इन्द्र का सुन्दर गायक गन्धर्व बनकर सदैव स्वर्ग में निवास करूँ।।३२।।

ऋषियों ने कहा

हे देवदास! हम लोग जो वचन तुमसे कहते हैं, उसे श्रवण करो। यद्यपि तुम शूद्र हो, तथापि जिस कर्म को करने से तुम स्वर्ग में चले जाओगे।।३३।।

गन्धर्वराजतां चैव गमिष्यसि हि पादज।
देवप्रयागके क्षेत्रे सूर्यकुण्डं[१] हि विद्यते॥३४॥
गङ्गाया उत्तरे कूले तत्र गच्छ महाशय।
तत्रावगाहनाद्वत्स सूर्यस्तुष्यति सारुणः॥३५॥
यान् यान् प्रार्थयते कामांस्तान् ददाति हि भास्करः।
गच्छ गच्छाऽऽशु हे शूद्र तीर्थानामुत्तमोत्तमे॥३६॥

स्कन्द उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा देवदासो महामतिः।
तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे ययौ देवप्रयागके॥३७॥
सौरकुण्डे स धर्मात्मा स्नानं वै कृतवांस्तदा।
रविं सदा हृदि ध्यायन् सूर्य सूर्येत्युदीरयन्॥३८॥
एवं वै कुर्वतस्तस्य सन्तुष्टोऽभूद्दिवाकरः।
उवाच देवदासं स सारुणो भगवान् रविः॥३९॥

हे पादज (शूद्र)! तुम उस कर्म के करने से गन्धर्वराज के पद को भी प्राप्त कर लोगे। देवप्रयाग क्षेत्र में एक सूर्यकुण्ड है।।३४।।

यह कुण्ड गङ्गा के उत्तर तट पर अवस्थित है। हे महाशय! तुम वहाँ जाओ। हे वत्स! उस कुण्ड में स्नान करने से सारथि अरुण के साथ भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जायेंगे।।३५।।

वहाँ पर मनुष्य जिन-जिन कामनाओं की याचना करता है, भगवान् सूर्य उन सभी कामनाओं को पूर्ण करते हैं। हे भद्र! इसलिये तुम शीघ्र वहाँ जाओ। वह तीर्थों में उत्तमोत्तम तीर्थ है।।३६।।

स्कन्द ने कहा

इस प्रकार उनके वचनों को सुनकर महाबुद्धिमान् देवदास उसी महान् क्षेत्र देवप्रयाग में चला गया।।३७।।

वहाँ जाने के बाद उस धर्मात्मा ने सूर्यकुण्ड में स्नान किया, वे सदा हृदय में रवि का ध्यान करते हुए हे सूर्य, हे सूर्य कहते रहते थे।।३८।।

इस प्रकार जप करते रहने पर भगवान् दिवाकर उस पर सन्तुष्ट हो गये। तदनन्तर अरुण सहित भगवान् रवि वहाँ प्रकट होकर देवदास के प्रति बोले।।३९।।

---

१. देवकुण्डे इति क.।

सूर्य उवाच

भो भो शूद्र महाभाग प्रसन्नोऽहं त्वयि प्रिय।
वरं वरय शीघ्रं त्वं यत्ते मनसि वर्तते॥४०॥

देवदास उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पापं मे विगतं रवे।
तव दर्शनमात्रेण करुणाकर भास्कर॥४१॥
अहं गन्धर्वराजः स्यामिति मे हृदि वर्तते।
तत्कुरुष्व महाभाग भक्तानामभयप्रद॥४२॥
स्वर्गलोके सदा वासो मम स्याच्छिवरूपक।
इच्छारूपं तु मे देहि भक्तोऽहं तव पापहन्॥४३॥

श्रीसूर्य उवाच

वत्स शूद्र त्वमद्यैव भव गन्धर्वराट् सुत।
इच्छारूपेण विहर स्वर्गलोके निरन्तरम्॥४४॥

सूर्य ने कहा

हे शूद्र! तुम महाभाग्यवान् हो। हे प्रिय! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। जो तुम्हारे मन में अभिलाषा है, उसे वर के रूप में मुझसे माँगो।।४०।।

देवदास ने कहा

हे सूर्यदेव! आपके दर्शनमात्र से ही मेरे सभी पाप समाप्त हो गये। इसलिये मैं धन्य हो गया। मैं कृतकृत्य हो गया। हे भास्कर! आप सभी प्राणियों पर दया करने वाले हैं।।४१।।

मेरे हृदय में यह अभिलाषा है कि मैं गन्धर्वराज हो जाऊँ। हे महाभाग! आप ऐसी कृपा करें, क्योंकि आप भक्तों को अभय प्रदान करने वाले हैं, इसलिये मेरा मनोरथ पूर्ण करें।।४२।।

हे कल्याणमूर्ति! मेरा सदैव स्वर्गलोक में निवास हो, मेरा रूप भी इच्छानुसार हो जाया करे। हे पापहारिन्! देवाधिदेव! मैं आपका भक्त हूँ।।४३।।

श्रीसूर्य ने कहा

हे पुत्र! तुम शूद्र हो, फिर भी तुम आज ही गन्धर्वराज हो जाओ और अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर स्वर्गलोक में निरन्तर विहार करो।।४४।।

स्कन्द उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् सूर्यस्तत्रैवान्तरधीयत।
देवदासोऽपि धर्मात्मा प्राप्य गन्धर्वराजताम्।।४५।।
अश्वरूपोऽभवत्तत्र कुण्डे कुण्डोत्तमे शुभे।
अश्वपादाङ्कितं क्षेत्रमद्यापि दृश्यते जनैः।।४६।।
ततो मनुष्यरूपेण विचचार महामतिः।
कदाचिद्देवरूपेण रक्षोरूपेण वाऽथवा।।४७।।
नानाविधानि रूपाणि धृत्वा वै विचचार सः।
गन्धर्वत्वे तस्य नाम बभूव मुनिसत्तम।।४८।।
सुघोष इति विख्यातो गन्धर्वेषु मृगाधिपः।
प्रातःकाले सदा याति सुघोषो नाम गायकः।।४९।।
स्नानाय सौरकुण्डे तु सर्वपापहरेऽनघे।
नानारूपधरः शुद्धो दृश्यते पुण्यकर्तृभिः।।५०।।

स्कन्द ने कहा

यह कहकर भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्धान हो गये। धर्मात्मा देवदास भी उसी समय गन्धर्वराज बन गया।।४५।।

वह देवदास उस पवित्र और सर्वोत्तम कुण्ड में अश्वरूप हो गया। वह क्षेत्र आज भी अश्व के चरणों से अङ्कित मनुष्यों को दिखाई देता है।।४६।।

तदनन्तर वह देवदास गतिमान् मनुष्य रूप धारण कर विचरण करने लगा। वह किसी समय देवरूप और कभी राक्षसरूप से भी विचरण करता था।।४७।।

इस प्रकार वह अनेक प्रकार के रूप को धारण कर विचरण करता था। हे मुनिश्रेष्ठ! गन्धर्वरूप में उसका नामकरण हुआ।।४८।।

वह सुघोष नाम से समस्त गन्धर्वों में अधीश्वर होने के कारण अत्यन्त विख्यात हो गया। वह गन्धर्वराज सुघोष समस्त पापों को दूर करने वाले उस सूर्यकुण्ड में स्नान करने के लिये प्रातःकाल नित्य आता है। वह अनेक प्रकार का रूप धारण करने वाला पवित्रात्मा पुण्यशाली मनुष्य के द्वारा देखा जाता है।।४९-५०।।

सर्वे देवाः सगन्धर्वा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः।
तस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये नित्यं तिष्ठन्ति नारद॥५१॥
धन्यास्त एव ये मर्त्त्याः स्नानं कुर्वन्ति नित्यशः।
सूर्यस्य पूजनं चैव सौरकुण्डे मुनीश्वर॥५२॥
ह्रीं ह्रीं स इति मन्त्रेण सूर्यपूजां करोति यः।
तस्य देवः स्वयं साक्षद्ददाति वरमुत्तमम्॥५३॥
ब्रह्महत्यादिपापानि गोत्रोत्थहननं तथा।
स्नानमात्राद्विनश्यन्ति यथाऽग्नौ तूलराशयः॥५४॥
इति ते कथितं दिव्यमदेयं दुष्टजन्तुषु।
मेधातिथेश्चरित्रं तु देवदासस्य धीमतः॥५५॥
यः श्रृणोति नरो भक्त्या पठेद्वा पाठयेदपि।
पुत्रपौत्रैः[१] परिवृतो भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्॥५६॥

हे नारद! ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता, गन्धर्व के साथ उस पवित्र तीर्थश्रेष्ठ में नित्य निवास करते हैं।।५१।।

हे मुनीश्वर! जो मनुष्य इस सूर्यकुण्ड में नित्य स्नान करते हैं और भगवान् सूर्य का पूजन करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं।।५२।।

जो मनुष्य 'ॐ ह्रां ह्रीं सः' इस मन्त्र के द्वारा सूर्यनारायण का पूजन करते हैं, उन्हें साक्षात् भगवान् सूर्य स्वयं वर प्रदान करते हैं।।५३।।

ब्रह्महत्या आदि तथा अपने वंशजों का वध करने से जो पाप लगता है, इस सूर्यकुण्ड में स्नान करने मात्र से वे सभी प्रकार के पाप इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे रूई का ढेर अग्नि में जल कर भस्म हो जाता है।।५४।।

हे नारद! इस प्रकार हमने तुम्हारे प्रति यह मेधातिथि तथा देवदास का आख्यान वर्णन किया है, इसे दुष्ट प्राणियों को नहीं सुनाना चाहिये।।५५।।

जो मनुष्य इस आख्यान को भक्तिभावपूर्वक पढ़ता है, पढ़ाता है अथवा श्रवण करता है, वह पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर यथाभिलषित भोगों का भोग करता है।।५६।।

१. पुत्रपौत्रे इति ख.।

सूर्यलोकं स तिष्ठेद्वै यावदाभूतसम्प्लवम्।
कर्मक्षयादिहागत्य जातिं स्मरति पौर्विकीम्।।५७।।

।। इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे देवप्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।।१५५।।

इसके बाद वह प्रलयपर्यन्त सूर्यलोक में निवास करता है। तदनन्तर कर्म के क्षीण होने पर जब उसका संसार में जन्म होता है, तो उसे पूर्वजन्म का स्मरण बना रहता है।।५७।।

।। इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड में देवप्रयागमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ पचपन अध्याय पूर्ण हुआ।।१५५।।

[श्लोक-संख्या पूर्वागत- २४८७+५७=२५४४]



श्लोकपादानुक्रमणिका


सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
श्रुतम् मे गोपाय


सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
श्रुतम् मे गोपाय